२

।। श्रीमद्भागवतसुबोधिनीके अन्तर्गत ।।
(तृतीयस्कन्धसुबोधिनीके अन्तर्गत)

।। कपिलगीता ।।

(सविवेचन छब्बीसवाँ अध्याय एवं बुद्धिवृत्ति)

प्रवक्ता

गोस्वामी श्याम मनोहर

॥ श्रीमद्भागवतसुबोधिनीके अन्तर्गत ॥

(तृतीयस्कन्धसुबोधिनीके अन्तर्गत)

॥ कपिलगीता ॥

(सविवेचन छब्बीसवाँ अध्याय एवं बुद्धिवृत्ति)

प्रवक्ता

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट
वैभव कोपरेटिव सोसायटी
पूना-बेंगलोर रोड, कोल्हापुर
महाराष्ट्र ४१६ ००८.

संकलनकर्ता : श्रीअतुल्य शर्मा, श्रीमती मनीषा तथा श्रीपरेश शाह,
श्रीअनिल भाटिया

प्रथमसंस्करण : अक्षयतृतीया वि.सं.२०७७,
इसु.वर्ष. मे २०२१

प्रति : ५००

निःशुल्कवितरणार्थ : मुंबई विश्वविद्यालयके फिलॉसॉफी डिपार्टमॅन्ट् और वल्लभवेदांत अेकेडेमी एन्ड् रिसर्च सेन्टर् के लिए श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरणाश्रम ट्रस्ट्, कोल्हापुर द्वारा प्रकाशित.

मुद्रक : पूर्वी प्रेस,
१, लोहनगर, गोंडल रोड्,
राजकोट, ३६०००२

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ

ग्रन्थप्रकाशन :

साम्प्रदायिक परीक्षाकी पाठ्यपुस्तकें:

प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	१०	प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	निःशुल्क
प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (अंग्रेजी)	निःशुल्क	पुष्टिप्रवेश १-२ ले. : गो.शरद् (गुज)	२०
पुष्टिप्रवेश-१-२, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	१०	पुष्टिपथ, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	३०
पुष्टिपथ, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	२०	प्रमेयरत्नसंग्रह, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	५०
Manual of the Devotional Path of Pushti, गो.शरद्			६५

साम्प्रदायिक विचारगोष्ठी

वार्तापरिचर्चा	अप्राप्य	साधनाप्रणाली संगोष्ठी	अप्राप्य
अधिकारपरिचर्चा	दुर्लभ	पुष्टिभक्तिमें कथासाधना संगोष्ठी	अप्राप्य
शरणागति विचारगोष्ठी	५०	सेवा-समर्पण विचारगोष्ठी	५०
पुष्टिभक्ति तथा प्रपत्तिमें प्रतिबन्ध	१००	जघन्याधिकार विचारगोष्ठी	८०
पुष्टिफलमीमांसा	१००		
पुष्टिअस्मिता संवर्धन शिविर, राष्ट्रीय संमेलन, भरूच		२५	
पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा (विस्तृत-संक्षिप्तविवरण)		१००	

तत्त्वदर्शन विषयक राष्ट्रीय सेमिनार

शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा	२००	अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी	१५०
कार्यकारणभावविद्वत्सङ्गोष्ठी	२००	प्रत्यक्षप्रमाण विद्वत्सङ्गोष्ठी	१५०
अन्धकारवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी	२००		
वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह, लेखक : गो. श्रीश्याम मनोहरजी		निःशुल्क	

नित्यस्तोत्रपाठ:

पुष्टिपाठावली (हिन्दी)	२०	पुष्टिपाठावली (गुजराती)	२०
पुष्टिपाठावली (गुजराती) पोकेट साईझ			१०
पुरुषोत्तमसहस्रनाम-त्रिविधलीलानामावली(गुर्जरभाषानुवाद)			२०

सन्दर्भग्रन्थ:

पुष्टिविधानम् पादानुक्रमणिका			१०
Summary of Shuddhadvaita Vangmaya, लेखक: गो.शरद			१५
अमृत वचनावली (गुजराती)	निःशुल्क	अमृत वचनावली (हिन्दी)	निःशुल्क

अध्ययनोपयोगी ग्रन्थ:

पुष्टिविधानम्-२(व्याकरणम्) श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित २६ ग्रन्थोंका पदच्छेद-अन्वय- शब्दपरिचय-वृत्तिपरिचय	१००
पुष्टिविधानम्-३ (व्रजभाषा) श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित २६ ग्रन्थोंका शब्दार्थ-श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका	१५०
तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणम्, (व्रजभाषाटीका)$^{\text{साधारण/राजसंस्करण}}$	५०/७०
तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत सर्वनिर्णयप्रकरणम् (व्रजभाषाटीका)$^{\text{साधारण/राजसंस्करण}}$	८०/१००

श्रीभागवतमहापुराण(गुर्जरभाषानुवाद) अनु : गो.वा.श्रीकल्याणजी कानजी शास्त्री	५००
श्रीमद्भगवद्गीता, गुर्जरभाषानुवाद, अनुवादक: गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी श्लोकार्थ–विवेचन–पादानुक्रमणिका. गीतातात्पर्य–न्यासादेशविवरण सहित	५०
विवेकत्रयम्, प्रपञ्च–जीव–मूलरूप (संस्कृत)	१०
गृहसेवा और व्रजलीला(व्रजभाषा)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
गृहसेवा अने व्रजलीला(गुजराती)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	अप्राप्य
सेवा$^{\text{हिन्दी}}$ (ऋतु–उत्सव–मनोरथ) व्याख्याता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
सेवा$^{\text{गुज.}}$ (ऋतु–उत्सव–मनोरथ) व्याख्याता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद, व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी(गुजराती)	अप्राप्य
श्रीकृष्णचरित्र (दशमस्कन्ध गुर्जरभाषा–भावानुवाद) अनु : गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी	अप्राप्य
रसदृष्टिनी तरफेणमां(गुजराती), लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
सिद्धान्तनुं आचमन, प्रश्नोत्तर (गुज.) उत्तरदाता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
ब्रह्मवाद (हिन्दी) लेखक: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
सेवाकौमुदी$^{\text{(हिन्दी)}}$,विषय: नवधाभक्ति, लेखक: श्रीलालूभट्टजी. व्याख्याता:गो.श्रीश्या.म.	अप्राप्य
भक्तिवर्धिनी(गुज.), व्याख्याता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी २८ वार्ताओ, लेखक: श्रीभूपेन्द्र भाटीया	अप्राप्य
षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी ६४ वार्ताओ, लेखक: श्रीभूपेन्द्र भाटीया	अप्राप्य
कृष्णाश्रय, श्रीकल्याणरायजी विरचित संस्कृत टीकानो गुजराती अनुवाद	अप्राप्य
जिन श्रीवल्लभरूप न जान्यो (गुजराती) गो.श्रीश्याम मनोहरजी लिखित श्रीवल्लभ महाप्रभुस्तोत्राणि ग्रन्थकी विस्तृत हिन्दी भूमिकाका गुर्जरभाषानुवाद तथा सौंदर्यपद्य, सर्वोत्तमस्तोत्र, वल्लभाष्टक, स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीहरिरायचरण रचित श्रीवल्लभस्तोत्र, पंचश्लोकी, शिक्षाश्लोकी आदि ग्रन्थोंकी टीकाओंका गुजराती अनुवाद.	७०
पुरुषोत्तमग्रन्थावली–५(द्रव्यशुद्धि–व्रतोत्सवनिर्णय–अपराधनिरूपण)(संस्कृत–गुज.–हिन्दी)	१००
पुरुषोत्तमग्रन्थावली–६(उपनिषद्–गीताविवृति) संस्कृत	२००
श्रीभागवत तृतीयस्कन्ध सुबोधिनी प्रथम खंड (अध्याय १–१९) संस्कृत	२००

इतिहास

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, जीवनचरित्र–ग्रन्थ–हस्ताक्षर (गुज.–हिन्दी)	२५
आधुनिक न्यायप्रणाली अने पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीनो आपसी टकराव$^{\text{गुज.}}$, लेखक: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
आधुनिक न्यायप्रणाली और पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीका आपसी टकराव$^{\text{हिन्दी.}}$, लेखक: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क

श्रीभागवतसुबोधिनीका गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी कृत गुर्जरभाषानुवाद

प्रथमस्कन्ध	१००	द्वितीयस्कन्ध	१००
तृतीयस्कन्ध (१–२)	४००	दशमस्कन्ध(जन्मप्रकरण)	१५०

चित्र

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य	निःशुल्क	श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	निःशुल्क
महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य–श्रीगोपीनाथप्रभुचरण–श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण			निःशुल्क

गोशाला : मांडवी-कच्छ में प्राकृतिक वातावरणमें गोपाल गोशाला.

जीर्णोद्धार : तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजीके बैठकजी, गाम : विंजाण-कच्छ

।। श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ ।।

। संस्कृत, शास्त्र और सम्प्रदाय के अध्ययनके लिए समर्पित पुष्टिमार्गीय केन्द्र ।

अध्ययनोपयोगी ग्रन्थालय, अध्ययनकक्ष, निवास, भोजन, अध्यापक आदि अत्यावश्यक सुविधाओंसे सुसज्ज.

पता : २६, श्रीवल्लभाचार्य नगर, रेफरल् होस्पिटल्के पीछे, हालोल, जि.पंचमहाल, गुजरात-३८९३५०. फोन : 02676-225171

व्होट्स्एप द्वारा श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ तथा पुष्टिमार्ग सम्बन्धी महात्वपूर्ण जानकारीयां प्राप्त करनेकेलिए सम्पर्क करें : विद्यापीठ : 02676-225171

http://www.vallabhacharyavidyapeeth.org/
http://www.pushtimarg.net/

☎ **टेलि कोन्फरन्स्-पुष्टिस्वाध्याय :** सप्ताहके प्रायः सभी दिन आबाल-वृद्ध सभी पुष्टिमार्गीओं केलिये सम्प्रदायके मूल ग्रन्थोंका अध्यापन विद्वान् आचार्यवंशजों द्वारा टेलिफोनिक कोन्फरन्स् के माध्यमसे होता है. **सम्पर्क:** विद्यापीठ : 02676-225171, नीरजभाई(यु.एस्.ए.):+7325424165. gosharad@rediffmail.com

YouTube Subscribe us on You Tube **'Pushtiswadhyay'**

Like our page on Facebook : Sri Vallabhacharya Vidyapeeth

Pushti-Vidya **'पुष्टिविद्या' मोबाईल् एप्लिकेशन् :** आधुनिक संसाधनों का उपयोग करने वाले पुष्टिमार्गी तथा पुष्टिमार्गमें रुचि रखनेवाले जिज्ञासु जनोंको पुष्टिमार्गका यथार्थ परिचय करानेके उद्देश्य से प्रस्तावित की गई है। इसमें पुष्टिमार्गीय टीप्पणी (कैलेंडर), उत्सवोंका परिचय, सिद्धान्तसूक्तियाँ, कीर्तन, प्रवचन, ग्रंथों का अध्यापन, सिद्धांत सम्मत प्रणालीसे आयोजित होते कार्योंकी जानकारी, टेलीफोनिक कॉन्फरेन्ससे होते नित्य पुष्टिस्वाध्याय की जानकारी, उनकी रेकॉर्डिंगक तथा उनकी लिंक आदि विषय इस एप्लिकेशनमें क्रमिक रूपसे उपलब्ध कराये जायेंगे।

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीद्वारा सम्पादित-पुनर्मुद्रित

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्ति सम्प्रदायके मूल संस्कृत ग्रन्थ

१. सव्याख्यषोडशग्रन्थ संयुक्तप्रकाशन, दुर्लभ
  खंड १. श्रीयमुनाष्टकम् से सिद्धान्तरहस्यम्
  खंड २. नवरत्नम् से भक्तिवर्धिनी
  खंड ३. जलभेदः से सेवाफलम्
ष. प्रकाश-रश्मि सहित ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्
  खंड १. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ
  खंड २. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ
  खंड ३. द्वितीयाध्याय
  खंड ४. तृतीयाध्याय
  खंड ५. चतुर्थाध्याय
३. श्रीमद्भागवतसुबोधिनी
  खंड १. प्रथम (प्रथम खंड. अध्याय १-८)
    तृतीयस्कन्ध (दो खंड) श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट(मांडवी) द्वारा प्रकाशित.
  खंड ४. जन्मप्रकरण
  खंड ५. तामसप्रमाणप्रकरण
  खंड ६. तामसप्रमेय-साधनप्रकरण
  खंड ७. तामसफलप्रकरण
  खंड ८. राजसप्रमाण-प्रमेयप्रकरण
  खंड ९.राजससाधन-फलप्रकरण
  खंड १०.सात्त्विकप्रमेयसाधनफलप्रकरण
  खंड ११. गुणप्रकरण तथा यावत्प्राप्य एकादशस्कन्ध
४. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध
  खंड १. शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण
  खंड २. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध १-५
  खंड ३. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध ६-१ष
५. सव्याख्यषड्ग्रन्थाः संयुक्तप्रकाशन, दुलर्भ
६. वेदान्ताधिकरणमाला-भावप्रकाशिका
७. विविधविवरणोपेत पत्रावलम्बनम्
८. प्रस्थानरत्नाकर
९. विद्वन्मण्डनम्
१०. श्रीबालकृष्णग्रन्थावली
११. श्रीवल्लभमहाप्रभुस्तोत्राणि
१२. श्रीपुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकार (हिन्दी-गुजराती)
१३. वल्लभाख्यान (सप्तटीकोपेत) (हिन्दी)

१४. पुष्टिविधानम् गुजरातीपाठाली, व्रज तथा संस्कृत संस्करण

१५. वादावली

ब्रह्मवाद, वादकथा, विग्रहवाद, प्रपंचवाद, प्रपंचसंसारभेदवाद, ब्रह्मजीवतदैक्यस्वरूपनिरूपणम्, विरुद्धधर्माश्रयत्वविवेचनम्, आत्मवादः, प्रश्नोत्तरसाहस्रीपर्यालोचनम्, प्रश्नोत्तरसाहस्रीचर्चित-प्रकृत्यधिकरण-समालोचनम्, केवलाद्वैतवादाभिमताविद्यास्वरूपविमर्शः, अक्षरपुरुषोत्तम-द्वैतनिरासवादः

१६. अवतारवादावली

खंड २. भेदाभेदवाद,सृष्टिभेदवाद,आविर्भावतिरोभाववाद,ख्यातिवाद,प्रतिबिम्बवाद, अन्धकारवाद.

खंड ३. ब्राह्मणत्वादिदेवतावादः, जीवव्यापकत्वखण्डनवाद, जीवप्रतिबिम्बत्व-खण्डनवादः, भागवतस्वरूपविषयकशंकानिरासवादः,उपदेशादिविषयकशंकानिरासवादः,भगवत्प्रतिकृत-पूजनवादः, ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणवादः, तुलसीमालाधारणवादः, शंखचक्रधारणवादः, भक्तिरसत्ववादः, भक्त्युत्कर्षवादः, नामफलादिप्रकारवादः, जयश्रीकृष्णोच्चारणवादः, स्ववृत्तिवाद :, वस्त्रादिसेवावादः, मूर्तिपूजनवादः, भागवतपाठादेः शंकानिरासवादः.

१७. सत्सिद्धान्तमार्तण्डः. भारतमार्तण्ड-पञ्चनदी श्रीगोवर्धन(गट्टुलाल)शर्मा विरचित.

१८. वेदान्तचिन्तामणी. भारतमार्तण्ड-पञ्चनदी श्रीगोवर्धन(गट्टुलाल)शर्मा विरचित.

१९. प्राभञ्जन-मारुतशक्ति. भारतमार्तण्ड-पञ्चनदी श्रीगोवर्धन(गट्टुलाल)शर्मा विरचित.

२०. श्रीमत्प्रभुचरणकृतग्रन्थाः.

२१. श्रीमत्प्रभुचरणकृताः स्तोत्रवज्ञप्तयः.

२२. श्रीमद्भगवद्गीताध्यायप्रतिपाद्यसंक्षेप. लेखक : गो.श्या.म.

२३. लघुग्रन्थसंग्रह १-२. लेखक : गो.श्या.म.

४क्र.१, ष तथा ४/१, ४/ष को छोड कर सभी ग्रन्थ श्रीवल्लविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेश्वर-प्रभुचरण आ.हो.ट्रस्ट (कोल्हापुर) द्वारा प्रकाशित.

२४. वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह (हिन्दी) २५. पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद (गुजराती)

२६. विवेक (हिन्दी-गुजराती) २७. विशोधनिका (चार खंड) (गुज-हिन्दी)

२८. पुरुषोत्तमयोग (गुजराती-हिन्दी) २९. नवरत्नम् (गुजराती)

३०. नवरत्नोपदेशका मानस विश्लेषण (हिन्दी-गुजराती)

३१. श्रीयमुनाष्टकम् (हिन्दी-गुजराती) ३२. सिद्धान्तनुं आचमन (गुजराती)

३३. सिद्धान्तसूक्ति (गुजराती) ३४. भगवद्गीतासु भक्तियोग (हिन्दी-गुजराती)

३५. पुरुषार्थव्यवस्था (हिन्दी-गुजराती-अंग्रेजी) ३६. चतुःश्लोकी(हिन्दी)

३७. रसदृष्टिनी तरफेणमां(हिन्दी-गुजराती)३८. गृहसेवा और व्रजलीला(गुजराती-हिन्दी)

३९. सेवा : ऋतु-उत्सव-मनोरथ (हिन्दी-गुजराती)

४०. ब्रह्मवाद (वादावली सम्पादकीय) ४१. सेवाकौमुदी/नवधाभक्ति (हिन्दी)

४२. चिरकुट चर्चा समीक्षा (हिन्दी-गुज) ४३. पुष्टिमार्गीय पीठाधीश स्वरूप और कर्तव्य

४४. अणुभाष्य(साधनफलाध्याय) भूमिका (गुज.)

४५. श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनका यथार्थ स्वरूप

४६. शरणागतिविचारगोष्ठी एक पूरक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
४७. धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी पुष्टिमार्गीय विवेचना(हिन्दी-गुजराती)
४८. भगवत्सेवानो सिद्धान्तशुद्ध प्रकार: एक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
४९. साकारब्रह्मवाद (तत्त्वचिन्तन भक्ति और संस्कृति विमर्श) (हिन्दी)
५०. तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणोपक्रम(गुज.)
५१. तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत संक्षिप्त शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण तथा विवेकधैर्याश्रय, नवरत्न, सिद्धान्तमुक्तावली एवं भक्तिवर्धिनी का गुजराती अनुवाद-विवेचन(गुज.)
५२. वार्तान्की सैद्धान्तिक संगति (वार्ता : गदाधरदास-महावनकी क्षत्राणी-दिनकरदास शेठ-दिनकरदास मुकुंददास)
५३. श्रीदामोदरदासजी-श्रीकृष्णदास मेघनजी : वार्ताविवेचना. (हिन्दी-गुजराती)
५४. श्रीवल्लभाख्यान : श्रीमद्‌भागवतको प्रारूप और श्रीवल्लभाख्यान
५५. सूक्तित्रय : सिद्धान्त, उत्सव, भक्ति.
५६. वचनामृतत्रय (श्रीमन्महाप्रभुश्रीवल्लभवचनामृत, श्रीमद्‌प्रभुचरण-गोस्वामि-विट्‌ठलनाथ-वचनामृत, श्रीवल्लभ(श्रीगोकुलनाथ)वचनामृत)
५७. पुष्टिभक्तिका व्यापारीकरण (कुशंका, खिलवाड-समाधान)
५८. ब्राह्मिक याथार्थ्य और ब्रह्मवाद की नानावादानुरोधिता (लघुग्रन्थसंग्रह-२)
५९. पुष्टिमार्गकी आचार्यत्रयी ६०. अमृतका आचमन
६१. कृष्णएव तात्पर्यम् ६२. अहंकारमीमांसा १,२ (हिन्दी-गुजराती)
६३. मूलाचार्यवाणी (सुबोधिनी तथा अणुभाष्य) ६४. षोडशग्रन्थ परिचय
६५. भक्तिवर्धिनी (सूक्तिसंकलन) ६६. आधुनिक न्यायप्रणाली एवं पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणलीका आपसी टकराव (हिन्दी-गुजराती)
६७. सिद्धान्तवचनावली ६८. अणुभाष्य (संक्षिप्त अनुक्रमणिका)
६९. पुष्टिमार्गीय स्वयंशिक्षक ७०. जिन श्रीवल्लभरूप न जान्यो
७१. आत्मकथा : श्रीकृष्णस्वरूपानन्द सरस्वतीनी.
७२. जयन्त कागना अनेक जन्मोनी कथा (लघु नाटक)
७३. श्रीमद् भागवत पूजन (गुजराती) ७४. शिक्षाश्लोका (गुजराती)
७५. भक्तिवर्धिनी (पीपरीया)(गुजराती) ७६. गोपीगीत सुबोधिनी (सविवरण)
७७. नलकूबेरमणिग्रीवकृतस्तुति(सविवरण) ७७. भक्तिरस
७८. वार्तान्कीसैद्धान्तिक संगति : राणाव्यास
७९. सुबोधिन्या (प्रथम स्कन्ध, तृतीय स्कन्ध)

सम्पर्क: गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, व्रजकमल, ६३ स्वस्तिक सोसायटी,
४था रास्ता, जुहु स्कीम, विलेपार्ले(पश्चिम) मुम्बई-**५६**
विडियो/ओडियो प्रवचन और उपरोक्त प्राप्य ग्रंथो के लिये संपर्क करे : पुष्टि अस्मिता संवर्धन केन्द्र,
२१४, अमरदिप कोम्पलेक्ष, २-रजपुतपरा, राजकोट-१. मो. ९४२७४ ९५१५९

॥ भूमिका ॥

(प्रमाण-प्रमेयव्यवस्था)

महाप्रभुजीने अपने मतका आधाररूप क्या है, इस बारेमें कोई भी एकान्तिक विधान नहीं किया है. एकान्तिक विधान अर्थात् कोई भी एक केटेगोरिकल् स्टेटमॅन्ट् आपने अपने सिद्धान्तके बारेमें नहीं कहा है. अलग-अलग सन्दर्भमें अलग-अलग विधान किये हैं. उसके कारण लोगोंमें महाप्रभुजीके मतके बारेमें बहुत भ्रान्त धारणा फैल गयी है. क्योंकि पुस्तकके पन्ने पलटते हुए कोई एक वचन दृष्टिमें आ गया, उसे ले कर बस दौड़ने लगो. इसके दो तीन उदाहरण आपको देता हुं. महाप्रभुजी तत्त्वार्थदीप-निबन्धमें आज्ञा करते हैं ‘‘**एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव मन्त्रोऽप्येकः तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा**’’ (त.दी.नि.१।४). यह तो महाप्रभुजीने हमारे ऊपर कृपा की है कि ‘एकं’का अर्थ एक न कह कर उन्होंने ‘‘**एके मुख्यान्यकेवला**’’ (अम.को.३।३।१६) ऐसा किया है. ‘एक’शब्दका अर्थ संस्कृतमें मुख्य अन्य और केवल ऐसे तीन प्रकारका होता है. इस तरह ‘‘**एकं शास्त्रम्**’’का यहां अर्थ है ‘मुख्य-शास्त्र’. अब हमें जिज्ञासा होती है कि यहां मुख्यता यदि शास्त्रके रूपमें गीताकी है तो ब्रह्मको तो महाप्रभुजी उपनिषत्प्रतिपाद्य मानते हैं और इसे हम ब्रह्मसूत्रमें देख ही सकते हैं कि ‘‘**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**’’ (ब्र.सू.१।१।१)के भाष्यमें आप कहते हैं ‘‘**इदम् अत्र विचार्यते वेदान्तानां विचारः आरम्भणीयो नवा**’’ (अणुभा.१।१।१). ‘‘मैं यहां ब्रह्मविचार अर्थात् ब्रह्म मूलतत्त्व है कि नहिं यह विचार करने नहीं बैठा हुं, अपितु उपनिषदोंका विचार करने बैठा हुं. यदि वेदान्तका विचार ठीक प्रकारसे होगा तो ही वेद प्रतिपादित ब्रह्मका विचार अपने आप ठीक प्रकारसे हो जायेगा.’’ अब यह वचन किसीके हाथमें लग जाये तो उन्हें लगेगा कि गीता और उपनिषद् के बारेमें महाप्रभुजीका मत थोड़ा कॉन्ट्राडिक्ट्री (विरोधाभासी) है. अब यदि उनके मतको कॉन्ट्राडिक्ट्री मानें तो एक

समस्या आती है. महाप्रभुजी कहते हैं कि “**कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थं ये वदन्ति हि तेहि भागवताः प्रोक्ताः शुद्धास्ते ब्रह्मवादिनः**” (त.दी.नि.१।२१). कृष्णके वाक्यके अनुसार जो शास्त्रका अर्थ करे, उसे ही आप भागवत मानों और वे लोग ही शुद्ध ब्रह्मवादी हैं. इसलिए गीताके वचनोंको बीचमें लाये बिना यदि कोई वेदका विचार करता है और उस विचारमेंसे यदि ब्रह्मका निष्कर्ष निकाले तो वे शुद्धब्रह्मवाद न हो कर अशुद्ध ब्रह्मवाद ही होगा.

महाप्रभुजी शास्त्रार्थप्रकरणमें श्रीमध्वाचार्यका श्लोक देके कहते हैं कि “**अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यैः रामायणैः सहितभारतपञ्चरात्रैः अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सहतत्त्वसूत्रैः**”(त.दी.नि.१।१०४). महाभारतके अन्तर्गत भीष्मपर्वमें आती गीता, महाभारतके (अंगके) रूपमें यहां खप जा रही है, एक मुख्य शास्त्रके रूपमें नहीं. वेदवाक्य रामायणसहित, वेदवाक्य महाभारतसहित, वेदवाक्य पञ्चरात्रके सहित, ब्रह्मसूत्रके सहित और जो भी दूसरे शास्त्र हैं, अर्थ एक ही है. अब यहां देखें तो गीता एकदम गौण हो गयी है. यहां “**प्रमाणं तच्चतुष्टयम्**” कहा है. “**वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्, उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम् अविरुद्धन्तु यत्तु अस्य प्रमाणं तच्च न अन्यथा**” (त.दी.नि.१।७-८). वेद, श्रीकृष्णवाक्य अर्थात् गीता, व्याससूत्र अर्थात् ब्रह्मसूत्र. यहां महाप्रभुजी ‘च’कारसे जैमिनीसूत्रका भी उल्लेख कर रहे हैं और व्यासजीद्वारा कहा हुआ समाधिभाषाका ग्रन्थ अर्थात् भागवत, ये चार मिलके प्रमाण हैं. वे किस प्रकारके प्रमाण हैं? तो कहते हैं “**उत्तरं पूर्वसन्देहवारकम्**” अर्थात् वेदमें आते सन्देहोंका निवारण महाप्रभुजी कहते हैं कि गीतासे करो. गीतामें आते सन्देहोंका निवारण ब्रह्मसूत्रसे करो और ब्रह्मसूत्रके सन्देहोंका निवारण भागवतसे करो. जब आप इस प्रक्रियासे अपने आते सन्देहोंका निवारण करोगे “**एतच्चतुष्टयम् एकवाक्यतापन्नं सत् प्रमाजनकम्**” (त.दी.नि.१।७) अर्थात् जब आप इन चारों शास्त्रोंका कोर्डिनेशन् स्थापित करोगे तो

ही चारों प्रमाण हैं, अन्यथा तो चारों अप्रमाण हैं. कहां तो महाप्रभुजीकी प्रमाणचतुष्टयकी बात और कहां हम पुष्टिमार्गियोंकी खोटी समझ कि वाल्लभमतमें प्रस्थानचतुष्टय है!!! प्रस्थानचतुष्टय तो है ही नहीं पर **''एतच्चतुष्टयम् एकवाक्यतापन्नं सत् प्रमाजनकम्''** यह माना है. यदि ये चारों प्रमाण एकवाक्यतापन्न न होते हों तो चारों ही प्रमाण नहीं हैं क्योंकि यदि चारोंमें विसंवाद हो तो विसंवाद होनेके कारण कोई भी वस्तु प्रमाण नहीं रह जाती.

(प्रमाणविप्लव या प्रमाणव्यवस्था?)

इसमें एक खास ध्यान देनेवाली बात है कि प्रमाणमें विसंवाद होनेके कारण भय किसे लगता है? उन्हें जिनके यहां ब्रह्ममें एकान्तिक धर्म होनेका ज्ञान हो. महाप्रभुजी जैसे चिन्तक जो ब्रह्मको विरुद्धधर्माश्रयी मानते हैं, उनके लिए यदि विसंवाद होता भी हो तो उसमें आपत्ति क्या हो सकती है! विरुद्धधर्माश्रयतासे विसंवाद तो होगा ही. बुद्ध-धर्मके एक बहुत ही बड़े दार्शनिक हुए हैं धर्मकीर्ति. उन्होंने कहा है **''यदिदं स्वयम् अर्थानां रोचते तत्र के वयम्!''** ऑब्जेक्ट् ही यदि कॉन्ट्राडिक्टरी कॅरेक्टर् लिए हुए हो तो हमें उसमें कोर्डिनेशन् बैठानेकी आवश्यकता ही क्या है? उदाहरणके लिए जो भगवान् नृसिंहकी तरह प्रकट हुवे हैं तो उन्हें नृसिंह न कह कर केवल नर अथवा केवल सिंह कहनेकी आवश्यकता क्या है? अथवा नृसिंह कॉन्ट्राडिक्टरी होनेके कारण न तो नर और न ही सिंह, ऐसी नकारात्मक सोचकी आवश्यकता ही क्या है? सीना ठोक कर कबूल करना चाहिये कि ऐसा हो नहीं सकता पर इस केस्में दोनों कॅरेक्टर् वे प्रकट कर रहे हैं. विरुद्ध-धर्माश्रयताके लिये अंग्रेजीमें शब्द है Coincidentia oppositorum दो ऑपोज़िट् धर्म जहां एक साथ रहते हों. यदि अपन् ढूंढें तो ऐसे कई सारे स्टेटमॅन्ट् हमें मिल जा सकते हैं. और महाप्रभुजी कहते हैं कि **''समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्''** इसके बाद भागवतके बारेमें कहते हैं कि सर्वसन्देहवारक होनेके कारण भागवत

मुख्य प्रमाण है. देखो, यहां तो प्रमाण चतुष्टयकी डोरी तो ढीलमें ही कट गयी.

एक अन्य स्थानपर महाप्रभुजी बहुत मजेदार आज्ञा करते हैं. वे कहते हैं कि ब्रह्मको जाननेके लिए शास्त्र प्रमाण है. किस ब्रह्मके बारेमें वे ऐसा कह रहे हैं? वह ब्रह्म जब अपनी लीलाकी इच्छासे आपके सामने प्रकट न हुआ हो. और अपनी लीलाकी इच्छासे आपके सामने प्रकट हो जाये, ऐसे प्रकट ब्रह्मको जाननेके लिए शास्त्रके प्रमाणकी गरज रह नहीं जाती. आप आंखसे उसे निहार सकते हो. न केवल आंखसे आप उसे निहार सकते हो अपितु अज्ञान और अन्यथाज्ञान भी कृष्णलीलामें प्रमाण बन जाते हैं श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं ‘‘**अज्ञानम् अन्यथाज्ञानं प्रमाणं भक्तिहेतुकम्**’’ (त.दी.नि.३।१०।४३). इसका कारण महाप्रभुजी समझाते हैं कि अवतीर्ण भगवान्‌के स्वरूपमें ऐसा एक लचीलापन है कि जिस प्रकारसे हम उन्हें देखना चाहें, वे वैसा ही रूप धर लेते हैं. बिल्कुल वैसे ही कि जैसे हम यदि हरा चश्मा पहन लें तो यह जगत् हमें हरा दिखायी देगा, भूरा चश्मा पहन लें तो भूरा दिखायी देगा. यह चश्मेकी उपाधिके कारण हो रहा है पर प्रभुके प्रकट स्वरूपमें ऐसी सामर्थ्य है कि ‘‘**यद्यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**’’ (भाग.पुरा.३।९।११) जिस भी प्रकारसे आप भगवान्‌को देखना चाहते हो वे उसी फोर्मट्‌में अपने आपको ढाल लेते हैं.

बहुत सारे लोग इसे भगवान्‌में रही हुयी महाप्रभुजीकी अंधश्रद्धा मानते हैं. पर एक जर्मन दार्शनिक, जिनका नाम विट्गेन्स्टाइन् था. सचमें तो वे इन्जिनियर् थे पर उन्हें फिलॉसॉफी पढ़नेकी इच्छा हुयी. इस इच्छाके कारण वे बर्ट्रेंड् रसेल्‌के पास गये और बोले ‘‘आप मुझे फिलॉसॉफी पढ़ायेंगे या नहीं? यदि नहीं पढ़ओगे तो अभी मैं अपने आपको शूट् कर लेता हुं.’’ बर्ट्रेंड् रसेल् घबरा गये कि इतनी जल्दी इस बातका निर्णय किस प्रकार हो सकता है! पर

फिर भी बर्ट्रैंड्र रसेल्ने उन्हें अपनी एक पुस्तक दी और कहा ‘‘तुम इस पुस्तकको पढ़ो और तुम्हारा इस बारेमें क्या मत है, वह मुझे लिख कर दो. उसके बाद ही मैं यह निर्णय कर सकता हुं कि मैं आपको पढ़ा सकता हुं अथवा नहीं.’’ उस व्यक्तिने बर्ट्रैंड्र रसेल्की पुस्तक पढ़ी, उतना ही नहीं शुरूसे अन्त तक उनका खंडन भी लिख डाला. वह भी ऐसा कि जिसका जवाब रसेल्के पास भी नहीं था. उसके बाद रसेल्को भी अपना मत बदलना पड़ा और एक फिलॉसॉफी स्थापित की कि philosophy does not deal with reality. It deals with what you want to speak. And what is speach? Speach is like a ladder. You have to climb on it and once you climb and reach the top, you should throw away it. उन्होंने एक क्यूब् बनाया है इसे समझानेके लिए, वह आप देखो.

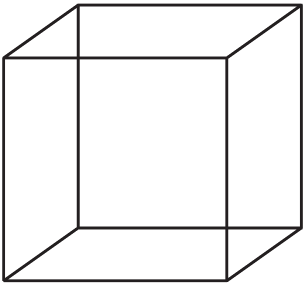

इसकी सुंदरता यह है कि आप जिस हिस्सेको आगे मानो तो बाकी सारे हिस्से पीछे चले जाते हैं. यदि आपकी दृष्टि दूसरी सतहको आगे देख रही है तो उसके अलावा बाकी सभी हिस्से पीछे चले जाते हैं. आप जिस भी प्रकारसे इसे देखना चाहते हो, उस प्रकारसे देख सकते हो. तदुपरांत यह लचीला भी है. आप किसी भी एक square पर अपनी दृष्टि टिका नहीं सकते हो, वह घूमती ही रहेगी. पर आपमें यदि यह सामर्थ्य है कि आप किसी एक square पर अपनी दृष्टि टिका सकते हो तो आपको बाकी

हिस्से दिखने ही बंद हो जायेंगे. अर्थात् आप दृष्टिबन्ध कर पाते हो जो कि त्राटककी प्रक्रिया है. वह एक व्यायाम है. अब हमें इस बातपर विचार करना है कि यह ऑब्जेक्टिव् रियालिटी है कि सब्जॅक्टिव्. क्या यह रियल् square है कि इमेजिनरी है? आप इसमें किसी भी सही निर्णयपर नहीं पहुंच सकते क्योंकि यह ऑब्जेक्टो-सब्जॅक्टिव् है. इस आधारपर हम समझ सकते हैं कि यदि एक छोटीसी ज्योमॅट्रीके पॅटर्नमें इतनी सामर्थ्य है तो विश्वके आधारभूत, विश्वके कर्तामें क्या इतनी भी सामर्थ्य नहीं होगी! यदि नहीं हो तो इस फिगर्में कहांसे आ गयी? क्योंकि यह भी तो जगत्‌का एक हिस्सा ही है. इसलिए महाप्रभुजीका यह कहना है कि भगवान् विश्वका जो भी पहलु हमारे सामने रखता है, उस हिस्सेमें आपकी दृष्टिबन्ध सिद्ध कर देनेकी सामर्थ्य भगवान्‌में है. इसीलिए भागवत ऐसा वर्णन करता है कि **“मल्लानाम् अशनिर्, नृणां नरवरः, स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्, गोपानां स्वजनो, असतां क्षितिभुजां शास्ता, स्वपित्रोः शिशुः, मृत्युः भोजपतेः, विराड् अविदुषां, तत्त्वं परं योगिनां, वृष्णिनां परदेवता इति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः”.** (भाग.पुरा.१०।४०।१७) जो मल्ल थे उन्हें कृष्ण बिजलीकी फुर्तीवाले पहलवान लगे, राजाओंको लगा कि ये तो कोई श्रेष्ठ पुरुष आये हैं. स्त्रियोंको लगा कि साक्षात् कामदेव ही आ गये हैं. गोपबालकोंको लगा कि यह तो हमारे जैसा ग्वालिया ही है. जो दुष्ट राजा थे उन्हें लगा कि कोई बलशाली राजा आये हैं जो हमें हरा कर पराधीन कर लेगें. कृष्णके माता-पिता वसुदेव-देवकीको तो केवल अपना छोटासा पुत्र लगा. कंसको उनमें साक्षाद् अपनी मृत्यु दिखलायी दी. जो कृष्णको जानते नहीं थे उन्हें रक्त-मिट्टीमें सना हुआ कोई गंदा व्यक्ति लगा. योगियोंको लगा कि ये तो कोई परम-तत्त्व आ गये हैं. वृष्णियोंको लगा कि कोई परदेवता आ गये हैं. कई सारे पहलुओंके साथ कृष्णने कंसके दरबारमें प्रवेश किया. प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने हिसाबसे सोच रहे थे.

अब इस स्थितिमें जो व्यक्ति कृष्णको जिस प्रकारसे भी गृहीत कर रहा है, और तदुपरांत कृष्णका जो पर्सीविबल् पहलु है, उस पहलुको अज्ञान अथवा भ्रान्ति मानना चाहिये कि नहीं? क्योंकि उन्होंने तो हमारा दृष्टिबंध किया हुआ है तो कृष्णको जाननेके लिए अज्ञान या भ्रान्ति प्रमाण हुए कि नहीं हुए? महाप्रभुजी इसीलिए कहते हैं कि यदि वे प्रकट हो जाये तो कृष्णको जाननेके लिए अज्ञान और भ्रान्ति भी प्रमाण हो जाते हैं. So there is a tremendous variety and spectrum of the valid source of knlwoledge. एक स्थानपर तो महाप्रभुजी ऐसी भी आज्ञा करते हैं कि मात्र शास्त्र ही प्रमाण नहीं है. वह तो भगवान्ने आपको अपना एक हस्तावलम्ब दिया है कि “लो इस प्रकार मुझे जान लो.” पर भगवान् तो “**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्**” (तैत्ति.आर.३।१३।२) है. उनके तो हजारों हाथ हैं. किसीको यह हाथ दे रहे हैं तो दूसरे किसीको दूसरा हाथ. जिसको जो हाथ दे रहे हैं उसे उसीके अनुरूप रूप समझमें आयेगा.

(वाल्लभवेदान्तमें कपिलगीताका महत्त्व)

इस पृष्ठभूमिके आधारपर हमें विचार करना है कि कपिलगीताका स्थान कहाँ है. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि गीतामें जो कुछ भी भगवान् कह रहे हैं, भागवत उसीका विस्तार है “**तद्विस्तारो भागवतम्**. तो हम देख सकते हैं कि वेदमें कर्मरूप हरि हैं, उपनिषद्में ज्ञानरूप हरि हैं. वेदमें हरि क्रियाशक्ति-विशिष्ट हैं, उपनिषद्में हरि ज्ञानशक्ति-विशिष्ट हरि हैं. भागवतमें क्रिया-ज्ञान उभयविशिष्ट हरि हैं. यदि हम भगवान्को इस प्रकारसे कॅटेगराईज़् करें कि क्रिया-विशिष्ट भगवान् किस प्रकारके होंगे, तो महाप्रभुजी कहते हैं कि वेद देखो. ज्ञान-विशिष्ट भगवान् कैसे हैं यह जाननेकी यदि हमें इच्छा है तो वे कहते हैं कि उपनिषद् देखो. और आपकी इच्छा उभय-शक्तिविशिष्ट परमात्माको जाननेकी है तो आप भागवत देखो. इस बातसे हम

समझ सकते हैं कि भागवत गीताका ही विस्तार है. और क्योंकि आज हम भागवतकथाके नामपर केवल दशमस्कंधमें ही रुचि रखते हैं, उसमें भी केवल रासपञ्चाध्यायीमें ही. अर्थात् मियांकी दौड़ मस्जिद तक, ऐसी दुर्गति अपनी हो गयी है. इसलिए जब युनिवर्सिटीका सिलेबस् बनाया जा रहा था तब युनिवर्सिटीने ऐसा प्रपोज़ल् मुझे दिया कि क्योंकि हमें कम्पॅरिटिव् स्टडी करनी है, इसलिए हमें कपिलगीताका योग इस कोर्स्में लेना चाहिये. पर यदि हम योगका ही अध्याय लेते तो उसमें झंडाबाजी होनेकी संभावना थी. जो योग वहां कहा गया है, वह श्रीवल्लभाचार्यके अनुसार कहे गये धर्म और देवशास्त्र की प्रणालीसे मेल नहीं खाता है. मैं वह खतरा उठाना नहीं चाहता था. इसलिए मैंने विचार किया कि अच्छी बात है योग लेते हैं, पर उसके साथ-साथ सांख्य और भक्ति भी ले लेते हैं. इसीलिए २४, २५ और २६, ये तीन अध्याय मैंने लिए. मुझे मालूम है कि इससे कोर्स् लंबा अवश्य हो गया है पर इससे फायदा क्या हुआ है, यह बात विचार करो.

वल्लभ-वेदान्तकी मॅटाफिज़िकल् धारणा यदि कोई हो तो यहां वह है. फिज़िकल् वस्तु तो अपन् जानते ही हैं जो कि फिज़िक्स्में पढ़ायी जाती है, पर मॅटाफिज़िक्स् अर्थात् क्या? जो भी विषय फिज़िक्स्में पढ़ाया जाता है, उसके यदि जनरलाइज़् कन्सॅप्ट्की स्टडी करें, जैसे मॅटर् स्पेस् टाइम् एनर्जी और उनका आपसी सम्बन्ध. यदि भगवान् मानते हो तो और यदि नहीं मानते हो तो जो भी तत्त्व मानते हो वे सब मॅटाफिज़िक्स्में आते हैं. क्योंकि एरिस्टॉटल्ने जब अपनी फ़िज़िक्स्की थियरी प्रपोज़् की थी तो उसमें The chapter that comes after the physics is known as meta-physics. इस तरह वल्लभवेदान्तकी जो भी कुछ मॅटाफिज़िक्स् है, जो भी कुछ साइकोलॉजी है; साइकोलॉजी तो मैं आपको बहुत आसान करके कह रहा हुं. साइकोलॉजीमें (मानसशास्त्रमें) इतना ही नहीं है, बहुत

कुछ है. बहुत ही आसान करके कहना हो तो आपके ज्ञानेच्छाप्रयत्नकी जहां स्टडी होती हो, उसे 'साइको' कहा जाता है. 'साइको' अर्थात् मन, 'साइकोलॉजी' अर्थात् मानस-शास्त्र. मॅटाफिज़िक्स् विसा-विस साइकोलॉजी, जो कुछ भी वल्लभ-वेदान्तका है, वह सब कपिल गीतामें आ रहा है.

इसके बाद एपिस्टमोलॉजी आती है. 'एपिस्टमोलॉजी' अर्थात् किस प्रकारकी नॉलेज्को वॅलिड् कहना और किस प्रकारकी नॉलेज्को वॅलिड् नहीं गिनना. तो वल्लभ-वेदान्तकी एपिस्टमोलाजी भी यहां दिखलायी देती है.

इसके बाद आता है रिलीजन्. रिलीजन्में हम बहुत सारी बातें कह सकते हैं, क्योंकि 'रिलीजन्' का अर्थ है रि-लिगारे. फिरसे ईश्वरके साथ जुड़ना. जो अपने ब्रह्मसम्बन्धका अर्थ है कि ब्रह्मके साथ फिरसे जुडो, वह अंग्रेजीके 'रिलीजन्' शब्दका अर्थ है, जैसे इस्कॉनवाले कहते हैं Back to Godhead. यह भी कपिल गीताका ही विषय है.

उसके बाद आती है अपनी 'थियोलॉजी' अर्थात् देवशास्त्र. 'थियोस्' अर्थात् देव और 'लॉजी' अर्थात् शास्त्र. अपनी थियोलॉजी भी इस कपिल गीतामें आ जाती है. इस प्रकार बहुत सारे वल्लभवेदान्तके पहलुओंको कवर् करनेवाली कोई एक गीता हो तो वह कपिल गीता है. और आप निःसन्देह यह बात लिख सकते हो कि महाप्रभुजीका निबन्धका सर्वनिर्णय-प्रकरण उसमें भी विशेष प्रकारसे प्रमेय-प्रकरण और साधन-प्रकरण, षोडशग्रन्थ, सुबोधिनीके भी नल-कूबर जैसे भाग (महत्त्वके अंश) और देखनेकी दृष्टि हो तो अणुभाष्य जैसे ग्रन्थ, जिसमें अधिकरणविचार है, इन सभीकी पृष्ठभूमिमें कपिल गीता एक नींवके पत्थरकी तरह है, जिसके ऊपर वल्लभवेदान्तकी पूरी इमारत खड़ी की गयी है.

(शुद्धाद्वैतनामाभिधान)

महाप्रभुजीने अपने मतका नाम कहीं भी शुद्धाद्वैतके रूपमें नहीं कहा है. सबसे पहले महाप्रभुजीके मतका यह नाम २५०-३०० वर्ष पहले श्रीलालूभट्टजीने लिखा है. प्रारंभमें श्रीपुरुषोत्तमजी इस नामके प्रति थोड़ा संकोच रखते थे कि यह नाम वल्लभमतका होना चाहिये कि नहीं. इसलिए ‘भेदाभेदस्वरूपनिर्णय’में श्रीपुरुषोत्तमजी ऐसी आज्ञा करते हैं कि शुद्धाभेदवाद सबसे दुष्टवाद है. अब आप शुद्ध अभेद कहें अथवा शुद्धाद्वैत कहें, बात तो एक ही है. इसको सबसे दुष्ट किस प्रकार कह सकते हैं? पर क्योंकि टर्म कॉइन् हो गयी थी पर करेंसीमें नहीं आयी थी, इसलिए उन्होंने ऐसा कहा. बादमें उन्होंने इसे स्वीकार भी किया. उसके बाद सारे संप्रदायने इसे स्वीकार लिया. उसमें भी विशेष रूपसे शुद्धाद्वैतमार्तंड लिखनेवाले काशीके श्रीगिरिधरजी महाराजके बाद. श्रीगिरिधरजी महाराज श्रीगोपेश्वरजीके शिष्य थे. श्रीगोपेश्वरजी श्रीपुरुषोत्तमजीके शिष्य. शिष्य ही नहीं पर उनके उत्तराधिकारी भी. पर यह बात समझनेकी है कि महाप्रभुजीने अपने वादको कभी भी ‘शुद्धाद्वैत’का नाम नहीं दिया. यदि हम गुसांईजीको भी कन्सल्ट् करें तो वे भी कहते हैं कि ‘‘**साकारब्रह्मवादैकस्थापको वेदपारगः**’’ (सर्वो.नाम.८-९). महाप्रभुजी साकारब्रह्मवादके स्थापक हैं. इसलिए शुद्धाद्वैतवादके पर्यायके रूपमें यदि इसे देखना हो तो ‘**साकार**’पदका अर्थ शुद्ध करो और ब्रह्मवादका ब्रह्मवाद ही करो. इस प्रकार साकारब्रह्मवाद शुद्ध ब्रह्मवाद है और निराकारब्रह्मवाद अशुद्ध ब्रह्मवाद है, ऐसा अर्थ निकलता है. इस समीकरणके आधारपर श्रीगिरिधरजीने लिखा है कि ‘‘**मायासम्बन्धरहितं शुद्धम् इति उच्यते बुधैः**’’ (शुद्धा.मार्त.२८) ‘‘जो मायासम्बन्धसे रहित हो उसे ही मैं शुद्ध मानता हुं, ऐसा मैं नहीं कह रहा हुं विद्वान लोग कहते हैं.’’ मुझे भी यह बात जंची नहीं क्योंकि ऐसा लिखा हुआ किसी भी विद्वानका लेख इस बारेमें मुझे कहीं मिला नहीं. इसलिए सुबोधिनीमें महाप्रभुजी भी अपने मतको ‘साकारब्रह्मवाद’ ही कह रहे हैं. गुसांईजी भी यही कह रहे हैं.

अब इस बातसे मुझे चिंता हुयी कि इस बातका निर्णय करें तो किस प्रकार करें.

महाप्रभुजीका शास्त्रार्थप्रकरणमें एक वचन आता है कि “**अयं प्रपञ्चो न प्राकृतः नापि परमाणुजन्यः नापि विवर्तात्मा, नापि अदृष्टादिद्वारा जातः, नापि असतः सत्तारूपः, किन्तु परमकाष्ठापन्नवस्तुकृतिसाध्यः तादृशोऽपि भगवद्रूपः**” (त.दी.नि.प्र.१।२३). इस तरह ‘शुद्ध’पदसे व्यावर्त्य अर्थात् जिस वस्तुको एक्सक्ल्युड् किया जा रहा है, जिसे हम इम्प्योरिटी मान रहे हैं, उन इम्प्योरिटीस्को ब्रह्ममें लानेके लिए खिड़कियाँ कितनी हो सकती हैं? इसके उत्तरमें महाप्रभुजी कह रहे हैं **अयं प्रपञ्चो न प्राकृतः....**” यह जगत् प्राकृत नहीं है, परमाणुजन्य नहीं है, विवर्तात्मा नहीं है, न ही यह अदृष्टसे पैदा हुआ है, न ही स्वतंत्र है. यह ‘शुद्ध’पदसे एक्सक्ल्युड् होनेवाले सारे कन्सॅप्ट् ब्रह्मको पॉल्युट् करते हैं. इस तरह ब्रह्म बनाम प्रकृति, ब्रह्म बनाम अणु, ब्रह्म बनाम माया, ब्रह्म बनाम अदृष्ट शक्ति अर्थात् जैसे अपने कर्मकी शक्ति, ब्रह्म बनाम अभाव अथवा ब्रह्म बनाम स्वभाव. महाप्रभुजी कहते हैं कि बनाम न मान कर इसको ब्रह्मके अंशके रूपमें यदि आप स्वीकार करते हो तो तो यह ठीक है, क्योंकि ब्रह्मके बाहर कुछ है ही नहीं. पर जब आप ब्रह्म बनाम कोई भी वस्तु कह रहे हो तो ब्रह्मकी प्योरिटीमें गडबड़ आती है. इसलिए मैंने प्रतिपादन किया कि यहां ‘शुद्ध’पदसे व्यावर्त केवल माया नहीं पर सारी वस्तु लेनी चाहियें. फिर ‘अद्वैत’का अर्थ क्या लेना चाहिये? वह इस वाक्यमें मुझे मिला कि “**परमकाष्ठापन्नवस्तुकृतिसाध्यः तादृशोऽपि भगवद्रूपः**”. ‘परमकाष्ठापन्नवस्तु’ अर्थात् ब्रह्मकी कृतिसे जगत् उत्पन्न हुआ है और तदुपरांत अपनेसे अलग कोई कार्य उसने उत्पन्न नहीं किया है, अपने स्वरूपरूप कार्य उसने उत्पन्न किया है. जिसे ब्रह्मसूत्रकार कहते हैं “**आत्मकृते परिणामात्**” (ब्र.सू.१।४।२६). श्रुतिमें कहा है “**तदात्मानं स्वयम् अकुरुत**” (तैत्ति.उप.२।७). उसने अपने आपको

ही जगत् रूपमें गढ़ा. इसलिए अभिन्ननिमित्तोपादान है, कर्ता भी वही है और अविकृतपरिणामी उपादान भी वही है. अब आप 'साकार ब्रह्मवाद' कहो अथवा 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद' कहो, जिस भी नामसे आपको वल्लभमतको पुकारना हो, उसका मूल भी यहां कपिल गीतामें ही है. यह संक्षेपमें कपिलगीताकी भूमिका है.

गोस्वामी श्याममनोहर

मुंबई, चैत्र शुक्ल ३
वि.सं.२०७७.

* * *

विषयानुक्रमणिका

कपिलगीता

छब्बीसवाँ अध्याय एवं बुद्धिवृत्ति

विषय	पृष्ठ

सांख्यका उपक्रम

सुबोधिनीकारिका १-२	१
अनुवाद	१
विवेचन	१
श्लोक-१	६
अनुवाद	६
विवेचन	६
श्लोक-२	६
अनुवाद	६
विवेचन	६
श्लोक-३	७
अनुवाद	७
विवेचन	७
श्लोक-४	८
अनुवाद	८
विवेचन	८
श्लोक-५	८
अनुवाद	९
विवेचन	९
श्लोक-६	१२
अनुवाद	१२
विवेचन	१२
श्लोक-७	१६
अनुवाद	१६

विवेचन १६
श्लोक-८ १६
अनुवाद १६
विवेचन १७

प्रकृति-पुरुषके लक्षण

श्लोक-९ १७
अनुवाद १७
विवेचन १८
श्लोक-१० १८
अनुवाद १८
विवेचन १८
सुबोधिनी १९
अनुवाद २०
विवेचन २१
अक्षरब्रह्मसे महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्ति ४८

प्राकृत/प्राधानिक तत्त्वोंका निरूपण

श्लोक-११ ५२
अनुवाद ५२
सुबोधिनी ५२
अनुवाद ५३
विवेचन ५३
श्लोक-१२ ५४
अनुवाद ५४
सुबोधिनी ५५
अनुवाद ५५
विवेचन ५५

इन्द्रियोंका निरूपण

श्लोक-१३ ६४

अनुवाद ६४
सुबोधिनी ६४
अनुवाद ६५

अन्त:करणका निरूपण

श्लोक-१४ ६५
अनुवाद ६५
सुबोधिनी ६५
अनुवाद ६५
विवेचन ६६

एकदेशियोंके मतानुसार कालका विचार

श्लोक-१५ ६६
अनुवाद ६६
सुबोधिनी ६७
अनुवाद ६७
विवेचन ६७
श्लोक-१६ ७२
अनुवाद ७२
सुबोधिनी ७३
अनुवाद ७३
विवेचन ७४
श्लोक-१७ ७९
अनुवाद ७९
सुबोधिनी ७९
अनुवाद ७९
विवेचन ८०
श्लोक-१८ ८४
अनुवाद ८५
सुबोधिनी ८५

अनुवाद ८५
विवेचन ८५

तत्त्वोंकी उत्पत्तिपूर्वक आधिभौतिकादि लक्षणोंका निरूपण

१.महत्/चित्तके लक्षण

श्लोक-१९ ९१
अनुवाद ९१
सुबोधिनी ९१
अनुवाद ९१
विवेचन ९२
श्लोक-२० ९९
अनुवाद १००
सुबोधिनी १००
अनुवाद १००
विवेचन १०१
श्लोक-२१ १०३
अनुवाद १०४
सुबोधिनी १०४
अनुवाद १०४
विवेचन १०५
श्लोक-२२ ११०
अनुवाद ११०
सुबोधिनी ११०
अनुवाद १११
विवेचन ११२

अहंकारके लक्षण

श्लोक-२३ ११९
अनुवाद ११९
सुबोधिनी ११९

अनुवाद १२०
विवेचन १२१
श्लोक-२४ १४१
अनुवाद १४१
सुबोधिनी १४२
अनुवाद १४२
विवेचन १४२

अहंकारका आधिदैविक स्वरूप

श्लोक-२५ १४४
अनुवाद १४५
सुबोधिनी १४५
अनुवाद १४५
विवेचन १४६
श्लोक-२६ १५०
अनुवाद १५०
सुबोधिनी १५०
अनुवाद १५०
विवेचन १५१

मनके लक्षण

श्लोक-२७ १५३
अनुवाद १५३
सुबोधिनी १५३
अनुवाद १५३
विवेचन १५४
श्लोक-२८ १५५
अनुवाद १५५
सुबोधिनी १५६
अनुवाद १५६

विवेचन १५७

४.बुद्धिके लक्षण

श्लोक-२९ १५८
अनुवाद १५९
सुबोधिनी १५९
अनुवाद १५९

बुद्धिकी पृथक्-पृथक् वृत्ति

श्लोक-३० १६०
अनुवाद १६०
सुबोधिनी १६०
अनुवाद १६१

इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका निरूपण

श्लोक-३१ १६५
अनुवाद १६५
सुबोधिनी १६५
अनुवाद १६६
विवेचन १६६

शब्दादि तन्मात्राओंका निरूपण

श्लोक-३२ १६८
अनुवाद १६८
सुबोधिनी १६८
अनुवाद १६८
विवेचन १६९
श्लोक-३३ १७०
अनुवाद १७०
सुबोधिनी १७१
अनुवाद १७१
विवेचन १७२

पंचमहाभूतोंमेंसे आकाशका निरूपण

श्लोक-३४ १७२
- अनुवाद १७३
- सुबोधिनी १७३
- अनुवाद १७३
- विवेचन १७४

बुद्धितत्त्व और बुद्धिवृत्ति

प्रकृतिके राजस अंशके विकारसे बुद्धितत्त्व १७६
श्लोक-२९ १७६
'सति'का अर्थ १८०
बुद्धिका स्वरूपलक्षण - द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् १८३
बुद्धिका कार्यलक्षण - इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः १८३
यथार्थवाद और कल्पनावाद १८७
महाप्रभुजीको अभिमत यथार्थवादका स्वरूप १८९
श्लोक-३० १९६
अबौद्धिक पूर्वाग्रह १९६
भागवतीय बौद्धिकता १९७
जीवन और चेतना का भेद २०१
बुद्धिवृत्ति और कम्प्यूटर् के सॉफ्ट्वेर्की समानता २०२
प्राणकी चेतनरूपता और चेतनाकी प्राणरूपता २०४
अन्तःकरण और कम्प्यूटर् के हार्डवेर्की समानता २०६
चेतनात्मक प्राणीके उपकरण २०७
अन्तःकरणका कार्य २०८
बुद्धिकी कार्यप्रणाली २०९
संशय २१२
विपर्यास २१४
अन्यख्यातिरेव सिद्धान्तः २१९
न्यायमत : अन्यथाख्याति २२०

प्रभाकरमत : अख्याति २२०
बौद्धमत : आत्मख्याति २२०
शांकरमत : अनिर्वचनीयख्याति २२०
वाल्लभमत : अन्यख्याति २२१
रामानुजमत : सत्ख्याति = यथार्थख्याति २२१
नैयायिकोकी अन्यथाख्यातिमें दूषण २२२
महाप्रभुजीकी आत्मख्यातिमतसे असहमति २२३
महाप्रभुजीकी अख्यातिसे असहमति २२३
महाप्रभुजीकी अनिर्वचनीयख्यातिसे असहमति २२४
महाप्रभुजीका मत अन्यख्याति २२४
भ्रमका स्वरूप वास्तविक या विषयानुभाविक? २२४
विषयानुभाविक भ्रमके प्रकार : एकराशि, द्विराशि और बहुराशि २२५
भ्रमका वास्तविक दृष्टिसे विभिन्न स्वरूप २२८
यथार्थवाद और कल्पनावाद का भेद २२९
महाप्रभुजीका मत : भ्रम = अन्यख्याति = एकराशिज्ञान २३३
मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भ्रमका स्वरूप २३७
स्वप्नका स्वरूप २४२
मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे अन्यख्यातिका विचार २४४
भारतीय दर्शनमें भ्रमका विचार २४५
महाप्रभुजीकी दृष्टिसे अहंता-ममता = सोपाधिक भ्रम = नेसेसरी कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् २४६
अन्यख्याति २५२
निश्चय २५८
जगत्रूप 'अर्थ'की उत्पत्ति क्रोनोलोजिकल् एवं ज्योट्रिकल् ऑर्डर्में २५८
क्रोनोलॉजिकल् ऑर्डर् २५९
ज्योमॅट्रिकल् ऑर्डर्/पंचीकरण २५९
ज्ञानव्यवस्था भी क्रोनोलॉजिकल् एवं ज्योमॅट्रिकल् प्रक्रियासे २६१

अर्थ/द्रव्यमें पंचीकरणकी सिद्धि २६१
इन्द्रियानुभवकी स्थिति द्रव्यानुरूप २६२
विज्ञानके अनुसार द्रव्यकी अवस्थाभेदका सिद्धान्त २६४
आकाश और द्रव्य अन्योन्याश्रित २६४
तन्मात्रा और ज्ञानेन्द्रिय भी ऑर्गेनाइज़् है २६५
बौद्धमतसे असहमति २६६
संशयादि बुद्धिका कार्य २६७
अनुभवकी आन्तरिक व्यवस्था भी क्रोनोलॉजिकल् एवं ज्योमॅट्रिकल् २६९
केवल प्रत्यक्ष या अनुमान या शब्द से निश्चय नहीं होता २७०
अनुभव और निश्चय का भेद २७०
पर्सेप्शन्में बाहरी ऑर्गेनाइज़ेशन्का सिद्धान्त २७१
ऑब्जेक्टिव् कन्डिशन् [क] २७२
  क-१. समीपता २७२
  क-२. समानता २७३
  क-३. निरन्तरता २७३
सब्जॅक्टिव् कन्डिशन् [ख] २७४
  ख-१ फॅमिलियारिटी २७५
  ख-२.फिगर् और बॅक्ग्राउन्ड् २७५
इन्टर्नल् ऑर्गेनाइज़ेशन्में रुचि और संस्कार की महत्ता २७६
ज्ञानका आधा अंग अर्थ है २७७
स्मृति अर्थ बिनाका ज्ञान है २७८
अनुमिति यथार्थ है २७९
सिंहावलोकन २८१
पर्सेप्शन्में फिगर्-बॅक्ग्राउन्ड् और कॅमफ्लेज् का प्रभाव २८१
उत्पन्न ज्ञानकी प्रामाणिकता क्या २८५
ज्ञानकी प्रामाणिकताके दो ध्रुव २८६
दोनों मतके दूषण २८७

नैयायिकका परत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य २८८
बौद्धका स्वत: अप्रामाण्य, परत: प्रामाण्य २८८
मीमांसकका स्वत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य २८८
महाप्रभुजीका मत ‘अर्धजरतीय’न्याय २८९
भारतीयदर्शन और पाश्चात्यदर्शन के संवादकी आवश्यकता २९२
लक्षण और प्रमाण से वस्तुकी सिद्धि २९४
अर्धजरतीय न्यायका उदाहरण २९५
पाश्चात्यदर्शनकी तीनों थियरीका महाप्रभुजीके सिद्धान्तमें समावेश २९६
लक्षण और प्रमाण से वस्तुका परिच्छेद २९७
वस्तुका परिच्छेद = लक्षण + प्रमाण = ॲक्स्टर्नल् और इन्टर्नल् स्टिम्युली २९९
यथार्थानुभव : थियरी ऑफ् कॉरस्पॉन्डन्स् ३०२
अलौकिके वस्तूनि : थियरी ऑफ् कोहियरेन्स् ३०३
“भक्तानान्तु संसारोऽपि फलप्रद:” : युटिलिटेरियन् थियरी ३०४
“यद् वै तत् सुकृतम्” : ब्राह्मिक युटिलिटेरियन् ३०५
भक्तिमें अहंता-ममताकी युटिलिटी ३०५
अर्थोहि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम् ३०७
ब्राह्मिक ज्ञानसे अर्थकी उत्पत्ति ३०९
विकल्पजनित ज्ञान ३१७
अनेकविकल्पजनित ज्ञान ३१७
अर्थान्यविकल्पजनित ज्ञान ३१७
साधिष्ठानक भ्रमज्ञान ३२०
यथार्थविकल्पजनित ज्ञान ३२०
अर्थविकल्पाजनित ज्ञान ३२०
लौकिक प्रमेयबल ३२०
प्रतिभाबल ३२१
भावबल ३२२
अलौकिक प्रमेयबल ३२४

साधनबल ३२४
समाधिबल ३२५
वरदानादिबल ३२६
अविकलसाधन : “एकविज्ञानेन...” ३२७
अविकल साधन : ज्ञान एवं भक्ति मार्गका सर्वात्मभाव ३२७
उपसंहार ३२७
सिंहावलोकन ३२८
कल्पना/भावनाका भेद ३३२
स्मृतिः न निश्चयात्मिका अर्थाभावात् ३३२
अनुमानप्रमाणसे निश्चय ३३५
उपमानप्रमाण स्वतन्त्र माननेकी आवश्यकता नहीं है, प्रत्यक्ष या शब्द में अन्तर्भाव होनेके कारण ३३७
शब्दप्रमाणसे निश्चय ३३९
महाप्रभुजीके अभिमत तीन प्रमाण - प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ३४२
सङ्घातात्मकज्ञान अप्रमाण ३४३
स्मृतिः स्वतन्त्रा ३४४
स्वप्नकी अप्रमाणता ३४५
निद्रा, स्वप्नका ही भाग होनेसे अप्रमाण ३४७
उद्धरण तालिका ३४९

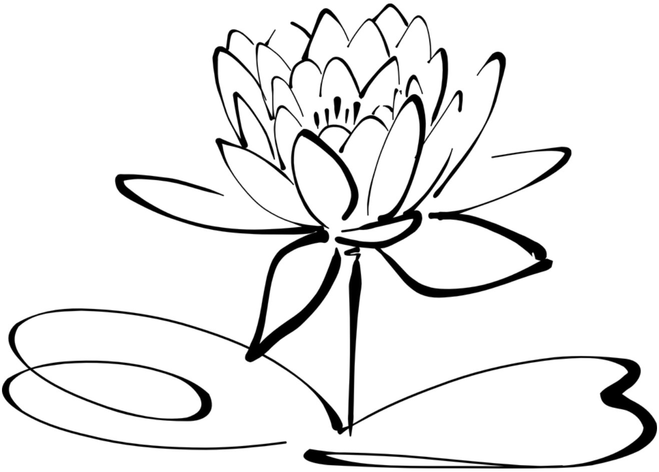

।। श्रीमद्भागवतसुबोधिनीके अन्तर्गत ।।

(तृतीयस्कन्धसुबोधिनीके अन्तर्गत)

।। कपिलगीता ।।

।। षड्विंशाध्यायविवरणम् ।।

(सांख्यका उपक्रम)

कारिका :

आत्मानात्मविवेकाय षड्विंशे साङ्ख्यम् उच्यते।।
तत्त्वानां लक्षणानि अत्र निरुक्तिः च इयम् अत्र च।।१।।
जीवब्रह्मविभागार्थं प्रक्रियाद्वितयं स्मृतम्।।
संसारे मूलभावे च पुरुषः प्रकृतिर् मता।।२।।

अनुवाद : छब्बीसवें अध्यायमें आत्मा और अनात्मा का प्रभेद समझानेके लिए सांख्यप्रक्रिया कही गयी है. यहाँ इन तत्त्वोंके लक्षण और उनकी निरुक्ति, जीव और ब्रह्म का विभाग समझानेके लिए क्योंकि जीवकी सांसारिक अवस्था और मूलस्वरूपके बीच रहे हुए भेदमें जो दो प्रक्रियाएं रही हुयी हैं, उनमें एकमें प्रकृति और दूसरेमें पुरुष हेतुभूत होता है।।१-२।।

विवेचन : क्या आत्म है और क्या अनात्म है? साधारणतया जब हम ‘आत्म’ शब्द उपयोगमें लाते हैं तो हमारा विचार सीधा देहसे अतिरिक्त कोई आत्मा है, ऐसा होता है. संस्कृतमें ‘आत्म’ शब्दका प्रयोग ‘अपना’के अर्थमें होता है. आपको स्वयंका अनुभव किस प्रकारका हो रहा है? देहमें हो रहा है, आत्मामें हो रहा है कि परमात्मामें हो रहा है? यह तो आपके ऊपर निर्भर करेगा. आत्म और अनात्म मानें स्वयं क्या हो और आपसे पृथक् क्या है, इसका विवेक. ‘आत्मा’ शब्दका प्राकृत भाषामें अपभ्रंश ‘अत्ता’ हुआ; बुद्ध भगवान् ‘आत्मा’ नहीं बोलते थे, ‘अत्ता’ बोलते थे. *“अत्ता ही*

अत्तनो नाथ, अत्ता ही अत्तनो गति. कोहि नाथ परोसिया'' मानें आत्मा ही आत्माका नाथ है, आत्मा ही आत्माकी गति है. अपना नाथ कोई और नहीं है. इस प्रकार 'आत्मा'का अर्थ स्वयं होता है. जैन लोगोंमें आत्माका अपभ्रंश 'अप्पा' हुआ. आज भी महाराष्ट्रमें कई लोगोंका नाम 'अप्पा' होता है. 'अप्पा' मानें स्वयं. इसीसे हिन्दीमें 'आप' शब्द निकला है. 'अपना', 'अपने आप' यह सारे शब्द निकले हैं. इस तरह आत्म और अनात्म जब हम कहते हैं तो अपना और अपने सिवाय दूसरा जो हमें भासित हो रहा है, इस अर्थमें कहते हैं. यह आवश्यक नहीं है कि देहसे अलगके संदर्भमें ही यह बात की जा रही है. शास्त्रको यदि 'आत्म' शब्द देहसे अलग किसी वस्तुका लगता है तो यह उसका विषय है. चार्वाकको देह ही आत्मा प्रतीत होता है. इस कारण चार्वाक अपने आपको देहात्मवादी कहते है. मानें देह ही मैं हुं. चार्वाकका सिद्धान्त यह है कि जैसे इडली बनानेसे पहले दाल-चावलको भिगोके रखनेपर खमीर (fermentation) जो उफनता है, उसी प्रकार देहमें आता उफान ही चेतना है. जब पंचमहाभूत मिले तो उनके मिलनेसे fermentation उफनता है, उसीका नाम 'चेतना' है. इस प्रकार देह ही आत्मा है. यह चार्वाकका सिद्धांत है.

देह आत्मा नहीं है पर इन्द्रियोंका संघात आत्मा है, यह भी एक विचार है शास्त्रमें. इसके हिसाबसे पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय, इनके संघातका नाम 'आत्मा' है.

कोई कहता है कि चेतनाका नाम 'आत्मा' है. यूरोपमें वैचारिक क्रियाको ही आत्मा माना जाता था. इसीलिए आत्माको वे लोग 'लोगोस्' कहते थे. 'लोगोस्' मानें विचार. अपने यहां इससे कुछ पृथक् ही आत्माका स्वरूप माननेमें आया है. हम विचार-क्रियाको आत्मा नहीं मानते हैं. वैचारिक क्रिया तो हम बुद्धिकी मानते हैं

और बुद्धिको हम आत्मा नहीं मानते हैं. बुद्धि तो भौतिक वस्तु है. अब क्योंकि हमने इसका प्रयोग इस प्रकार करना प्रारंभ कर दिया, इस कारण लोग सोचने लगे कि आत्मा देहसे अलग कोई वस्तु है. पर यदि शाब्दिक अर्थ देखें तो देहसे अतिरिक्त कोई वस्तु, ऐसा आत्माका अर्थ नहीं है. 'आत्मा'का अर्थ है स्वयं. अब आप अपने आपको कैसे अनुभव कर रहे हो, इस बातपर निर्भर करता है. संस्कृतमें एक कहावत है *"मम आत्मा अयं भद्रसेन:"* यह तो मेरी आत्मा है. जब भी पुत्र उत्पन्न होता है तो संस्कृतमें एक मंत्र बोला जाता है, जो कि पिताको बोलना होता है. **"अंगाद् अंगात् सम्भवसि हृदयाद् अधिजायसे...आत्मा वै 'पुत्र'नामासि स जीव शरदः शतम्."** (कोषी.ब्रा.उप.२।११) मेरे अंगसे ही तेरा अंग उत्पन्न हुआ है, मेरे हृदयसे तेरा हृदय प्रकट हुआ है, मैं स्वयं तु बना हुं और तु सौ वर्ष तक जीवित रहे. यह पुत्रको पिताद्वारा दिया गया एक कर्मकांडी आशीर्वाद है. वहां भी देहसे ही अर्थ लिया गया है क्योंकि अपनी आत्मासे तो पुत्रकी आत्मा प्रकट नहीं की जा सकती है पर पुत्रका देह और हृदय अपनी देहसे बना होता है. फिर कहा है कि **"आत्मा वै 'पुत्र'नामासि"** मानें मैं स्वयं पुत्र ही बना हुं. वहां भी हम देखें तो यह बात स्पष्ट होती है कि देहको आत्मा नहीं माना गया है. वेदमें भी आत्माका अर्थ देह तक लिया गया है. यह तो अपनी-अपनी जागरूकतापर निर्भर करता है कि हम किसे आत्मा मान रहे हैं! कोई अपने दोस्तको भी 'आत्मा' कहता है. कई गीतोंमें भी आप देख सकते हैं कि उनमें कहा गया है 'मेरी जान'. इसका अर्थ भी यही है कि वह उसको आत्मा मान रहा है. इस प्रकार किसीको अपनी आत्माका भान कहाँ है, इस बातमें कई प्रकारके विचार हो सकते हैं. पर मूलमें 'आत्म' शब्दका अर्थ देहसे अतिरिक्त होनेमें नहीं है.

इस तरह जब हम आत्म और अनात्म के बारेमें कह रहे

हैं तो यह समझना चाहिये कि इसमें देहके व्यतिरिक्त कुछ होना आवश्यक नहीं है. हो भी सकता है पर आवश्यक नहीं है. **आत्मानात्मविवेकाय षड्विंशे सांख्यम् उच्यते** मैं क्या हुं, और मेरेसे अतिरिक्त क्या है? वेदमें आत्माका लिंग 'अहं' माना गया है. 'अहं' मानें मैं. अब 'मैं'का अर्थ आप क्या ले रहे हो, यह तो आपकी उस समयकी भावनापर निर्भर करता है. जैसे मैने उस बौद्ध लामा लड़कीकी बात कही थी कि वह पूरी यात्राके दौरान लड़केकी तरह रही. पर उसका अहं लड़की होनेका था. जब नेपालमें वह स्त्रियोंके वॉशरूम्में गयी तो पकड़ी गयी. इस तरह उसका अहं आत्माके होनेके अर्थमें नहीं था, लड़की होनेके अर्थमें था. किसीका अहं पत्नी होनेमें, किसीका बेटी होनेमें, किसीका कलाकार होनेमें, किसीका अध्यापक होनेमें होता है. मैं अपने अहंको किस रूपमें ले रहा हुं, यह तो मैं ही जान सकता हुं, आप नहीं. यहां-तक कि एक व्यक्तिमें भी अलग-अलग समयपर अहं अलग-अलग प्रकारका हो सकता है. कई बार 'अहं'का अर्थ हम देह लेते हैं और कई बार इसका अर्थ देहसे अतिरिक्त आत्मा लेते हैं. जब "अहं ब्रह्म अस्मि" कहते हैं तो 'अहं'का अर्थ ब्रह्म हो जाता है. इस तरह अहंका अर्थ अपने लिए भी निश्चित नहीं है, यह उस समयकी अपनी भावनापर निर्भर करता है.

गालिब कहता है; *"न मैं कुछ था तो खुदा था. न मैं कुछ होता तो खुदा होता, डुबोया मुझको होनेने, न मैं होता तो क्या होता."* जब मैं नहीं था तो खुदा था. यदि मैं पैदा नहीं होता तो खुदा ही होता. मैं डूबा ही इस कारणसे हुं क्योंकि मैं पैदा हुआ हुं. अगर मैं नहीं होता तो क्या होता. अहंका यह एक अलग ही रूप है. बुद्ध भगवान् कहते हैं कि 'मैं'का आभास होना यह सबसे पहली भ्रांति है. अहंकी भ्रांतिके कारण ही आपको और सारी भ्रांति हो रही हैं. इस अहंपर काबू पा लो तो और

कोई भ्रांति हो ही नहीं सकती. उसके बाद वे कहते हैं कि दूसरी भ्रांति 'वह', यह होती है. जब अहंकी भ्रांति नहीं होगी तो 'वह'की भ्रांति भी नहीं होगी.

इसलिए मूल बात इसमें समझनेकी यह है कि जब आत्मा और अनात्मा के विवेककी बात आ रही है तो मैं और मुझसे पृथक् क्या, इसका विवेक. **आत्मानात्मविवेकाय षड्विंशे सांख्यम् उच्यते** आत्मा और अनात्मा के विवेकके लिये इस छब्बीसवें अध्यायमें सांख्यका वर्णन किया गया है. **तत्त्वानां लक्षणानि अत्र निरुक्तिः च इयम् अत्र च**. और इस विवेकके विवेचनमें जितने भी तत्त्व सामने आ रहे हैं, उनके लक्षण और उनकी निरुक्ति यहां बतायी गयी है. **जीवब्रह्मविभागार्थं प्रक्रियाद्वितयं स्मृतं, संसारे मूलभावे च पुरुषः प्रकृतिर् मता**. जीव और ब्रह्म के विभाग समझानेके लिए दो प्रक्रिया यहां कहनेमें आयी हैं. जैसे मैंने आपको गालिबका शेर बताया कि *"न मैं कुछ था तो खुदा था. न मैं कुछ होता तो खुदा होता"* तो जब हमारी आत्मा प्रकृतिके साथ संपर्कमें नहीं आती है, तब हमारी आत्मा ब्रह्मकी अंशरूप होती है. प्रकृतिसे संपर्कमें आते ही वह उससे बंध जाती है. इसके फलस्वरूप ब्रह्मको भूल जाती है और जीवरूप बन जाती है. यह प्रक्रिया निरूपित की है. इस तरह जैसे कपिलमुनि पुत्र भी हैं और भगवान् भी हैं, इसी तरह हम भी मूलमें भगवान् ही हैं पर जगत्में प्रकट होनेपर पुत्र पिता आदि जो अपना अहं हमें बताता है, वह बन जाते हैं. मूलमें अपना अहं दोनों प्रकारका है, भगवान् होनेका भी और भगवान् नहीं होनेका भी. भगवान् नहीं होनेका अर्थ है कि भगवान् प्रकृतिसे बंधे हुए नहीं हैं और हम प्रकृतिसे बंधे हुए हैं. पर जब भी हम प्रकृतिसे बंधे हुए नहीं रहते हैं तो हम भी भगवान्के रूप ही हैं. *"न मैं कुछ था तो खुदा होता."* इस प्रकारसे देखनेसे जीव और ब्रह्म का विभाग होता है. यदि विभाग इस प्रकार होता हो तो **संसारे**

मूलभावे च पुरुषः प्रकृतिर् मता अपने सांसारिक अहंका कारण कि मैं पिता पति आदि हुं यह प्रकृति है और असांसारिक अहंका कारण पुरुष है, क्योंकि पुरुष भगवद्रूप है.

श्रीभगवान् उवाच

श्लोक :

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक्॥
यद् विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर् गुणैः॥१॥

अनुवाद : **श्रीभगवान्‌ने कहा, अब तुम्हें तत्त्वोंके अलग-अलग लक्षण बताता हुं कि जिनको जान कर पुरुष, प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो सकता है॥१॥**

विवेचन : अब देवहूतिको कपिलमुनि समझा रहे हैं कि अब मैं आपको तत्त्वोंके लक्षण पृथक्-पृथक् करके समझाता हुं, जिनके जाननेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो सकता है. इसे समझ लो तो प्रकृतिसे आप किस प्रकार अलग हो, यह भली प्रकारसे जान सकोगी॥१॥

श्लोक :

ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्य आत्मदर्शनम्॥
यद् आहुर् वर्णये तत् ते हृदयग्रन्थिभेदनम्॥२॥

अनुवाद : **इस आत्मदर्शनका ज्ञान पुरुषके कल्याणके लिए कहा जाता है. उसका वर्णन मैं करूंगा, जिससे तुम्हारे हृदयमें रही हुयी ग्रंथियाँ खुल जायेंगी॥२॥**

विवेचन : यहां पुरुषका अर्थ है जो प्रकृतिके पुरमें रहता हो वह. प्रकृति अपने लिए एक देह रूपी पुरका निर्माण करती है और उसमें हम रह रहे हैं, इस कारण हम पुरुष हैं. इस अर्थमें स्त्री

वृक्ष सभी जीव-जन्तु भी पुरुष हैं. इस प्रकृतिके पुरमें रहनेके कारण पुरुष भी प्राकृत हो जाता है. वह अपना बंधा हुआ रूप है. यही पुरुष यदि ज्ञानसे आत्मदर्शन कर पाये तो वह आत्मदर्शन उसके उद्धारका कारण हो सकता है. **यद् आहुर् वर्णये तत् ते हृदयग्रन्थिभेदनम्** कपिलमुनि कह रहे हैं कि "वह ज्ञान मैं तुम्हें देता हुं जिससे तुम्हारे हृदयकी सारी ग्रंथियाँ खुल जायेंगी." कौनसी गांठ? पति संन्यास ले कर चला गया है. पुत्र जानेको कह रहा है. ऐसी स्थितिमें पुत्रमें मोह उचित है कि नहीं, यह गांठ तो मनमें है जो खुलती नहीं है. क्योंकि ये यदि साथ रहते ही न हो तो मोह रखनेसे लाभ क्या? पर पुत्र होनेके कारण मोह हो भी रहा है. इस बातकी जो गांठ बन गयी है, उसे किस प्रकार खोलना? अब आत्माका लक्षण कह रहे हैं॥२॥

श्लोक :

अनादिर् आत्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥
प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर् विश्वं येन समन्वितम्॥३॥

अनुवाद : **पुरुष अनादि आत्मा सत्त्वरजस्तमो गुणोंसे रहित होनेके कारण प्रकृतिसे पर होता है. वह स्वयंज्योति प्रत्येकके भीतर ही इस प्रकार प्रकाशित होता है कि समग्र विश्व उससे समन्वित हो जाता है॥३॥**

विवेचन : **पुरुष** अनादि आत्मा है. प्रकृतिके गुण पुरुषमें नहीं हैं, प्रकृतिसे पर है. और **प्रत्यग्धामा** है मानें भीतर रहता है, प्रकट नहीं रहता. प्रकट स्वरूप देहका है. 'प्रत्यग्' अर्थात् भीतर, भीतर रहनेवाला स्वरूप आत्मा है. आत्मा स्वयंज्योति है. **स्वयंज्योति** मानें स्वयं प्रकाशित है. दूसरेसे इसे समझ नहीं पाते, अपने आप ही जब यह स्वयंको जताये तो ही समझमें आ सकता है. जैसे यह दीवार आपको प्रकाशके कारण दिखायी दे रही है. पर प्रकाश आपको

दीख रहा है, अपने ही कारण. इस सिद्धांतको ‘स्वयंज्योति’ कहा जाता है. **विश्वं येन समन्वितम्** और स्वयंज्योतिसे विश्व समन्वित है. मानें सारी दुनिया अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस्के द्वारा संबंध स्थापित करती है. क्योंकि यदि हमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् होगी तभी हमारे भीतर ऑब्जेक्टिव् अवेयरनेस् आयेगी. इस तरह आपके चारों ओरका वातावरण आपकी सॅल्फ्-अवेयरनेस्से ही जुड़ा है. यदि आपमें सॅल्फ-अवेयरनेस् (आत्मसंवेदनशीलता) नहीं है तो ऑब्जेक्टिव् अवेयरनेस् नहीं आयेगी॥३॥

श्लोक :

स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥
यदृच्छयैव उपगताम् अभ्यपद्यत लीलया॥४॥

अनुवाद : **ऐसा यह विभु पुरुष, जब सूक्ष्म त्रिगुणमयी दैवी प्रकृति जो बिना किसी हेतुके नज़दीक आती है, तो उसे (पुरुष) लीलाभावसे स्वीकार लेता है॥४॥**

विवेचन : **स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः** आत्मा स्वयं-ज्योति है. **दैवीं** = देवद्वारा निर्मित ऐसी प्रकृति **गुणमयीं** = सत्त्व-रज-तमोगुण युक्त **विभुः** = व्यापक. प्रकृति सूक्ष्म और दैवी है. **यदृच्छयैव उपगताम् अभ्यपद्यत लीलया** किसी कारणसे प्रकृति पुरुषके पास नहीं आयी है अपितु अकस्मात् इसके पास आ जाती है. जब प्रकृति पुरुषके पास आती है तो पुरुष उसे पकड़ लेता है. जैसे चुंबकको लोहेकी आवश्यकता नहीं है और न ही लोहेको चुंबककी ही आवश्यकता है, पर पास आते हैं तो एक-दूसरेको पकड़ लेते हैं. इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष जब पास आते हैं तो एक-दूसरेको पकड़ लेते हैं. आवश्यकता किसीको किसीकी नहीं है॥४॥

श्लोक :

गुणैः विचित्रां सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥
विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया॥५॥

अनुवाद : **तब प्रकृति अपने गुणोंके वश अपनी ही तरह विचित्र प्रजाका सृजन करने लगती है, जिस प्रजाको देखते ही पुरुष तुरत ही मोहित हो जाता है क्योंकि वह प्रकृति उस पुरुषकी चेतनाको ढकनेवाली होती है।।५।।**

विवेचन : प्रकृतिका दूसरा गुण है कि उससे जो वस्तु उत्पन्न होती है वह भी सत्त्व-रज-तमोगुण लिए हुए होती है, इसलिए **विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया** जब इस प्रकृतिको पुरुष देखता है, तो उसपर मोहित हो जाता है. यह मोह स्वाभाविक है जैसे लोहा और चुंबक का मोह. इस मोहका कोई कारण नहीं है पर स्वभाववश है. एक प्रकारसे देखें तो पूरे सांख्यकी कथा बॉलीवुडके हीरो-हिरोइन् जैसी है.

जब मैं बी.ए.में पढ़ता था तो सॅमिस्टर्की परीक्षामें प्रश्न आया कि सांख्यके अनुसार प्रकृति और पुरुष के संबंधोंका वर्णन करो. उस समयके जितने भी फिल्मी गाने प्रचिलित थे, उनसे मैंने सांख्यके अनुसार प्रकृति और पुरुष का वर्णन कर दिया, बजाय शास्त्रके वचनके. मेरा प्रोफेसर् माथा ठोकता था कि यहां कौन आ गया है जो सांख्यका वर्णन इस प्रकार कर रहा है. उसने मुझे कुछ इसी प्रकार क्लास्में समझाया था. There is a very romantic relation between Prakruti And Purush. बस इसी कारण मैंने भी सारे रोमांटिक् गानोंके अनुसार वर्णन कर दिया. उस पेपर्में बस इतना ही था कि अपना नाम नहीं लिखना था. पूरी क्लास्में वह मेरी ओर देख कर ही बोलता रहा कि देखो कैसे लोग होते हैं जो ऐसी व्याख्या लिख देते हैं. फिर उसने क्रोधमें आ कर पूरी क्लासकी ओर देखा और पूछा ‘‘यह किसने लिखा है?’’ मैंने खड़े हो कर कहा ‘‘सर, मैंने लिखा है.’’ उसका क्रोध वहीं शांत हो गया. बोला ‘‘अरे, गोस्वामीजी आपने लिखा है!’’ मैंने

कहा ‘‘सर आपने ही तो कहा था कि इनका संबंध बहुत ही रोमांटिक् है. इसलिए मैंने रोमांटिक् गानोंके आधारपर वर्णन कर दिया. आप यदि फिलोसॉफिकल् कहते तो मैं शास्त्रके उदाहरण देता.’’ उसकी बात गलत नहीं थी. जिस प्रकारका वर्णन शास्त्रमें प्रकृति-पुरुषके संबंधोंका आता है, वह सचमें ही बहुत रोमांटिक् है.

इसमें एक मूल बात यह समझनी है कि सांख्यका उपदेश प्रकृतिको नहीं दिया जा रहा है, बल्कि पुरुषको दिया जा रहा है. इसलिए दोषी पुरुषको ही कहा जायेगा कि ‘‘तू ही मोहित होता है!’’ जैसे कोई लड़का-लड़की मिल कर भाग जायें तो लड़कीके माँ-बाप कहते हैं कि लड़की तो बहुत सीधी थी, बदमाश लड़का भगा कर ले गया. इसी बातको लड़केके माँ-बाप कहेंगे ‘‘हमारा लड़का तो बहुत सीधा था, लड़की उसे ले कर भाग गयी.’’ भागे तो दोनों हैं पर अपने-अपने हिसाबसे लोग दूसरेपर दोषारोपण करते हैं. इसी प्रकार क्योंकि उपदेश पुरुषको दिया जा रहा है, इस कारण कहते हैं कि पुरुष बंध जाता है. अरे, पर प्रकृति भी तो पुरुषसे बंधती है. पर क्योंकि कथा उस तरफसे नहीं कही जा रही है, इसीलिए पुरुषपर ही दोषारोपण हो रहा है. तत्त्वका उपदेश प्रकृतिको तो दिया नहीं जा सकता. तत्त्वका उपदेश तो चेतनको ही दिया जा सकता है, इसलिए कथा तो इस ओरकी हो गयी. पर मोहित तो दोनों ही एक-दूसरेपर हो रहे हैं. सांख्य तो यहां-तक कहता है कि इन दोनोंमें ‘पंग्वंधन’ न्याय है. पंगु चल नहीं सकता पर देख सकता है. अंधा देख नहीं सकता पर चल सकता. इसलिए प्रकृतिको ‘अंधी’ कही गयी है और पुरुषको ‘पंगु’ कहा गया है. दोनों एक-दूसरेका सहारा लें तो चल सकते हैं. इस तरह सृष्टि ‘पंग्वंधन’ न्यायसे चल रही है.

अनीश्वरवादी सांख्यकी कारिकाएं ईश्वरकृष्ण नामके विद्वानने लिखी है. उसने लिखा है ‘‘**अजाम् एकाम् लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः**

सृजमानां नमामः अजा ये तां जुषमाणां भजन्ते जहति एनां भुक्तभोगां नुमस्तान्'' (सां.का.मं.१) (तुलनीय.**अजाम् एकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः अजो हि एको जुषमाणो अनुशेते जहति एनां भुक्तभोगाम् अजो अन्यः-श्वेता.उप.४।५**) यह सांख्य कारिकाका पहला श्लोक है. संस्कृतमें 'अज'के दो अर्थ होते हैं. जो पैदा न होता हो वह अज है. पुलिंग शब्द 'अज' है और स्त्रीलिंग 'अजा' है. अज और अजा का दूसरा अर्थ बकरा और बकरी भी होता है. तात्त्विक रूपसे प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं. इस श्लोकमें जो भाषा प्रयुक्त हुयी है वह श्लेषवाली है मानें दो अर्थवाली है. अब इस श्लोकको बकरा-बकरीके संदर्भसे समझते हैं. ''**अजाम् एकाम् लोहितशुक्लकृष्णां**'' एक बकरी ऐसी है कि जिसकी चमड़ी तीन रंगकी है. लाल सफेद और काली. मानें सत्त्व रज और तम. ''**बह्वीः प्रजाः सृजमानां**'' उससे बहुत सारी प्रजा उत्पन्न होती है, उसीके रंगकी. ''**अजाः ये तां जुषमाणां भजन्ते**'' (**अजो हि एको जुषमाणो अनुशेते**) बहुत सारे बकरे जो इस अजाका सेवन करते हैं परन्तु कुछ बकरीका उपभोग कर उसे छोड़ पाते हैं. इन अजा और उसे छोड़पानेवाले अजोंको हमारा नमस्कार. ''**जहाति एनां भुक्तभोगाम्**'' पर जो बकरीसे एक बार बकरा मिल लेता है, वह उसे छोड़ भी देता है. साधारणतया पुरुष-प्रधान समाजमें स्त्री कभी भी पुरुषको तलाक नहीं देती है. पुरुष ही स्त्रियोंको तलाक देते हैं. पर नये कानून आनेके बादसे स्त्री भी अब पुरुषोंको तलाक देने लगी हैं. यहां भी कुछ ऐसा ही है. पुरुष चाहे तो प्रकृतिको छोड़ सकता है पर प्रकृति पुरुषको नहीं छोड़ती है. इस तरह कहते हैं कि एक बकरा ऐसा है जो बकरीके पीछे-पीछे फिर रहा है. कोई बकरा ऐसा भी होता है जो बकरीको भोगनेके बाद उसे छोड़ भी देता है. यह पहला श्लोक है सांख्यकी कारिकाका. पर यहां श्लेषके अर्थमें यह अर्थ किया गया है. सही अर्थ है कि पुरुष और प्रकृति अनादि हैं. अज-अजा हैं. इसलिए भगवान् गीतामें कहते हैं ''**प्रकृतिं**

पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'' (भग.गीता १३।१९) मानें प्रकृति और पुरुष दोनोंको तुम अनादि समझो. यहाँ उल्लेखनीय हो जाता है कि द्वैतवादी सांख्यकारिकार पुरुषबहुत्व इंगित कर रहे हैं. श्वेताश्वतरोपनिषद् पुरुष समष्टिको अनुलक्ष्य करके एकवचनका प्रयोग करता है.

यहां भी लगभग यही बात आ रही है कि **गुणैर् विचित्रां सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः** प्रकृति जब सामने आती है तो **अभ्यपद्यत लीलया** पुरुष उसे लीलासे स्वीकार कर लेता है. उसके बाद अपने विचित्र तीन प्रकारके गुणोंसे प्रकृति प्रजाका सृजन करती है. **विलोक्य मुमुहे सद्यः** ऐसी प्रकृतिको देख कर उसे मोह उत्पन्न हो जाता है **स इह ज्ञानगूहया** और उसका ज्ञान गुहित हो जाता है मानें दब जाता है. मानें उसका ज्ञान प्रकृति सामने होनेके कारण काममें नहीं आता॥५॥

श्लोक :

एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान्॥
कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैर् आत्मनि मन्यते॥६॥

अनुवाद : **इस प्रकार वह पुरुष, परमात्माके द्वारा धारण किये प्रकृतिके रूपके अभिध्यानके कारण अथवा उसके गुणोंके कारण, किये हुए कर्मोंका कर्ता स्वयंको मानने लगता है ॥६॥**

विवेचन : एक बात मैंने पहले ही आपको बता दी है कि 'आत्मा' शब्दका अर्थ 'मैं' है. और जो 'मैं' नहीं है वह 'पर' है. यहां भी जैसे 'मैं'के दो अर्थ हो सकते हैं, उसी प्रकार 'पर'के भी दो अर्थ हो सकते हैं. 'पर'का एक अर्थ पराया है और दूसरा अर्थ श्रेष्ठ पुरुष ईश्वर भी है. इस कारण जो पुरुष है उसका **पराभिध्यान** मानें निरंतर दूसरेका ध्यान धरनेके कारण यह अपने आपको कर्ता

मान लेता है. सचमें तो यह कर्ता है ही नहीं. क्योंकि पुरुष केवल द्रष्टा है और प्रकृति कर्तृ है. प्रकृतिके सदा ध्यानके कारण पुरुष अपने आपको कर्ता मान लेता है.

ओशो रजनीशके सामने किसीने प्रश्न पूछा कि ''आप हमें श्रद्धा और विश्वास का भेद समझायें.'' रजनीशने एक बात कही कि ''पतिको श्रद्धा होती है कि यह पुत्र मेरा है और पत्नीको विश्वास होता है कि यह मेरा पुत्र है.'' क्योंकि 'कर्तृ' मानें जन्मदात्री तो स्त्री है, पुरुष तो है नहीं. इस कारण वह श्रद्धाके अलावा और क्या कर सकता है? इसलिए यह कर्तृत्व पुरुषमें है ही नहीं, वह तो प्रकृतिमें है. पर कर्तृत्वका ध्यान धरनेसे उसे लगता है कि कर्ता तो मैं हूं. आपको इसे समझनेके लिए एक उदाहरण देता हुं. मैं तो मुम्बई रहता हुं पर किशनगढ़ मेरा घर है. वहां बहुत संपत्ति है और उसे संभालनेके लिए वहां मैं बार-बार जा नहीं सकता. इस कारण मैने वह एक किसीको सोंप दी. उसने उसे मॅनेज् करनेके लिए अपनी पत्नीको सोंप दिया जो कि उसकी खुदकी संपत्ति भी संभालती थी. इस कार्यमें वह बहुत कुशल थी. मुझे कुछ दिन बाद इस रहस्यका पता चला तो अगली बार जब मैं किशनगढ़ गया तो हम तीनों ही बैठे थे. मैं सीधे उसकी पत्नीकी ओर रुख करके व्यवस्थाके बारेमें प्रश्न करने लगा. यह देख कर उस व्यक्तिके अहंको ठेस लग गयी और वह बोला ''इसे क्या आता है? आप मुझसे पूछें.'' मैंने उससे प्रश्न करना प्रारंभ कर दिया. वह फिर हर बातका उत्तर अपनी पत्नीसे ही पूछ कर देता. तो बात तो वहीं-की-वहीं रही. इस तरह कर्तृ तो प्रकृति ही रहती है पर अपने अहंके कारण पुरुष अपने आपको कर्ता मान बैठता है. प्रकृति और पुरुष के व्यवहारका साक्षात् सिद्धांत मैंने इस रूपमें देखा.

प्रश्न : आपने कहा कि पुरुष प्रकृतिपर स्वाभाविकतया आकर्षित

होता है और उससे संलग्न हो जाता है. फिर वह छूटता किस प्रकार है?

उत्तर : ऐसा है कि प्रत्येक जातिके लिए अलग-अलग प्रकारकी व्यवस्था है. कोई प्रजाति पुरुष-प्रधान होती है तो कोई स्त्री-प्रधान. इनमें जिसकी भी प्रधानता होती है, वह ही छोड़ सकता है. मूल सिद्धांत यह है. इनका प्रभेद अंग्रेजीमें Matriarchal और patriarchal society के रूपमें हुआ है. मानें मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक. केरलमें आज भी कई स्थानोंपर ऐसा है कि लड़की शादीके बाद सुसराल नहीं जाती अपितु लड़का जाता है. सरनेम् भी माँका मिलता है, पिताका नहीं. ऐसा इसलिए है क्योंकि वहाँ स्त्री-प्रधान समाज है. इसी प्रकार कई प्रजातिमें भी ऐसा है जैसे पॅन्विन्का समाज स्त्रीप्रधान होता है. वहाँ अंडा देके पुरुषको सोंप कर चली जाती है. उस पुरुष पॅन्विन्को सेना पड़ता है. शेर आदि पुरुष-प्रधान है. मैंने इसपर एक फिल्म् देखी थी. संतरामपुर नरेशने वह फिल्म् उतारी थी जंगलमें जा कर. उन्होंने ही मुझे वह दिखायी थी. शेरोंके समाजका एक अनुशासन होता है कि शिकार शेरनी करती है और शेर आराम करता है. यदि शेरनीसे किसी कारण नहीं हो पा रहा है तब शेर जाता है. उसमें एक भारी भैंसेका शिकार शेरनियोंसे नहीं हो रहा था, तो सारी शेरनियाँ आ कर एक टीलेपर बैठ गयीं. इसके पश्चात् शेरने उसका शिकार किया. पर शिकारके बाद थके होनेके कारण वह उसे टीलेके ऊपर नहीं घसीट पा रहा था. उसने कई बार प्रयास किया पर ऊपर ले जानेमें असफल रहा. इतनेमें शेरनी क्योंकि थकी हुयी नहीं थी, वह आ कर उसे टीलेपर ले गयी. यह देख कर शेरने उस शेरनीको मार दिया. शायद उसके अहंको ठेस लगी होगी कि मैं जिसे नहीं ला पा रहा हुं, उसे शेरनीने लानेकी हिम्मत कैसे की! इन लोगोंमें ऐसे संस्कार होते हैं कि यदि दो झुंड आमने-सामने आ जायें तो दोनों तरफके शेर ही आपसमें लड़ते हैं. कोई भी शेरनी उस लड़ायीके बीच पड़ती नहीं है. चुपचाप

दूरसे लड़ायी देखती रहती है. जो उनमें जीत जाता है, सारी शेरनियाँ उस शेरके साथ हो जाती हैं. यह उस प्रजातिकी व्यवस्था है. मनुष्य जातिमें कई आदिवासी ऐसे हैं कि जहां स्त्रीको ही पुरुष चुननेका अधिकार है. आसाम आदि राज्योंमें आप देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि वहांकी स्त्रियाँ खेतोंमें जितना काम करती हैं इतना पुरुष नहीं कर सकते. बाबरने भी अपनी आत्मकथामें लिखा है कि ‘‘हमारे मंगोलियामें स्त्रीमें इतनी शक्ति होती है कि यदि कोई मनुष्य पेड़के पीछे भी छुपा है तो उसे पेड़को छेदते हुए तीर मार सकती है.’’ और वह आगे यह भी कहता है कि ‘‘भारतके पुरुष भी इतने सशक्त नहीं हैं.’’

सांख्यमें पुरुषकी ही प्रधानता है, पुरुष चाहे तो प्रकृतिको छोड़ सकता है. प्रकृतिको यह अधिकार नहीं है. उसका एक कारण यह भी है कि पुरुष चेतन है और प्रकृति अचेतन. यह बात अपने समाजमें भी आप देख सकते हो कि मनुष्य जाति ही जानवरोंको पाल सकती है. जानवरोंमें अभी यह सामर्थ्य नहीं आयी है. यदि उनका विकास हुआ तो हो सकता है एक दिन वे भी हमें पकड़ कर ले जायें और गलेमें रस्सी बांध कर रखें. श्रीलंकाके एक सांइस् फिक्शन् लिखनेवाले सर् आर्थर् क्लार्क थे. उन्होंने तो एक कहानी ही लिख दी है कि सौ-दोसौ साल बाद रोबट्र ही हमको गुलाम बना कर रखेंगे. जो भी आर्टीफीसियल्-इन्टॅलिजेंस् हम रोबट्रमें डाल रहे हैं, उससे वह इतने विकसित हो जायेंगे कि हमें ही उनकी गुलामी करनी पड़ेगी. इस आधारपर एक फिल्म भी बनी थी.

इसलिए **पराभिध्यानेन** मानें परका अभिध्यान. ब्रह्मसूत्रमें परका अभिध्यान = ब्रह्मका अभिध्यान माना गया है. अर्थात् परमात्माने ऐसा अभिध्यान किया कि पुरुष और प्रकृति इकठ्ठे हों, इसीलिए दोनों इकठ्ठे हुए. पर यहां सांख्य कह रहा है कि पुरुषने प्रकृतिका अभिध्यान किया इसलिए उसमें कर्तृत्व आया. **कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान्** दोनों ही

जगह पराभिध्यान है पर ब्रह्मसूत्रमें ‘पर’ शब्दसे ब्रह्म अभिप्रेत है और यहां सांख्यमें इसका अर्थ पुरुष लिया है. वेदान्त प्रयोजककर्ताकी बात करता है, सांख्य प्रयोज्य कर्ताकी. ‘प्रयोजककर्ता’ यानि करानेवाला. ‘प्रयोज्यकर्ता’ यानि किसीकी प्रेरणावश काम करनेवाला. पुरुषने प्रकृतिका ध्यान किया इसलिए उसके गुण इसमें आ गये. **कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैर् आत्मनि मन्यते** सदा प्रकृतिका ध्यान करता है इसलिए जब पुरुष कुछ करता है तो इसे लगता है मैंने यह किया, मैंने वह किया. कर तो प्रकृति रही है. हकीकतमें पुरुष तो कुछ करता नहीं है, वह केवल द्रष्टा है॥६॥

श्लोक :

तद् अस्य संसृतिर् बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम्॥
भवति अकर्तुर् ईशस्य साक्षिणो निर्वृतात्मनः॥७॥

अनुवाद : **इस कारण अपनेमें प्रतीत होता हुआ कर्तापना इस पुरुषकी संसृति है और यह ही उसकी पराधीनता या बन्धन भी हो जाता है. जब कि हकीकतमें तो पुरुष स्वतंत्र कर्तापनेसे रहित निजानन्दी साक्षिरूप होता है॥७॥**

विवेचन : **भवति अकर्तुर् ईशस्य** यह जो ईश है; ‘ईश’ मानें जिसका प्रभुत्व है; **साक्षिणो** जो साक्षी है, **निर्वृतात्मनः** जो निर्वृतात्मा है मानें इसे कुछ करने-धरनेकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी क्योंकि यह सदा प्रकृतिका ध्यान धरता है इस कारण इसे लगता है कि यह मैंने ही किया है. इसके पश्चात् कहते है...॥७॥

श्लोक :

कार्य-कारण-कर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः॥
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम्॥८॥

अनुवाद : **कार्यकी उत्पत्ति, उत्पादकरूप कारण और कर्तापनेके**

कारणके होनेके रूपमें प्रकृतिको जानना चाहिये; और उसके फलरूप सुख-दुःखके भोक्ताके होनेके रूपमें प्रकृतिसे पर ऐसे पुरुषको जानना चाहिये॥८॥

विवेचन : **कार्य-कारण-कर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः** मानें कार्य कारण और कर्तृत्व, तीनोंमें प्रकृति ही कारण है. **भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम्** इस सबके सुख-दुःखका भोग प्रकृतिको नहीं होता है बल्कि पुरुषको होता है. ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पुरुष चेतन है इसीलिए उसे सुख-दुःखका अनुभव होता हैं. प्रकृति अचेतन है, इसलिए उसे नहीं होता. जैसे हम बैल ऊंट आदिको गाड़ीमें जोड़ देते हैं तो क्या हमें उन्हें चाबुक मारते समय यह ध्यान आता है कि इन्हें कोई सुख-दुःखका अनुभव हो रहा है कि नहीं? नहीं होता. वह हमारी इच्छाके अनुसार दौड़ रहा है, तो सुख होता है और नहीं दौड़ रहा तो दुःख होता है. क्योंकि जिसका प्रभुत्व होता है, वह अपने सुख-दुःखकी ही चिंता करता है. और जिनके ऊपर अपना ईशत्व प्रकट करता है उनके सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करता जैसे जानवरके सुख-दुःखकी चिन्ता हम नहीं करतें. यहां-तक तो कपिलमुनिने विवेक बताया. उसके बाद देवहूतिने प्रश्न किया॥८॥

(प्रकृति-पुरुषके लक्षण)

देवहूतिः उवाच

श्लोक :

प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम!॥
ब्रूहि कारणयोर् अस्य सदसत् च यदात्मकम्॥९॥

अनुवाद : **देवहूतिने कहा, हे पुरुषोत्तम! प्रकृति और पुरुष दोनोंके लक्षण बताईयें क्योंकि जो इस जगत्का कारण है और जो कुछ सत् अथवा असत् है वे सब प्रकृति-पुरुषरूप ही है.**

विवेचन : **प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं** प्रकृति और पुरुष के लक्षण आप मुझे बताईयें. **पुरुषोत्तम** = भगवान्,**ब्रूहि कारणयोर् अस्य सदसत् च यदात्मकम्** और यह दोनों कारण बनते हैं सद्(प्रकट)-असद्(अप्रकट) जगत्के क्योंकि जगत्में कुछ प्रकट है कुछ अप्रकट है. इसका कारण पूछ रही है. उसके उत्तरमें भगवान् बोले॥९॥

श्रीभगवान् उवाच

श्लोक :

यत् तत् त्रिगुणम् अव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्॥
प्रधानं प्रकृतिं प्राहुर् अविशेषं विशेषवत्॥१०॥

अनुवाद : **श्रीभगवान्ने कहा, जो नित्य अव्यक्त सदसदात्मक तीन गुणोंवाली प्रकृति, जो कि अविशेष और सविशेष भी है, उसे 'प्रधान' कहा जाता है॥१०॥**

विवेचन : प्रकृति त्रिगुणात्मक है; जैसा पहले कहा है लाल श्वेत और श्याम मानें सत्त्व-रज-तमो गुणात्मिका है. अव्यक्त है, सनातन है और **सदसदात्मक** है मानें पूरे तौरपर प्रकट भी नहीं है और अप्रकट भी नहीं है. अंशतः प्रकट है और अंशतः अप्रकट है. इससे जो वस्तु पैदा हो रही है वह भी अंशतः प्रकट है और अंशतः अप्रकट है. इस प्रकृतिको 'प्रधान' कहा जाता है और **अविशेषं विशेषवत्** और सारी विशेषताएं प्रकृतिमें ही रही हुयी हैं, प्रकृतिकी स्वयंमें कोई विशेषता नहीं है.

इसे समझनेके लिए एक उदाहरण देता हुं. मैं बनारस गया था. वहां एक परिवारने मेरी पधरावनी रखी. उस परिवारमें लगभग उन्नीस सदस्य थे. परिवारके सबसे बड़े व्यक्तिने प्रत्येक व्यक्तिसे मेरा परिचय कराया. अंतमें क्लाइमॅक्स्पर उन्होंने अपनी पत्नीका परिचय

मुझे कुछ इस प्रकार दिया कि ‘‘यह सारी प्रजा जिससे निकली वह यह है, मेरी पत्नी.’’ बिल्कुल पुरुषकी तरह. पहले परिचय नहीं कराया अपनी पत्नीका कि सारा विस्तार जिससे हुआ है वह यह है प्रकृतिरूपमें. कोई पुत्र था, कोई पुत्री, कोई बहु, कोई जमाई, प्रत्येकका विशेष-विशेष वर्णनसे परिचय कराया. ‘‘और यह सारी विशेष वस्तुएं जिनमेंसे निकली वह अविशेष मेरी पत्नी.’’ सचमें वह पधरावनी मुझे इस कारण आज-तक याद है. प्रत्येक विशेषमें वह अविशेष है मानें कॉमन्-फॅक्टर् है.

सुबोधिनी : **यत् तद्इति यत् पूर्वम् उक्तं, तद्एव एतादृशगुणविशिष्टं मूलप्रकृतिः भवति. यत् त्रिगुणं सा प्रकृतिः, सत्त्व-रजस्-तमोगुणाः यस्य मूलभूताः. यथा सच्चिदानन्दं ब्रह्म, क्रियाज्ञानानन्दाः धर्माअपि भवन्ति. तथा सच्चिदानन्दरूपं प्रधानम्, उद्गतास्तु अंशतो गुणाअपि भवन्ति. अव्यक्तं न केनापि प्रकारेण अभिव्यक्तं, कार्यमेव तस्य अभिव्यक्तं, न स्वयम् इति. नित्यं सदा एकरूपम्. सदसदात्मकं कार्य-कारणरूपम्. प्रधानं मुख्यम्. प्रकृतिम् इति लक्ष्यम्. प्राहुः इति प्रमाणम्. ब्रह्मवद् अविशेषं, विशेषाः सर्वे गुणकृताः तस्याएव अतो विशेषवत्. प्रधानम् इति लक्षणम् एकमेव. प्रधानम् इति मुख्यं भगवता जगत्कारणत्वेन निर्मितं, तद्रूपं वा. तस्य जगत्कर्तृत्वनिर्वाहार्थं भगवतइव षड्गुणान् आह त्रिगुणादिषट्पदैः. त्रिविधा हि सृष्टिर् अन्यथा न भवेद्, यथा भगवतः ऐश्वर्यम्; अन्यथा समानेऽपि कर्मणि उच्चनीचगतयो न स्युः. मूलधर्माः एते सच्चिदानन्दाभासाः भगवतः उत्पन्नायां प्रतिष्ठिताः. एवं सत्येव मुख्यं भवति. यद्यपि एकैकमेव लक्षणं तथापि भगवत्वाय षड् उच्यन्ते. अव्यक्तम् इति द्वितीयम्. तस्यहि एवं सामर्थ्यं न केनापि अभिव्यक्तं भवति, अन्यथा कालादिना अभिव्यक्तौ अनित्यतायां पुनः सृष्टिः न स्यात्. सदा एकरूपम् इति कीर्तिः तस्य. यद् जीवप्रकृतिव्युदासार्थम् इति केचिद् आहुः तदुत्तराध्यायेन विरुद्ध्यते; नित्यत्वाद् उभयोरिति. सदसदात्मकम् इति श्रीः, तस्य एषा शोभा यत् सर्वात्मकम् इति. अविशेषम् इति ज्ञानहेतुः अन्यथा संसारिणो मुक्ताः**

न स्युः, तस्य सर्वकारणत्वात्. विशेषवद् इति सर्वे विशेषाः तदीयाः, न तस्य किञ्चिद् आश्चर्यकरम् इति वैराग्यहेतुः ॥१०॥

अनुवाद : जो, पहले बतायी गयी, वही इन समग्र गुणोंवाली मूल प्रकृति है. जो तीन गुणोंवाली है उस प्रकृतिके सत्त्व रजस् तमस् गुण मूलभूत हैं. जिस प्रकार ब्रह्म सच्चिदानन्द है, उसके धर्म क्रिया ज्ञान और आनन्द रूप भी होते हैं. वैसे सच्चिदानन्द स्वरूप होता है परन्तु वही सत्ता चेतना और आनन्द के उद्गमके बाद आंशिकरूपसे गुण भी बन जाते हैं. 'अव्यक्त', जो किसी भी प्रकारसे अभिव्यक्त न हो क्योंकि उसका केवल कार्य ही अभिव्यक्त होता है, वह स्वयं नहीं. 'नित्य' = जो सदा एक रूप होता है. 'सदसदात्मक' = जो कार्य-कारणरूप हो. 'प्रधान' = मुख्य. 'प्रकृति' = जिसका लक्षण दिया जा रहा है वह. 'कहते हैं' = प्रमाण बताया. उस ब्रह्मकी तरह अविशेष होता है, क्योंकि उसके विशेष तो सभी गुणोंके कारण होते हैं और वह उसीके होनेके कारण सविशेष बनता है. प्रधान होना ही एकमात्र लक्षण है. भगवान्ने जगत्के कारणरूपमें उसे प्रकट करनेके कारण, 'प्रधान' = प्रमुख लक्षण है, अथवा वह भगवान्का ही लिया हुआ रूप है. वह प्रधान भगवान्के द्वारा लिया हुआ जगत्कर्ता रूप है. इसीलिए भगवान्की तरह उसके भी छह गुणोंका वर्णन किया गया है. तीनगुण ऐसे छह पदोंद्वारा. प्रधान यदि त्रिगुण न हो तो सृष्टि भी त्रिगुणात्मक नहीं हो पायेगी. जैसे भगवान्में ऐश्वर्य है, ठीक उसी प्रकार; नहि तो कर्म समान होनेके बावजूद कर्मके कारण कोईकी उच्च तो कोईकी अधोगति कैसे संभव हो सकती है? यह मूलधर्म है. ब्रह्मके सच्चिदानन्दका आभास करानेवाले भगवान्के द्वारा उत्पन्न किये हुए प्रधानरूपमें प्रतिष्ठित हो जानेवाला. ऐसा होनेके कारण ही यह मुख्य बनता है. यद्यपि एक-एक ही लक्षण है फिर भी भगवत्ता दर्शानेके लिए छह कहे गये हैं.

अव्यक्त दूसरा लक्षण है. अभिव्यक्त न होनेकी प्रधान जैसी

सामर्थ्य दूसरे किसी भी स्थानपर नहीं दिखती. अन्यथा कालादिसे अभिव्यक्त होनेवाली सृष्टिमें अनित्यताके कारण पुनः सृष्टि उत्पन्न नहीं हो सकती. सदा एकरूप होना प्रकृतिका कीर्ति जैसा गुण है... सदसदात्मक होना यह प्रधानका श्रीरूप गुण है, यह तो इसकी सच्ची शोभा है कि वह सर्वरूप होती है. अविशेष होनेके कारण मुक्ति ज्ञानका हेतु बनती है, अन्यथा संसारी जीव मुक्त ही नहीं होता, वह सभीका कारण होनेसे. 'सविशेष' क्योंकि सभी विशेषों इसीके होनेके कारण, जो कुछ भी प्रकट हो रहा है, उसमें आश्चर्यजनक कोई भी बात न होनेसे अन्तमें तो यह प्रकृति वैराग्य प्रकट करनेवाली भी बनती है॥१०॥

विवेचन : अब सुबोधिनीमें देखें कि महाप्रभुजी क्या कह रहे हैं. **यत् पूर्वम् उक्तं तद्एव एतादृशगुणविशिष्टं मूलप्रकृतिः भवति. यत् त्रिगुणं, सा प्रकृतिः, सत्त्व-रजस्-तमोगुणाः यस्य मूलभूताः.** जो मूल प्रकृति है वह सत्त्व-रजस्-तमोगुण रूपी त्रिगुणात्मक है और एतादृश गुण विशिष्ट है. **यथा सच्चिदानन्दं ब्रह्म, क्रियाज्ञानानन्दाः धर्माअपि भवन्ति.** जैसे परब्रह्म सच्चिदानन्द है मानें सद्के अंशमें क्रिया, चिद्के अंशमें ज्ञान और आनन्दांशमें आनन्द धर्म लिए हुए है. **तथा सच्चिदानन्दरूपं प्रधानम्, उद्गतास्तु अंशतो गुणाअपि भवन्ति.** वैसे ही प्रधान भी सच्चिदानन्द रूप है. 'प्रधान' मानें प्रकृति भी सच्चिदानन्द रूप है क्योंकि ब्रह्मका जगत् होनेका मुख्य कारण प्रकृति है. इसीलिए उसे 'प्रधान' कहा गया है.

उद्गतास्तु अंशतो गुणाअपि भवन्ति एक बात यहां ध्यानसे समझो कि द्रव्य और गुण (substance and quality) इसके बारेमें दो-तीन प्रकारके विचार फिलॉसॉफीमें हैं. एक विचार ऐसा है कि द्रव्य कोई मूल सिद्धांत है. जिसमें उसका गुण पैदा होता है. उदाहरणके लिए सोना द्रव्य है. और उसमें जंक् नहीं लगती, वह बहुत चमकीला

है, उसका पीलापन बहुत लुभावना है, गहना बनानेके लिए उत्कृष्ट है आदि, यह सब सोनेमें रहे हुए उसके गुण हैं. दूसरे शब्दोंमें सोना इन सब गुणोंसे गढ़ा हुआ नहीं है, सोनेमें ये सारे गुण स्वभावसिद्ध होते हैं.

दूसरा सिद्धांत ऐसा है कि 'गुण' मानें जिससे द्रव्य गढ़ा हुआ है. ऐसा इसलिए कि यदि द्रव्यमेंसे सारे गुण ही निकाल दिये जायें तो द्रव्यमें बचेगा ही क्या? इस अर्थमें जो भी गुण हैं उन सभीका 'संघात' द्रव्य है. उदाहरणके लिए अपना चलना सोना बोलना उठना आदि जो हमारी क्रिया या गुण है उन्हें यदि हममेंसे निकाल दिये जायें तो क्या हममें कुछ बचेगा? इस तरह हम क्या हैं? इन सभीका संघात ही तो हैं.

तीसरा विचार ऐसा है कि द्रव्य मिथ्या है और गुण सत्य है, यह भगवान् बुद्धका सिद्धांत है.

इसके ठीक विपरीत, द्रव्य सत्य और गुण मिथ्या. चौथा विचार है यह शांकरका सिद्धांत है.

यह चार सिद्धांत हैं जो गुण और द्रव्य के बारेमें विचारे गये हैं. इनमेंसे सांख्य गुणोंके संघातको द्रव्य मानता है. इस प्रकार त्रिगुणका संघात प्रकृति है. उदाहरणके लिए कोई भी पेंटिंग् रंग और रेखाओं का संघात ही तो है. क्या ऐसा कह सकते हैं कि पेंटिंग् इनसे पृथक् कोई वस्तु है? सारे रंग और रेखाओं को मिटा दो तो पेंटिंग्में बचेगा क्या? एक सिद्धांत यह है. दूसरा सिद्धान्त यह है कि कॅनवास् एक वस्तु है, जिसके ऊपर रेखाएं और रंग किया जा रहा है. रंग और लाइन् गुण हैं और द्रव्य कॅनवास् है. अब इसीमें शांकर और बौद्ध के दो विचार सामने आते हैं. शांकर

कहते हैं कि द्रव्य सच्चा है और गुण खोटे हैं और बौद्ध कहते हैं कि गुण सच्चे हैं और द्रव्य खोटा है. ऐसी चार विचारधाराएं हैं.

बुद्ध हमारे लिए भी कहते हैं कि आपमें गुण सब सच्चे हैं पर आत्मा नामका कोई भी तत्त्व आपमें नहीं है. नैयायिक कहते हैं कि आपमें आत्मा नामका तत्त्व है और गुण उससे अलग हैं और इन गुणोंके कारण ही आप बंधनमें हैं. गुण हटा दो तो आप मुक्त हो जाओगे.

हम यह मानते हैं कि गुणोंका संघात द्रव्य है और द्रव्यमें गुण हैं. यह अपना वाल्लभमत है. इस प्रकार अपना पांचवा मत हुआ. कैसे? हम द्रव्यको केवल गुणोंका संघात ही नहीं कहते हैं बल्कि उसकी अपनी स्वयंकी पहचान भी है. अलग होनेके कारण उसमें गुण कभी प्रकट हो जाते हैं और कभी तिरोहित भी हो जाते हैं. गुण उस द्रव्यमें रही वास्तविकता है. वे प्रकट होते हैं तो द्रव्य प्रकट होता है अन्यथा जितने अनुपातमें गुण प्रकट नहीं होतें उतने अनुपातमें द्रव्य तिरोहित होता जाता है. इस प्रकार हम गुण और द्रव्य दोनों मानते हैं पर इनको दो नहीं मानते, दोनोंको समान मानते हैं. मानें गुण=द्रव्य और द्रव्य=गुण. इस प्रकार पांच मत इस विषयके हैं.

साररूपमें आप एक बार फिर समझ लो. सांख्यके मतानुसार गुणोंका उत्पाद द्रव्य है. न्याय यह मानता है कि द्रव्यका उत्पाद गुण है जैसे मकान द्रव्य है और उसका आन्तरिक डिज़ाइन् गुण है. बुद्ध कहते हैं कि गुण सत्य है द्रव्य मिथ्या है. शांकर कहते हैं कि द्रव्य निर्गुण है गुण मिथ्या है. श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं कि द्रव्य = गुण और गुण = द्रव्य मानें ब्रह्म सच्चिदानन्द है और सच्चिदानन्द

ब्रह्मके गुण हैं, क्रिया ज्ञान और आनन्द अथवा अनंत. द्रव्यके रूपमें ब्रह्म है. उसमेंसे प्रकृति उत्पन्न हुयी, वह भी सच्चिदानन्दात्मक हुयी. उन तीन गुणोंका संघात प्रकृति है. इससे यह नहीं है कि प्रकृति केवल संघात ही है, द्रव्य नहीं है, ऐसा नहीं है. महाप्रभुजी कहते हैं कि ब्रह्मका सदंश प्रकृति है और ब्रह्मका चिदंश पुरुष है. इस तरह हम द्रव्य और गुण में Relation of identity मानते हैं, न कि singularity. दोनों एक ही है हम यह नहीं कहते पर दो होते हुए भी दोनों एक-दूसरेके आइडेन्टिकल् हैं.

इस सिद्धांतको ही साबित करनेके लिए भागवतमें रासपंचाध्यायीके प्रसंगमें कहनेमें आया कि सोलह गोपियोंके बीच आठ कृष्ण रास कर रहे हैं. मानें प्रत्येक गोपीको एक कृष्ण उपलब्ध है और सभी कृष्ण हैं, इसमें कोई तारतम्य नहीं है. यह प्रसंग इसी बातको समझानेके लिए है कि भगवान्ने जब रास किया तो यह समझानेके लिए किया कि मैं एक होनेपर भी अनेक भावापन्न हुवा हुं. इसीलिए भागवतके तृतीय स्कंधमें, इस बातको अच्छी तरह कहा गया है कि भगवान्के द्वारा रची हुयी यह सृष्टि भगवान्के द्वारा किया गया एक रास है. भगवान् एक होनेपर भी सृष्टिरूपमें अपने आपको कैसे अनेकरूपोंमें विभाजित कर लेते हैं, यह दरसाया गया है. हालांकि बात साफ यहां ही कर दी गयी है पर हमें इस बातकी अवेयरनेस् यहां हो नहीं पाती है. उसी अवेयरनेस्को जगानेके लिए भगवान्ने रासलीला की कि मैं एक होनेपर भी किस प्रकार अनेक हूं. सभीके साथ कृष्ण रास रच रहा है इतना ही नहीं, वही एक कृष्ण विभिन्न रूपोंमें रास रच रहे हैं. भागवतमें इस थीम्को एक कथासे नहीं पर अनेकानेक कथाओंके द्वारा समझाया गया है. कृष्ण जब मिथिला गये तो बहुलाश्वके यहां और श्रुतदेवके यहां, दो कृष्ण बन कर गये. जब भी ऐसा प्रसंग आता है तो भागवत इसका इस लीलाके रूपमें वर्णन करती है कि एक कृष्ण किस प्रकार अनेक हो कर

लीला कर रहे हैं. इस प्रकार एककी अनेकता और अनेककी एकता, इन दोनोंको हम आइडेन्टिकल् मानते हैं.

श्रीशंकराचार्यके हिसाबसे एककी अनेकता भ्रांति है. मानें एक ब्रह्ममें जीवोंकी अनेकता, ज्ञानमें अज्ञानकी अनेकता, देव दानव मानव की अनेकता भ्रमणा है. ब्रह्ममें ऐसा कुछ होता नहीं है. बुद्धके हिसाबसे अनेकमें एकताकी भ्रांति है. किसीके मतमें एकता अनेकताका गुण है और किसीके मतमें अनेकता एकताका गुण है. वाल्लभमतमें एकता और अनेकता एक नहीं हैं पर आइडेन्टिकल् हैं. जब ब्रह्माजीने सारे गोप-गायोंको छुपा दिया और वापस आ कर देखा तो कृष्ण ही वे सारे रूप धारण करके उसी प्रकारकी लीलाएं कर रहे है. व्रज भक्तोंको पता ही नहीं चला कि ये वे गाय अथवा गोप नहीं हैं. सारे रूप कृष्णने धारण कर लिए. इस एक ही थीम्को भागवत अलग-अलग कथाओंसे अलग-अलग रसमें प्रकट कर रही है मानें शान्त वात्सल्य रौद्र भयानक शृंगार वीर आदि आदिसे व्यक्त कर रही है. इससे सिद्ध होता है कि अनेक रस केवल एकमें ही समाहित हो रहे हैं और वे भगवान् हैं.

बस यही बात आजकी भागवत कथाओंमें नहीं समझायी जाती, और सारी बातें समझा दी जाती हैं. कृष्णने गोपियोंके कपड़े उतारे और उनके साथ रास किया. अरे भाई, इस कथाका अर्थ यह नहीं है. इसका अर्थ है कि कृष्ण हरेकको उपलब्ध है और ये सारे कृष्ण एक-दूसरेके समान हैं. उनमें कोई भेद नहीं है. पर क्योंकि इस बातमें लोगोंको रस नहीं आता है इसलिए रोमांटिक् कथा बताते है तो लोगोंको लगता है कि बहुत रुचिकर है. पर वे लोग थीम् भूल जाते हैं. जितने भी लोगोंको कृष्णके द्वारा मारा गया, वे सभी कृष्ण ही थे. मरनेवाला और मारनेवाला दोनों कृष्ण ही हैं. जब महाभारतके युद्धमें यह प्रश्न बर्बरीकसे पूछा गया कि कौन सबसे अच्छा योद्धा था, तो उसने भी यह उत्तर दिया था कि ‘‘मैने

तो पूरे युद्धमें केवल कृष्णको ही कृष्णसे लड़ते देखे.'' वही बात नरसिंह महेता कह रहे हैं कि *''ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे.''* बौद्ध तो ब्रह्मको स्वीकरते ही नहीं हैं और शांकर ब्रह्मको स्वीकारते हैं पर गुणको नहीं स्वीकारते. शांकरके हिसाबसे जितनी भी सगुणता दीख रही है, वह प्रकृतिके कारण दीख रही है जो कि मायासे आच्छादित है. महाप्रभुजीके हिसाबसे प्रकृति और पुरुष दोनों ही ब्रह्मके लिये हुए दो रूप हैं. सच्चिदानन्द ब्रह्मके सदंशमेंसे प्रकृति और चिदंशमेंसे पुरुषकी उत्पत्ति हुयी है. और आनंद इन दोनोंको जोड़नेवाला तत्त्व है. आनन्दके अभिध्यानसे परपुरुष जुड़ता है. जैसे अपने दो हाथ अलग-अलग हैं. पर अपने अहंकारसे यदि मैं सोचूं कि मुझे ये दोनों हाथ जोड़ने हैं, तो यह जुड़ जायेंगे. मेरा अहंकार यदि यह चाहे कि हाथ नहीं जोड़ने हैं तो यह नहीं जुड़ेंगे.

हमारे ही एक गोस्वामी है. वह एक दिन मुझसे बोले कि ''दादा, आप वैष्णवोंके ठाकुरजीको हाथ क्यों जोड़ते हो?'' मैंने कहा ''क्योंकि वे ठाकुरजी हैं इसलिए हाथ तो जोड़ना ही चाहिये.'' वह बोले ''मैं तो अपने ही ठाकुरजीको जोड़ता हुं.'' उनके अहंकारको ठेस लगती थी वैष्णवके ठाकुरजीको कैसे हाथ जोड़े जा सकते है! पर यह बात वह भूल गये कि महाप्रभुजीके समयमें तो ये सारे वैष्णवोंके ठाकुरजी ही थे. इसका साफ अर्थ है कि आप उनको समान नहीं मान रहे हो. ऐसी भ्रमणा गोस्वामियोंमें ही है ऐसी बात नहीं है. वैष्णवें भी इससे ग्रसित हैं. वे समझते हैं कि श्रीनाथजी सबसे बड़े, उनसे छोटे सात स्वरूप, उनसे छोटे महाप्रभुजी गुसांईजी द्वारा पधराये स्वरूप, उनसे छोटे गुसांईजीके बालकोंकी निधि, उनसे छोटे दूसरे पुराने सखड़ी भोग अरोगनेवाले स्वरूप, उनसे छोटे अनसखड़ी भोग अरोगनेवाले, उनसे छोटे नागरी भोग अरोगनेवाले, उनसे छोटे दूधघर अरोगनेवाले, उनसे छोटे मिश्री अरोगनेवाले, उनसे छोटे खेलके ठाकुरजी. इतने सारे भेद वैष्णवोंने खड़े किये हैं. बालकोंने तो दो

ही भेद किये पर वैष्णवोंने इतने सारे भेद खड़े कर दिये. संस्कृतमें एक कहावत है ‘‘तिष्ठन्मूत्रस्य इह गुरो: धावन्मूत्रानुवर्तिन:’’ गुरुजी किसी कारणवश खड़े हो कर पेशाब कर रहे थे तो शिष्योंने दौड़ कर पेशाब करना शुरू कर दिया. गोस्वामियोंने दो भेद किये तो वैष्णवोंने आठ भेद कर दिये. इसमें जो बात खो जा रही है वह है भागवत और महाप्रभुजी का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त. महाप्रभुजी कहते हैं कि ठाकुरजीमें भेद नहीं होता **‘‘अखण्डं कृष्णवत् सर्वं यथा तत्तु निरूपितम्’’** (त.दी.नि.२।१८२) यह सारी लीला कृष्णकी ही अखंड लीला है. बस यह बात ही गले नहीं उतरती क्योंकि यह अपने अहंकारको माफिक नहीं आती. यह सारी समस्या इसलिए है क्योंकि हम महाप्रभुजीको पढ़ते ही नहीं हैं. मुसलमान कुरान पढ़ता है, क्रिश्चन् बाइबल् पढ़ता है, जैन आगमसूत्र पढ़ते हैं. पर हम अपने आचार्यकी वाणीको नहीं पढ़ते. जैसे ही किसीको कोई फितूर आ जाती है तो अपनी मनगढ़ंत बात कह देता है और सब वही मानने लगते हैं. आपको यदि अपने मनसे ही वल्लभ-सिद्धांत गढ़ना हो तो श्रीवल्लभाचार्यको पूछनेकी आवश्यकता नहीं है. पर उन्हें पूछो तो बात एकदम साफ है. भागवत केवल दशमस्कंधकी रासलीलाको ही रासलीला नहीं कहती है. वह तो सारी सृष्टिको ही भगवान्‌की ‘रासलीला’ कह रही है. एक ही भगवान् एक समान अनेकरूप धारण करके रासक्रीड़ा कर रहे हैं. **‘‘रतिरासो यतो भवेत्’’** (भाग.पुरा.३।७।१९) भगवान् रति-रास है.

उद्गतास्तु अंशतो गुणाअपि भवन्ति. अब यहां एक बात समझो कि जब-तक वह द्रव्यमें गर्भित रहता है तो द्रव्य दिखायी देता है पर जब वह बाहर आता है तो गुणके रूपमें दिखायी देता है. जैसे गुलाबकी सुगंध कलीमें नहीं होती. पर यदि कली खिल जाती है तो सुगंध चारों ओर फैल जाती है. बाहर फैलनेपर ही वह गुलाबके गुणके रूपमें हमें उपलब्ध होती है. इससे पहले वह गुलाबके द्रव्यके रूपमें ही दिखायी देता है.

प्रश्न : आपने कहा कि प्रकृति और पुरुष को जोड़नेवाला तत्त्व आनंद है, तो वह फिर महाप्रभुजी उसे तिरोहित कैसे कहते हैं?

उत्तर : बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार पुरोहित वर-वधूका विवाह करानेके बाद दक्षिणा ले कर चला जाता है. उसी प्रकार आनन्द भी अपना काम करके तिरोहित हो जाता है. यह पराभिध्यान है. अपने यहां वेदान्तमें 'पराभिध्यान' मानें परमात्माने यह ध्यान किया कि मैं प्रकृति और पुरुष का विवाह कराऊं, तो उन्होंने विवाह करा दिया और उसी कारण यह सृष्टि पैदा हुयी. सांख्य इसीको दूसरे तरीकेसे कहता है. वह परमात्माको बीचमें नहीं लाता. वह कहता है कि पुरुष क्योंकि प्रकृति को देख कर मोहित हो गया और उसका निरंतर ध्यान करता रहा इसलिए प्रकृतिके पैदा करनेके बावजूद वह यह ही सोचता है कि यह सब मेरेद्वारा पैदा किया गया हैं. इस प्रकार सांख्य और वेद के विवेचनमें इतना भेद है. सांख्यका मत प्रकृति-पुरुष तक ही है जबकि वेदान्तका मत प्रकृति-पुरुष मानें सत्-चित्से ऊपर उठ कर आनंद तक जाता है.

प्रश्न : यदि परमात्मा हमारे अंदर है तो हमारी चाह उसके प्रति क्यों नहीं होती? जबकि अपने बालकको हम बहुत चाहते हैं.

उत्तर : आपका बेटा स्कूल जाता है. उसको स्कूल जाने तक तैयार करनेमें आपको कितनी तकलीफ हुयी होगी? उस तकलीफको बच्चा तकलीफ नहीं मानता है. कोई भी सरकार जब कोई सामान्य जनके लिए व्यवस्था खड़ी करती है तो जनता उसका कोई अहसान नहीं मानती अपितु यह मानती है कि यह तो मेरा अधिकार है. पांच मिनिट् भी ट्रेन् लेट् हो जाये तो ''मारो, मारो तोड़ो''के नारे लगाने लगते हैं. इतनी बड़ी व्यवस्था जो खड़ी की, उसका कोई उपकार नहीं मानता. बच्चेके साथ यदि स्कूल्में कोई मित्रताका व्यवहार करे तो उसका वह बहुत उपकार मानता है. माँ होनेके नाते आप

कुछ भी करें, उसका वह उतना उपकार नहीं मानता. बड़े होनेपर थोड़ा इस बातका ध्यान आये तो आये, पर अभी तो वह नहीं मानेगा. इस तरह जो भी वस्तु हमें बिना कुछ करे अथवा आसानीसे मिल जाये तो हम कभी उसका उपकार नहीं मानते. और यदि हमें कोई वस्तु अपने आप न मिले अथवा थोड़ा परिश्रम करके मिले तो उसका हम उपकार मानते हैं. इस प्रकार अंतर्यामी हमें अपने आप मिला हुआ है इसीलिए हम उसका उपकार नहीं मानते. पर अपना बालक हमें श्रम करके मिलता है, इसीलिए हम उसका उपकार मानते हैं.

अमेरिकामें यदि आपको नौकरी नहीं मिल रही है तो आपके खाली बैठनेपर भी आपकी पढ़ाईके अनुसार सरकार आपको भत्ता देती है. वहांके लोग इस बातका कोई उपकार नहीं मानते हैं. अपने यहां जो भी सरकार अधिक नौकरीकी व्यवस्था कर दे, हम उसीको अच्छा मानेंगे. ऐसा इसलिए है क्योंकि नौकरियाँ अपने यहां उपलब्ध ही नहीं हैं. आजसे बीस साल पहले रशियामें मकान बनानेके स्थानपर वे लोग प्री-फॅब्रिकेटेड् घर बनाने लगे. वे थोड़े ही समयमें ऊंची-ऊंची बिल्डिंग् खड़ी कर देते थे. वहांकी सरकार अपनी जनतासे कहती थी कि “हम आपको पूरी सुविधाओंके साथ नया घर दे रहे हैं. आप लोग पुराना घर छोड़ दो.” वहां इस बातको ले कर दंगा हो गया. लोग अपना पुराना मकान छोड़नेको तैयार ही नहीं थे. ऐसा इसलिए था क्योंकि पुरानेमें चाहे सुख-सुविधा नहीं थी, पर वह मेहनत करके बनाया गया था और जो नया था वह सहज ही मिल रहा था. मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा है कि यदि कोई भी वस्तु आसानीसे मिल रही है तो उसे उसकी चाहत खतम हो जाती है. जो नहीं मिल रहा है उसके लिए उसके मनमें ललक पैदा होती रहती है. भगवान्के साथ भी यही है. वे आसानीसे उपलब्ध है इसीलिए उसकी चाहत नहीं है.

बचपनसे मेरा मन खेलकूदमें अधिक था. जब तेरह सालका हुआ तो मेरे पिताने मुझे फटकार लगायी ‘‘दिन भर खेलता है, कुछ पढ़ता नहीं है.’’ मैंने कहा ‘‘आपने मुझे कब कहा पढ़नेके लिए?’’ उन्होंने कहा ‘‘ठीक है, कलसे मेरे पास आ कर बैठ पढ़नेके लिए.’’ शांकर-भाष्यका पहला पेज् उन्होंने मुझे एक साल तक पढ़ाया. इतने अच्छे ढंगसे पढ़ाया कि मुझे पूरा शांकर-भाष्य समझमें आने लग गया. क्योंकि बचपनसे ही मैं थोड़ा शैतान था इसलिए एक दिन मैंने कह दिया ‘‘दादाजी, अब इसे पढ़ानेकी आवश्यकता नहीं है, मुझे समझ आ गया है.’’ वे बोले ‘‘नहीं, अभी नहीं आया है.’’ मैंने कहा ‘‘आप पूछ लो.’’ उन्होंने दो चार प्रश्न किये जिसका उत्तर मैंने सही दे दिया. दादाजी प्रसन्न हो गये. बोले ‘‘अब तुझे समझमें आ ही गया है तो आजसे मेरी सारी लाइब्रेरी तू ही संभाल.’’ मैंने वे सारी पुस्तकें अपने कमरेमें रखनेके लिए निकाल ली. उन्होंने मुझसे कुछ पुस्तकें वापस मंगवायी और उनमें कुछ स्थानोंपर अंडर्-लाइन् की और बोले ‘‘शायद तू सारी पुस्तक नहीं पढ़ पायेगा पर जो मैंने अंडर्-लाइन् की है, वह अवश्य पढ़ लेना. तुझे सब समझमें आ जायेगा.’’ मैं भी सारी पुस्तकें तो नहीं पढ़ पाया पर उनकी की हुयी अंडर्-लाइन्वाली पढ़ लीं, तो मुझे सचमें काफी कुछ समझ आ गया. पर कई सालों तक मैं कभी इस बातका उपकार नहीं मान पाया. पर आज जब मैं आपको पढ़ाता हुं, तब मुझे याद आता है कि ‘‘ओहो, यह बात तो दादाजीने वहां अंडर्-लाइन् करके मुझे बतायी थी. अब उपकार मानता हुं. जब-तक वे जिंदा थे, एक दिन भी मैंने उनको यह नहीं कहा कि ‘‘आपने मुझे बहुत अच्छी चीज दी है.’’ उसके प्रति कभी भी कृतज्ञताका भाव नहीं जगा. आज वह हो रहा है. इस तरह जो आसानीसे मिल जाये तो उसके प्रति कृतज्ञताका भाव आता ही नहीं है. माँ-बेटा, पति-पत्नी, सरकार और जनता, सभीके बीच संबंध कुछ ऐसा ही है.

मेरा जन्मसमय सुबह साढ़े छह बजेका है. आधा घंटा वहां देरी हुयी और जीते-जीते पंद्रह मिनिट और लेट् होना सीख लिया. इस तरह हर जगह अब पौना घंटा लेट् होना मेरी आदतमें शुमार हो गया है. और मेरे गुरुजी इतने पंक्चुअल् थे कि मेरे पढ़नेके समय वे मेज-कुर्सी लगा कर बैठ जाते. अब चाहे मैं पौना घंटा लेट् ही क्यों न पहुँचु. कभी भी मुझसे शिकायत भी नहीं करते थे कि क्यों लेट् आये. बेचारे बैठे-बैठे मेरी प्रतीक्षा करते रहते थे. क्योंकि वे आसानीसे उपलब्ध थे तो मुझे लगता था कि शायद गुरुजीको आदत ही है समयपर रहनेकी और मेरी आदत है लेट् होनेकी. इसलिए देरी हो गयी तो कोई बात नहीं है. पर आज जब मैं सोचता हुं तो मुझे लगता है कि उनकी शिष्यको पढानेकी ललक कैसी थी! अब मुझे उन सारी बातोंका अनुभव होता है. उस समय मुझे कभी भी नहीं लगता था कि यदि मैं लेट् हुआ तो मैंने कुछ गलत किया. न ही वे मुझे कभी भी यह अनुभव होने देते थे. बहुत दयालु थे. जब बनारसमें पढ़ता था, तो वहां भी लेट् हो जाया करता था. वहांके प्रोफेसर्ने तो मुझे यहां तक कह दिया था कि ‘‘गोस्वामीजी आप सुबह नौ बजेसे शामको चार बजे तक कभी भी एक बार चेहरा दिखा दोगे तो भी मैं आपकी हाजिरी लगा दूंगा. मैं भी ऐसा ही करता था. रोज ही लेट् हो जाया करता तो बेचारे और क्या कहते! अब तो मैं थोड़ा सुधर गया हुं, नहीं तो सुबह नौ बजे निकल कर रातको दो बजे भी कभी घर आता था. उसका उपकार मैंने अपनी पत्नीका नहीं माना. हम किसीकी इतनी बाट देखें तो पता चले कि कैसा लगता है! इस तरह जो आसानीसे उपलब्ध हो जाता है, उसका हम उपकार नहीं मानते हैं.

अव्यक्तं न केनापि प्रकारेण अभिव्यक्तं, कार्यमेव तस्य अभिव्यक्तं, न स्वयम् इति. प्रकृति स्वयं तो अभिव्यक्त नहीं होती है पर उसके

सारे कार्य प्रकट हो जाते हैं, बनारसकी पधरावनीकी तरह. **नित्यं सदा एक रूपम्.** नित्यं = सदा एकरूप रहता है, **सदसदात्मकम्** = कार्य-कारणरूप है. प्रधानं = मुख्य. **प्रकृतिम् इति लक्ष्यम्.** लक्ष्य और लक्षण. जिसको पारिभाषित करना हो उसे 'लक्ष्य' कहा जाता है और जो परिभाषा है वह उसका लक्षण है. इस प्रकार यह प्रकृतिका लक्षण है और लक्ष्य प्रकृति है. **प्राहुः इति प्रमाणम्. प्राहुः** मानें जिसको ऐसा कहते हैं, यह उसने प्रमाण बताया. **ब्रह्मवद् अविशेषम्.** जैसे ब्रह्म अविशेष है. ब्रह्म सारे विशेषोंमें अविशेष है. क्योंकि ब्रह्मका विशेष क्या हो सकता है? जिसने सारे विशेषोंका रूप धारण किया है उसका विशेष क्या होगा? वह है उसका 'पर' होना.

यहीं एक लड़की पढ़ने आती है. वह दो-तीन दिनसे एक ही सवाल मुझे पूछती है कि "ब्रह्म बड़ा कि भगवान्?" मैं उसे कई बार समझा चुका कि "छोटे-बड़ेका प्रश्न तो तब उठे जब वे दो हों. जब हम कह रहे हैं कि ब्रह्म और भगवान् एकके ही दो नाम हैं, तो यह प्रश्न तो उठना ही नहीं चाहिये." फिर पूछती है कि "भजन किसका करना चाहिये, भगवान्का कि ब्रह्मका." तो मैंने उत्तर दिया कि "भगवान्का" तो बोली कि "इससे तो यह सिद्ध हो गया कि भगवान् बड़ा है". मैंने उससे कहा कि "भगवान्का भजन इसलिए करना चाहिये क्योंकि वे ब्रह्म हैं". तो वह बोली कि "फिर तो ब्रह्म बड़ा हो गया क्योंकि ब्रह्म भगवान् बन सकता है और भगवान् ब्रह्म नहीं बन सकता". मैंने कहा "ऐसा भी नहीं है". हमारे बीच इतनी चर्चा चली कि मैं भी सोचने लगा कि इसे कैसे समझाऊं? अंतमें मैंने उसे एक बात कही कि "देखो, गंगामें तुझे नहाना हो तो गंगोत्रीसे गंगासागर तक गंगा है, तुम कहां नहाओगी? कोई घाट तो चुनना पड़ेगा. अब चाहे वह प्रयाग हो, हरिद्वार हो, ऋषिकेश हो. किसी एक जगहको तो चुनना पड़ेगा. पूरी गंगामें गंगोत्रीसे ले कर गंगासागर तक नहाओगी

तो निमोनिया हो जायेगा. अब बताओ, गंगा बड़ी कि घाट. घाटपर नहाते हैं तो घाटका स्नान थोड़े ही कर रहे हैं, स्नान तो गंगामें ही कर रहे हैं. घाटकी सीमा गंगाकी नहीं है, यह अपनी सीमा है. इसी प्रकार विशेषकी जो सीमा है वह उसकी नहीं, अपनी है. और वह अविशेष है. जैसे गंगोत्रीसे गंगासागर तक गंगा अविशेष है, पर ऋषिकेशमें स्नानका माहात्म्य अलग है, बनारसमें अलग है, प्रयागमें अलग है.'' आपको शायद पता नहीं होगा कि सोहरमजीमें स्नानका माहात्म्य उतना नहीं है, जितना अस्थिविसर्जनका है. वहां गंगामें पैर भी रखें तो वह अस्थिपर ही पड़ता है. तो क्या आप वहां स्नान करोगे? इसी प्रकार बनारसमें दो घाट हैं, मनिकर्णिका और हरिश्चन्द्र, जहां अंतिम-संस्कार किया जाता है. मैं एक सॅमीनार्में बनारस गया था तो वहां अंतरालमें मैंने सोचा कि गंगास्नान कर लेना चाहिये. अक्सर मैं जब भी बनारस जाता हुं तो पंचगंगाघाट जो महाप्रभुजीके विवाहकी बैठक है, वहां स्नान करता हुं. पर वह दूर था तो सोचा पासमें मनिकर्णिका घाट है वहां ही कर लेता हुं. जैसे ही डाइव् लगा कर हाथ चलाये, हाथमें एक मरे हुए आदमीकी खोपड़ी आ गयी. मनमें यह निश्चय कर लिया कि अब कभी उस घाटपर स्नान नहीं करूंगा. मेरे लिए वह घाट उत्तम नहीं है पर अंतिम-संस्कारके लिए तो वह ही उत्तम है. यह सीमा मेरी है, गंगाकी नहीं है. मैं समझता हुं कि अब आपको अविशेष समझमें आ गया होगा. घाट सारे विशेष हैं और गंगा अविशेष. सारे प्रांत अविशेष हैं पर इनमें भारत विशेष है.

विशेषाः सर्वे गुणकृताः तस्याएव अतो विशेषवत्. और जितने भी विशेष हैं, वे तो अपने-अपने उन गुणोंके कारण विशेष हैं. हरेककी विशेषता उसमें रहे हुए गुणके कारण ही तो है. जड़में चेतना नहीं है, इस कारण चेतना जड़में विशेष है. चेतनामें जड़ता नहीं है इस कारण वह जड़में विशेष है. पर ब्रह्ममें सारे ही गुण

हैं इसलिए वह अविशेष है. **प्रधानम् इति लक्षणम् एकमेव. प्रधानम् इति मुख्यं भगवता जगत्कारणत्वेन निर्मितं, तद्रूपं वा.** प्रकृतिको प्रधान इसलिए कहा है क्योंकि जगत्के कारणरूपमें भगवान्ने ही रूप धारण किया है. **तस्य जगत्कर्तृत्वनिर्वाहार्थं भगवतइव षड्गुणान् आह त्रिगुणादिषट्पदैः.** क्योंकि भगवान् ही प्रकृति; जो कि सृष्टिका कारण बनती है, इसलिए भगवान्के छह गुण ऐश्वर्य आदि हैं वैसे छह गुण प्रकृतिके बता रहे हैं. **त्रिविधा हि सृष्टिः अन्यथा न भवेद्,** क्योंकि यदि यह छह गुण न हो तो सृष्टिमें अनेकता किस प्रकार आयेगी! जैसे यदि अविशेषतया बीजमें ही वृक्षके पत्तोंके फूलके थड़के, रंग स्वाद स्पर्श रूप गंध आदि विशेष गुण न हो, तो उन सबमें वे गुण आयेंगे कहांसे? इसी प्रकार जगत्में जितनी विशेषतायें हैं, वे ब्रह्ममें तो हैं ही. पर जगत्में ये प्रकट हो रही हैं और ब्रह्ममें वे अप्रकट हैं.

प्रश्न : प्रकृतिको त्रिगुणात्मक कहा है फिर यहां छह गुणोंकी बात कैसे कही है?

उत्तर : यहां त्रिगुणात्मिका प्रकृतिमें दूसरे छह गुणोंकी बात हो रही है. भगवान्में जो ऐश्वर्यादि छह गुण हैं, वैसे ही त्रिगुणात्मिका प्रकृतिमें छह गुण हैं. उन छह गुणोंका यहां विवेचन किया जा रहा है.

यथा भगवतः ऐश्वर्यम्, भगवान्का एक गुण है ऐश्वर्य. मानें भगवान्का सभीपर शासन चलता है. किसीका भगवान्पर नहीं चलता. **अन्यथा समानेऽपि कर्मणि उच्चनीचगतयो न स्युः.** नहीं तो समान कर्म करनेवाले लोगोंकी अलग-अलग ऊंची-नीची गति किस प्रकार होती? जैसे सीमापर आप शत्रुका वध करें तो आपको परमवीरचक्र मिलता है पर शहरमें किसीको मारें तो फांसीकी सजा होती है. कर्म तो समान किया पर एककी ऊंची और दूसरेकी नीची गति क्यों हुयी? **मूलधर्माः एते सच्चिदानन्दाभासाः भगवतः उत्पन्नायां प्रतिष्ठिताः. एवं**

सत्येव मुख्यं भवति. यद्यपि एकैकमेव लक्षणं तथापि भगवत्त्वाय षड् उच्यन्ते. जैसे भगवान्का ऐश्वर्य गुण है वैसे ही प्रकृतिका त्रिगुणात्मक होना उसका ऐश्वर्य है. क्योंकि प्रकृतिकी त्रिगुणताके कारण ही जगत्में सारी अनेकताएं उत्पन्न हुयी हैं. जैसे सात्त्विक-सात्त्विक, सात्त्विक-राजस, सात्त्विक-तामस, इत्यादि. इस प्रकार यह नौ हुए और उनको आपसमें गुणा करें तो अनंत संभावनाएं बन जाती हैं. आजकी तारीखमें सायन्स् भी यही बात कह रहा है कि पूरा जगत् प्रोटोन् न्यूट्रोन् इलेक्ट्रोन् से गढ़ा गया है. सारे पदार्थ इन तीनोंके गिनतीके आधारपर ही विभाजित हुए हैं. इसी प्रकार त्रिगुणकी विविधतासे ही यह सारा जगत् गढ़ा गया है. गुजरातीकी एक पुरानी कहावत है: *“लाल पीळो ने वादळी मुख्य रंग कहेवाय, बाकीना बीजा बधां मेळवणी थी थाय”* तीन रंगोसे सारे रंग बन जा रहे हैं. इस प्रकार प्रकृतिका त्रिगुणात्मक गुण भगवान्के ऐश्वर्यके समान ही है. इसीके कारण इसका शासन सभी ओर है. यह एक गुण ही इसका माहात्म्य दिखानेके लिए पर्याप्त था पर अंतत: इसकी समानता भगवान्से दरसानी है क्योंकि भगवान्ने ही प्रकृतिका रूप लिया है. ध्यान रहे कि यह बात सांख्यकी नहीं है. सांख्य तो प्रकृति-पुरुष तक जा कर बात समाप्त कर देता है. पर वेदांत इसको आगे ले जाता है. यदि वेदांत आगे न ले जाये तो वेदांत, वेदांत रह ही नहीं जायेगा.

वेदान्तमें ऐसा कहा जाता है कि **“भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्”** (श्वेता.श्वे.१।१२) जगत्में कोई भोक्ता है और कोई भोग्य है. पुरुष भोक्ता है और प्रकृति भोग्य है. [१]भोक्ताको [२]भोग्यका भोग करनेके लिए भी ब्रह्मका एक रूप [३]प्रेरिताका है. इस बातको पूरी तरह जानोगे तब ही ब्रह्मका ज्ञान आपको हो सकता है. केवल प्रकृतिको अथवा पुरुषको ही ब्रह्म मानोगे तो आपका ज्ञान अधूरा है. यदि ब्रह्मको केवल प्रेरिता ही मानोगे तो आपको ब्रह्मका एक तिहाई ही ज्ञान है. आपको ब्रह्मका

पूरा ज्ञान तब ही कहा जायेगा जब आप इस बातको मानोगे कि यह तीनों ही रूप ब्रह्मके लिए हुए हैं. सांख्य तो दो बातपर जा कर ही रुक जाता है. पर वेदांत यहां न रुक कर एक और कदम आगे आता है जैसे वामन अवतारने तीसरा कदम लिया था, वह ही सबसे बड़ा कदम था. पृथ्वी और आकाश, यह तो दो पैरमें ही नाप दिये थे. इसके बाद वामनजीने बलिसे पूछा कि ''बता तीसरा पैर कहां रखूं?'' बलिने कहा ''तीसरा मेरे माथेपर रखिये.'' वैसे देखा जाये तो पहले दो पैर बहुत विशाल थे पर दूसरी दृष्टिसे यह तीसरा पैर ही सबसे बड़ा था. इसी प्रकार वेदांतका जो तीसरा कदम है; दो कदममें तो सारी सृष्टि आ गयी प्रकृति-पुरुषके रूपमें. पर तीसरा कदम जो उसने लिया है प्रेरिता होनेका वह एक विचारसे विशालतम कदम है. अगर इसको यदि सही शब्दोंमें कहना है तो यह एक प्रकारका दैवी कदम है. यह कदम सारी बातोंका खुलासा कर देता है. पहले दो कदममें तो जो उपलब्ध है, उसके बारेमें कहा है. पर इस तीसरे कदममें वह कहा है जो अनुपलब्ध था. यह बहुत ही विचित्र कदम है क्योंकि सभी संशयमें थे कि यदि दो कदममें पृथ्वी और आकाश सारा ही नाप दिया तो तीसरा कदम रखनेकी जगह कहां है? वामनजी भी कह रहे हैं कि ''तूने तीन पैरका प्रण किया है, बता कहां रखूं?'' उसका उत्तर देनेके लिए बलि जैसा साहस होना चाहिये कि ''वहां रखें जहां पृथ्वी और आकाश दोनों नहीं हैं और वह है मेरा माथा!'' तब वामनजीने कहा कि ''ठीक है पर अब तू जहां रहेगा पातालमें वहां मैं तेरा द्वारपाल बन कर रहूंगा.'' इसी तरह जब आप वेदांतके अनुसार तीसरा कदम लेंगे तो ही ब्रह्म आपका द्वारपाल बननेको तैयार होगा. पर आप दो कदमपर ही रुक गये तो ब्रह्म आपके हाथ नहीं आयेगा. यह सबसे बड़ा और दैवी कदम वेदांतने लिया है. ''**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्**'' (श्वेता.उप.१।१२)

वहां उपनिषद् खुलासा करता है कि ''**क्षरं प्रधानं अमृताक्षरं**

हर:'' (श्वेता.उप.१।१०) क्षर प्रधान है. 'क्षर' मानें पॅरिशेबल् (ध्वंसशील) है, वह प्रधान है और अक्षर मानें जो इम्पॅरिशेबल् (अध्वंसशील) है वह पुरुष है और ब्रह्म दोनोंका वाहक है. क्षर और अक्षर जिसमें रहे हुए हैं, जिसके कारण वे आपसमें क्रियाशील होते हैं, उसका नाम 'ब्रह्म' है. यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम वेदांतने लिया है, वामनजीकी तरह. इसीलिए कह रहे हैं कि **भगवत्त्वाय षड् उच्यन्ते.** भगवान्‌से समानता गुणोंकी इसलिए दिखानी आवश्यक है क्योंकि उसकी प्रधानता दिखानी है.

अव्यक्तम् इति द्वितीयम्. तस्य हि एवं सामर्थ्यं न केनापि अभिव्यक्तं भवति. प्रकृति अव्यक्त है यह उसका वीर्य गुण है. 'वीर्य' मानें सामर्थ्यशाली होना. अर्थात् कोई इसे व्यक्त कर नहीं सकता. जमीनमें गढ्ढा खोदो तो पानी व्यक्त हो जाता है. खदानोंमें सोना अथवा लोहा होता है, खोदो तो व्यक्त हो जाता है. पर प्रकृतिको व्यक्त करना किसीकी सामर्थ्य नहीं है. प्रकृति जिसको व्यक्त करना चाहती है, वह व्यक्त हो जाता है और जिसको नहीं करना चाहती वह नहीं हो पाता. यह उसका वीर्य गुण है. उसकी सामर्थ्य किसीके वशमें आती नहीं है. चरकका एक श्लोक है **''अल्पं हि प्रत्यक्षम् अनल्पम् अप्रत्यक्षम् अस्ति यै: इन्द्रियै तावत् प्रत्यक्षं गृह्यते तान्येव खलु अप्रत्यक्षाणि''** (चरक) इस दुनियामें प्रत्यक्ष बहुत अल्प है और अप्रत्यक्ष बहुत अधिक. इसका उदाहरण देते हैं कि जो इन्द्रियोंसे अनुभव किया जा रहा है, वह इन्द्रिय स्वयं अव्यक्त है. आंखसे आपको दिख रहा है पर क्या आंख आपको दीख रही है? आप समझ रहे हैं कि इस डोलेका नाम आंख है पर वह तो मुर्देको भी है, तो क्या उसे दिखायी देता है? यही बात सभी इन्द्रियोंपर लागू होती है. इससे सिद्ध होता है कि ये सभी इन्द्रियाँ अव्यक्त हैं. आप किस बातका अहंकार कर रहे हो कि व्यक्तको ही मैं मानूंगा अव्यक्तको नहीं. यह उस प्रकृतिका वीर्य गुण है कि कुछ

वह व्यक्त कर रही है और बहुत कुछ अव्यक्त रख रही है.

अन्यथा कालादिना अभिव्यक्तौ अनित्यतायां पुनः सृष्टिः न स्यात्. काल और प्रकृति का विरोधी स्वभाव है. प्रकृति जिसको व्यक्त करती है, काल उसे वापस अव्यक्त बना देता है. काल जिसको अव्यक्त बना देता है, उसे प्रकृति फिर व्यक्त कर सकती है. इसलिए कालसे अधिक सामर्थ्य प्रकृतिमें है. **सदा एकरूपम् इति कीर्तिः तस्य.** प्रकृतिके लक्षणमें जो नित्य कहा वह इस अर्थमें कि प्रकृति सदा एकरूप है. 'नित्य' मानें सदा और 'सदा' मानें एकरूप. यह 'दा' प्रत्यय संस्कृतमें कालवाची है. 'यदा' मानें जब, 'तदा' मानें तब, 'कदा' मानें कब और 'सदा' मानें हमेशा. इस प्रकार 'सदा'का अर्थ हुआ जो हमेशा एकरूप रहे. प्रकृतिकी यह कीर्ति भगवान्‌का यश गुण है.

यद् जीवप्रकृतिव्युदासार्थम् इति केचिद् आहुः तदुत्तराध्यायेन विरुद्ध्यते; नित्यत्वाद् उभयोः इति. कुछ लोग कहते हैं कि 'सदा' जीवकी प्रकृतिके लिए कहा है. पर महाप्रभुजी इस बातसे सहमत नहीं हैं क्योंकि उत्तराध्यायमें जीवको भी 'सदा' माना गया है. जीव 'सदा' है और प्रकृति भी 'सदा' है. **सदसदात्मकम् इति श्रीः तस्य एषा शोभा यत् सर्वात्मकम् इति.** और भगवान्‌में जैसे श्री है ऐसे ही प्रकृतिकी श्री क्या है? वह प्रकृति सत् भी है और असत् भी है. 'श्री' मानें शोभा. हर वस्तुकी शोभा इसी बातमें रही हुयी है कि यदि कोई वस्तु निरंतर अप्रकट रहे तो उसकी कोई शोभा नहीं है और सदा प्रकट ही रहे तो भी उसकी शोभा मर जाती है. किसी प्रकारसे प्रकट हो और किसी प्रकारसे अप्रकट हो, तो वस्तुकी शोभा बनी रहती है. पुराने जमानेमें स्त्रियां घूंघट करती थी. वह उनके मुखकी शोभाको बढ़ाता था. पर घूंघट जब बंधन हो गया तो उन्होंने उसे छोड़ दिया. जब कोई चीज ढकी हो और फिर वह खुले तो उसकी शोभा बढ़ती है. खुला ही रहे तो उसकी शोभा खतम हो

जाती है. इस प्रकार जो शोभा है उसमें कुछ ढका होना चाहिये और कुछ खुला होना चाहिये.

मुझे एक शेर याद आ गया है. *“मशहूर शुदि दिलरुबाई हमाज़ा, बेमिस्लसुदी आशनाई हमाज़ा. मारा ई तोर तुरा बीनम, खुदरा न नुमाई व नुमाई हमाज़ा.”* शायर भगवान्‌को कह रहा है कि तेरी दिलरुबाई मशहूर है और तुझे चाह सकें ऐसी तेरी सामर्थ्य बेमिसाल है, फिर भी मैंने तेरी एक अदा ऐसी देखी है कि तू कभी अपने आपको प्रकट करता है और फिर छुपा लेता है. यह प्रकृतिके गुणको सूफी भी कुबूल कर रहा है. एक दूसरा शेर भी है, जो इसी बातको प्रकट करता है. *“निकलना तुम न चिलमनसे, कसम है तुमको चिलमनकी, लड़ायी आड़से देखा करो शेखो-बिरहमनकी.”* शायर भगवान्‌से कह रहा है कि भगवान् तू कभी ‘चिलमन’ मानें परदे, बाहर मत प्रकट हो जाना. क्योंकि जब-तक तू परदेशमें बैठा है तब-तक यह मुल्ला और ब्राह्मण आपसमें लड़ रहे हैं कि भगवान् ऐसा है अल्ला ऐसा है. तू बाहर आ जाय तो यह झगड़ा खतम हो जायेगा और तू झगड़ा करा सकता है, यही तेरी शोभा है. शायरने बहुत ही मीठी बात कही है. इस तरह प्रकृतिका जो सौंदर्य है वह यही है कि कुछ प्रकट है और कुछ अप्रकट. **तस्य एषा शोभा यत् सर्वात्मकम् इति.**

अविशेषम् इति ज्ञानहेतुः अन्यथा संसारिणो मुक्ताः न स्युः तस्य सर्वकारणत्वात्. प्रकृति सारी विशेषताओंको प्रकट करनेपर भी अविशेष है, इस कारण यह ज्ञानका हेतु बन रही है. क्योंकि सारे विशेषोंमें तो हमें अज्ञान ही होता है. आप कुछ भी विशेषपर ध्यान देंगे तो अज्ञान होगा ही. जैसे आप महाराष्ट्रकी ओर ध्यान देंगे, उसीकी बात करेंगे, उसीकी संस्कृतिकी ओर देखेंगे तो भारतको भूल जायेंगे. उसके दूसरे प्रदेशोंकी ओर आपका ध्यान ही नहीं जायेगा. इस प्रकारका

ज्ञान जहां भी विशेष प्रकट होता है, वहां अज्ञान भी प्रकट हो जाता है और जहां अविशेष प्रकट होता है वहां ज्ञान बराबर रहता है. जैसे आप अविशेष भारतकी बात करेंगे तो सभी प्रदेशोंकी संस्कृति आ जायेगी. पर एक विशेषको पकड़ेंगे तो अज्ञान हो जायेगा. विशेषमें अपनी आंख अटक ही जाती है. इस कारण अविशेष हमेशा ज्ञानका हेतु होता है. विशेष हमेशा मोहका हेतु होता है. इस प्रकार भगवान्‌की तरह प्रकृतिमें भी ज्ञान जैसा गुण है. **अन्यथा संसारिणो मुक्ताः न स्युः तस्य सर्वकारणत्वात्**. इस प्रकार यदि संसारीको मुक्त होना है तो अविशेष प्रकृतिका ज्ञान हो, तभी वह संसारसे मुक्त हो सकता है. नहीं तो प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने विशेष गुणको ले कर ही बैठ जायेगा कि हमारे हिसाबसे तो ऐसा ही है.

इस प्रकार ध्यानसे समझो कि ब्रह्म अविशेष है और राम कृष्ण देवी महादेव, ये सब विशेष हैं. आपको एक बहुत रुचिपूर्ण कहानी सुनाता हुं. जब बाबरने ग्वालियरपर हमला किया; वहांका किला पहाड़पर है और वह किला गढ़ कर नहीं बनाया गया है अपितु खोद कर बनाया गया है. पूरे पहाड़को खोद-खोद कर किला बनाया है. उसमें ईंट-चूनेका उपयोग हुआ ही नहीं है. इस कारण उसपर तोप भी दागो तो उसे कुछ होता नहीं क्योंकि वह तो पूरा पहाड़ ही है. बाबरने कहा कि इसे ऐसे तो किसी प्रकारसे जीता नहीं जा सकता क्योंकि यदि ऊपर चढ़ें तो ऊपरसे तीर मारेंगे, इसलिए वह उसके चारों ओर घेरा डाल कर बैठ गया. किलेके अंदर कितने दिन तक लोग रह सकते थे, क्योंकि अंततः तो खाने-पीनेके सामानके लिए उन्हें बाहर आना ही था. पर जब अंदर वहांके राजाके पास खाद्यसामग्री कम होने लगी तो उन्होंने निश्चय किया कि अब हमें लड़ना चाहिये. बादमें वहां झगड़ा यह खड़ा हुआ कि लड़ाईसे पहले किस देवकी पूजा करनी? वहां वैष्णव भी थे और शैव भी थे. दोनों अपने-अपने देवकी पूजा करके लड़ाई करनेपर

अडिग थे. वहां इतना झगड़ा हुआ कि आपसमें ही लोग एक-दूसरेको मारने लगे. नीचे बाबरको लगा कि शायद उसपर हमला करनेकी तैयारीमें यह शोर है, तो उसने अपने आदमियोंको सचेत होनेके लिए कहा. तब वहांके जासूसने खबर दी कि वे तो आपसमें ही लड़ रहे हैं. उसने कहा कि यह तो सबसे अच्छा मौका है आक्रमण करनेका और उसने ग्वालियरका किला जीत लिया. यदि उन लोगोंको पता होता कि ब्रह्म ही शिव और विष्णु के दो रूप धारण किये हैं तो लड़ाई होती ही नहीं और बाबर जीत नहीं पाता. इस प्रकार विशेष किसी-न-किसी मोहका हेतु होता है और अविशेष ज्ञानका हेतु होता है. यदि प्रकृति अविशेष न हो तो संसारीकी मुक्तिका कोई प्रकार ही नहीं रह जायेगा. प्रकृति आपकी मुक्तिके लिए अपने अविशेष गुणके कारण ही अपने आपको एक सीढ़ीकी तरह उपयोगमें आने देती है. इस तरह प्रकृति आपको बांध कर रखती है, आपके मोहका कारण भी है पर उसका एक पक्ष ऐसा भी है जो आपको मोहसे छुड़ाता भी है. **तस्य सर्वकारणत्वात्**. महाप्रभुजीने अतएव पुरुषोत्तमसहस्रनाम स्तोत्रमें ‘शिव’ नाम भी पुरुषोत्तमका माना है. और हम पाठ भी करते हैं. सौ-सवासौ वर्ष पहले कतिपय वैष्णव ‘शिव’ नामके उच्चारणमें अन्याश्रय मानते थे!

विशेषवद् इति सर्वे विशेषाः तदीयाः, न तस्य किञ्चिद् आश्चर्यकरम् इति वैराग्यहेतुः. आगे कहते हैं कि **अविशेषं विशेषवद्,** मानें अविशेष होते हुए भी वह विशेषवत् है. यह यदि आपको समझमें आ जाये तो आपको वैराग्य होगा. इस प्रकारका वैराग्य सकारात्मक वैराग्य होगा, नकारात्मक नहीं. इन दोनोंका अंतर समझो. आपको किसी वस्तुके दोषके कारण वैराग्य आ रहा है तो वह नकारात्मक वैराग्य है. और दूसरा प्रकार है कि किसी वस्तुकी कोई इतनी उत्तमता बताये कि आपका दूसरे विषयोंमें राग ही खतम हो जाये, तो यह ‘सकारात्मक वैराग्य’ कहा जायेगा. अपने यहां जो कहा गया

है कि अन्याश्रय नहीं करना चाहिये, वह इस अर्थमें नहीं कि दूसरे देव ब्रह्म नहीं हैं. पर इस कारण कि आपने जिस देवको इष्ट माना है, उसमें सारे गुण हैं, तो आपको दूसरे देवोंमें रागकी आवश्यकता क्या है? इसी लिये कर्मके प्रारंभकी सूचनामें "इष्टदेवतास्मरणपूर्वकं प्राणायामाचमनम्" कहा आता है. इस अर्थमें अपने यहां अन्याश्रयकी मनाई है. पर जिस ब्रह्मके रूपको उसके विशेष गुणके कारण आपने भजनीयके रूपमें चुना है, फिर चाहे वे महादेव हो, गणपति हो, कृष्ण हो अथवा देवी हो, उसमें सारे विशेषोंको देखनेकी आपमें यदि सिफत हो तो आपको अन्याश्रयकी क्या आवश्यकता है? सारे रूप ब्रह्मके ही लिए हुए हैं. यह तो आपपर है कि आपको किस रूपके प्रति आकर्षण हो रहा है.

आप गंगाजीका ही उदाहरण ले लीजिये. आप गंगाके जिस भी घाटपर स्नान कर रहे हो और उस विशेष घाटमें आप गंगाजीके सारे गुण न मानो तो आपके मनमें सदा यह बात रहेगी कि काशीमें तो नहाया पर हरिद्वारमें नहीं नहा सका. अरे, आप काशीमें नहाये कि गंगामें नहाये? आप पूरी गंगामें तो स्नान कर ही नहीं सकते. आप जहां भी नहा रहे हो वहां आपको गंगा ही मिल रही है, यह भाव तो आपको रखना ही होगा. इस तरह जब आपमें उस विशेषके प्रति अविशेषका भाव आयेगा तो यह एक प्रकारका सकारात्मक वैराग्य होगा. आप जिसको चाह रहे हो उसमें आपको इतना अनुराग होगा कि बाकी सबमें वैराग्य हो जायेगा. यदि आपने दूसरेके दोषोंको देख कर अपना वैराग्य सिद्ध किया तो वह नकारात्मक वैराग्य है. जब-तक आपको इससे बेहतर विकल्प मिला नहीं है. जब मिल जायेगा तो आप इसे भी छोड़ सकते हैं. आपको मिला नहीं है इसलिए आपने वैराग्य लिया है. ऐसा अनुराग भी गलत है और ऐसा वैराग्य भी गलत है. संसार नहीं अच्छा लगता इस कारण भगवान्‌को भजना और भगवान् इतना अच्छा लगता है इसलिए संसार

छोड़ना, इन दोनों बातोंमें बहुत अंतर है. दोषदृष्टिसे लिया गया वैराग्य और उससे होनेवाले अनुरागमें कुछ-न-कुछ नकारात्मकता होती है. इस प्रकार भगवान्‌के जैसे छह गुण प्रकृतिमें भी हैं. यहां महाप्रभुजीने त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें भगवद्गुण देखनेकी दृष्टि कैसे जाग्रत करनी, यह बात समझायी है क्योंकि अंततः तो प्रकृति भी भगवान्‌का लिया हुआ एक रूप ही है. इस दृष्टिसे आप यदि प्रकृतिको देखेंगे तो चाहे प्रकृति जड़ है, पर वह भी भगवान्‌के सभी गुणोंको रिस्पोन्स् देती है. मूलमें प्रकृतिके गुणोंका समीकरण महाप्रभुजीने ऐसे दरसाया है; **त्रिगुणात्मकता = ऐश्वर्य, अव्यक्तता = वीर्य, एकरूपता = यश, सदसदात्मकता=शोभा, अविशेषता = ज्ञान, विशेषवत्ता = आश्चर्यकर वैराग्य.**

मैं आपको इतना विश्वाससे कह सकता हुं कि महाप्रभुजीके अलावा किसीने भी प्रकृतिके गुणोंका इतना अच्छा वर्णन नहीं किया है. सभी प्रकृतिको धिक्कारते हैं कि यह मोहित करनेवाली है, यह पुरुषको संसारमें बांधनेवाली है. अरे, आपमें यदि देखनेकी दृष्टि हो तो प्रकृतिमें भी भगवान्‌के गुण आप देख सकते हो क्योंकि यह भी भगवान्‌का लिया गया एक रूप ही है. पुरुष मोहित होता है, यह बात सच है पर यही तो उसकी लीला है. मोहको आप लीलाके रूपमें देखो और मोहको पापकी तरह देखो, इन दोनों बातोंमें अंतर तो है ही. लीलारूपमें देखोगे तो आपकी मुक्तिका कारण भी यही प्रकृति ही होगी. प्रकृतिकी बात तो जाने दो पर दुनियाकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है कि जो सर्वथा फिजूल हो. हो सकता है कि वह आपके उपयोगमें नहीं आ पा रही हो पर किसी न किसीके काम तो वह अवश्य आ ही रही होगी. हम सभी यह समझते हैं कि मच्छर सारी बीमारियाँ पैदा करता है. पर वह उन्हींको बीमारी देता है जो ए.सी.में रहते हैं. झोंपड़ीमें रहनेवालोंको नहीं करता क्योंकि वही मच्छर पहले वॅक्सीनेशन्‌का काम करता है. पहले उन लोगोंको काट कर उनकी प्रतिरोधक क्षमताको बढ़ाता है. देखो,

मच्छर कितनी फ्री सर्विस् दे रहा है! इस तरह हम जिस वस्तुको खराब अथवा बेकार समझ रहे हैं, उसकी कुछ तो उपयोगिता है ही. आप जो कचरा फेंक रहे हो उसे भी बेचा जाता है और लोग उससे लाभ भी कमाते हैं. पर अपनी कुछ आदत ही वस्तुओंको धिक्कारनेकी हो गयी है. हमें जो अच्छा नहीं लगता उसे हम धिक्कारते हैं पर अपनी दृष्टि थोड़ी समग्रताकी रखें तो हर वस्तुमें हम कुछ-न-कुछ अच्छाई ढूंढ सकते हैं॥१०॥

प्रश्न : बहुतसे लोग कहते हैं कि राधा एक गढ़ा हुआ पात्र है. कृष्णलीलामें ऐसा कोई हुआ ही नहीं?

उत्तर : लोग तो यह भी कहते हैं कि कृष्ण भी एक गढ़ा हुआ पात्र है. ओशो रजनीश भी यही कहते थे कि पुराणोंमें यदि कोई बहुआयामी (multidimensional) चरित्र है तो वह है कृष्ण. कृष्णके जैसा एक भी चरित्र नहीं है. जब किसीने पूछा कि आपके अनुसार कृष्ण किस कालमें हुए थे. वे बोले ‘‘कृष्णके जैसा आदर्शका होना असंभव है. वह कभी हुए ही नहीं हैं.’’ बहुतसे कृष्णवादी राधाको नकारते हैं और बहुतसे राधावादी कृष्णको नकारते हैं. पर महर्षि अरविंद इस बारेमें बहुत ही सुंदर बात कहते हैं. So many scholars think that krishna is a myth. But then for this reason alone, you should bow down to those poets who have imagined such a magnificint character. बस इसी प्रकार एक बार राधाको स्वीकारो तो ही तुम्हें कृष्ण और राधा का स्वरूप समझ आयेगा. महाप्रभुजी एक बहुत सुंदर बात कहते हैं कि जिस भी व्यक्तिको कृष्ण अच्छा लग रहा है, उनमें राधाजी बिराज रहे हैं. यदि राधाजी हृदयमें नहीं बिराज रहे हैं तो कृष्णमें प्रीति हो ही नहीं सकती. क्योंकि कृष्ण यदि किसीको अच्छा लगता है तो वह राधाको ही और राधा ही है जो कृष्णको सराह सकती है. तुम्हें यदि कृष्ण अच्छा लगता है तो तुम निश्चित राधा हो. और नहीं अच्छा लगता तो

आपके लिए राधा काल्पनिक पात्र है. अपने सीनेपर हाथ रख कर देखो कि आपको कृष्ण अच्छा लगता है कि नहीं? लगता है तो आपकी भीतर छिपी हुयी एक राधा है और नहीं लगता तो राधा नहीं है. वे तो यहां-तक कहते हैं कि यदि जानवरको भी कृष्ण अच्छा लग रहा है तो उसमें भी राधा है. हां, अच्छा नहीं लग रहा तो दोनों ही काल्पनिक पात्र हैं. अरे, बुद्ध तो आपको भी काल्पनिक मानते हैं. तो क्या आप हकीकतमें हैं ही नहीं ?

प्रश्न : कपिलजीने योग भक्ति और सांख्य को जिस प्रकारसे समझाया है, उसको महाप्रभुजीने अपना दृष्टिकोण दिया है. पर क्या कोई दूसरा दृष्टिकोण नहीं हो सकता ?

उत्तर : ऐसा है कि संविधानमें जो लिखा है, वही तो हमें कोर्ट समझाता है. आप कहो कि संविधानका अर्थ कोर्ट सही नहीं कर रहा है, तो फिर आपको समझाना चाहिये कि सही अर्थ क्या है. या तो आप अर्थ करो, पर आप यदि नहीं कर पा रहे हो तो आपको कोर्टका अर्थ ही स्वीकारना होगा. आप दोनों बात तो एक साथ नहीं कर सकते.

ब्रह्म सृष्टिको चलानेके लिए तीन प्रकारकी शक्ति उपयोगमें लाता है. एक अविद्याशक्ति, दूसरी विद्याशक्ति और तीसरी पुष्टिशक्ति. अविद्याशक्तिसे ब्रह्म प्रवाही सृष्टिका नियमन करता है, विद्याशक्तिसे मर्यादा सृष्टिका नियमन करता है और पुष्टिशक्तिसे पुष्टि सृष्टिका नियमन करता है. जो 'अविद्या' मानें इग्नोरेंस्के कारण हो रहा है वह आपकी कमी नहीं है पर ब्रह्मकी शक्ति है. जैसे जादूगरकी यह सामर्थ्य है कि वह आपको मूर्ख बना सकता है. इसी प्रकार ज्ञान भी उसीकी शक्ति है आपकी नहीं. हम सोचते हैं कि यह हमारी शक्ति है, पर ऐसा है नहीं. इसी प्रकार पुष्टि भी उसीकी शक्ति है. चाहे

आप ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, पर वह अपने आपको आपके सामने प्रकट करना चाह रहा है तो आप अपनी सामर्थ्यसे उसको नहीं देख सकते पर वह चाहे तो आपको ऐसी दृष्टि प्रदान कर सकता है कि आप उसे देख सकें.

मैं कोणार्क गया. वहां एक संग्रहालय है. पहली बार मैंने देखा कि जगदीशजीका एक स्वरूप वहां विष्णु शिव और देवी का था. आजकी तारीखमें जगदीशजी, बलराम सुभद्रा और कृष्ण हैं. पर हजार डेढ़ हजार साल पहले उनका स्वरूप विष्णु शिव और देवी का था. मैंने वहांके क्यूरेटर्से पूछा कि "क्या आप बता सकते हैं कि जगदीशजीकी पूजा कब विष्णु शिव और देवी की तरह होती थी?" वे बोले कि "ऐसा कभी था ही नहीं." मैंने उन्हें कहा कि "आपके ही संग्रहालयमें एक मूर्ति ऐसा कह रही है." उन्होंने कहा "यह तो आजसे पहले मैंने भी नहीं देखा!" जगदीशजीका इतना खतरनाक इतिहास है कि जब जैन धर्म आया तो वे त्रिशलाखा पुरुषकी तरह पूजे जाते थे. बुद्ध धर्म आया तो बोधिसत्त्वके रूपमें पूजे जाते थे. इसके बीचके कालमें विष्णु शिव और देवी के रूपमें पूजे जाते थे. जब वैष्णव राजा आये तो वे बलराम कृष्ण और सुभद्रा की तरह पूजे जाने लगे. जगदीश केवल एक ऐसे देवता हैं कि जो भक्तके हिसाबसे अपने धर्म बदलते रहते हैं. बाकी देवके हिसाबसे अपना धर्म बदलनेवाले दुनियामें बहुत लोग हैं. पर जगदीशके बारेमें यह बात बिल्कुल उल्टी है.

जिनमें पुष्टिशक्ति काम करती है वे लोग यह कहते हैं कि मुझे भगवान्का रूप नहीं चाहिये, स्वरूप चाहिये और लोग तो रूपमें खो जाते हैं. इस प्रकार ब्रह्म सृष्टिके हिसाबसे अपनी शक्ति उपयोगमें लाता है. अब आपके प्रश्न पर आयें. जब भगवान् पुष्टिसे किसीमें अज्ञान उत्पन्न कर रहा है तो वह भक्तिके लिए करता

है. जब अविद्यासे अज्ञान उत्पन्न कर रहा है तो वह संसार बढ़ानेके लिए कर रहा है और विद्यासे जब अज्ञान उत्पन्न कर रहा है तो मुक्तिके लिए कर रहा है. महाप्रभुजी यह समझाना चाह रहे हैं. इसलिए ज्ञान अथवा अज्ञान आपके गुण अथवा दोष नहीं हैं. भगवान् जो शक्ति आपपर उपयोगमें ला रहे हैं, उनकी सामर्थ्य है. और आप उसी प्रकारसे अपने सारे क्रिया-कलाप उनकी इन्हीं शक्तियोंके प्रभाववश करते हो. इसका उदाहरण हमें भागवतमें भगवान्के मृत्तिका खानेके प्रसंगमें मिलता है. जब यशोदाजीने भगवान्को मुंह खोल कर दिखानेके लिए कहा और वहां उन्हें पूरा ब्रह्माण्ड दिखायी दिया तो यशोदाजीकी भक्ति खंडित हो गई और ऐसा लगा कि यह तो मेरा बालक नहीं लगता. तब भागवतमें साफ आता है कि भगवान्ने अपनी योगमायाशक्ति उपयोगमें ला कर सारी बात उन्हें भुला दी. यशोदाजीने गर्गाचार्यजीको बुला कर कहा कि ‘‘मेरे बालकपर कोई गंभीर बाधा आयी है जिसे आप दूर करें.’’ यह जो अज्ञान है, वह पुष्टिशक्तिके कारण अज्ञान है, अविद्याशक्तिके कारण नहीं. भगवान् जब अपनी क्रीड़ा आपके साथ करना चाहते हैं तब उतना हि अज्ञान आपमें प्रकट करते हैं जितना भक्तिके लिये आवश्यक है. यह अज्ञान संसारका जनक अज्ञान नहीं है अपितु भक्तिका पोषक अज्ञान है. यदि आपमें ऐसा ज्ञान हो कि भगवान्को तो भूख ही नहीं लगती तो उन्हें भोग धरनेकी क्या आवश्यकता है, भगवान् तो सोते ही नहीं हैं. क्योंकि वे सो जायें तो सारा जगत् ही सो जायेगा, इसलिए उन्हें सुलानेकी और जगानेकी क्या आवश्यकता है. ऐसा ज्ञान आपका भक्तिविरोधी ज्ञान है. गलत नहीं है, सच्चा है. पर ऐसा ज्ञान भक्तिमें काम आनेवाला नहीं है. भक्तिमें थोड़े अज्ञानकी आवश्यकता है. ऐसा अज्ञान भगवान् अविद्याशक्तिसे पैदा नहीं करते हैं. भागवत कहती है कि योगमायासे करते हैं. भगवान् गीतामें भी कहते हैं ‘‘**सम्भवामि आत्ममायया**’’ (भग.गीता ४।६) मैं योगमायासे पैदा होता हुं. जीवको भगवान्के साथ जोड़नेवाला

जो अज्ञान है वह योगमायाजनित होता है.

दूसरी है व्यामोहिका माया. जो जीवको भगवान्से विमुख करती है. वह अज्ञान पैदा करके भगवान्से दूर करती है, पर योगमाया अज्ञान-ज्ञान पैदा करती है भक्तिके लिये. पर इससे ऐसा मत समझ लेना कि भक्तिके लिए अज्ञान ही चाहिये. चिन्मयानन्द मिशन्के पार्थसारथी कहते है कि "बुद्धिमानोंके लिए ज्ञानमार्ग होता है और मूर्खोंके लिए भक्तिमार्ग." ऐसा नहीं है. पर मूर्ख भी भक्त हो सकता है. भक्त ज्ञानी भी हो सकता है. अपने दृष्टिकोणमें इतना अंतर है. वे लोग कहते हैं कि ज्ञानमार्ग बुद्धिमानोंके लिए है, भक्तिमार्ग मूर्खोंके लिए है और कर्ममार्ग कर्मठ लोगोंके लिए है. ऐसा नहीं है. भगवान् गीतामें कह रहे हैं कि "**नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत् कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर् गुणैः**" (भग.गीता ३।५) भगवान् किसीको अकर्मण्य होने नहीं देते हैं. अंतर केवल इतना है कि आप कर्मकी प्रणाली बदल देते हो. जैसे मैंने आपको पहले भी बताया था कि घाटकोपरमें एक प्रश्नोत्तरीके दौरान जैन मुनिजीकी एक शिष्या आ गयी. वह कहने लगी कि आपके पुष्टिमार्गकी तरह क्या खाना पीना और बच्चे पैदा करना ही मुक्तिका मार्ग है? तो आपमें और संसारमें अंतर ही क्या है? मैंने कहा अंतर इतना है कि आपके एक मुनिको यदि भोजन करना है तो उसे सात गृहस्थके घरसे भिक्षा मांगनी पड़ती है. हम अपनी व्यवस्था स्वयं करते हैं. उन सात घरोंको तो बच्चे पैदा करने ही पड़ेंगे. हम अपने ही घरमें रहते हैं. अंतर इतना ही है. यदि सात गृहस्थके घरोंमें बच्चे पैदा नहीं होंगे, यदि अनाज नहीं होगा तो मुनिजीको बिन चाहे अठ्ठाईकी तपश्चर्या करनी पड़ेगी. फिर जैनधर्मकी श्रेष्ठताका प्रचार-प्रसार कौन करेगा?

(अक्षरब्रह्मसे महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्ति)

अक्षरब्रह्मके पांच पहलु, काल कर्म स्वभाव प्रकृति और पुरुष.

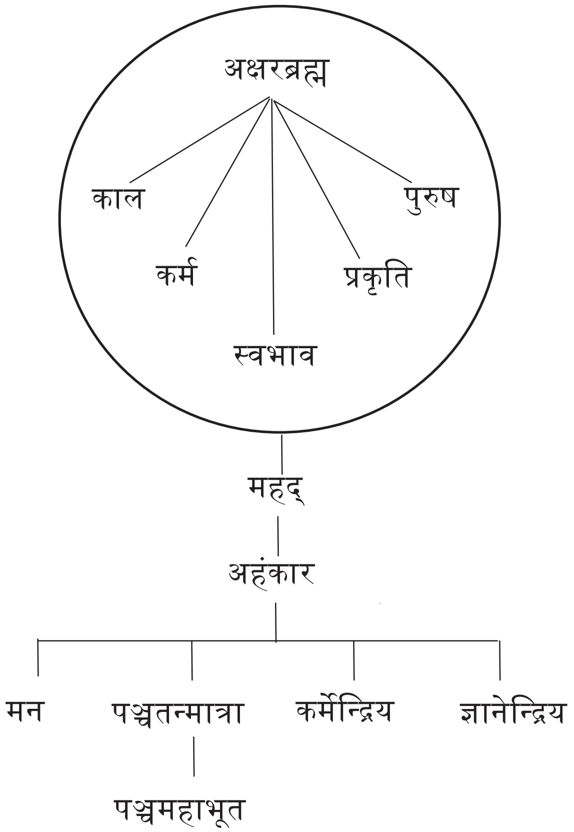
अक्षरब्रह्म
काल
पुरुष
कर्म
प्रकृति
स्वभाव
महद्
अहंकार
मन
पञ्चतन्मात्रा
कर्मेन्द्रिय
ज्ञानेन्द्रिय
पञ्चमहाभूत

काल कर्म स्वभाव और पुरुष जगत्के निमित्त कारण होते हैं और प्रकृति जगत्का उपादान कारण (material cause) बनती है. प्रकृतिमेंसे सबसे पहले महत्‌तत्त्व उत्पन्न होता है. उसके बाद अहंकार उत्पन्न होता है. इस अहंकारमेंसे सोलह वस्तु उत्पन्न होती हैं, पञ्च-तन्मात्रा, पञ्च-कर्मेन्द्रिय, पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय और मन. पञ्च-तन्मात्रासे पञ्च-महाभूत उत्पन्न होते हैं. जैसे आत्माकी समष्टि ‘पुरुष’ कहलाती है, उसी प्रकार बुद्धिकी समष्टि ‘महत्‌तत्त्व’ कहलाती है, ‘चित्त’ भी कहलाती है. चित्त थोड़ा गहरायी लिए होता है और उसीके ऊपरी

रूपको ‘बुद्धि’ कहा जाता है. फाउन्डेशन् चित्त है और छत बुद्धि है.

प्रश्न : अक्षरब्रह्ममेंसे जो स्वभाव पैदा हुआ उसका अर्थ क्या है?

उत्तर : यह स्वभाव मनुष्यके स्वभावसे भिन्न है. इसका अर्थ है कि जो वस्तु जिस प्रकारसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकारसे स्थित रहती है. जैसे आपमें बचपनसे अब-तक कितने अधिक बदलाव आये हैं पर फिर भी आपकी पहचान तो एक बनी हुयी है, उसका नाम ‘स्वभाव’ है. दूधमेंसे दही बनता है, वह उसका रूपांतर है, वह दूधके स्वभावसे भिन्न है. पर जब-तक वह दही न बने तब-तक उसका स्वभाव स्थिर रहता है.

प्रश्न : फिर अक्षरब्रह्ममें यही स्वभाव किस प्रकार समझना चाहिये?

उत्तर : आप इसको इस प्रकार समझ सकते हैं कि कोई भी वस्तु उत्पन्न क्रियासे होती है, स्थितिमें रहती है स्वभावके कारण, कालके कारण खतम होती है. इसलिए बह्मा विष्णु और शिव का जो रोल् है, वही कर्म स्वभाव और काल का रोल् है. ब्रह्मा वस्तुओंको पैदा करते हैं, कर्म भी किसी वस्तुको पैदा करता है तो बिना कर्मके कोई वस्तु पैदा होगी नहीं. इस प्रकार कर्म यदि प्रिन्सिपल् है तो ब्रह्मा कर्मकी आधिदैविक (personified) अभिव्यक्ति है. इसी प्रकार स्वभाव यदि प्रिन्सिपल् है तो विष्णु उसकी आधिदैविक अभिव्यक्ति है क्योंकि वह वस्तुकी स्थिति बने रहनेमें सहायक है. ठीक इसी तरह काल जिस प्रकार वस्तुको खतम करता है, उसी प्रकार रुद्र भी वस्तुको खतम करते हैं.

कोई भी दवाईपर उसके बनाये जानेकी तारीख लिखी होती है. वह कर्मकी अर्थात् वस्तुके पैदा होनेकी तारीख है. जब-तक उस दवाईकी एक्सपायरी-डेट् नहीं आती तब-तक दवाई अपने स्वभावमें

रहती है. एक्सपायरी-डेट्के बाद दवाई अपना स्वभाव बदल देती है, उसमें रोग मिटानेकी क्षमता समाप्त हो जाती है. अब यह बात रुद्रके क्षेत्रमें आ गयी. इसमें एक बात और समझनेकी है कि यह तीनों एक-दूसरेके असमन्वयसे काम नहीं करते हैं, पूरे तौरपर एक-दूसरेके साथ समन्वयसे काम करते हैं. इसलिए कर्मसे जब भी कोई वस्तु उत्पन्न होती है तो किसी कालमें उत्पन्न होती है और कोई स्वभाव ले कर उत्पन्न होती है. स्वभावसे जो कोई वस्तु अपनी स्थितिमें रहती है, वह किसी काल तक ही स्थित रहती है और कोई-न-कोई कर्म करती रहती है और एक कालके बाद समाप्त हो जाती है. इस प्रकार जिस कालमें वह वस्तु खतम होती है वह किसी स्वभावके कारण ही खतम होती है और किसी कर्मसे ही खतम होती है, ऐसे ही खतम नहीं हो जाती. सामान्यरूपसे तो यह तीनों एक-दूसरेके समन्वयसे काम कर रही हैं पर मुख्यता जिसकी होती है, उसीपर प्रकाश डाला जाता है.

उदाहरणके लिए अपने फेफड़े ऑक्सीजन्के द्वारा अपने रक्तको शुद्ध करनेका काम करते हैं. वे उस रक्तको हृदयमें भेज देते हैं. उनमें रक्तको पंप् करनेकी कोई व्यवस्था नहीं है. यह काम हृदय करता है. इस प्रकार प्रेशर्से वह रक्त पूरे शरीरमें जाता है. यदि यही रक्त फेफड़ोंमें न जाये तो फेफड़े काम करना बंद कर देंगे. यदि फेफड़े रक्तकी शुद्धि न करें तो हृदय भी खतम हो जायेगा. यह सारा सिस्टम् एक-दूसरेके समन्वयसे काम कर रहा है. एक भी अंग यदि अपना कर्म न करे तो बाकी अंग भी प्रभावित होते हैं और अंतत: खतम हो जाते हैं.

प्रश्न : आपने कहा कि प्रकृति और पुरुष में ब्रह्म पुरुष बना है.

उत्तर : नहीं ऐसा नहीं है. ब्रह्म तो यह सभी कुछ बना है.

अक्षरब्रह्म ही काल कर्म स्वभाव प्रकृति और पुरुष सभी कुछ बना है. इनमेंकी कोई भी वस्तु अब्रह्म तो है नहीं. पर सांख्यकी सीमा प्रकृति और पुरुष पर खतम हो जाती है. वेदान्त उसमें काल कर्म स्वभाव को जोड़ कर अक्षरब्रह्म तक लाता है, अंतर केवल इतना है. मैंने आपको पहले भी बताया था कि सांख्यकी दृष्टि एकमें अनेक देखनेकी है और वेदान्तकी दृष्टि अनेकमें एक देखनेकी है. जैसे हर जीवकी एक चेतना है पर उनकी समष्टि पुरुष है. इसी प्रकार जड़ वस्तुएं कितनी सारी हैं पर उन सबको मिला कर एक देखना है तो उसे 'प्रकृति' कहा जायेगा. सॅकन्ड्‌ मिनिट्‌ घंटे दिन सप्ताह महीना वर्ष, इस प्रकार कालके कितने सारे रूप हैं! पर इन सबको यदि एक कहना हो तो उसे 'काल' कहा जायेगा. दुनियामें कर्म या फन्कशन्‌ कितने प्रकारके हैं पर उन सभीकी समष्टि 'कर्म' कही जाती है.

(प्राकृत/प्राधानिक तत्त्वोंका निरूपण)

श्लोक :

पञ्चभिः पञ्चभिर् ब्रह्म चतुर्भिः दशभिः तथा।।
एतत् चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः।।११।।

अनुवाद : **ऐसे प्रधानके लक्षणोंके बाद अब उस प्रधानसे प्रकट होनेवाले प्राधानिकका निरूपण करते हैं : पांच पांच चार और दस, ऐसे चौबीस तत्त्वोंके रूपमें प्रकट ब्रह्मात्मक गणोंको 'प्राधानिक' माना गया है।।११।।**

सुबोधिनी : **प्रधानं लक्षयित्वा प्राधानिकं निर्दिशति पञ्चभिः इति. प्राधानिकं गणं चतुर्विंशतिकं प्राहुः. चतुर्विंशतिभेदभिन्नम्. चतुर्विंशतीनां समुदायः प्राधानिको गणः. विदुः इति प्रमाणम्. चतुर्विंशतिसङ्ख्यासिद्धिः यैः, तानि आह गणशः पञ्चभिः पञ्चभिः ब्रह्म इति परिज्ञानार्थम्.**

एतत् चतुर्विंशतिभेदभिन्नं जगद् ब्रह्मैव. चतुर्भिः दशभिः इति. चतुर्णां प्रवर्तकत्वात् प्रथमं निर्देशः. साङ्ख्यशास्त्रत्वात् सङ्ख्ययैव पूर्तिः ॥११॥

अनुवाद : वेदान्तशास्त्रानुकूल प्रधानका लक्षण कह कर अब उस प्रधानके परिणामभूत कार्योंका निर्देश करते हैं, पांच इत्यादि. प्राधानिक गण चौबीस कहे जाते हैं, अर्थात् उनके चौबीस प्रभेद होते हैं. प्राधानिक गण चौबीस तत्त्वोंका समुदाय है. "माने जाते हैं" ऐसा कह कर इस बारेमें प्रमाण देते हैं. इस चौबीस संख्याकी गणना सिद्ध करनेके लिए, उन तत्त्वोंके गण दिखाते हैं. पांच पांच, ब्रह्मात्मक यह तत्त्वपरिज्ञानके लिए कहा गया है. यह चौबीस तत्त्व ब्रह्मके द्वारा लिए हुए चौबीस रूप हैं. चार और दस इसमें, चार तत्त्व सृष्टि प्रवर्तक होनेके कारण पहले इनकी गणना की जा चुकी है. तत्त्वोंकी संख्या न गिनायी जाये तो शास्त्र सांख्यशास्त्र ही न रह जाये॥११॥

विवेचन : पांच पांच दस और चार मिलके चौबीस गण प्रधानके अंग कहे जाते हैं. **प्रधानं लक्षयित्वा प्राधानिकं निर्दिशति पञ्चभिः इति. प्राधानिकं गणं चतुर्विंशतिकं प्राहुः.** इस प्रकार प्रधान अर्थात् प्रकृतिके चौबीस गण हैं. **चतुर्विंशतिभेदभिन्नम्. चतुर्विंशतीनां समुदायः प्राधानिको गणः.** चौबीस तत्त्वोंके समुदायको 'प्राधानिक' कहा जाता है. **विदुः इति प्रमाणम्. चतुर्विंशतिसङ्ख्यासिद्धिः यैः, तानि आह गणशः पञ्चभिः पञ्चभिर् ब्रह्म इति परिज्ञानार्थम्.** यह सब ब्रह्म ही है उसका परिज्ञानके लिये बता रहे हैं. **एतत् चतुर्विंशतिभेदभिन्नं जगद् ब्रह्मैव. चतुर्भिः दशभिः इति.** इनकी गणना पांच पांच दस और चार के रूपमें की गयी है, इसलिए ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये कि प्राधानिक ब्रह्मरूप नहीं है. ये हैं तो सभी ब्राह्मिक ही. जैसे मुंबईको हम महाराष्ट्र कहें तो यह भारत नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता. इसी प्रकार चौबीस गणोंको प्राधानिक कहनेसे यह ब्रह्म नहीं है, यह अर्थ नहीं किया जा सकता. दूसरेके मतमें प्रकृति

जड़ है, ब्राह्मिक नहीं. पर ब्रह्म तो सच्चिदानन्द है. अपने यहां सच्चिदानन्द ब्रह्मके सत्‌मेंसे जड़ सृष्टि=प्रकृतिकी रचना हुयी है. **चतुर्णां प्रवर्तकत्वात् प्रथमं निर्देशः. साङ्ख्यशास्त्रत्वात् सङ्ख्ययैव पूर्तिः.** सांख्यका अर्थ है गणना और आप गणना तभी कर सकते हैं जब दो वस्तुमें भेद करें. गणनाका आधार भेदपर निर्धारित होता है. पर भेद तो हम अपने हिसाबसे ही करते हैं. उदाहरणके लिए यह सोनी-मोनी एक इमारत है. पर यदि इसके प्रभेद करने हों तो हम इस प्रकार कर सकते हैं कि इस इमारतमें एक ग्राउंड्-फ्लोर् है, एक छत है और बीचमें चौदह मंज़िल हैं. यह हमने इसी इमारतका भेद कर दिया. जब भी हमें गणना करनी होती है तो हमें वस्तुओंमें भेद तो करना ही पड़ता है. और भेद प्रत्येक व्यक्ति उसको कैसे समझता है उसपे निर्भर होता है.

अक्षरब्रह्ममें गणना करनेके लिए हम उसमें काल कर्म स्वभाव प्रकृति और पुरुष का भेद देखते हैं. प्रकृतिकी गणना करनेके लिए हम उसमें दो भेद करते हैं, प्रधान और प्राधानिक. प्राधानिकका भेद करनेके लिए हम उसमें चौबीस तत्त्व देखते हैं. **पञ्चभिः पञ्चभिः दशभिः चतुर्भिः.** इस प्रकार किसी भी वस्तुकी गणना उसमें आते प्रभेदोंपर निर्भर करती है और प्रभेद निर्भर करता है व्यक्तिके दृष्टिकोणपर. इसमें वस्तु अलग नहीं हो जाती. वस्तु वही-की-वही रहती है पर आप किस दृष्टिसे उसे देख रहे हैं, इसपर निर्भर करती है॥११॥

श्लोक :

महाभूतानि पञ्चैव भूर् आपो अग्निर् मरुद् नभः ॥
तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे॥१२॥

अनुवाद : **संख्याकी गणनाके बाद उन प्राधानिक तत्त्वोंका नाम दरसाते हैं कि महाभूत तो पांच ही हैं. १. भूमि २. जल ३. अग्नि**

४. वायु और ५. नभ. गन्धादि तन्मात्रा भी उतनी ही मानी गयी हैं॥१२॥

सुबोधिनी : **तानि नामतो निर्दशति महाभूतानि इति. प्रथमं पञ्चसङ्ख्यापूरकाणि महाभूतानि. एवकारेण दिगादीनाम् आकाशादिषु अन्तर्भावः सूचितः. तानि गणयति भूः इत्यादि. अग्निः तेजः, अग्निरेव वा. सौरादीनि तेजांसि अग्नौ अन्तर्भवन्ति इति एके. भगवत्तेजः इति अपरे. मरुद् वायुः. नभः आकाशम्. तन्मात्राणि शब्दादीनि. तावन्ति पञ्चैव. स्वराः सर्वे शब्दमध्ये. गन्धादीनि गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाः. मे मतानि इति अस्मत्सिद्धान्ते गन्धादीनां तन्मात्रत्वम्, अन्येषां मते गन्धादयो गुणाः भूतेभ्यः उत्पद्यन्ते भूतसमवेताः इति॥१२॥**

अनुवाद : महाभूतोंकी नामतः गणनामें सबसे पहले पांच संख्यावाले तत्त्वोंकी गणना करते हैं. 'ही' द्वारा दिशा आदिका तत्त्वके रूपमें अस्वीकार बताया है. आकाश आदिमें उनका अन्तर्भाव सूचित किया. उन पांच तत्त्वोंकी गणना भूमि आदिसे दी. अग्नि तेज अथवा अग्नि ही. अतः सौरादि तेजका भी अग्निमें ही अन्तर्भाव समझना चाहिये. मरुद् = वायु. नभ = आकाश. तन्मात्रा शब्द आदि इस प्रकार पांच ही हैं. सभी प्रकारके स्वरोंका शब्दमें अन्तर्भाव जानना चाहिये. गन्ध आदि अर्थात् गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द. मेरा मत यह है अर्थात् मेरे सिद्धान्तमें गन्ध आदि तन्मात्राएं हैं, दूसरोंके मतमें वे पांच तन्मात्राएं पंचमहाभूतोंसे उत्पन्न हुए ऐसे गुण हैं, जो पंचमहाभूतोंके भीतर रहते हैं॥१२॥

विवेचन : **एवकारेण दिगादीनाम् आकाशादिषु अन्तर्भावः सूचितः.** न्याय-मतके अनुसार नौ द्रव्य हैं. पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिशा आत्मा और मन. अब इन दो प्रकारकी गणनाओंमें भेद आ गया. फिर किसकी गणना ठीक मानें? यहां तो नहीं कहा है पर भागवतके एकादश स्कंधमें उद्धव और कृष्ण के बीचमें जो गीता कही गयी है, उसमें उद्धवजीने यह प्रश्न उठाया है कि ''कोई

कहता है कि द्रव्य नौ हैं, कोई कहता है कि पांच हैं, कोई कहता है कि एक ही है! इन सबमें कौनसी गिनती सच्ची और कौनसी खोटी? आप जो प्रकृति और पुरुष दो बता रहे हो, उनमें यदि पुरुषको देखें तो उसमें प्रकृतिके कई तत्त्व दिखलायी देते हैं और प्रकृतिमें देखें तो उसमें पुरुषके कई अंग दिखलायी देते हैं! तो उनमें भेद कैसे होता है?'' उसके खुलासेमें भगवान्‌ने एक बात कही है कि ''क्योंकि मैं एक अनेक रूपमें प्रकट हुआ हुं, इस कारण मुझे जिस दृष्टिसे जो देखता है वह उसी प्रकारसे मुझमें भेद करता है. और उसी प्रकार वह तत्त्वोंकी गिनती करता है. इसलिए सारे भेद सच्चे हैं. कोई भी गणना गलत नहीं है.''

हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि हथेलीके रूपमें यह एक है और उँगलीके रूपमें यह पांच हैं. हम दूसरी दृष्टिसे देखें तो यह भी कह सकते हैं कि उँगली तो चार ही हैं, एक अंगूठा है. इसमें सच्चा क्या और खोटा क्या? इस बातपर यदि कोई झगड़े तो उस झगड़ेका अंत किस प्रकार आयेगा? यह तो आपके देखनेके दृष्टिकोणपर निर्भर है कि आप उसे किस ॲन्गल्‌से देख रहे हैं. कहनेको तो चार उँगलियोंमें भी भेद किया जा सकता है, मध्यमा तर्जनी कनिष्ठा और अनामिका. यह अलग प्रकारसे भेद हो गया. सारा भेद देखनेके ॲन्गल्‌पर निर्भर है. एक ही वस्तुको अलग ॲन्गल्‌से देखेंगे तो वह अलग दिखायी देगी. इसीलिए मैं हमेशा एक बात समझाता हुं कि हैदराबादमें सालारजंग म्यूज़ियम्‌में एक मूर्ति है. उस मूर्तिको आगेसे देखेंगे तो वह एक योद्धा है और पीछेसे देखेंगे तो एक औरत है जो आपका सत्कार कर रही है. है एक ही मूर्ति पर अलग-अलग मुद्राएं हैं. देखनेवालेके ऊपर है कि वह कहांसे देख रहा है. इसी सिद्धांतके आधारपर अपने यहां अर्धनारीश्वरकी मूर्ति बनायी गयी है. आधा शरीर शिवका है और आधा पार्वतीका. आप शिवके भक्त हो तो आपको लगेगा कि शिव ही देवी बने

हैं और यदि आप देवीके भक्त हो तो आप कहेंगे कि देवीने शिवरूप धारण कर रखा है. आप किस प्रकारसे देख रहे हैं, उसपर निर्भर करता है. पृथ्वीपर खड़े हो तो आपको चंद्रमा ऊपर दिखायी देता है पर चंद्रमापर खड़े हो तो पृथ्वी ऊपर दिखायी देती है.

इसीलिए भगवान्ने वहां खुलासा किया है कि सारे तत्त्व सभीमें अनुप्रविष्ट हैं, चौपाटीकी भेलकी तरह. उसमें चटनी है, मुरमुरे हैं, मिर्च है, सेव है, और बहुत कुछ है. पर आप जिस वस्तुको पसंद करते हैं उसका स्वाद आपको पहले आयेगा. **पञ्चसङ्ख्यापूरणि महाभूतानि. एवकारेण दिगादीनाम् आकाशादिषु अन्तर्भावः सूचितः.** इस प्रकार नैयायिक जिसको ‘दिशा’ कहते हैं, उसको सांख्यमतमें आकाशमें शामिल कर लेना चाहिये. स्पेस्को वर्तमानमें थ्रि-डायमॅन्शनल् माना जाता है जबकि हमारे दशदिशाओंके डेसीडायमॅन्शनल्.

तानि गणयति भूः इत्यादि. अग्निः तेजः, अग्निरेव वा. सौरादीनि तेजांसि अग्नौ अन्तर्भवन्ति इति एके. यहां लौकिक अग्निकी बात नहीं है अपितु इसका तात्पर्य उष्णतासे है. जो भी गरम वस्तु है उसे ही यहां ‘अग्नि’ कह कर संबोधित किया जा रहा है. उदाहरणके लिए आयुर्वेदकी दृष्टिसे देखें तो अपने शरीरमें तीन तत्त्व हैं, वात पित्त और कफ अर्थात् वायु अग्नि और जल. इस प्रकार अपने शरीरमें अग्नि जल और वायु हैं पर शरीरमें यह ‘वात’ ‘पित्त’ और ‘कफ’ कहलाते हैं. **भगवत्तेजः इति अपरे. मरुद् वायुः. नभः आकाशम्. तन्मात्राणि शब्दादीनि. तावन्ति पञ्चैव स्वराः सर्वे शब्दमध्ये गन्धादीनि गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाः.** ‘मरुद्’ मानें वायु, ‘नभ’ मानें आकाश. और शब्द आदिको किस प्रकार समझना? तो कहते हैं **स्वराः सर्वे शब्दमध्ये** जितने भी स्वर हैं उनका शब्दमें अन्तर्भाव कर लो. अब इसमें समझनेकी एक बात यह है कि **शब्द**का अर्थ है ध्वनि. ध्वनि कानसे गृहीत होनेवाला गुण है. पर इसमें चर्चाका

विषय यह है कि यदि अपने कान न हों तो भी क्या हमें ध्वनिकी अनुभूति होती है? हल्की आवाज़ हो तो शायद नहीं होगी पर तेज आवाज़का तो अनुभव हमें छातीपर भी होता है. ऐसा कहा जाता है कि तेज धमाकेसे गर्भपात तक हो जाता है. इस प्रकार शब्दका अनुभव केवल कानसे ही नहीं अपितु स्पर्शसे भी होता है. पर **स्पर्श** तो त्वचाका गुण है और ध्वनि आकाशका और वायुका, दोनोंका गुण भी ले लेती है क्योंकि आप जो बोल रहे हो वह वायुके माध्यमसे ही तो दूसरेके कान तक पहुंचती है. आपके और दूसरेके बीच आकाश भी है, उसीमें वायु स्थित है. इस प्रकार शब्द अथवा ध्वनि श्रवणका विषय है पर स्पर्शका भी विषय है. जलके जीवोंको देखनेसे नहीं बल्कि सुननेसे वस्तुकी दूरीका आभास होता है.

तेज चक्षुर्ग्राह्य है. पर हम देख सकते हैं कि जहां भी धमाका होता है वहां एक तेजपुंज भी निकलता है जो आंखसे दिखलायी देता है, जैसे बिजली. इस प्रकार जब शब्द (ध्वनि) रूपमें परिवर्तित होता है तो प्रकाशका रूप ले लेता है. अब वही शब्द चक्षुर्ग्राह्य हो जाता है. इसके बाद आता है **जल** मानें तरल पदार्थ. यह रसनाग्राह्य है. रस जीभसे ग्रहण होता है. इसी प्रकार **गंध** नाकसे ग्रहण होती है. इस तरह इन तन्मात्राओंका विकास है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध का. गंध पृथ्वीका गुण है, रस जलका, रूप तेजका, स्पर्श वायुका और शब्द आकाशका गुण है.

मे मतानि इति अस्मत्सिद्धान्ते गन्धादीनां तन्मात्रत्वम्, अन्येषां मते गन्धादयो गुणाः भूतेभ्यः उत्पद्यन्ते भूतसमवेताः इति. कपिल मुनिके सांख्यकी तरह ही कणादमुनिने वैशेषिक-मत प्रारंभ किया था. उनके मतके अनुसार यह तन्मात्राएं गुण हैं. हमें लगेगा कि गुण और तन्मात्रा कहनेमें केवल नामका ही तो भेद किया है, पर ऐसा नहीं

है. यह भेद थोड़ा गंभीर है क्योंकि गुण द्रव्यमें प्रकट होता है. पर भूत तन्मात्रासे पैदा होता है. यह बात बिल्कुल उल्टी हो गयी. जब सारी तन्मात्राएं घनीभूत हो जाती हैं तो भूत उत्पन्न होता है. इसी प्रकार भूत जब बिखर जाता है तो तन्मात्रा बन जाती है. तन्मात्राका यदि सन्धि-विच्छेद करें तो बनता है ‘तत्+मात्रा’ मानें ‘केवल वह’. इस प्रकार जब भूतका लय होता है तो केवल ‘वह’ ही बचता है. कणाद् कहते हैं कि ‘‘पृथ्वीमें गंध रूपी गुण उत्पन्न होता है.’’ हम ऐसा मानते हैं कि जो ‘वह केवल’, (तन्मात्रा) पृथ्वी बन जाता है. स्पर्श तन्मात्रा वायु बनता है.

यह बात यहां थोड़ी सावधानीसे समझनी है कि नैयायिकोंका जो realism (यथार्थवाद) है वह objective realism (वस्तुगत यथार्थवाद) है. वस्तु यथार्थमें देखनेवालेके बाहर मौजूद है. जैसे यह पुस्तक है, यह आपसे बाहर मौजूद है और आपको इसका अनुभव हो रहा है. यह है ऑब्जॅक्टिव् रियालिज़म् (विषयवस्तुगत यथार्थवाद), जो कि कणाद्का मत है.

कपिलका मत subjective realism (विषयिगत यथार्थवाद) है. वे कहते हैं कि पुस्तक तो यह है ही पर आपकी दृष्टिसे होनेवाली अनुभूतिका ही यह घनीभूत रूप है. उदाहरणके लिए जब आप किसी गुणका अनुभव करते हो तो वह ‘तन्मात्रा’ कहलाती है. पर जब उन गुणोंको घनीभूत करके आप उसका अनुभव करते हो तो वह भूत बन जाता है. उदाहरणके लिए जब कुछ प्रमाणसे हीट् बढ़ती है तो आग बन जाती है. अब प्रश्न यह है कि गरम वस्तुमें उष्णता उत्पन्न होती है कि उष्णताकी अधिकतासे वस्तु गरम होती है. नैयायिकोंके मतानुसार गरम (होट्) वस्तुमें उष्णता (हीट्) उत्पन्न होती है और सांख्यका मत है कि गरमीके (हीट्) बढ़नेके कारण वस्तु गरम (होट्) हो जाती है. उदाहरणके लिए हमारे शरीरमें

गरमी है पर हम गरम नहीं हैं. पर बुखार आनेसे यदि गरमी बढ़ जाये तो हमें अपनेमें गरम होनेका अनुभव होता है.

इसी प्रकार नैयायिकमतके अनुसार रूपसे तेज पैदा होता है. पर कपिलके हिसाबसे तेज इकठ्ठा होनेपर वह रूप ग्रहण करता है. उदाहरणके लिए यह दीवार आपको पिस्ता रंगकी दिखायी दे रही है. साईंस्के हिसाबसे प्रकाश मूलमें सफेद है पर उसमें रही हुअी प्रकाशकी अलग-अलग वेव्-लॅन्थ्के कारण वह अलग-अलग रंगोंमें भासित होती है. कोई सतह किसी प्रकाशकी किरणको सोख लेती है और किसी किरणको परावर्तित कर देती है. इस तरह जिस रंगकी किरण वहांसे परावर्तित हो जाती है उस रंगकी अनुभूति हमें आंखके द्वारा होती है. जैसे यह वस्तु लाल है, तो इसका अर्थ है कि यह सतह लाल रंगके अलावा बाकी सभी रंगोकी किरणको सोख ले रही है. लाल रंग परावर्तित होनेके कारण हमें वही दिखलायी दे रहा है. न्याय-वैशेषिक यह मानते हैं कि ‘‘यह वस्तु लाल है, इसमें लाल होनेका गुण है, इस कारण हमें लाल दिखलायी दे रही है.’’ इसी कारण इसको ‘objective realism’ कहा जाता है. सांख्यमें यह ‘subjective realism’ कहा गया है.

क्योंकि सतहसे परावर्तित किरणको ग्रहण करनेके लिए हमारी आंखमें रोड्स् और कॉन्स् होते हैं. यदि उस रंग विशेषके प्रकाशको ग्रहण करनेके लिये आपकी आंखमें वह रोड्स् और कॉन्स् नहीं हैं तो आपको वह रंग नहीं दिखेगा. इसी कारण कई लोग कलर्-ब्लाइन्ड् होते हैं. कुछ अंशमें मैं भी कलर्-ब्लाइन्ड् हुं. एकदम गहरा पारदर्शी लाल और गहरा पारदर्शी हरा, इनमें मैं भेद नहीं कर सकता. मेरी आंखमें उसे पहचाननेके लिए रोड्स् और कॉन्स् नहीं हैं. अपारदर्शी रंग हो तो मुझे समझ आ जाता है. आज-कल मच्छर भगानेके लिए अल्ट्रा-वायलेट्-रेज़्की मशीन् आती है. आप कभी उसे बाकी

लाइट् बंद करके देखना, सारी दीवारें चाहे वह किसी भी रंगकी हों, आपको सफेद ही दिखायी देंगी. क्योंकि उस लाइट्में सतह बाकी सारे रंगोंको परावर्तित कर देती है. उसमें लाल सतह भी सफेद ही दिखायी देती है. हमें कोई भी सतह काली इसलिए दिखायी देती है क्योंकि वह सारे प्रकाशको सोख लेती है. सफेद इसलिए दिखलायी देती है क्योंकि सतह सारे प्रकाशको परावर्तित कर देती है. इस तरह हमें किसी भी सतहपर रंग तभी दिखायी देगा जब वह उस रंगके प्रकाशकी किरणोंको परावर्तित करे और हमारी आंखमें उसे पहचाननेके लिए रोड्स् और कॉन्स् हों.

हालाँकि मैं इस बातसे सहमत नहीं हुं, पर वैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि मनुष्यकी आंखमें जितने रंगोंको पहचाननेके लिए रोड्स और कॉन्स् हैं, उतने और किसी जानवरमें नहीं हैं. मुझे लगता है कि अभी इसमें और खोजकी आवश्यकता है.

अब मूल विषयपर आते हैं. आँखसे तीन वस्तुओंकी पहचान होती है, रंग आकार और माप. ये आँखसे दीखनेवाली वस्तुएं हैं. यह वास्तविकता अपने अंदर है कि बाहर है? सांख्यके हिसाबसे यह subjective reality है. पर वैशेषिकोंके हिसाबसे यह objective reality है क्योंकि वे मानते हैं कि द्रव्यमें गुण पैदा होता है और सांख्य मानता है कि अपने भीतरके गुण घनीभूत हो कर द्रव्यका निर्माण करते हैं. इसलिए तन्मात्रा मानें 'केवल वह' जब इकठ्ठा होता है तो द्रव्य बनता है. जैसे छाछ अथवा दूध में वसा बिखरी हुयी होती है. जब उसको मथा जाता है तो वह वसा माखनके रूपमें इकठ्ठी हो जाती है. अब बताओ कि माखन पैदा होता है कि छाछमें फैला हुआ था वह मथनेसे इकठ्ठा हो कर बाहर आ गया? इसी प्रकार सांख्य कहता है कि गुण पहलेसे ही थे, मथनेसे बाहर आ गये. हम भी यही कहते हैं कि गुण घनीभूत होनेसे द्रव्य

बन जाता है. पर हम उसे गुण-द्रव्य न कह कर 'तन्मात्रा' और 'भूत' कहते हैं. क्योंकि हम subjective realityमें मानते हैं. सुननेकी प्रक्रिया भी ऐसी ही है. कुछ लोग एक निश्चित प्रकारकी ध्वनिको ही सुन पाते हैं. ऐसा नहीं है कि वह ध्वनि पैदा नहीं हो रही पर अपने न सुननेकी क्षमताके कारण हमें सुनायी नहीं देता. यही प्रकार स्पर्श और गंध का भी है.

अस्मत्सिद्धान्ते गन्धादीनां तन्मात्रत्वम्, अन्येषां मते गन्धादयो गुणाः भूतेभ्यः उत्पद्यन्ते भूतसमवेताः इति. मानें हमारे सिद्धांतके अनुसार गंध आदि तन्मात्रा हैं. यह भूत मानें द्रव्यमें पैदा हुआ गुण नहीं है बल्कि यह भूतकी तन्मात्रा है 'तन्मात्रा' मानें 'केवल वह'. क्योंकि कोई भी भूत 'केवल वह' मानें तन्मात्र नहीं है. पञ्च-तत्त्वोंमेंसे किसी भी एकमें पचास प्रतिशत उस तत्त्वका हिस्सा है और पचास प्रतिशत बाकी चारका हिस्सा है. इस कारण 'केवल वह' वहां नहीं रह जाता है. इस प्रक्रियाको 'पञ्चीकरण' कहा जाता है.

प्रत्येक तत्त्वमें प्रत्येक तत्त्व मौजूद है ही. हम किसी भी तत्त्वको शुद्ध तत्त्व कह ही नहीं सकते हैं. आप इसे इस उदाहरणसे समझ सकते हैं कि एक घड़ा है, उसमें आकाश है, पृथ्वी है, जल है, वायु है और अग्नि भी है. यदि घड़ेमें आकाश न हो तो अंदरकी ठंडक बाहर किस प्रकार आ सकती है? अंदरका पानी जिसके कारण ठंडा हो रहा है वह वायु ही तो है. घड़ा बनानेके लिए यदि जल न हो तो घड़ा बन ही नहीं सकता. इस प्रकार पृथ्वीसे बने हुए घड़ेमें दूसरे चार तत्त्व तो हैं ही. यही बात दूसरे तत्त्वोंके साथ भी है. इस तरह कोई भी तत्त्व 'तन्मात्र' मानें 'केवल वह' नहीं है. इस तरह जो आधा हिस्सा है वह तन्मात्र है और बाकीका आधा हिस्सा मिलनेके बाद वह भूत बन जाता है, एक आकार ले लेता है. आप इसका रेखाचित्र बना सकते हैं.

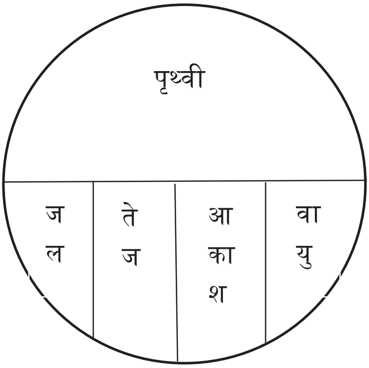
पृथ्वी
जल
तेज
आकाश
वायु

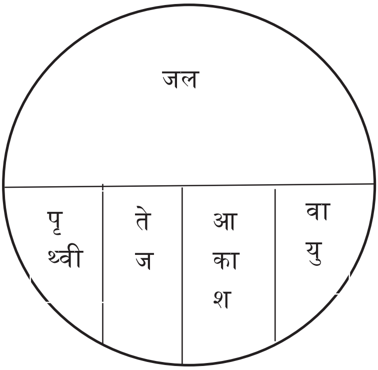
जल
पृथ्वी
तेज
आकाश
वायु

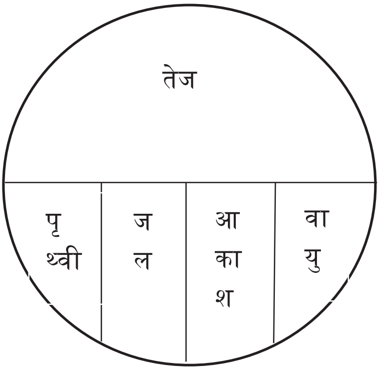
तेज
पृथ्वी
जल
आकाश
वायु

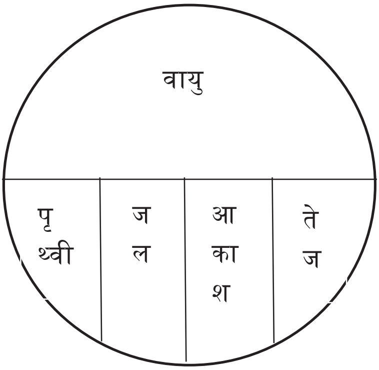
वायु
पृथ्वी
जल
आकाश
तेज

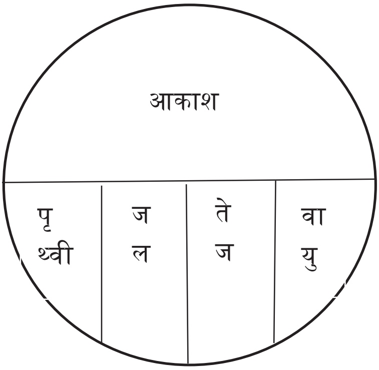
आकाश
पृथ्वी
जल
तेज
वायु

एक बहुत पुरानी कहावत है कि *“शुद्ध सोनेका गहना नहीं बनता, थोड़ा तांबा तो उसमें डालना ही पड़ता है.”* इसी प्रकार शुद्ध पृथ्वीसे घड़ा बनाया नहीं जा सकता. जब उसमें बाकी चार तत्त्व मिश्रित किये जायेंगे तभी वह बन पायेगा. पर पचास प्रतिशत मिट्टी तत्त्व होनेके कारण हम इसे मिट्टीका घड़ा कहते हैं. इसी प्रकार जिसे हम जल कह रहे हैं इसमें आधा तत्त्व जल होनेके कारण हम उसे ‘जल’ कह रहे हैं. आप देखते ही होंगे कि जो नये बर्तन हम लाते हैं, कुछ दिन पानी भरे रहनेके बाद उसमें क्षार जम जाता है. वह उसमें रहा हुआ पृथ्वी अंश ही तो है. इस प्रकार प्रत्येक तत्त्वमें दूसरे चारों तत्त्व मौजूद रहते हैं. तन्मात्र नहीं रह पाता. यदि तन्मात्र है तो वह द्रव्यका रूप मानें आकार ले ही नहीं सकता. यदि किसी भी तत्त्वको तन्मात्र न रह कर भूत होना है तो दूसरे तत्त्व उसमें मिलाने ही पड़ेंगे. इसलिए यहां कह रहे हैं कि **अस्मत्सिद्धान्ते गन्धादीनां तन्मात्रत्वम्, अन्येषां मते गन्धादयो गुणाः भूतेभ्यः उत्पद्यन्ते भूतसमवेताः इति.** वैशेषिकोंके मतसे गंधादि गुण भूतसे उत्पन्न होते हैं और वह भूतमें रहनेवाले गुण हैं॥१२॥

(इन्द्रियोंका निरूपण)

श्लोक :

इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्-दृग्-रसन-नासिका॥
वाक्-करौ चरणौ मेढ्रं पायुर् दशम उच्यते॥१३॥

अनुवाद : **अब दस इन्द्रियोंकी संख्याके बारेमें खुलासा दे रहे हैं. इन्द्रियाँ दस. श्रोत्र त्वचा नयन रसना नासिका (ज्ञानेन्द्रिय), वाणी कर चरण मेढ्र पायु (कर्मेन्द्रिय) दस कहलाती है॥१३॥**

सुबोधिनी : **दशसङ्ख्यां पूरयति इन्द्रियाणि इति. ज्ञानेन्द्रियाणि प्रथमं**

गणयति. श्रौत्रं शब्दग्राहकम्. त्वक् त्वगिन्द्रियम्. दृग् दृष्टिः चक्षुः इति यावत्. रसनेन्द्रियं, घ्राणेन्द्रियञ्च इति. वागादीनि कर्मेन्द्रियाणि. मेढ्रं गुह्यम्॥१३॥

अनुवाद : इन्द्रियोंकी संख्या १० गिन कर दिखाते हैं, इन्द्रियाँ ऐसे कह कर. उसमें ज्ञानेन्द्रियोंकी गणना प्रथम की गयी है. श्रोत्र = शब्दको ग्रहण करनेवाली. त्वचा = स्पर्श ग्रहण करनेवाली. नयन = रूपाकृति ग्रहण करनेवाली, चक्षु = रसनेन्द्रिय, स्वाद ग्रहण करनेवाली और घ्राणेन्द्रिय = गन्ध ग्रहण करनेवाली. वाणी आदि कर्मेन्द्रिय हैं. मेढ्र = गुह्येन्द्रिय॥१३॥

इसके बाद अब अंदरकी इन्द्रियोंके बारेमें बताते हैं.

(अन्तःकरणका निरूपण)

श्लोक :

मनो बुद्धिर् अहङ्कारः चित्तम् इति अन्तरात्मकम्॥
चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया॥१४॥

अनुवाद : **अब चार संख्यावाले तत्त्वोंकी गणना. १. मन २. बुद्धि ३. अहंकार और ४. चित्त. यह आन्तरेन्द्रियोंका संख्याप्रभेद लक्षणरूपसे दिया गया है. यह सारे लक्षण आन्तर वृत्तियोंके हैं॥१४॥**

सुबोधिनी : **चतुष्टयं गणयति मनोबुद्धिः इति. ननु पर्यायाः एते इति आशङ्क्य आह अन्तरात्मकम् इति. एकमेव अन्तरात्मकम् अन्तःकरणं मनोबुद्ध्यादिभेदेन चतुर्द्धा लक्ष्यते. एकस्य अनेकधा लक्षणे हेतुः लक्षणरूपया वृत्त्या भेदो लक्ष्यते इति. वृत्तिभेदाद् भेदः, वृत्तिः च लक्षणरूपा. व्यावर्तकंहि लक्षणं, सामान्यवृत्तेः भेदकत्वाभावात्॥१४॥**

अनुवाद : मन और बुद्धि, यहां ऐसे विभाजनमें एक आशंका होती है कि ये तो सारे पर्यायवाची शब्द लगते हैं. उसका समाधान

आन्तरेन्द्रिय कह कर देते हैं. अन्तःकरण तो एक ही होता है पर मनोबुद्धि आदिके प्रभेद चार प्रकारके होते हैं, उनका निरूपण किया गया है. एक तत्त्वके अनेक प्रकारसे लक्षण देनेमें हेतु, **लक्षण रूपी वृत्तियोंके कारण अलग-अलग लक्षित होनेके कारण,** वृत्तिभेदके कारण प्रभेद है, पृथक्-पृथक् वृत्ति लक्षणरूपसे अवभासित होनेके कारण. अन्ततः लक्षणका प्रयोजन एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे जो व्यावर्तित रूप होता है, उसे दिखाना ही तो है. क्योंकि सामान्य वृत्तिसे तो भेद प्रकट हो नहीं सकता॥१४॥

विवेचन : मन बुद्धि चित्त और अहंकार, यह चार आंतरिक इन्द्रिय हैं. इनके क्या क्या कार्य हैं अब इसके बारेमें बताते हैं. प्रश्न है कि इनको चार क्यों कहा जा रहा है. एक ही कहना चाहिये. उसके उत्तरमें कहते हैं कि एक होनेपर भी इसके चार प्रकारके कार्य हैं, इसलिए इनको चार कहा गया है. आप किस दृष्टिसे देख रहे हैं, एक गिनें तो अंतःकरण है और इनके कार्य अथवा वृत्ति की दृष्टिसे देखें तो यह चार हैं. 'लक्षण' मानें जो वस्तुको दूसरेसे पृथक् करे वह उस वस्तुका 'लक्षण' कहा जाता है. इस प्रकार इनके लक्षणके आधारपर देखें तो यह चार हैं॥१४॥

(एकदेशियोंके मतानुसार कालका विचार)

श्लोक :

एतावानेव सङ्ख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह॥
सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः॥१५॥

अनुवाद : **सगुण ब्रह्मका संख्यात्मक संनिवेश तो इतना ही है और मैं इतना ही कहना चाह रहा हुं पर कालकी गणना भी यदि तत्त्वके रूपमें करनी हो तो उसे पच्चीसवाँ तत्त्व मानना चाहिये॥१५॥**

सुबोधिनी : **ननु अयं चतुर्विंशति-भेदभिन्नो गणितो, अपरः च गणनीयः इति आशङ्क्य आह एतावानेव इति. सगुणस्य ब्रह्मणः एतावत्येव सङ्ख्या. शास्त्रे एतावानेव वा सङ्ख्यातः. सगुणस्य ब्रह्मणः सन्निवेशः सम्यग् निवेशो नाम असम्भावितान्यप्रवेशे स्वधर्मवत्तया निरूपणम्. ननु अस्ति कालो अधिकः तत्र आह यः कालः प्रोक्तः, सः पञ्चविंशकः प्राकृतएव इति अर्थः, प्रकृतेः प्रथमो भावः कालः, अन्यानि चतुर्विंशतिः इति॥१५॥**

अनुवाद : इस प्रकार इन चौबीस संख्यावाले तत्त्वोंकी ही गणना की पर दूसरे तत्त्व क्यों संभव नहीं हैं? उन तत्त्वोंकी गणना भी करनी चाहिये थी, ऐसी शंकाके समाधानके लिए कहते हैं कि सगुण ब्रह्मके रूपोंकी संख्या तो शास्त्रमें इतनी ही गिनायी गयी है. सगुण ब्रह्मका संन्निवेश = सम्यक् प्रकारसे निवेश अर्थात् दूसरे तत्त्वोंका समाविष्ट न कर सके उस प्रकार सगुण ब्रह्मका स्वयंके धर्मके रूपमें निरूपण (किया). यदि आप कहते हो कि इसमें काल तो छूट ही गया तो उसके बारेमें कहते हैं कि तो कालको पच्चीसवाँ तत्त्व समझो. जो प्राकृत तत्त्वोंकी तरह होते हुए भी प्राकृत नहीं है. क्योंकि प्रकृतिसे पहले ब्रह्म स्वयं कालरूपमें प्रकट होता है. उसके उपरान्त ही चौबीस तत्त्व उत्पन्न होते हैं॥१५॥

विवेचन : सगुण ब्रह्म अर्थात् प्रकृतिके तीन गुणोंके (सत्त्व रज तम) विभिन्न सम्मिश्रणोंसे ये सारी वस्तुएं पैदा होती हैं. किसी स्थानपर सत्त्व अधिक होता है, किसी स्थानपर रज और किसी स्थानपर तम अधिक होता है. इनकी मात्राके अनुसार वस्तुओंमें विविधता आती है. अब इसमें भी यह तर्क दिया जा सकता है कि गुण एक है कि तीन? इसके उत्तरके लिए एक बात समझो कि समुद्रके किनारे कई लहर आती हैं, कोई छोटी तो कोई बड़ी. कोई ऐसी आती है कि तुम्हारे ऊपर छींटे डाल जाती है, कोई किनारे तक आते-आते खतम हो जाती है. अब समुद्रकी दृष्टिसे देखें तो सभी लहर एक ही हैं, पर लहरकी दृष्टिसे देखें तो हर लहर अलग

है. ऐसे ही प्रकृति जो लहरा रही है, उन लहरोंका जो अलग-अलग आकार है, वह सत्त्व-रज-तम गुणोंकी तरह है. प्रकृतिकी दृष्टिसे देखें तो तीन नहीं हैं, पर उसके लहरानेके अंदाजसे देखें तो अलग-अलग हैं. जैसे कार्डियोग्राम्में देखें तो हृदयकी धड़कनके अलग-अलग ऊंचे-नीचे प्रकार आते हैं और सीधी लाइन् हुयी तो व्यक्ति 'मृत' कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृतिमें यह विविधता आ रही है. प्रकृति इस अर्थमें एक जीवित पदार्थ है और इसमें सत्त्व-रज-तमकी धड़कन है. कार्डियोग्राम्में देखें तो यदि बहुत ऊंचा जाये तो व्यक्तिको खतरा है और बहुत नीचा जाये तो भी व्यक्तिको खतरा है. उसकी एक रेंज् होती है जो उस व्यक्तिके जीवित होनेका प्रमाण है.

प्रश्न : आपने कहा कि प्रकृति जीवित पदार्थ है, यह बात समझमें नहीं आयी ?

उत्तर : जीवित इस अर्थमें कहा जा रहा है कि इसमें अलग-अलग प्रकारकी सत्त्व-रज-तमकी धड़कन आ रही हैं. जीवनको चेतना मत समझो, जीवन एक अलग वस्तु है और चेतना एक अलग वस्तु है. कार्ल्-सेगान् जो एक अमेरिकन् वैज्ञानिक थे, उन्होने कहा हैं कि "मेरे पास एक नहीं अनेक प्रयोग हैं जिनसे सिद्ध होता है कि कोई भी जीवित कोशिकाको प्रयोगशालामें आसानीसे बनाया जा सकता है. पर जो हम नहीं बना पा रहे हैं, वह है एक ऐसी कोशिका जो सचेतन हो मानें Conscious हो." इससे हम समझ सकते हैं कि जीवन अलग है और चेतना अलग है. इसीलिए जब व्यक्ति कोमामें जाता है तो चेतना नहीं होती पर जीवित तो होता ही है.

प्रश्न : क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि चेतनाके कारण ही व्यक्ति जीवित होता है ?

उत्तर : यह आवश्यक नहीं है. चेतनारहित जीवन भी हो सकता

है. आपकी जानकारीके लिए बॅक्टेरिया जीवित है पर वायरस् जीवित नहीं है. बॅक्टेरियाको आप उबलते पानीमें डालेंगे तो वह मर जाता है पर वायरस्‌को कुछ नहीं होता. मनुष्यमें क्योंकि जीवन और चेतना की खिचड़ी पक गयी है इसलिए हमें लगता है कि जीवन चेतना है और चेतना जीवन है. ठीकसे देखें तो जिसमें मॅटाबोलिज़म् है वह जीवित है. अर्थात् जिसमें कुछ ग्रहण करनेकी शक्ति हो, उसे पचानेकी शक्ति हो, उससे स्वयंको विकसित करनेकी शक्ति हो और जिसमें बचे हुए पदार्थको बाहर निकालनेकी शक्ति हो, उसे 'जीवित' कहते हैं. जिसमें भी यह प्रक्रिया चल रही है, वह जीवित है पर उसका चेतन होना आवश्यक नहीं है. आजकी तारीखमें प्रयोगशालामें मॅटाबोलिक् कोशिकाको पैदा किया जा सकता है. पर इस मॅटाबोलिक् कोशिकामें चेतना किस प्रकार आ रही है? वैज्ञानिक कहते हैं कि "यह करोड़ों वर्षके विकासद्वारा आयी है. हम इतने वर्षों तक अपनी कृत्रिम कोशिकाको जीवित नहीं रख सकते. इस कारण हम उसमें चेतनाका अनुभव नहीं कर सकते." अब यह करोड़ों वर्षोंके विकासके कारण आयी कि इसमें अंदर घुसी कि किसीके द्वारा डाली गयी, यह अभी भी रहस्य है. पर जो बात यहां समझनेकी है वह यह है कि यह दोनों बिल्कुल अलग वस्तुएं हैं और जीवनके साथ चेतनाका कोई भी संबंध नहीं है. इसीलिए भूत प्रेत पिशाच में चेतना होती है पर जीवन नहीं होता. वह जीवित जैसे दिखते हैं पर होते नहीं हैं.

साठके दशकमें यूरोप्‌की ओरसे सारे धर्मगुरुओंका इन्टर्व्यू लेने पीटर् ब्रान्ट् नामक एक व्यक्ति आये थे. उन्होंने मेरा इन्टर्व्यू भी लिया था. उनके पास कोई काम-धाम तो होता नहीं है. इस कारण सबसे पहला प्रश्न उन्होंने पूछा "आप ऐसे विचित्र कपड़े क्यों पहनते हैं? जैसे साधारण लोग पहनते हैं वैसे क्यों नहीं पहनते?" मैंने उत्तर दिया "भई! समाजमें मेरा एक रोल् है. पुलिसको पुलिसके

कपड़े ही पहनने होते हैं. वकीलको जज्को विद्यार्थीको सबको उनके निर्धारित कपड़े ही पहनने होते हैं. इसी प्रकार मेरा यह यूनिफॉर्म् है.'' इसपर वे बोले कि ''वह तो यूनिफॉर्म् उतार भी देते है. आप भी क्या यह उतार सकते हैं?'' मैंने कहा ''जिस दिन मैं यह रोल् त्याग दूंगा उस दिन यह यूनिफॉर्म् भी उतार दूंगा.'' उससे बात आगे चलते-चलते उसने कहा ''आप अपने रोल्के बारेमें क्या कहना चाहते हैं?'' मैंने उससे कहा कि ''जो मेरा रोल् है वह तो है ही पर मैं ऐसा नहीं मानता कि उस रोल्के लिए मैं एक आदर्श व्यक्ति हुं.'' अब इस बातपर उसने दूसरा प्रश्न किया कि ''what do you mean by it ?'' मैंने उसे उत्तर दिया कि ''when I see myself and when I see towards my fellow priest, I consider that all of us are walking ghosts and walking ghosts have no future as you cannot kill them because they are already dead. Any more questions?'' वे बोले ''नहीं बस अब नहीं पूछना.'' क्या हम भूतको मार सकते हैं? नहीं, क्योंकि वह तो पहलेसे ही मरे हुए है. आप जीवित मनुष्यको मार सकते हो, पर मरे हुएको तो नहीं मार सकते. वह तो केवल एक चेतना है, जीवन तो है नहीं.

प्रश्न : क्या ऐसा कहा जा सकता है कि जीवन प्रकृति और पुरुष का संयोग है?

उत्तर : बिल्कुल सही. प्रकृति जीवन है और पुरुष चेतना है. यह दोनों एक-दूसरेसे सराबोर हैं. इसी कारण चेतना जीवित दिखायी देती है और जीवन चेतनाकी तरह दीखता है. पर हकीकतमें यह दोनों अलग सिद्धांत हैं. इसीलिए मैं कहता हुं कि बहुतसी वस्तुएं जीवित हैं पर उनका चेतन होना आवश्यक नहीं है. इसी प्रकार बहुतसी वस्तुएं चेतन हैं पर उनका जीवित होना आवश्यक नहीं है. उदाहरणके लिए लिफ्ट्में जब हम जाते हैं तो उसमेंसे आवाज़

आती है ‘‘कृपया दरवाजा बंद करें.’’ तो वह चेतन है कि नहीं? पर क्या तुम उसे जीवित कह पाओगे. इसी प्रकार कार्में जब हम बैठते हैं तो उसमें आवाज़ आती है ‘‘अपनी सुरक्षापेटीको बाँधिये.’’ और जब-तक हम बाँध नहीं लेते वह बोलती ही रहती है. उसे पता है कि हमने सीट्-बॅल्ट् नहीं बाँधा है. इस प्रकार वह चेतन तो है ही, पर जीवित नहीं है. ऐसे हम देख सकते हैं कि जीवनके बिना भी चेतना तो है ही. इसी तरह अनेक उदाहरणोंसे हम देख सकते हैं कि जीवन भी बिना चेतनाके संभव है. इस प्रकार आप इन दोनोंको अलग करके देखनेका प्रयास करो. यह सच है कि हममें इन दोनोंकी खिचड़ी बनी हुयी है. मेरे घरमें एक बेल है जो वृक्षसे थोड़ी दूरीपर है. फिर भी वह अपनी डालीको बढ़ा कर उस वृक्षसे लिपट जाती है. बेलकी चेतनाको भी पता चलता है कि स्वस्थ जीवनके लिए उसे वृक्षकी आवश्यकता है और वह इतनी दूरीपर है.

एतावानेव सङ्ख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह, सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ननु अयं चतुर्विंशति-भेदभिन्नो गणितः, अपरश्च गणनीयः इति. यहां तक जो गणना की गयी वह निरीश्वरसांख्यके समान थी. वह यहां पूर्ण हुयी. इसके बाद सेश्वरसांख्य आ रहा है क्योंकि भागवत और महाभारत में निरीश्वरसांख्यका वर्णन नहीं है, सेश्वरसांख्यका है. जिसे महाप्रभुजी कहते हैं ‘‘**सांङ्ख्यो बहुविधः प्रोक्तः तत्रैकः सत्प्रमाणकः अष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः**’’ (त.दी.नि.१।९३) सांख्यके बहुत सारे प्रकार हैं. उनमेंसे एक प्रकारका सांख्य वेदान्तकी दृष्टिसे हमें मान्य है. और वह प्रकार है **अष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः** जहां ऐसा कहा गया है कि अठ्ठाईस तत्त्वोंके रूपमें हरि ही प्रकट हुए हैं. इस प्रकार यहां तक चौबीस तत्त्वोंका वर्णन करके आगेके चार तत्त्वोंको बता रहे हैं.

सगुणस्य ब्रह्मणः एतावत्येव सङ्ख्या. शास्त्रे एतावानेव वा सङ्ख्यातः.

सगुणस्य ब्रह्मणः सन्निवेशः सम्यग् निवेशो नाम असम्भावितान्यप्रवेशे स्वधर्मवत्तया निरूपणम्. सगुण ब्रह्मकी संख्या चौबीस है और इन चौबीस प्रकारसे ब्रह्म ही उत्पन्न हुआ है, कोई दूसरा नहीं. **ननु अस्ति कालो अधिकः तत्र आह यः कालः प्रोक्तः, सः पञ्चविंशकः प्राकृतएव इति अर्थः, प्रकृतेः प्रथमो भावः कालः, अन्यानि चतुर्विंशतिः इति.** इसके बाद सेश्वरसांख्यमें जो लोग कालको अधिक गिनते हैं वह पच्चीसवाँ है. प्रकृतिका पहला रूप काल है. कालकी परिभाषा काश्मीर शैविज़म् 'स्पन्दन' मानें वाइब्रेशन्की तरह करता है पर अपने यहां कालकी परिभाषा चेष्टाके रूपमें की गयी है. चेष्टा और क्रिया में भेद है. बोलनेके लिए मुंह खोलना, थप्पड़ मारनेके लिए हाथ उठाना, यह सब चेष्टा है. बोलना और थप्पड़ मार देना, यह क्रिया है. चलनेके लिए पैर उठाना चेष्टा है और चलना क्रिया है. इस प्रकार कालको मूल द्रव्यकी 'चेष्टा' कहा गया है. काश्मीर शैविज़म् इसको 'स्पंदन' कहता है. आज-कल जो नये उपकरण आये हैं, उनके सॅल् भी इसी स्पंदनके नियमपर चल रहे हैं. इनमें आते हुए वाइब्रेशन् ही सारी उर्जा उत्पन्न करते हैं और उपकरणमें मॅकेनिकल् क्रियाका वही स्रोत है. यही बात वहां भी कही गयी है कि स्पंदनसे क्रिया उत्पन्न हुयी. अपने यहां इसको इस प्रकार कहा गया है कि प्रथम द्रव्यकी चेष्टा काल है और उसके द्वारा उत्पन्न होनेवाली क्रिया सगुण सृष्टि है. क्रिया जो प्रकट होती है वह प्रकृतिमें रहे हुए विविध उतार-चढ़ावके कारण है और वही हमारे स्वभावमें दिखलायी देती है॥१५॥

श्लोक :

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालम् एके यतो भयम्॥
अहंकारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिम् ईयुषः ॥१६॥

अनुवाद : **यह वही काल है कि जिसके कारण पुरुष भयभीत**

रहता है! पुरुष जब प्राकृत अहंकारसे विमूढ़ हो कर प्रकृतिको पकड़ कर रखता है और उसके कारण अपने आपको कर्ता मानता है तो कालसे भयभीत रहता है॥१६॥

सुबोधिनी : **एवम् एकदेशिमतेन कालं निरूप्य पुनः एकदेशमतेन निरूपयति प्रभावम् इति. केचित् पौरुषं प्रभावं कालं प्राहुः. पुरुषस्य धर्मः कश्चित्, सामर्थ्यविशेषो वा. तथात्वे हेतुः यतो भयम् इति. यस्मात् कालाद् लोके भयं भवति. कस्य भयम्? इति आशङ्क्य आह अहङ्कार...इति. अहङ्कारेण यो विमूढो वञ्चितः, आत्मानमेव अहङ्कारं मन्यते. अहङ्कारविमूढत्वे हेतुः कर्तुः इति. यः कर्मादि-कर्ता, सो अहङ्कारविमूढो भवति. कर्मकर्तृत्वेऽपि हेतुः प्रकृतिम् ईयुषः इति. यस्तु प्रकृत्या सह ऐक्यं प्राप्य कर्माणि करोति, पश्चाद् अहङ्कारेण मूढो भवति, तस्य कालाद् भयं भवति इति अर्थः॥१६॥**

अनुवाद : इस प्रकार एकदेशीके मतानुसार कालका निरूपण करके पुनः एकदेशके मतके अनुसार निरूपण करते हैं प्रभाव: कुछ विचारकोंके अनुसार कालतत्त्व, पुरुषतत्त्वका प्रकृतिपर होनेवाला प्रभावके रूपमें है. अर्थात् पुरुषका कोई धर्म या विशेष सामर्थ्य. किस कारण पुरुषका प्रभाव पड़ता है? क्योंकि लोकमें कालसे भय लगता है. भय किसे लगता है? समाधान देनेके लिए कहते हैं अहंकार...अहंकारके कारण जो विमूढ़ अर्थात् जो इतना मोहित हो गया हो कि स्वयंको केवल अहंकारके रूपमें ही पहचानता है. उसका हेतु, कर्ता बन कर, जो अपने द्वारा किये गये कर्मादिका स्वयंको कर्ता मानता हो, वह अहंकारसे मोहित होता है. कर्मका कर्ता पुरुष क्यों बनता है, उसका हेतु, प्रकृतिको पकड़ कर रखना, क्योंकि प्रारंभमें प्रकृतिके साथमें एकमेक हो कर कर्म करने लग जाता है, उसके बाद उसका अहंकार जाग्रत होनेके कारण मूढ़ बन जाता है. ऐसे पुरुषको कालसे भय लगने लगता है॥१६॥

विवेचन : कई लोग इसे प्रकृतिकी चेष्टा कहते हैं और कई लोग इसे प्रकृतिपर पड़ा हुआ पुरुषका पहला प्रभाव कहते हैं. इस पहले प्रभावके कारण प्रकृतिमें कुछ हलचल होती है और यह हलचलका नाम ही 'काल' है. उदाहरणके लिए प्रत्येक जानवरमें, चाहे धरतीका हो, आकाशका हो अथवा पानीका हो, एक अलिखित आचारसंहिता होती है कि दूसरे जानवरसे एक सुरक्षित दूरी बना कर रखता है. जब-तक वह दूरी है तब-तक उसमें कोई हलचल नहीं होती. यदि वह दूरी कम हो जाये तो जानवर उसे अपने ऊपर आक्रमणके रूपमें लेता है. इसकी प्रतिक्रियाके रूपमें उसके पास दो उपाय होते हैं. यदि वह दूसरेका आकलन अपनेसे शक्तिशालीके रूपमें करता है तो वह वहाँसे भाग जाता है और यदि अपनेसे कमज़ोरके रूपमें करता है तो वह उसपर आक्रमण कर देता है. इस तरह किसी भी वस्तुके अपने पास आनेपर अपने भीतर एक प्रकारकी जो हलचल या स्पन्दन होता है, उसका नाम 'काल' है. आपने देखा होगा कि गाड़ीमें जब कोई बालक जाता है तो बाहर खिड़कीसे झांकता रहता है. मुझे ऐसे बालकोंको देखनेमें बहुत मज़ा आता है, मैं भी उसे देखने लगता हुं. वह बच्चा इस बातसे इतना आशंकित हो कर दूसरी ओर देखने लगता है. फिर थोड़ी देरमें वापस देखता है कि कोई देख तो नहीं रहा. ऐसा इसलिए होता है क्योंकि देखनेका प्रभाव (पुरुषका) उसपर पड़ता है जो हलचल उत्पन्न करता है.

"चेष्टाम् आहु चेष्टते यस्य विश्वम्" (भाग.पुरा.१०।३।२६) जिस समय पुरुष प्रकृतिके पास आया उससे जो हलचल हुयी, उसका नाम 'काल'. **प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालम् एके यतो भयम्** और उसीके कारण भय उत्पन्न होता है. "भई, इतने पास क्यों आ रहे हो, थोड़ा दूर चलो न!" है न एकदम प्रकृति-पुरुषके रोमांसकी बात! **अहङ्कार-विमूढस्य कर्तुः प्रकृतिम् ईयुषः** पर पुरुष तो प्रकृतिके

द्वारा प्रदत्त अहंकारसे विमूढ़ हो जाता है. अहंकार प्रकृतिका तत्त्व है पर प्रकृतिके पास जानेपर अहंकारका प्रभाव पुरुषपर पड़ता है. पुरुषमें अहंकार परावर्तित होनेके कारण पुरुष विमूढ़ हो जाता है और प्रकृतिके और नज़दीक जाने लगता है और इस कारण उसे और भय लगने लगता है. इसीलिए कहा है कि **एवम् एकदेशिमतेन कालं निरूप्य पुनः एकदेशमतेन निरूपयति प्रभावम् इति. केचित् पौरुषं प्रभावं कालं प्राहुः. पुरुषस्य धर्मः कश्चित्, सामर्थ्यविशेषो वा. तथात्वे हेतुः यतो भयम् इति.** क्योंकि कालके कारण सब जगह भय पैदा होता है.

अब कहते हैं कि **कस्य भयम्? इति आशङ्क्य आह अहङ्कार इति. अहङ्कारेण यो विमूढो वञ्चितः.** ये भय उसीको होता है जो अहंकारसे विमूढ़ हो. जो चेतना अहंकारसे विमूढ़ नहीं है उसे कालका भय नहीं होता. इसका कारण समझानेके लिए आपको एक उदाहरण देता हुं. हम एक बार अजंता गये. वहाँ जो सरकारी गेस्ट्-हाउस् था उसके कमरोंमें दरवाज़ेकी चटकनी अंदरसे तो बंद होती थी पर उसके ठीक ऊपरका लकड़ा टूटा होनेके कारण उसे बाहरसे भी खोला जा सकता था. सभी कमरोंमें यही हाल था. हमें लगा कि ऐसा कैसे है, तब जो लोग वहाँसे जा रहे थे उन्होंने बताया कि कल ही यहाँ डाका पड़ा है. यह सुन कर और घबराहट हुयी, डरके मारे किसीको भी रातमें नींद नहीं आ रही थी. जिस समय हम गये थे उस समय वहाँ जंगल था, अब तो वहाँ बहुत विकास हो गया है. हमने दरवाज़ा बंद करके उसके आगे कुर्सी मेज़ पलंग आदि लगा दिये कि जिससे कोई अचानक दरवाज़ेको खोल न पाये. थोड़ी देर बाद वहाँ बाहर फर्शपर किसीके दौड़नेकी आवाज़ आनी शुरू हुयी. सभी लोग डर गये कि शायद आज भी डाकू आ गये. हमारे साथ एक ‘रामानंदी’ नामके आर्टिस्ट् थे. वे ज़ोर-ज़ोरसे बोलने लगे “इन्होंने देखी नहीं है हमारी ताकत. देखो, सब अपनी

बंदूक तैयार रखना.'' ऐसे-ऐसे कई डायलॉग् वे बोल रहे थे पर ऐसे डायलॉग्का बाहर कोई असर नहीं हो रहा था. हमें भी लगा कि ऐसे कैसे डाकू हैं! रातके डेढ बजे तक यह सब चल रहा था, आखिरमें नींदके मारे मेरी धीरज छूट गयी. मैंने सोचा, जो होगा देखा जायेगा. दरवाज़ा खोल कर देखना चाहिये. दरवाज़ा खोला तो वहाँ तो कुत्ते दौड़ रहे थे. मैंने सबको यह बताया कि हम जिनसे डर रहे हैं वे तो कुत्ते हैं. जब यह पता चला तो सब आरामसे सो गये. पर जब-तक अहंकार विमूढ़ता थी तब-तक नींद आ नहीं रही थी. इस तरहसे यह कालका प्रभाव उसीको प्रभावित करता है जो अहंकारसे विमूढ़ होता है.

इस घटनाका हमारे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहाँसे हम जब औरंगाबाद गये तो रास्तेमें चीता भी मिला सरकारी गेस्ट्-हाउस्के पास, फिर भी हम दरवाज़ा-खिड़की खोल कर निडर हो कर सो गये. थके हुये थे इसलिए नींद भी जल्दी आ गयी. सुबह मेरी नींद जल्दी खुली, बाहर आ कर देखा तो वातावरण बहुत आह्लादक था, सामने पहाड़की टेकरी देखी तो मैं सीधा उसपर चढ़ गया. मेरे बाद जब मेरे अंकल्की नींद खुली तो उन्होंने मुझे वहाँ नहीं देखा. मुझे चीता उठा कर ले गया ऐसा समझ कर ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगे पर मैं तो ऊपर टेकरीपर बैठा था. इस तरह अहंकार विमूढ़ न हो तो चीतेका भी डर नहीं लगता. कहनेका तात्पर्य यह है कि न तो डाकू भय पैदा करता है और न ही चीता. यह सब अपने अहंकारके कारण भय उत्पन्न होता है. जब अपना अहंकार सो जाता है तो भयका कोई प्रश्न ही नहीं रहता.

आत्मानमेव अहङ्कारं मन्यते. अहङ्कारविमूढत्वे हेतुः कर्तुः इति. अहंकारके कारण चेतनाको मोह तब होता है जब वह क्रियाशील होता है. यदि क्रियाशील नहीं है तो मोह उत्पन्न ही नहीं होगा.

जब-तक हम जाग रहे थे तब-तक कालका पूरा-पूरा भय हमें था. पर जैसे ही नींद आयी और हमारा अहंकार सो गया तो भयका कोई प्रश्न ही नहीं था. इस प्रकार अहंकारका भाव तभी प्रबल होता है जब हम कुछ करनेका निर्णय लेते हैं. हम एक बार ऐसा सोच लें कि हमें कुछ करना नहीं है, जो होगा सो होगा, तो हमें कोई भय नहीं लगेगा. जैसे गुजरातीमें एक गीत है *"जीव तु शीदने चिंता करे, कृष्णने करवुं होय ते करे."* एक बार ऐसा भाव आया तो स्वयं करनेका भाव कम होगा, नहीं तो अपने कर्तृत्वका भाव जहाँ-तक है तो भय तो होगा ही. गालिब कहता है *"रात दिन गर्दिशमें हैं सातों आसमा, हो रहेगा कुछ न कुछ इसमें घबरायें क्या."* सातों आसमानोंमें कुछ-न-कुछ क्रिया चल रही है, कब क्या होगा यह कैसे कहा जा सकता है. फिर इससे घबराना क्यों? *"मौतका एक दिन मुअय्यन है, नींद क्यों रातभर नहीं आती."* मरना तो सभीको एक दिन है फिर भी मौत आयेगी इस डरसे रातभर नींद नहीं आती.

प्रश्न : कालको हम समयके नामसे भी तो जानते हैं?

उत्तर : समयका अर्थ समझो. समयके लिए दो तीन सिद्धांत हैं. एक सिद्धांत है कि किसी पदार्थके क्रियाशील होनेका नाम 'समय' है. यदि सारी क्रिया ठहर जाये तो समय भी ठहर जायेगा. इसीलिए अपने यहाँ ऐसा कहा जाता था और विज्ञान भी इस बातको कुबूल करता है कि पृथ्वी जिस गतिसे चल रही है, काल उसके अनुरूप है. उदाहरणके लिए पृथ्वी चौबीस घंटेमें पूरी घूम जाती है. इसलिए दिन चौबीस घंटेका है. पृथ्वी एक वर्षमें सूर्यका चक्कर लगाती है, इसलिए कालका परिमाण ३६५ दिनका है. पर यह परिमाण गुरुपर नहीं है क्योंकि गुरु पृथ्वीके बारह वर्षमें सूर्यका एक चक्कर लगाता है और एक वर्षमें अपनी धूरीपर घूमता है. इसलिए उसका एक दिन पृथ्वीके एक वर्षके बराबर होगा और उसका एक वर्ष

पृथ्वीके बारह वर्षके बराबर होगा. अपने उत्तरी ध्रुवपर भी उत्तरायणमें सूर्य केवल कुछ मिनिट्के लिए ही अस्त होता है. हम कहते हैं कि कालकी गणना दिवस और रात से होती है पर वहाँ तो दिन कितने सारे घंटोका होता है. इसीलिए कहा गया है कि काल, क्रिया होनेपर ही जाना जा सकता है. पर समस्या यह है कि क्रिया भी कालके अन्तर्गत ही होती है. इसलिए वह कहते है कि काल क्रियासे अलग कोई वस्तु होनी चाहिये. क्योंकि क्रियाका माप हम कालमें करते हैं. जैसे एक घंटेमें पचास मील इत्यादि. प्रकाशकी गति एक सॅकन्ड्में १८६००० मील है. वह अलग समय लेती है चलनेके लिए और हम अलग लेते हैं. अमेरिकाके वृक्ष पांच-पांच हज़ार वर्ष जीते हैं, हमारे यहाँ उनकी आयु कम होती है. इस प्रकार समयकी परिभाषा उसके जीवनकालके हिसाबसे अलग-अलग है. अपने यहाँ एक कथा आती है कि रेवतीजीके पिता उनके लिए योग्य वर पूछनेके लिए ब्रह्माजीके पास गये. जितनी देर उन्होंने संध्या की उतनेमें यहाँ पूरा एक युग बदल गया. इसलिए हमारे यहाँ ऐसा पहलेसे पता था कि पृथ्वीका काल पृथ्वीपर ही है. ऐसा कहा जाता है कि रॉकेट्में बैठ कर पृथ्वीसे बाहर चले जाओ और वापस आओ तो उसका एक वर्ष और पृथ्वीके एक वर्ष में भिन्नता आयेगी. इसलिए प्रश्न यह उठा कि गति काल है कि काल गति है? इसपर आइन्स्टीन्ने यह कहा कि टाइम् स्पेस् एनर्जी और मॅटर् चारों रिलेटिव् हैं, एक-दूसरेके अनुपातसे ही चलते हैं. इनमेंकी कोई भी एक वस्तु अपने आपमें कोई अस्तित्व नहीं रखती.

यही बात तो हम कह रहे हैं कि प्रकृति-पुरुषके संबंधसे ही कालकी उत्पत्ति होती है. **प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालम्** प्रकृतिके ऊपर पड़ा हुआ पुरुषका प्रभावको ही ‘काल’ कहते हैं. **यस्तु प्रकृत्या सह ऐक्यं प्राप्य कर्माणि करोति, पश्चाद् अहङ्कारेण मूढो भवति, तस्य कालाद् भयं भवति इति अर्थः.** इस प्रकार पुरुष प्रकृतिके साथ

मिल कर जब भी क्रिया करता है तो उसमें अहंकार उत्पन्न होता है, कोई काम न करे तो अहंकार भी नहीं होगा. इसी अहंकारके कारण भय उत्पन्न होता है, अहंकार न हो तो भय भी उत्पन्न नहीं होगा. अहंकारका यहाँ अर्थ घमंड नहीं है, सॅल्फ-अवेयरनेस् है॥१६॥

श्लोक :

प्रकृतेर् गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि!॥
चेष्टा यतः स भगवान् 'कालः' इति उपलक्षितः॥१७॥

अनुवाद : **तीन गुणोंकी किसी भी प्रकारकी विशेषतारहित जो प्रकृतिकी साम्यावस्था, उसमें, जिसके कारण चेष्टा प्रकट होती हो ऐसे भगवान्के रूपको 'काल' कह कर उपलक्षित किया है॥१७॥**

सुबोधिनी : **स्वमते कालं लक्षयति प्रकृतेः इति, गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः. प्रकृतेः सम्बन्धिनो ये गुणाः सत्त्वादयः, तेषां साम्यं गुणक्षोभात् पूर्वावस्था. स च क्षोभात् पूर्वं निर्विशेषः. मानवि! इति सम्बोधनं महतः उत्पन्ना अलौकिकं जानातीति. एतादृशस्य यतः चेष्टा, सः कालः. कालादेव गुणानां क्षोभः. सः कालो भगवान्एव, रूप-पञ्चक-मध्ये गणनात्. ननु भगवतः 'कालः' इति संज्ञा कुतः? इति आकाङ्क्षायाम् आह इति उपलक्षितः इति. कलयति आकलयति इति. सर्वो हि प्राणी येन रूपेण कृत्वा सर्वम् आकलयति, मृत्युभीतएव हि सर्वम् आकलयति. अतः 'कालः' इति भगवान्एव उपलक्षितः उपलक्षणविधया बोधितः. नहि कालः इति साक्षाद् भगवन्नाम, किन्तु प्राणिनां बोधनहेतुत्वेन निरूपितइति॥१७॥**

अनुवाद : कालके बारेमें अपना मत कहते हैं प्रकृति आदि. प्रकृति

अर्थात् गुणोंकी साम्यावस्था. प्रकृतिके साथ सम्बन्ध रखनेवाले जो सत्त्व रज तम गुण हैं, उनका समानुपाती होना, उन साम्य गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न हुआ उससे पूर्वकी अवस्था. इससे क्षोभके आदिमें प्रकृति निर्विशेष होती है. ऐसे निर्विशेष तत्त्वमें जिसके कारण चेष्टा प्रकट होती हो वह काल है. कालके कारण ही गुणोंमें विषमता आती है. वह काल स्वयं भगवान् ही है, अक्षरब्रह्मके पांचरूपोंमेंसे एक अन्यतम रूपमें गिना जानेके कारण. भगवान्की काल संज्ञा किस कारण दी गयी है? इसके उत्तरमें कहते हैं, इस प्रकार उपलक्षित आदिसे. जिसके आधारपर सारे प्राणी आकलन कर सके वह काल. मृत्युके भयसे सारे काम-काजका आकलन करने लगे. अतः 'काल' संज्ञासे भगवान् ही उपलक्षण विधिसे बताये हैं. 'काल' संज्ञा साक्षात् भगवन्नाम नहीं है फिर भी उसके आधारपर प्राणियोंको भगवान्का बोध होता रहता है, इसीसे यह निरूपित किया॥१७॥

विवेचन : अभी तक दूसरे मतोंके बारेमें बताया. अब भागवतका कालके बारेमें क्या दृष्टिकोण है वह बता रहे हैं. एक मतके हिसाबसे प्रकृतिमें प्रकट हुआ पहला प्रभाव काल है. दूसरा मत है कि प्रकृतिके ऊपर पड़ा हुआ पुरुषका प्रभाव काल है. अब तीसरा अपना मत बता रहे हैं. **गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः**. सत्त्व-रज-तम तीनों गुणोंकी जब साम्यावस्था होती है तो उसे 'प्रकृति' कहते हैं. **प्रकृतेः सम्बन्धिनो ये गुणाः सत्त्वादयः, तेषां साम्यं गुणक्षोभात् पूर्वावस्था.** इन सत्त्व आदि गुणोंकी पूर्वावस्था कौनसी है? साम्यावस्था है. साम्य तब रहता है कि जब गुणोंका क्षोभ न हुआ हो. जिससे गुण-क्षोभ होता है उसे 'काल' कहते हैं. प्रकृतिके गुणोंमें आनेवाला क्षोभ = disturbance. जैसे दूधमें हम जामन डाले तो गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न होता है जिसके कारण वह दहीमें परिवर्तित होता है. वह क्षोभ ही काल है. प्रकृतिमें कालका जामन डालनेसे क्षोभ होता है. गुणमें वैषम्य आता है. तीनों गुणोंका प्रपोर्शन् बदल जाता है तब इसमें प्रकट होने लगता

है. **मानवि! इति सम्बोधनं महतः उत्पन्ना अलौकिकं जानातीति.** अपनी माँको 'मानवि!' कह रहे हैं. 'मानवि' मानें मनुकी लड़की. **एतादृशस्य यतः चेष्टा, सः कालः. कालादेव गुणानां क्षोभः. सः कालो भगवान्एव, रूप-पञ्चक-मध्ये गणनात्. ननु भगवतः 'कालः' इति संज्ञा कुतः?** इस प्रकार काल जामनका काम करता है और यह भगवान्का ही एक रूप है. गीतामें भी भगवान् कहते हैं "**कालो अस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो.**" (भग.गीता ११।३२) "मैं काल हूं" अर्थात् जो चेष्टा उत्पन्न हो रही है; चेष्टा कहो अथवा प्रभाव कहो, मानें प्रकृतिको सचेष्ट करनेवाला तत्त्व वह भगवान्की चेष्टा है जिसके कारण प्रकृतिमें चेष्टा उत्पन्न होती है. जैसे यहाँ लोकल्-ट्रेन्में एक व्यक्ति दूसरेको धक्का दे तो वह धक्का आगेवालेको, फिर उससे आगेवालेको और फिर उससे आगेवालेको लगता है, उसी प्रकार पहला धक्का मारनेवाले यहाँ भगवान् हैं. उस धक्केके कारण प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न हुआ, उसके बाद प्रकृतिमें एकके बाद एक क्षोभ उत्पन्न होते ही गये और विविध प्रकारकी सृष्टिकी रचना हुयी.

एक और उदाहरणसे इसे समझो. जब कार् चलनेको होती है तो पहली चेष्टा डायनेमोमें होती है. डायनेमो घूमनेके बाद वह उससे जुड़े हुए जो और पुर्जे हैं, उन्हें घुमाता है, उससे फिर पहिये चलते हैं. इस प्रकार कार् आगे चलने लगती है. कार् चलानेके लिए आवश्यकता डायनेमोके सही प्रकारसे काम करनेकी है. इसी प्रकार डायनेमिक् फन्कशन् भगवान्का है. इसे काल क्यों कहते हैं यह समझानेके लिए कहते हैं कि **कलयति आकलयति इति. सर्वो हि प्राणी येन रूपेण कृत्वा सर्वम् आकलयति, मृत्युभीतएव हि सर्वम् आकलयति.** सारे प्राणी जिसका आकलन करते हों उसका नाम 'काल' है. गणना हम भयके कारण करते हैं. **अतः 'कालः' इति भगवान्एव उपलक्षितः उपलक्षणविधया बोधितः. नहि कालः इति साक्षाद् भगवन्नाम, किन्तु प्राणिनां बोधनहेतुत्वेन निरूपितइति.** काल भगवान्का साक्षात् नाम

नहीं है पर 'काल' नामसे भगवत्‌तत्त्वको समझनेमें आसानी हो जाती है. क्योंकि प्रथम चेष्टा किसी भी वस्तुमें पैदा करनेवाले भगवान् ही हैं, भगवान् सचेष्ट हो तो सभी वस्तु सचेष्ट हो जाती हैं.

प्रश्न : जब बालक गर्भमें होता है तो किस समय जीव अथवा आत्मा उसमें प्रवेश करती है?

उत्तर : यहाँ प्रश्न यह है कि जीवका अर्थ जीवन लेना कि चेतना लेनी? जीव तो स्पर्म्‌के साथ ही ओवम्‌में प्रवेश कर जाता है पर मानवोपयिक चेतना उसमें एक-डेढ़ महीनेके बाद ही आती है. एक बात यहाँ और समझनेकी है कि आत्मा और जीव में भेद है. आत्माको यदि जीवरूपमें ले रहे हैं तो वह पहले आ गयी ऐसा समझना चाहिये और यदि उसको चेतना मान रहे हो तो वह बादमें आयी, ऐसा मानना पड़ेगा.

आत्मापर प्रकृतिका लेप चढ़नेके बाद उसे 'जीव' कहा जाता है. उदाहरणके लिए मेरे दादाजीके एक परिचित थे. उन्हें शंकराचार्य बननेका अवसर मिला. पर वे शादी-शुदा थे और संन्यास लिए बिना शंकराचार्य नहीं बना जा सकता. उन्होंने कहा "यदि मैं संन्यास ले लूंगा तो मेरे परिवारका क्या होगा." इस समस्याके समाधान-स्वरूप एक उपाय किया गया कि उनकी पत्नीको उस मठमें नौकरी दे दी गयी और उनके बच्चेको उनका सॅक्रेटरी बना दिया गया. यहाँ तककी कथा तो ठीक थी. पर शंकराचार्य बननेके बाद उन्होंने दादाजीको आशीर्वादके पत्र भेजने प्रारंभ कर दिये. तब दादाजीको यह बहुत अजीब लगा. वे मुझसे बोले "कल-तक तो ये मेरे पैर छूते थे. आज शंकराचार्य बन गये हैं तो मुझे ही आशीर्वाद भेजने लगे!" मैंने कहा "दादाजी, यदि आप उन्हें रोकना हो तो आप भी उन्हें एक पत्र आशीर्वादका भेज दीजिये!" उन्होंने ऐसा ही किया. उसके बाद उनके आशीर्वादपत्र आने बंद हो गये. इस प्रकार व्यक्तिपर

अपने अहंकारके लेप चढ़ ही जाते है. हम कोई भी काम करें उसका लेप हमारे ऊपर चढ़ ही जाता है. यह कर्तापनेका अभिमान है. इसे घमंड नहीं समझना चाहिये. जैसे विवाहकी अंगूठी पहनते ही एक ऐसा अभिमान तो आ ही जाता है कि ‘‘अब मैं विवाहित हुं.’’ ऐसा लेप चढ जाता है.

एक बहुत अच्छी चॅकोस्लोवाकियाकी फिल्म आयी थी, ‘Days of Matthew’s’. वह एक भाई-बहनकी कहानी है. भाईका नाम मॅथ्यू और बहनका नाम ओल्गा था. उसमें भाईका दिमाग पूरी तरहसे विकसित नहीं है. माँ-बापके जानेके बाद बड़ी बहन उसकी पूरी देखभाल करके उसे बड़ा करती है. वह पूरे तौरपर अपनी बहनपर निर्भर होता है. गाँवके सभी लोग उसकी मज़ाक बनाते थे कि ‘‘तू तीस सालका हो गया है फिर भी अपनी बहनपर ही निर्भर है.’’ वह आ कर अपनी बहनसे सबकी शिकायत करता है. अब वह बहन बेचारी क्या करे? आखिर बहनने उसके लिए एक नौकरी ढूंढ ली पर वह केवल कुछ दिन टिकी. कई जगह नौकरीपर लगवानेके बाद भी वह किसी जगह तीन दिनसे अधिक रुकता नहीं था, कुछ-न-कुछ गड़बड़ कर ही देता था जिससे उसकी बहनकी बेइज़्ज़ती होती थी. अब बहनको तो उसे पालना ही था इसलिए उसने उसे एक काम दिया कि जिसमें उसको अपना दिमाग लगाना ही न पड़े. उसने कहा ‘‘तुम रोज़ सुबह नदीके उस पार जा कर जो भी वहाँसे इस ओर जो आना चाहे, उसे इस पार ले कर आया करो.’’ दूसरी ओर तो कुछ था ही नहीं, कोई भी वहाँ रहता ही नहीं था. पर वह इस कामके प्रति इतना उत्साहित था कि रोज़ सुबह जल्दी उठ कर तैयार हो कर उस पार चला जाता. इसके बाद सबको कहता कि वह बहुत व्यस्त है. करता वह कुछ भी नहीं था, केवल उस पार जा कर बैठ जाता था और शामको लौट आता था. पर उसे क्योंकि एक काम मिल गया था इसलिए

वह बहुत खुश था. एक दिन अचानक ही उसे एक व्यक्ति वहाँ मिल जाता है जो इस पार आना चाहता है. क्योंकि वह उसका पहला ग्राहक था इस कारण वह उसे घर ले आता है और अपनी बहनसे कहता है कि "यह मेरा पहला ग्राहक है इसलिए हमें इसकी अच्छी आवभगत करनी चाहिये." वह व्यक्ति भी कुछ दिनोंके लिए वहाँ ही रुक जाता है. इस बीच उस व्यक्ति और बहन में प्रेम हो जाता है पर यह बात मॅथ्यूको अच्छी नहीं लगती. वह बहनको उस व्यक्तिसे संबंध रखनेको मना करता है. इसपर उसकी बहन उसे डांट देती है जिससे वह पूरी तरह निराश हो जाता है. उसके बाद एक बार वह अपने घरके आंगनमें बैठा होता है, जहाँ बचपनमें दोनों भाई-बहनने अपने नामसे दो पेड़ लगाये थे. तभी तेज़ हवासे उसकी बहनके नामका 'ओल्गा' पेड़ टूट जाता है. उसे लगता है कि अब तो उसकी बहन मर जायेगी. यह विश्वास उसके हृदयमें बस जाता है. एक दिन इसी विचारमें वह नदीके उस पार बैठा था तो उसे लगा कि यदि ओल्गा मर गयी तो उसे तो वह व्यक्ति घरमें रहने नहीं देगा. इस कारण वह सोचता है कि ओल्गाके मरनेके पहले उसे ही मर जाना चाहिये. वह नावमें एक छेद करता है और उसीमें बैठ कर अपनी बहनको पुकारता है. वह नाव डूब जाती है. सचमें भाई-बहनके प्रेमकी अद्भुत कहानी थी. मैंने एक साथ वह फिल्म तीन बार देखी थी. उस बहनने तो उसे ऐसा काम दिया था कि जिसमें किसी औरका दखल ही नहीं था. पर वही काम अंतमें उन भाई-बहनके बीच प्रेममें दखल करनेवाला हो गया. उस फिल्ममें सबसे अच्छा जो संवाद था वह उस भाईका था कि "मैं अब व्यस्त हूं. मैं भी काम करता हूं." इस तरह हम समझ सकते हैं कि नहीं करनेका काम करनेसे भी अवलेप होता है॥१७॥

श्लोक :

अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः॥

समन्वेति एष सत्त्वानां भगवान् आत्ममायया॥१८॥

अनुवाद : **अपनी ही मायाके द्वारा भगवान् भीतर पुरुषरूपसे और बाहर कालरूपसे प्राणियोंके साथ सदा जुड़े ही रहते हैं॥१८॥**

सुबोधिनी : **एवं कालं भगवद्रूपत्वेन उक्त्वा तस्य उपलक्षणतां निरूपयति अन्तः पुरुषरूपेण इति. एकएव भगवान् सर्वप्राणिनाम् अन्तः पुरुषरूपेण वर्तते, बहिः कालरूपेण, अन्यथा भगवतो व्याप्तिः न स्यात्. बहिर्मुखान् कालरूपेण भक्षयति, अन्तर्मुखान् पुरुषेण आप्याययति इति. अतएव सत्त्वानां सर्वेषां भगवान् स्वमायया सर्वभवनसामर्थ्येन उभयविधो भूत्वा, समन्वेति सम्यग् अन्वयं प्राप्नोति. बहिः काले लयं प्राप्नोति, अन्तः पुरुषः इति. कालो भयजनको—अभयरूपः च पुरुषः इति विशेषः॥१८॥**

अनुवाद : भगवद्रूपका कालके रूपमें वर्णन किस कारणसे उपलक्षण है, इसे समझाते हैं कि स्वयं भगवान् सभी प्राणियोंके भीतर पुरुषरूपसे वर्तमान होते हैं, बाहर कालरूपसे, अन्यथा भगवान् व्यापक नहीं रह जायेंगे. इस कारण जो बहिर्मुख हैं उनका भगवान् कालरूपसे भक्षण करते हैं और अन्तर्मुखोंको पुरुषरूपसे संतुष्ट भी करते हैं. इसीसे सभी प्राणियोंके लिए भगवान् अपनी सर्वभवनसामर्थ्यरूपा मायाके द्वारा उभयविध बन कर जुड़े रहते हैं. बाहर कालमें सब-कुछ लीन हो जाता है, भीतर रहा पुरुष भयमुक्त होता है. इसी कारण काल भयजनक है और पुरुष अभयरूप है, यह विशेषता है॥१८॥

विवेचन : एक ही भगवान् अंदर पुरुषरूपमें रह रहे हैं और बाहर कालरूपमें बिराज रहे हैं. इस कारण जो व्यक्ति अंतर्मुख होता है उसे डर नहीं लगता पर जो बहिर्मुख होता है उसे तो भय लगता ही है. हमारा अजंताका प्रसंग याद कर लो. जब-तक बाहरकी आवाज़ोंकी ओर हमारा ध्यान था, हमें डर लग रहा था. पर जैसे ही हम अंतरमुंख हुए, भय चला गया.

प्रश्न : यहाँ उपलक्षण कहा है, उससे क्या तात्पर्य है?

उत्तर : आपको यह एक चार्ट (वस्तुधर्म)के द्वारा समझाता हुं.

- वस्तुधर्म
  - क्रिया
  - जाति
  - गुण
  - विशेषण
  - लक्षण
  - उपलक्षण
  - उपाधि

किसी भी वस्तुको पहचाननेके लिए सबसे पहले क्रियाको देखा जाता है कि वह किस प्रकारका कार्य करती है जिससे वस्तु पहचान सकते हैं. जैसे कानको पहचाना जाता है सुननेकी क्रियासे, आंखको देखनेकी क्रियासे, हाथको पकड़नेकी क्रियासे, पैरको चलनेकी क्रियासे इत्यादि. उसके बाद उस वस्तुकी पहचान होती है उसकी जातिसे. 'जाति' मानें कोमनालिटी. जैसे हमारी जाति मनुष्य है, स्त्री अथवा पुरुष भी एक जाति है. जो वस्तु अपनेमें जन्मसे होती है मानें जो स्वरूप अपना जन्मसे होता है उसे 'जाति' कहा जाता है. क्रिया तो बादमें पैदा होती है. इसके बाद आता है गुण. 'गुण'का संस्कृतमें अर्थ डोरा होता है. किसी वस्तुको हम जिस डोरेसे अपनी ओर खींचते हैं, वह 'गुण' कहलाता है. इस तरह क्रिया हो अथवा जाति हो, उसे हम गुणके रूपमें ही लेते हैं. जैसे जलमें तरलता उसका गुण है. ऐसा नहीं है कि जलमें केवल तरलता ही है, और भी बहुत सारे गुण उसमें हैं पर आप उसे किस प्रकारसे

पहचान रहे हैं, उसीको उसका ‘गुण’ कहा जायेगा.

अब मनुष्य होना उसकी जाति कहलायेगा कि गुण, इसे समझनेके लिए आपको एक उदाहरण देता हुं. मेरे एक परिचित अच्छे आर्टिस्ट् थे. उनका संगीतके ऑर्गनाइज़र्के साथ झगड़ा हो गया. उस ऑर्गनाइज़र्को अंग्रेजी अच्छी नहीं आती थी. एक दिन वह ऑर्गनाइज़र् उस आर्टिस्ट्से बोला “आपमें आर्ट् तो है पर टिस्ट् नहीं है.” वह समझता था कि टिस्ट् कोई आर्ट् होनेका गुण है. दरअसल जिसमें आर्ट् हो वह ‘आर्टिस्ट्’ कहलाता है. वह कहना तो यह चाहता था कि आप कलाकार तो हो पर वह क्रिया ही है उसका कोई भी गुण आपमें नहीं है. पर अंग्रेज़ी न आनेके कारण वह ऐसा बोल गया. इसी प्रकार मनुष्य तो हैं पर मनुष्यताके गुण हैं कि नहीं, और बहुत सारे गुण होंगे पर मानवता यदि नहीं है तो उसे मनुष्य तो नहीं कहा जा सकता. इस तरह हम समझ सकते हैं कि गुण एक अलग वस्तु है.

अब गुण तो कई हो सकते हैं, समान भी हो सकते हैं और अलग भी. पर एक वस्तुको दूसरीसे अलग करनेके लिए हम जिस गुणका प्रयोग करते हैं, उसे गुण न कह कर ‘विशेषण’ कहते हैं. जैसे ‘लाल टोपी’. टोपी काली सफेद हो सकती है. पर लालको काली और सफेद से अलग दिखानेके लिए हम कहते हैं ‘लाल टोपी’. टोपीका लाल होना अब उसका गुण नहीं रह कर विशेषण हो गया. विशेषणके बारेमें भी एक संभावना है कि जिस वस्तुके लिए तुम उसका उपयोग कर रहे हो उसे दूसरोंसे अलग दिखानेके लिए, वह गुण उसमें हमेशा रहे, यह आवश्यक नहीं है. जैसे किसी लंबे मनुष्यको हम ‘लंबू’ कहें, तो वह जब बच्चा था तब लंबा तो नहीं था. इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि वह गुण उसमें सदा तो नहीं था. कोई भी विशेषण, लक्षण तब होगा जब कोई

भी स्थितिमें वस्तुका गुण सदा रहता हो मानें सार्वदिक एवं सर्वथा हो तो उसे ‘विशेषण’ न कह कर, उस वस्तुका ‘लक्षण’ कहते हैं. जैसे पानीकी हर बूंदको हम H_2O ही कहेंगे. ऐसा तो असंभव है कि पानी हो पर H_2O न हो और H_2O हो और पानी न हो. इस स्थितिमें वह पानीका विशेषण न हो कर उसका ‘लक्षण’ कहा जाता है. This is more like permanent and inseparable property of matter.

लक्षणके बाद आता है ‘उपलक्षण’. जैसे हम कहीं घूम रहे हो और किसी मकानकी छतपर लाउड्-स्पीकर् बज रहा हो तो उस मकानकी छबि हमारे मस्तिष्कमें रह जाये और जब कोई हमसे उस मकानके बारेमें पूछे तो हम कहें कि वही लाउड्-स्पीकर्वाला मकान. यह पूरे तौरपर एक अस्थाई विशेषण है पर हमारे मस्तिष्कमें उसकी छबि स्थाई बन गयी है. यह कहलाता है ‘उपलक्षण’ मानें adhoc definition.

इसके बाद आती है ‘उपाधि’. ‘उपाधि’ = उप+आधि मानें जो वस्तु पास रह कर आपको प्रभावित करती है. जैसे यह बल्ब् जिसमें काँच दूधिया रंगका लगा है. बल्ब्के प्रकाशको दूधिया बनानेकी यह काँच उपाधि है. उपाधि और उपलक्षण में यह भेद है कि उपलक्षण किसी-न-किसी रूपमें अस्थायिरूपसे वस्तुमें होता है. जैसे जब मैं भवन्स् कॉलेज् जाता था तो वहाँ एक लड़की काली स्कर्ट् और पीला टॉप् पहन कर आती थी. लोगोंने उसका नाम ही काली-पीली टॅक्सी रख दिया था. बादमें उसने वह पहनना छोड़ दिया पर उसका नाम वही रह गया. यह है ‘उपलक्षण’. उपाधि उस वस्तुका गुण नहीं है पर किसी पासकी वस्तुका गुण होता है, जो उस वस्तुको प्रभावित करता है. शांकरमतमें इसी कारण मायाको ब्रह्मकी उपाधि माना गया है. माया ब्रह्मका अपना गुण नहीं है, पर ब्रह्मके अत्यधिक

पास होनेके कारण माया ब्रह्मको प्रभावित करती है. यहाँ तक कि ब्रह्म भी हमें मायिक लगने लगता है. वह मायिक है नहीं पर उसका आभास होता है. इस तरह क्रिया जाति गुण विशेषण लक्षण उपलक्षण उपाधि एक-दूसरेकी उत्तरोत्तर अवस्थाएं हैं.

एवं कालं भगवद्रूपत्वेन उक्त्वा तस्य उपलक्षणतां निरूपयति अन्तः पुरुषरूपेण इति. यहां काल भगवान्का उपलक्षण हैं क्योंकि भगवान् सृष्टि प्रकट करनेके लिये जब चेष्टा करते हैं तो चेष्टा कालका रूप बन जाती है. जब प्रलय हो जाता है तो चेष्टा भी नहीं रहती. इस कारण काल भी नहीं रहता. क्योंकि काल अस्थायी है इसलिए उसे लक्षण न कह कर 'उपलक्षण' कहा है. सृष्टिके समयमें भगवान्को ही 'काल' कहा जाता है क्योंकि यह उनका उपलक्षण है.

एकएव भगवान् सर्वप्राणिनाम् अन्तः पुरुषरूपेण वर्तते, बहिः कालरूपेण, अन्यथा भगवतो व्याप्तिः न स्यात्. बहिर्मुखान् कालरूपेण भक्षयति, अन्तर्मुखान् पुरुषेण आप्याययतीति. कोई भी व्यक्ति जो बहिर्मुख है मानें जो केवल बाहरकी ओर ही देखता हो उसे भगवान् कालके रूपमें भयभीत करते हैं और जो अंतर्मुख है उसे तो भय लगता ही नहीं है. **अतएव सत्त्वानां सर्वेषां भगवान् स्वमायया सर्वभवनसामर्थ्येन उभयविधो भूत्वा, समन्वेति सम्यग् अन्वयं प्राप्नोति.** जो भी वस्तुएं हैं उनमें ऐसे व्यक्तिको बाहर और भीतर समन्वय दिखलाई पड़ता है. बाहर भगवान् किस रूपमें हैं? कालरूपमें. अंदर भगवान् किस रूपमें हैं? पुरुषरूपमें. **बहिः काले लयं प्राप्नोति** बाहर जो काल रूपी भगवान् है उसमें सभी वस्तुएं लीन मानें खतम होती दिखलायी देती हैं. **अन्तः पुरुष इति. कालो भयजनकः, अभयरूपश्च पुरुषः इति विशेषः** इसीलिए बाहर देखनेपर हमें भय लगता है पर भीतर देखनेपर हमें अभय प्राप्त होता है.

अपने अंतिम उपदेशमें जैसे महाप्रभुजी कहते हैं “**यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन. तदा काल-प्रवाहस्था देहचित्तादयोप्युत. सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मान् इति मतिर्मम**” (शि.श्लो.१-२) यदि तुम बाहरकी ओर झांकोगे तो यह देह-चित्त तो किसी-न-किसी दिन कालमें लय होंगे ही. और यदि अंदरकी ओर देखोगे तो यह चेतना तो किसी भी दिन लय होनी नहीं है. चेतना कालके अधीन नहीं है, वह तो कालातीत है. भूत भविष्य और वर्तमान आप चेतनामें देख सकते हो. कालमें आप केवल वर्तमानको ही देख सकते हो, भविष्य और भूत को नहीं देख सकते. भूतको याद कर सकते हो पर देख नहीं सकते. इसी प्रकार भविष्यकी आशा रख सकते हो पर देख नहीं सकते. उमर खैयाम बहुत बड़े पर्शियाके दार्शनिक हुवे हैं. उनकी रुबाइयाँ बहुत प्रसिद्ध हैं. उनकी रुबाइयोंका अंग्रेजीमें फिट्झेराल्ड्ने अनुवाद किया है. वे कहते हैं *“Come with old Khayam, leave the wise. One thing is certain that life flies. One thing is certain rest is lies. The flower once blown, for ever it dies.”* खैयाम कह रहे हैं “तुम सभी बुद्धिमानोंको छोड़ कर मुझ बूढ़ेके पास आओ. तुम्हें एक बोध देता हूं. यह जो जीवन है वह तो उड़ती चिड़ियाकी तरह है. एक चीजके अलावा जो भी कुछ है वह जूठ है. क्योंकि एक बार जो फूल खिलता है वह हमेशाके लिए मुरझा जाता है.” इसलिए कालकी तरफ देखोगे तो भय लगेगा लगेगा और लगेगा. पर अपने अंदर झांकोगे तो भय नहीं लगेगा क्योंकि कालमें वर्तमान ही दीखता है और चेतनामें भूत भविष्य वर्तमान तीनों दिखलायी देते हैं. आप यदि अपनी चेतनामें देखनेकी आदत डालेंगे तो आज भी आपको आपका बचपन दिखलायी दे जायेगा. इसी प्रकार जिनमें अपने भविष्यका स्वप्न देखनेकी शक्ति होती है, उन्हें अपना भविष्य भी साफ दिखलायी देता है. इसलिये जो स्वप्नसेवी होते हैं वे प्रगति कर सकते हैं. जो केवल वर्तमानमें ही जीते हैं, वे कभी आत्म-विकास नहीं कर सकते॥१८॥

(तत्त्वोंकी उत्पत्तिपूर्वक आधिभौतिकादि लक्षणोंका निरूपण)

(१.महत्/चित्तके लक्षण)

श्लोक :

दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्॥
आधत्त वीर्यं सा असूत महत् तत्त्वं हिरणमयम्॥१९॥

अनुवाद : **कालवशात् धर्मोंमें हुयी हलचलके कारण जब स्वयंको योनिकी तरह बना कर पुरुष चैतन्य रूपी वीर्यका आधान करती है, तब प्रकृतिमेंसे हिरणमय महत् तत्त्वका प्रसव होता है॥१९॥**

सुबोधिनी : **एवम् उद्देशेन तत्त्वानि निरूप्य उत्पत्तिपूर्वकं लक्षणानि आह दैवाद् इति. प्रथमतः चित्तस्य उत्पत्तिम् उक्त्वा तस्य आधिदैविकादिभेदान् निरूपयता लक्षणानि उच्यन्ते. आदौ उत्पत्तिः, ततः आध्यात्मिकस्य लक्षणं, ततः आधिदैविकस्य, ततः आधिभौतिकस्य इति. एवम् एकः पदार्थः चतुर्भिः उच्यते. तत्र प्रथमं महत् तत्त्वस्य उत्पत्तिम् आह दैवात् कालात्, क्षुभिताः धर्माः यस्याः सा पुरुषस्य योनिः क्षेत्रं, तस्यां परः पुमान् प्रथमपुरुषो वीर्यम् आधत्त, यथा स्वभार्यायां पुरुषः. तस्य इन्द्रियाणि भगवतइव आनन्दमयानि, रेतस्तु सच्चिदंशः. चिदंशएव इति एके, सदंशस्तु प्रकृतेः सकाशात् सम्बध्यते. ततः सा प्रकृतिः महत् तत्त्वम् असूत. तस्य शरीरं हिरणमयं, यथा सूर्यान्तर्गतस्य नारायणस्य. आनन्दसतोः ऐक्ये हिरण्यरूपता भवति॥१९॥**

अनुवाद : इस प्रकार तत्त्वोंका नामनिर्देश करनेके बाद उन तत्त्वोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुयी उसके लक्षण बताते हैं. कालके कारण सबसे पहले चित्तकी उत्पत्तिका वर्णन करनेके बाद उसके आधिदैविक आदि प्रभेदोंका निरूपण करनेके लिये लक्षणोंका निरूपण करते हैं. पहले उत्पत्तिका निरूपण, उसके बाद चित्तके आध्यात्मिक रूपका लक्षण, उसके बाद आधिदैविकका और अन्तमें आधिभौतिकका. इस तरह एक ही पदार्थका चार प्रकारसे निरूपण किया है. उसमें पहले महत्

तत्त्वकी उत्पत्ति दिखाते हैं कालवशात्. कालके कारण प्रकृतिके गुणोंमें हलचल होती है वह पुरुषके लिए योनि अथवा क्षेत्र है, उसमें पुरुष वीर्यका आधान करता है जैसे पुरुष अपनी भार्यामें करता है वैसे. उस पुरुषकी इन्द्रिय भगवान्के समान आनन्दमयी होती हैं, उसका वीर्य सच्चिदानन्द ब्रह्मका सच्चिदंश है. कुछ लोग कहते हैं कि केवल चिदंश ही, क्योंकि सदंश तो प्रकृतिमेंसे मिल ही रहा है. उसके बाद उस प्रकृतिमेंसे महत् तत्त्वका प्रसव होता है. उसका शरीर हिरण्मय होता है, सूर्यमंडलमें विराजमान नारायणके समान. आनन्दांश और सदंश का मिश्रण हिरण्मय रूपमें माननेमें आता है॥१९॥

विवेचन : आगे कहते हैं कि **दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्.** कालके कारण प्रकृतिके तीन गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न हुआ. इस क्षुब्ध प्रकृतिमें जब शुद्ध चेतना अनुप्रविष्ट हुयी, तब प्रकृतिमेंसे महत्तत्त्व पैदा हुआ. हम इस महत्तत्त्वको जगत्की ब्लू-प्रिंट् भी समझ सकते हैं. जैसे हम कोई इमारत बनाते हैं तो उससे पहले उसका नक्शा ब्लू-प्रिंट्के रूपमें निकालते हैं. ठीक उसी प्रकार जगत्में जो कुछ भी है उसका नक्शा महत्तत्त्वमें है.

प्रश्न : ऐसा प्रसंग भी आता है कि ब्रह्माजीने जब भगवान्से जगत्को प्रकट करनेका प्रकार पूछा तो उन्होंने अपने अंदर उस जगत्के दर्शन कराये. इस बातको कैसे समझें?

उत्तर : ब्रह्माजीको भगवान्ने ब्लू-प्रिन्ट् अपने भीतर दिखाई थी. पर यहाँ भगवान्के भीतर जगत्की ब्लू-प्रिन्ट् थी उसे प्रकृति और पुरुष के संयोगसे जो महत्तत्त्व प्रकट हुआ, उससे जगत्की उत्पत्ति हुयी. भगवान् गीतामें कह रहे हैं **"मम योनिः महद्-ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत!"** (भग.गीता १४।३) मेरेमेंसे प्रकटी जो योनि है वह महत्तत्त्व है. उस योनिमें मैं अपनी चेतना रूपी वीर्यका प्रवेश कराता हुं. इसीसे संपूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है. मानें जो भी सृष्टि उत्पन्न होनी है, उसकी ब्लू-प्रिंट् पहलेसे

ही महद्‌में है. यह बात मेगा-स्केल्‌पर कही गयी है. नॅनो-स्केल्‌पर इसे समझना हो तो जो अपने चित्तमें है वह आत्मचेतनाके रूपमें आयेगी. वह आत्मचेतना अहंकारके रूपमें प्रकट होती है. अहंकारमें है वह मनमें आयेगा, जो मनमें है वह अपनी बुद्धिमें आयेगा और जो अपनी बुद्धिमें है वह अपनी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों में प्रकट होगा.

प्रथमतः चित्तस्य उत्पत्तिम्‌ उक्त्वा तस्य आधिदैविकादिभेदान्‌ निरूपयता लक्षणानि उच्यन्ते. आदौ उत्पत्तिः. एक बात समझो कि अभी तकका विवरण तो केवल ॲन्यूमरेशन्‌ था. पर इसके आगे अब गंभीर चिंतन आ रहा है क्योंकि यह सांख्य जो यहाँ समझाया जा रहा है, वह भागवत-सांख्य है, निरीश्वर सांख्य नहीं है. कपिल-सांख्य, भागवत-सांख्य और तांत्रिक-सांख्य, कपिल ऋषिने भी कई प्रकारके सांख्योंका निरूपण किया है, जैसा अधिकारी उसके लिए वैसा सांख्य.

मेरे दादाजीका भी यही तरीका था बिल्कुल कपिल मुनिके जैसा. उनकी आदत बहुत विचित्र थी. उन्हें यदि लगता कि यह व्यक्ति चोर है और वह यदि चोरी करे तो उसपर क्रोधित नहीं होते थे. उन्हें लगे कि यह व्यक्ति भिखारी है तो वह भीख मांगे तो उसपर क्रोधित नहीं होते थे, पर वह चोरी करे तो उसपर क्रोधित होते थे. कोई चोर हो और उनके पास आये तो उसके लिए पहलेसे अपने पैरके नीचे रुपये छुपा कर रखते थे कि जिससे वह अच्छेसे चोरी कर पाये. पर भूले-चूके यदि वह कुछ माँग बैठे तो उसपर इतने क्रोधित हो जाते थे कि "शरम नहीं आती तुझे भीख मांगते हुए!" पर यदि उनके चरणोंके नीचेसे वह रुपये चुरा ले जाये तो प्रसन्न हो कर सबको बताते थे कि "देखो, मैं कहता था न कि यह चोर है, कितनी सफाईसे पैसे चुरा ले गया!" कपिलजीका भी यही सिद्धांत था. किसीको निरीश्वर सांख्य, किसीको सेश्वर सांख्य, किसीको भागवत सांख्य और किसीको तांत्रिक

सांख्य. जैसे-जैसे शिष्य हो, उनके लिए वैसा सांख्य. बिल्कुल दादाजीकी तरह.

यहीं पासमें ही एक भाई रहता था. हमारे दादाजी फारसी समझ लेते थे पर पढ़नी नहीं आती थी. उस भाईकी यह ड्यूटी थी कि रोज़ आके दादाजीको फारसी पढ़ कर सुनानी. उस भाईने भी समझ लिया कि दादाजीको फारसी भाषा अच्छी लगती है. वह आता और कहता ''गुरुजी! एक बहुत अच्छी फारसीकी किताब आयी है. बहुत ही नायाब है. पर वह बेचनेवाला कीमत अधिक मांग रहा है.'' दादाजी कहते ''ले आओ, जो भी मांगे उसे दे देना.'' इस बातका लाभ उठा कर पच्चीस रुपयेकी पुस्तक सौमें बेच जाता. वह सारी पुस्तकें मुम्बई सँट्रल्के पास एक फारसी किताबोंकी दुकान है, वहाँसे खरीद कर लाता था. उस दुकानदारको भी लगा कि ऐसा फटेहाल व्यक्ति इतनी किताबें खुद तो खरीद नहीं सकता, इस कारण उसने खोज-खबर करके दादाजीका पता लगाया. आ कर दादाजीसे मिला और बोला ''आप मेरी दुकानपर आओ.'' दादाजीने कहा ''मुझे चालूखातेकी पुस्तकोंमें दिलचस्पी नहीं है. कुछ नायाब हो तो बताओ.'' वह जितनी भी नायाब किताबें थीं, उनको ले कर बड़े-मंदिरमें आ गया. दादाजी उनको देख कर बोले ''यह सब तो बहुत अच्छी हैं.'' वह बोला ''आप एक बार आयें तो सही. मैं और भी बहुत अच्छी पुस्तकें, जो मैं ईरानसे मंगवाता हुं, आपको दिखाउंगा.'' दादाजीने कहा ''ठीक है, आउंगा.'' वे वहाँ गये और जा कर देखा कि जितनी भी पुस्तकें वह भाईने दादाजीको नायाब कह कर अधिक दाममें बेच गया था, उनकी तो वहां कई-कई कॉपी पड़ी हुयी थी. वे उन सारी पुस्तकोंकी पांच-पांच कॉपी और खरीद लाये. एक मुझे दी, एक नवाबसाहब थे उनको दी, एक हकीम साहब थे उनको दी. एक उस भाईको भी दी और बोले ''देखो, ये नायाब हैं. हाँ, इन्हें सम्हालके रखना.'' मैंने दादाजीको

कहा ‘‘इसे शर्म भी नहीं आयी आपसे उन किताबोंको लेनेमें, आपसे इतने अधिक पैसे लेता था!’’ दादाजी बोले ‘‘मुझे तो पहलेसे ही पता था पर इसका ठगी करनेका ही अधिकार है. इसलिए क्या करे बेचारा?’’ इस तरह जिसका जो अधिकार हो, दादाजी उसके साथ वैसा ही व्यवहार करते थे.

कपिल मुनि भी ऐसा ही करते थे. जो नास्तिक है उसे नास्तिक (निरीश्वर) सांख्य पढ़ा देते. जो आस्तिक है उसे आस्तिकसांख्य (सेश्वरसांख्य) पढ़ा देते थे. इसीलिए अब-तक जो सांख्य हमने पढ़ा वह सामान्य सांख्य था. अब जो आ रहा है वह तांत्रिक सांख्य है जो तंत्रशास्त्रके अनुसार है. इसमें प्रत्येक वस्तुके तीन-तीन पहलु बताये गये हैं, आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक. इस तरह सांख्यके भी जितने प्रकार हैं, उनके भी तीन पहलु हैं. जैसे चित्तका आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक स्वरूप होता है, इसी तरह बुद्धि मन और अहंकार के भी आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक स्वरूप हैं. और अंत:करणके चार अंग हैं, उन्हें तंत्र-शास्त्रमें वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध और संकर्षण माननेमें आये हैं. देवरूपसे चित्तको ‘वासुदेव’, अहंकारको ‘संकर्षण’, बुद्धिको ‘प्रद्युम्न’ और मनको ‘अनिरुद्ध’ कहते हैं. संयोगसे यह चारों कृष्णलीलामें भी आते हैं. ‘वासुदेव’ मानें स्वयं कृष्ण, ‘संकर्षण’ मानें बलराम, ‘प्रद्युम्न’ मानें कृष्णके पुत्र और ‘अनिरुद्ध’ मानें प्रद्युम्नके पुत्र, यहां आध्यात्मिक और आधिदैविक दोनों पहलु आ गये.

जैसे महाप्रभुजीने सिद्धांतमुक्तावलीमें जगत्‌के तीनों रूप बताये हैं, जो दिखलायी दे रहा है वह उसका आधिभौतिक रूप है, अक्षर आध्यात्मिक रूप है और पुरुषोत्तम आधिदैविक रूप है. जैसे जल रूपी गंगा उसका आधिभौतिक स्वरूप है, तीर्थ उसका आध्यात्मिक स्वरूप है और देवीरूप गंगा आधिदैविक स्वरूप है. अपने शरीरके सन्दर्भमें शरीर आधिभौतिक है, आत्मा आध्यात्मिक है और अंतर्यामी

आधिदैविक है. इसी तरह सच्चिदानन्दमें भी सदंश आधिभौतिक बनता है, चिदंश आध्यात्मिक बनता है और आनंदांश आधिदैविक है. हर वस्तुको थ्रि-टियर् सिस्टम्में देखनेका नज़रिया है.

प्रश्न : इस सारे विवरणसे पहले कालका विवरण आ चुका है. इस तरह क्या कालके भी तीन रूप हो सकते हैं?

उत्तर : कालके आधिदैविक रूप रुद्र हैं, कर्मके आधिदैविक रूप ब्रह्मा हैं, स्वभावके आधिदैविक रूप विष्णु हैं. इस तरह प्रत्येक वस्तुके तीन पहलुओंको देखना, यह तंत्रका दृष्टिकोण है.

प्रश्न : आपने जो आधिदैविक स्वरूप कहा, क्या उसका अर्थ मूर्तरूप (Personified) होना है?

उत्तर : हाँ. इसी तरह 'आध्यात्मिक' मानें प्रक्रिया (system) और 'आधिभौतिक' मानें स्थूलरूप (gross). जो दिखलायी दे रहा है वह स्थूल है. उसके पीछे जो सिस्टम् काम कर रही है वह अध्यात्म और जिसने यह सिस्टम् बनाई है वह उसका अधिदेव. उदाहरणके लिए महाप्रभुजीके हिसाबसे ब्राह्मण-ब्राह्मणीसे अथवा वैश्य-वैश्याणीसे अथवा क्षत्रिय-क्षत्राणीसे अथवा शूद्र-शूद्राणीसे उत्पन्न बालक आधिभौतिक रूपसे ब्राह्मण वैश्य क्षत्रिय अथवा शूद्र है. उस बालकका यदि उस प्रकारका संस्कार हुआ है और वह उस प्रकारके कर्म निभा रहा है तो वह आध्यात्मिक रूपसे उसी वर्णका होगा. उनके पीछे रहे हुए उनके देवता भी हैं, यदि उनके साथ हैं तो ही वह उस वर्णका होगा. महाप्रभुजी ऐसा मानते हैं कि ब्राह्मण क्षत्रिय होना जाति नहीं है. जिसमें ब्राह्मण्य देवता होते हैं वह ब्राह्मण. जैसे मूर्तिमें जिस देवकी प्रतिष्ठा की गयी है, वह मूर्ति उस देवकी कहलायी जाती है. मूर्ति आधिभौतिक है, उसका पूजन इत्यादि उसका आध्यात्मिक पहलु है और जो उसकी प्रतिष्ठा की गयी है वह देव उसका आधिदैविकरूप है. इसीलिए कहा जाता है कि दुकानमें रखी हुयी विष्णुकी मूर्ति विष्णु नहीं है, वह उसका आधिभौतिक रूप है. पर

यदि किसी मूर्तिकी पूजा की जा रही है तो आधिभौतिक रूप और आध्यात्मिक रूप, दोनों मिल कर उसमें एक आधिदैविकता प्रकट होती है, तब विष्णुका वहां प्राकट्य होता है. जैसे तुम्हारा भौतिक देह और उसके अनुसार किये गये तुम्हारे आध्यात्मिक कर्म जब मिलते हैं तब उसमें ब्राह्मण-देवता प्रकट होते हैं. यदि ब्राह्मण-देवता आपके अंदरसे तिरोहित हो जायें तो आप चाहे आध्यात्मिक कर्म कर भी रहे हो अथवा आपका शरीर चाहे ब्राह्मणका हो, पर आप ब्राह्मण नहीं हो. शास्त्रमें इसीलिए कहा गया है कि कुछ कर्म करनेसे ब्राह्मण-देवता तिरोहित हो जाते है. इस तरह मूर्तिमें भी ऐसा ही है. आप यदि मूर्तिके साथ कुछ शास्त्र-विरुद्ध कर्म करेंगे तो मूर्तिमेंसे अधिदेवता तिरोहित हो जाते हैं.

आपने सुना होगा कि पुराने ज़मानेमें मुसलमान मूर्ति तोड़ कर मूछोंपर ताव देते थे. पर ऐसा होता था कि जब प्राचीनकालमें मंदिरके लोगोंको यह पता चलता था कि उन्हें मुसलमान तोड़ने आ रहे हैं और वे उसको बचा नहीं पायेंगे तो उस अधिदेवके तिरोधानका मंत्र बोल देते थे. जैसे विवाहके प्रसंगमें देखा ही होगा कि सुपारीमें देवताका आह्वाहन किया जाता है और मंत्र बोल कर उनको तिरोहित भी कर दिया जाता है. तिरोहित होनेके बाद आप उस मूर्तिको तोड़ो अथवा फेंको, उससे कोई फरक नहीं पड़ता. पर उनको यह पता नहीं था कि हमारे यहां ऐसी तीन प्रकारकी व्यवस्था है, इसलिए तोड़ कर वे यह समझते थे कि हमने तुम्हारे देवको खतम कर दिये.

यहाँ बांद्रामें पालीहिल्के ऊपर मच्छीमारोंकी शांता-दुर्गा देवी थी. जब सेंट्-ज़ेवियर् यहाँ आये तो उन्होंने उस पत्थरकी देवीको समुद्रमें फेंक दी और मच्छीमारोंसे कहा कि “देखो, तुम्हारी देवी स्वयं ही नहीं तैर सकती तो तुम्हें क्या तारेगी.” उसके बाद मॅरीकी लकड़ीकी

मूर्ति स्थापित कर दी और लोगोंको दिखाया कि देखो यह डूबती नहीं है. यह देख कर जितने भी मच्छीमार थे वे क्रिश्चन् हो गये. आज-तक भी वे वही धर्म अनुसरते हैं. यह जो माउन्ट्-मॅरी है वह सेंट्-ज़ेवियर्ने दुर्गाकी मूर्तिको फेंक कर स्थापित करी है. ये सारे आसपासके गाँव उसीने बसाये थे, सांताक्रुज़ बान्द्रा पार्ला, यह सब पुर्तगाली नाम हैं. पुराना जो मुम्बई था वह माहीम था जो राणा भीमदेवने बसाया था. जब वह मोहम्मद गज़नवीसे हार गया तो पाटन्से भाग कर यहाँ आ कर उसने माहीम बसाया था. इस माहीमका पुराना नाम 'महिष्कावती' है, उसमेंसे 'माहीम' हुआ. जिसको आप 'माटुंगा'के नामसे जानते हो, वह राणा भीमदेवका मतंगालय था मानें हाथीका तबेला.

बात इसमें समझनेकी यह है कि आप शांता-दुर्गाको तोड़ नहीं सकते पर उसकी आधिभौतिक मूर्तिको तोड़ सकते हो. अधिभूतमें जब आप आध्यात्मिकता स्थापित करो तो उसमें अधिदेव प्रकट होते हैं. जब आधिभौतिक स्वरूपके साथ आप आध्यात्मिकरूपमें व्यवहार नहीं कर रहे हो तो उसमें अधिदेव प्रकट नहीं होते. इसमें आह्वाहन और विसर्जन की प्रक्रिया है. इस बारेमें एक मराठीकी फिल्म भी आयी थी 'देवुळ'. रोना आ जाये ऐसी फिल्म थी. किसी गरीब व्यक्तिको देवकी एक मूर्ति अपने खेतमें मिल जाती है. वह गांवके प्रतिष्ठित व्यक्तिके पास ले जाता है. वह सब उसका मंदिर बनवा देते हैं और फिर वही सब जो आम मंदिरोंमें होता है कि धंधेके लिए सब उनका उपयोग करते हैं. उस गरीब किसानको यह सब पसंद नहीं आता. एक दिन कोई मंत्री वहाँ आता है तो उस गरीब किसानको सब लोग बाहर फेंक देते हैं. वह चुपचाप उस मूर्तिको चुराता है और उसे नदीमें यह कह कर बहा देता है कि "अब तू यहां कभी मत आना, वरना दोबारा बिकाउ भगवान् बना देंगे." बहुत ही दर्द भरी कहानी थी.

इस तरह तांत्रिक सांख्यके माध्यमसे तीन प्रकारकी जो सिस्टम् बनायी गयी है उसको समझा रहे हैं. **ततः आध्यात्मिकस्य लक्षणं, ततः आधिदैविकस्य, ततः आधिभौतिकस्य इति. एवम् एकः पदार्थः चतुर्भिः उच्यते. तत्र प्रथमं महत्-तत्त्वस्य उत्पत्तिम् आह.** पहले महत् तत्त्वकी उत्पत्तिके बारेमें बता रहे हैं. **दैवात् कालात् क्षुभिताः धर्माः यस्याः सा पुरुषस्य योनिः क्षेत्रं, तस्यां परः पुमान् प्रथमपुरुषो वीर्यम् आधत्त.** जिसके धर्म क्षुभित हो गये हों ऐसी प्रकृति, पुरुषकी 'योनि' मानें पुरुषका क्षेत्र, उस पुरुषने अपने वीर्यका आधान किया **यथा स्वभार्यायां पुरुषः.** जैसे कोई लौकिक पुरुष अपनी भार्यामें अपने वीर्यका आधान करता है, ठीक उसी प्रकार पुरुषने अपनी चेतना प्रकृतिमें आधान किया. **तस्य इन्द्रियाणि भगवतइव आनन्दमयानि, रेतस्तु सच्चिदंशः.** इस प्रकार पुरुषकी जो इन्द्रियें हैं जो कि भौतिक इन्द्रिय नहीं हैं, भगवान्के जैसी ही आनन्दमयी हैं और **रेतः** मानें उनका वीर्य सद् और चिद् का अंश है. **चिदंशएव इति एके, सदंशस्तु प्रकृतेः सकाशात् सम्बध्यते. ततः सा प्रकृतिः महत्तत्त्वम् असूत.** सदंश प्रकृतिमेंसे आता है और उस प्रकृतिसे महत् तत्त्वकी उत्पत्ति होती है. जब कालके कारण प्रकृतिमें गुणका क्षोभ हुआ और जब पुरुषका चैतन्य उसमें प्रवेश हुआ तब प्रथम तत्त्व जो प्रकृतिमेंसे पैदा हुआ वह महत्तत्त्व है. **तस्य शरीरं हिरण्मयं, यथा सूर्यान्तर्गतस्य नारायणस्य. आनन्दसतोः ऐक्ये हिरण्यरूपता भवति** महत्तत्त्वको शास्त्रमें 'सोनेका अंडा' कहा गया है क्योंकि उसीमेंसे ही सारी सृष्टि पैदा हुयी है. जैसे सूर्यके अंतर्गत नारायण बिराजते हैं, ठीक उसी प्रकार जब सत् और आनंद मिलते हैं तब इसको 'सुवर्ण' कहा जाता है. इससे आगे जो प्रक्रिया हुयी वह इस प्रकार है॥१९॥

श्लोक :

विश्वम् आत्मगतं व्यञ्जन् कूटस्थो जगदङ्कुरः ॥
स्वतेजसा अपिबत् तीव्रम् आत्मप्रस्वापनं तमः ॥२०॥

अनुवाद : वह महत् तत्त्व स्वयंको शयनावस्थ करनेवाला तमस्का अपने तेजसे पान करके, प्रकट होनेवाले विश्वको अपने अंदर व्यक्त करनेवाला, जगत्के अंकुर जैसा कूटस्थ होता है।।२०।।

सुबोधिनी : आध्यत्मिकं लक्षयति विश्वम् इति, सहि महान् सर्वजगत्प्रसवहेतु:, विश्वाधारत्वं तस्य लक्षणम्. ब्रह्माण्डस्यापि अंशतो भवति इति कूटस्थः इति उक्तम्. प्रकृतिव्युदासार्थं जगदङ्कुरम् इति. यथा वृक्षस्य प्रथमावस्था अङ्कुरः तथा जगतः. सहि विश्वम् आत्मगतं व्यनक्ति. तत् किं कुर्वन्? इति आकाङ्क्षायाम् आह स्वतेजसा आत्मप्रस्वापनं तमः पिबन् इति. येन तमसा पूर्वं महत् तत्त्वं प्रस्वापितं लयं प्रापितम् आसीत्, तद् मूलभूतं तमः महत् तत्त्वेन पीयते, अन्यथा जगत् केनापि प्रकारेण न अभिव्यक्तं स्यात्. अस्य महत् तत्त्वस्य महात्म्यत्रयम् उक्तं : जगत्प्रकाशकत्वेन, जगज्जनकत्वेन, अतिसमर्थतमोनाशकत्वेन च. त्रीण्यपि एतानि लक्षणानि कारणगुणत्रयसूचकानि सात्त्विक-राजस-तामसानि क्रमेणैव।।२०।।

अनुवाद : चित्तके आध्यात्मिक स्वरूपका लक्षण कहते हैं. यह महत् तत्त्व महान् होनेके कारण सम्पूर्ण जगत्के प्रसवका हेतुरूप बनता है, इसीसे उसका लक्षण विश्वाधार होना है. अंशतः तो ब्रह्माण्डका भी आधार होता है अतः इसको 'कूटस्थ' कहा. उसे प्रकृतिसे पृथक् दिखानेके लिए जगत्का अंकुररूप कहा. जिस प्रकार वृक्षकी प्रथमावस्था अंकुर होती है उसी प्रकार जगत्की प्रथमावस्था महत् तत्त्व है. इसी कारण विश्व उसके भीतर भरा हुआ रहता है. ऐसा क्यों होता है, इसके उत्तरमें कहते हैं, स्वयंको शयनावस्थ करनेवाला तमस्का यह अपने तेजसे पान करता है. सृष्टिके प्रलयके बाद प्रकट होनेवाला तमस् था. उसने पहले महत् तत्त्वको सुला कर प्रलीन कर दिया था, उस मूलभूत तमस्का महत् तत्त्व सृष्टिके आरंभमें पान कर जाता है. यदि ऐसा न करे तो जगत् किसी भी प्रकारसे फिर प्रकट

ही नहीं हो पाता. इस महत् तत्त्वके माहात्म्यमें तीन बात आती हैं : यह तत्त्व जगत्प्रकाशक होता है, जगत्-जनक होता है और अतिसामर्थ्यवान् तमस्का नाशक होता है. महत् तत्त्वके यह तीनों लक्षण उसके कारणके क्रमश: तीन सात्त्विक राजस तामस गुण उनके सूचक हैं॥२०॥

विवेचन : इस महत् तत्त्वरूपी अंडेमें सारा विश्व ब्लू-प्रिन्ट्के रूपमें समाहित रहता है, मानें इस अंडेमें जगत्की सारी विविधताएं एक बीजके रूपमें आ गयी. **विश्वम् आत्मगतं व्यञ्जन् कूटस्थो जगदङ्कुरः** इस प्रकार उस महत् तत्त्वने अपने भीतर सारे जगत्को नेनो-स्केल्में दिखाना शुरू किया. यह महत् तत्त्व कूटस्थ है और जगत्का प्रथम अंकुर है. **स्वतेजसा अपिबत् तीव्रम् आत्मप्रस्वापनं तमः.** इसको स्वर्णमय इसलिए कहा जाता है क्योंकि जब ब्रह्मके सच्चिदंशसे सदंश और चिदंश ऐसे दो भाग हुए, तब उस चिदंशसे पुरुष पैदा हुआ, उसमें चेतना तो है पर ज्ञान नहीं है. और सदंशसे प्रकृति पैदा हुयी, उसमें क्रिया तो है पर ज्ञान नहीं है. इस तरह एक प्रकारका अंधकार है दोनों तरफ. पर जब यह दोनों मिलते हैं तो एक क्रियाशील चेतनामें रूपान्तरित हो जाती है और एक प्रकाशपूंज उत्पन्न होता है जो ज्ञान है. इसको ठीकसे समझनेके लिए हम एक साधारण उदाहरण लेते हैं. बिजली जब टी.वी.में आती है तो रूप प्रकट हो जाता है. अकेले बिजलीमें चेतना है पर रूप नहीं है. इसी तरह टी.वी.में रूप प्रकट करनेका गुण है पर चेतना नहीं है. ऐसे दोनों अर्धवृगल हैं. दोनोंको कॉम्लीमेन्टरी आसिस्टॅन्स्की (परस्पर सहयोगकी) जरूरत है. दोनों एक-दूसरेके बिना अधूरे हैं. इसी तरह सदंशमें क्रियाशीलता है पर ज्ञान नहीं है और चिदंशमें ज्ञान नहीं है सिर्फ चेतना है. जब दोनोंका संयोग होता है तो अंधकार चला जाता है और हिरण्यमय हो जाता है. इसीलिए उसको ‘स्वर्णमय तेज’ कहा जा रहा है.

एक बात समझनेकी यहां यह भी है कि पुरुष चेतना समष्टिरूप है और आपकी चेतना व्यष्टिरूप है. इसी तरह महत् तत्त्व यूनिवर्सल् अंत:करण है और आपके भीतर जो अंत:करण है वह इन्डिविज्युअल् (आपके अकेलेका) है. इस तरह एक यूनिवर्सल् फिनोमिना(समष्टि) होता है और एक इन्डिविज्युअल् (व्यष्टि). उदाहरणके लिए साइन्स्के हिसाबसे पृथ्वीपर सागर नहीं था क्योंकि पृथ्वी एकदम गर्म थी, सूखी हुयी थी. धीरे-धीरे पृथ्वी ठंडी होती गयी और उसके अंदरकी गर्मी भापके रूपमें बाहर आयी. और कुछ समय पश्चात् जब और थोड़ी ठंडक हुयी तो वही भाप बारिशके रूपमें बरस कर सागर बन गयी. अब इसमें यह बात समझनेकी है कि पानी आया कहांसे? धरतीमें था तभी तो वह भाप बन कर बरसा. इसी तरह ब्रह्ममें जो सच्चिद् था वह ठंडे होनेपर सदंश और चिदंश हुए. सदंशसे प्रकृति बनी और चिदंशसे पुरुष बना. जब यह दोनों अंश भाप रूपमें थे तो चिदंशमेंसे ज्ञानकी भाप उड़ गयी और सदंशमेंसे चेतनाकी भाप उड़ गयी. जब दोनों मिले और बरसे तो वापस इनमें जीवन प्रकट हो गया. प्रक्रिया यह है.

सहि महान् सर्वजगत्प्रसवहेतुः, विश्वाधारत्वं तस्य लक्षणम्. यह महत् तत्त्व सर्व जगत्का प्रसवहेतु है मानें सारा जगत् इसमेंसे उत्पन्न हुआ है. जैसे अंडेमेंसे मुर्गी निकलती है. और यह विश्वाधार भी है. **ब्रह्माण्डस्यापि अंशतो भवति इति कूटस्थः इति उक्तम्.** पूरे ब्रह्माण्डका भी यह अंशतः आधार बनता है. **प्रकृतिव्युदासार्थम् जगदङ्कुरम् इति. यथा वृक्षस्य प्रथमावस्था अङ्कुरः तथा जगतः.** जैसे वृक्ष अपनी प्रथम अवस्थामें अंकुररूपमें रहता है ठीक इसी प्रकार यह महत् तत्त्व जगत्का अंकुररूप है. **स विश्वम् आत्मगतं व्यनक्ति. तत् किं कुर्वन्?** जैसे अंकुरमें वृक्षके सारे लक्षण होते हैं; वृक्ष जब-तक बीजरूप होता है तब-तक हमें उसके लक्षण समझ नहीं आते, पर जब वही बीज अंकुरित हो जाता है तो उसमें वृक्षके लक्षण दिखलायी

देने लग जाते हैं. **इति आकाङ्क्षायाम् आह स्वतेजसा आत्मप्रस्वापनं तमः पिबन् इति. येन तमसा पूर्वं महत् तत्त्वं प्रस्वापितं लयं प्रापितम् आसीत्.** जब सृष्टिका लय होता है तो महत् तत्त्व क्रियाशील नहीं रहता और तब सभी जगह अंधकार हो जाता है. जैसे हम यदि मेइन्-स्विच् ऑफ् कर दें तो और कोई भी स्विच्को बंद करनेकी आवश्यकता नहीं रहती. पर आप उसे यदि ऑन् कर देंगे तो जो अंदरकी स्विच् ऑन् है, वहाँकी लाइट् जल जायेगी और बाकी सभी लाइट् नहीं जलेंगी. यही प्रकारका स्वभाव महत् तत्त्वका भी है. इस तरह पहले जो अंधकार था, महत् तत्त्वके प्रकट होते ही सभी जगह उजाला हो जाता है. **तन्मूलभूतं तमः महत्‌तत्त्वेन पीयते, अन्यथा जगत् केनापि प्रकारेण न अभिव्यक्तं स्यात्.** सृष्टिके पूर्व जो मूलभूत अंधकार था वह महत् तत्त्वके प्रकट होनेसे लीन हो जाता है क्योंकि अब उसमें प्रकाशित करनेकी सामर्थ्य आ गयी है. यदि महत् तत्त्वमें यह गुण न हो तो जगत् प्रकट हो ही नहीं सकता. **अस्य महत्तत्त्वस्य माहात्म्यत्रयम् उक्तं जगत्प्रकाशकत्वेन, जगज्जनकत्वेन, अतिसमर्थतमोनाशकत्वेन च.** इस महत् तत्त्वका माहात्म्य तीन प्रकारसे है. पहला, जगत्प्रकाशक सात्त्विक, दूसरा जगद्‌जनक राजस और तीसरा जगद्‌नाशक तामस गुण है. **त्रीण्यपि एतानि लक्षणानि कारणगुणत्रयसूचकानि सात्त्विक-राजस-तामसानि क्रमेणैव.** इन तीनों गुणोंको हम इस प्रकार क्रमशः देख सकते हैं. पहला गुण सात्त्विक, दूसरा राजस और तीसरा तामस है. इस प्रकार प्रकृतिमें रहे हुए तीन गुण महत् तत्त्वमें कैसे अनुगत हो रहे हैं, यह बताया गया है. यहाँ तक तो चित्तके आध्यात्मिक स्वरूपका वर्णन किया गया. अब आगे उसके आधिदैविक स्वरूपको बताते हैं॥२०॥

श्लोक :

यत्-तत् सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम्॥
यद् आहुर् 'वासुदेवा'ख्यं चित्तं तद् महदात्मकम्॥२१॥

अनुवाद : **जो वह भगवत्पदरूप स्वच्छ शान्त सत्त्व गुणोंवाला हो और जिसकी संज्ञा 'वासुदेव' है वह चित्त महदात्मक होता है।।२१।।**

सुबोधिनी : **आधिदैविकं लक्षयति यत् तद् इति. तस्य आधिदैविकं रूपं वासुदेवः इति. वासुदेवाविर्भावस्थानत्वात्. वसुदेवे आविर्भवतीति वासुदेवः. विशुद्धं सत्त्वं वसुदेवः, तदेव अस्य आधिदैविकं रूपं, यत् सर्वोपास्यत्वेन प्रसिद्धम् तदेव एतत्. सत्त्वं गुणो यस्य. सत्त्वस्यापि सत्त्वं, तस्य रूपत्रयम् आह सच्चिदानन्दत्वाय. तत्र सद्रूपताम् आह स्वच्छम् अतिनिर्मलं, शान्तं चिद्रूपं, ज्ञानमेव हि शान्तरूपं, भगवतः पुरुषोत्तमस्य पदम् आनन्दरूपम्. एवं सच्चिदानन्दरूपम्. सत्त्वस्य सत्त्वम् तत् चित्तं, सर्वेषु प्राणिषु चेतनारूपेण स्थितम्. तस्य उपासनार्थं नामान्तरम् आह यद् आहुः 'वासुदेवा'ख्यम् इति. 'वासुदेवः इति आख्या यस्य. वासुदेवशरीररूपत्वाद्, वासुदेवाधारत्वाद् वा यस्माद् इति विग्रहः. आहुः इति प्रमाणम्. ननु चित्तस्य तादृशस्य उत्पत्तिः न उक्ता इति आशङ्क्य आह तद् महदात्मकम् इति. महत्-तत्त्वरूपमेव चित्तं, तेन महदुत्पत्त्यैव तस्य उत्पत्तिः उक्ता इति अर्थः ।।२१।।**

अनुवाद : आधिदैविक चित्तका लक्षण बताते हैं : उसका आधिदैविक रूप वासुदेव होता है, वासुदेवके आविर्भावका स्थान होनेके कारण. वासुदेवका आविर्भाव वसुदेवमेंसे होनेके कारण. वसुदेव विशुद्ध सत्त्वरूप होता है, वह (वासुदेव) ही इसका आधिदैविकरूप होता है, जो कि सर्वोपास्य होनेके रूपमें प्रसिद्ध है. वह ही यह है कि सत्त्वगुण जिसका हो. सत्त्वका भी सत्त्व, उसके तीन रूप दरसाये गये हैं, वह सच्चिदानन्द है यह दरसानेके लिए. उन तीनमें पहली सद्रूपता स्वच्छ = अतिनिर्मल कह कर दरसायी, चिद्रूपताको शान्त कह कर, क्योंकि ज्ञान ही तो शान्त रूप हो सकता है. भगवान् = पुरुषोत्तमका पद = आनन्दरूप होता है. इस प्रकार सच्चिदानन्दरूप है. ऐसे ही

सत्त्वका सत्त्व, चित्त जो सभी प्राणियोंमें चेतनारूप स्थित होता है. उपासना करनेके लिए उसका दूसरा नाम कहते हैं जिसकी संज्ञा 'वासुदेव' है, 'वासुदेव' ऐसी जिसकी आख्या है, वासुदेवके शरीररूप होनेके कारण, अथवा वासुदेवके आधार होनेके कारण ऐसा कहा गया है. 'पद'के प्रयोग द्वारा प्रमाण दरसानेमें आया. ऐसे चित्तकी, परन्तु, उत्पत्ति कहाँ दिखलायी गयी है? उसका समाधान देते हैं कि वह महदात्मक है, अर्थात् चित्त महत् तत्त्वरूप है, इस लिये महत् तत्त्वकी उत्पत्तिके वर्णनमें वासुदेवात्मक चित्तकी उत्पत्ति भी वर्णित की गयी, ऐसा मान लेना चाहिये॥२१।

विवेचन : **यत् तत् सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम्.** इसमें जो सत्त्वांश है, वह भगवान्‌का पद है मानें भगवान् महत् तत्त्वमें बिराजते हैं. **यद् आहुर् 'वासुदेवा'ख्यं चित्तं तद् महदात्मकम्** इसीलिए उसको 'वासुदेवात्मक चित्त' कहते हैं. भागवतमें यह आता है कि जब भगवान् भूतलपर प्रकट होते हैं तो उनका शरीर अपने जैसा सत्त्व-रज-तम जैसे त्रिगुणका बना नहीं होता, अपितु शुद्ध सत्त्वात्मक होता है. इस प्रकार जितने भी अवतारोंके शरीर हैं वे शुद्ध सत्त्वात्मक हैं. अब वे राम हो, कृष्ण हो, महादेव हो, दुर्गा हो, वे जब प्रकट होते हैं तो उनका शरीर जो दिखलायी देता है, वह राजस-तामस गुण लिए नहीं होता, केवल शुद्ध सत्त्वगुण लिए होता है. इसीलिए उन्हें 'वासुदेव'' कहे जाते हैं.

'वासुदेव' शब्दकी etmology समझो. 'वसु' मानें समृद्धि. जो समृद्धिका देव है, वह 'वसुदेव'. जो वसुदेवमें पैदा होता हो, वह वासुदेव. जैसे पृथ्वीको 'वसुधा' कहा जाता है. मानें अपनी सारी समृद्धि पृथ्वीने धारण कर रखी है. कृष्णके पिताका नाम 'वसुदेव' है, इसीसे उनका नाम 'वासुदेव' हुआ. महाप्रभुजीने दशम स्कंधमें खुलासा किया है कि भगवान् जब कंसके कारागृहमें प्रकट हुए तो

प्रकट होनेसे पहले उन्होंने वसुदेवजीके शरीरको शुद्ध सत्त्वात्मक बनाया. उसके बाद कृष्णरूपसे बाहर प्रकट हुए. इसीलिए योगकी प्रक्रियाके द्वारा हम जब कृष्णका ध्यान धरते हैं तो चित्तके सत्त्वांशमें भगवान् प्रकट होते हैं. इसीलिए हम उनको ‘वासुदेव’ कहते हैं. इसीलिए महाप्रभुजी सिद्धान्तमुक्तावलीमें कहते हैं “**कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता, चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा**” (सि.मु.१-२) सेवा चित्त तक पहुंचे तब मानसी सेवामें परिवर्तित होगी. ऐसा होनेकी प्रक्रियाको समझें. पहले सेवा मनमें जायेगी, उसके बाद बुद्धिमें जायेगी. उसके बाद अहंकारमें जायेगी और अंततः जब चित्तमें जायेगी तब “चेतस्तत्प्रवणं सेवा” होगी. जब चित्त सेवामें प्रवण हुआ तो वहां वासुदेव प्रकट हो जायेगा और फिर सेवा मानसी रूपसे होने लगेगी. जब-तक चित्त सेवामें प्रवण नहीं हुआ हो तब-तक मनसे की जाती सेवा मानसी सेवा न हो कर ‘ध्यान’ ही कहा जायेगा. मानसी सेवा तभी होगी जब चित्तमें वासुदेव प्रकट हुए हों. जो वस्तु चित्तमें इन्स्टॉल् नहीं है, उसे मन सेवन नहीं करता. ध्यान धरनेके लिए अवश्य लेता है.

आप अभी किसी भी वस्तुका ध्यान धरो. अधिक-से-अधिक आप तीन मिनिट् तक उसका ध्यान धर सकते हैं. चौथे मिनिट्में तो मन कहीं और ही चला जायेगा. मन उसका सेवन नहीं कर रहा है. वह तो उसकी आवश्यकता अनुसार उपयोगमें ले रहा है, बिलकुल यूज़् एन्ड् थ्रोके सिद्धांतके अनुसार. पर जब कोई वस्तु चित्तमें चढ़ जाती है तो मन उसका सेवन शुरू कर देता है. इस तरह अपनी सेवा, बुद्धि और अहंकार की प्रक्रियासे जब चित्तमें चली जाये तो तुरंत चित्तमें वासुदेव प्रकट हो जाते हैं. जैसे मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा करें तो उसमें अधिदेव प्रकट होते हैं. उसी प्रकार चित्तमें जब सेवा जाती है तो प्रभु चित्तमें प्रकट हो जाते हैं. और चित्त क्योंकि सत्त्वरूप है और भगवान्का स्थान है, इसलिए वहां वासुदेव

प्रकट होते हैं. तब वे मानसी सेवाका विषय हो जाते हैं.

आजकल बहुतसे लोगोंको यह भ्रमणा है कि मनसे ध्यान धरें तो वह मानसी सेवा है. अरे, यह मानसी सेवा नहीं है. क्योंकि सेवाका अर्थ होता है relishment मानें जिसका हम आनंद ले पायें. इस प्रकारकी सेवाका एक चिरकालिक मूल्य है. उपयोगमें ला कर फेंक देनेकी कथा नहीं है. जैसे टॅक्सीका हम उपयोग करके उसे छोड़ देते हैं. पर पैरकी कीमत हमारी स्थायी है. उसे हम अपना समझ कर, काममें न आनेपर भी छोड़ नहीं देते. उसकी हम अच्छी देख-भाल करते हैं. मन तो हमेशा प्रत्येक विषयको उपयोगमें लानेके बाद फेंक देनेके मूड्में ही रहता है. वह बना ही इसलिए है. इससे अधिक यदि एक जगहपर स्थिर रहेगा तो सब गड़बड़ हो जायेगी. मनकी इतनी विचित्र स्थिति है कि यदि एक जगहपर टिक जाये तो हम दुनियाके कामके रह नहीं जायेंगे. हमें तो फिर किसी दूसरी वस्तुका ख्याल भी नहीं आयेगा.

हमें दूसरी वस्तुका ध्यान कब आता है? देखो, आंख रूपको देखती है, कान ध्वनिको सुनता है, नाक गंधको सूंघती है. सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयके साथ बंधी हुयी रहती हैं. उस समय आपको किसी दूसरेका ख्याल किस प्रकार आयेगा? समझो कि आप रोड्पर चल रहे हो और आपका ध्यान किसी साइन्-बोर्डके ऊपर है. इसका अर्थ है कि मन तो आपका साइन्-बोर्डसे बंध गया. पर मन वहां अटक जाये तो पीछेसे कोई कार आ रही है, यह आपको कैसे पता चलेगा! पर मन ऐसे समयमें करता यह है कि "चलो हटो, पीछे कार आ रही है." इस तरह मनको तो सदा सतर्क रहनेकी आवश्यकता है. वह तो बना ही इसलिए है. पर समझो कि मन किसीको पकड़ ले और छोड़े नहीं, तो वह स्थिति मानसी सिद्ध होनेकी है. वही स्थिति भक्तिमें 'व्यसनावस्था' कही

जाती है. पर ऐसा होता तब है जब बात चित्तमें बैठी हो. मनसे चित्तमें गया है तो मन उसे छोड़ सकता है. पर चित्तसे मनमें लौट आया तो मन उसे छोड़ नहीं पाता. इन्द्रियोंसे मनमें गया हो तो उसे उपयोग करके छोड़ देता है, पर भीतरसे मनमें आये तो स्थिर हो जाता है. एक कारड्राइवर्को कितना अधिक ध्यान रखना पड़ता है; स्टीयरिंग्का, क्लच्का, ब्रेक्का, एक्सीलरेटर्का, गीयर्का, रोड्पर आते ट्रेफिक्का, पैदल चलनेवालोंका, रोड् साइन्का! यदि मन चंचल न हो तो कैसे इतनी बातोंका ध्यान रख सकता है? मन तो एक ही समयमें कई सारे कार्य कर सकता है. और बुद्धिमें तो जो चढ़ गया वह आसानीसे निकलता नहीं है. अहंकारकी और भी खराब स्थिति है. आपके अहंकारमें यह चढ़ गया है कि आप आप ही हो तो वह निकलता ही नहीं है. अहंकार हर वस्तुको पकड़ कर रखता है. 'संकर्षण' मानें हर वस्तुको अपनी ओर खींच लेता है. मन वस्तुको अपनी ओर खींचता है और कुछ देर बाद फेंक देता है. चित्त सभीका संग्रह करके रखता है. जैसे एक कहावत है कि संग्रह किया हुआ तो साँप भी काम आ जाता है. अच्छी-बुरी, सभी प्रकारकी वस्तुओंको चित्त अपने भीतर संग्रह करके रखता है. चित्तमें यदि भगवान् प्रकट हो जायें और फिर चित्त मनको आदेश दे, तो मन उस वस्तुको फेंक नहीं सकता क्योंकि वह भीतरसे आयी बात है.

यद् आहुर् 'वासुदेवा'ख्यं चित्तं तद् महदात्मकम् जो वासुदेवात्मक नॅनो-पार्टिकल् चित्त है वह महत्का एक छोटासा प्रतिरूप है. हम पुरुषके एक सूक्ष्म अंश हैं, इसी प्रकार चित्त महत्का एक छोटासा अंश है. **तस्य आधिदैविकं रूपं वासुदेवः इति. वासुदेवाविर्भावस्थानत्वात्.** चित्तका आधिदैविक रूप वासुदेव है. **वसुदेवे आविर्भवतीति वासुदेवः.** वसुदेवमें जिसका आविर्भाव होता हो वह वासुदेव है. **विशुद्धं सत्त्वं वसुदेवः** वसुदेव विशुद्ध सत्त्व है. **तदेव अस्य आधिदैविकं रूपं यत्**

सर्वोपास्यत्वेन प्रसिद्धं तदेव एतत्. सत्त्वं गुणो यस्य. सत्त्वस्यापि सत्त्वं, तस्य रूपत्रयम् आह सच्चिदानन्दत्वाय. तत्र सद्रूपताम् आह स्वच्छम् अतिनिर्मलं, शान्तं चिद्रूपं, ज्ञानमेव हि शान्तरूपं, भगवतः पुरुषोत्तमस्य पदम् आनन्दरूपम्. यह आधिदैविकरूप सबका उपास्य है, यह तो प्रसिद्ध ही है. उसके भी तीन रूप हैं सत्-चित्-आनंद. जिसमें सद्रूप अति स्वच्छ है. 'स्वच्छ' मानें अतिनिर्मल. जो चिद्रूप है वह अतिशान्त है, क्योंकि उसमें किसी प्रकारकी खलबलाहट नहीं होती. आप जानते ही हो कि शो-रूम्में हलचल होती है पर क्या स्टोर्-रूम्में हलचल होती है? उसमें तो सारी वस्तुएं शान्तिसे पड़ी रहती हैं. लेकिन शो-रूम्में वस्तु आती है, खरीदार उसे ले जाता है फिर और वस्तु आ जाती है. इस तरह आवर्तन चलता रहता है. **ज्ञानमेव हि शान्तरूपं, भगवतः पुरुषोत्तमस्य पदम् आनन्दरूपम्.** ज्ञान शान्तरूप है. चित्त पुरुषोत्तमके रहनेका स्थान है इसी कारण आनंदरूप है. क्योंकि शुद्ध सत्त्वमें आनंदरूप भगवान् बिराजते हैं. 'सात्त्विक'का अर्थ ही होता है जो शान्त हो, सदा प्रसन्न चित्त रहता हो. ऐसे व्यक्तिके हृदयमें भगवान् बिराजते हैं. **एवं सच्चिदानन्दरूपम्. सत्त्वस्य सत्त्वं तत् चित्तं,** सत्त्वका सत्त्व, प्राणीके चित्तमें चेतनारूप रहता है. अपनी चेतना अभी शुद्ध चेतना नहीं है. यह चेतना अपने चित्तमें प्रविष्ट है. चित्त चेतनाको ढोता है. जो चेतना हमारे चित्तके भीतर है वह विशुद्ध चेतना है और चित्तको अपना शरीर बना कर रहती है.

चित्तको आप इस प्रकारसे भी समझ सकते हो कि प्रत्येक इलॅक्ट्रोनिक् आइटम्में एक गुड्-कन्डक्टर् होता है. बाहरसे बिजली सबसे पहले इसीमें आती है. इसके बाद ही उस इलॅक्ट्रोनिक् आइटम्में सारे फन्क्शन्स् चालू होते हैं. उस इलॅक्ट्रोनिक् आइटम्की बॉडी बॅड्-कन्डक्टर् होती है क्योंकि यदि वह भी गुड्-कन्डक्टर् हो तो लोगोंको करन्ट् लगेगा. यदि इलॅक्ट्रोनिक् आइटम्में गुड्-कन्डक्टर् न हो तो चलेगा ही नहीं. बस चित्तका यही रोल् है कि यह अपनी चेतनाके लिए

गुड्-कन्डक्टर् है. इसीलिए यह अपने शरीरके हर फंक्शन्को चालू कर सकता है.

सर्वेषु प्राणिषु चेतनारूपेण स्थितम्. तस्य उपासनार्थं नामान्तरम् आह यद् आहुर् 'वासुदेवा'ख्यम् इति. यह चेतना सब प्राणियोंमें स्थित है और उसकी उपासनाके लिए उसका नाम है 'वासुदेव'. **'वासुदेवः' इति आख्या यस्य. वसुदेवशरीररूपत्वाद्, वसुदेवाधारत्वाद् वा. यस्माद् इति विग्रहः. आहुः इति प्रमाणम्. ननु चित्तस्य तादृशस्य उत्पत्तिः न उक्ता इति आशङ्क्य आह तद् महदात्मकम् इति.** ऐसा चित्त कहां प्रकट होता है, यह तो आपने नहीं बताया. **महत्-तत्त्वरूपमेव चित्तं, तेन महदुत्पत्त्यैव तस्य उत्पत्तिः उक्ता इति अर्थः.** इसे बतानेकी आवश्यकता कहां है क्योंकि महत् तत्त्वका जो अंश है, उसे ही तो हम 'चित्त' कह रहे हैं. महत्की उत्पत्ति होनेसे उसकी उत्पत्ति तो अपने आप हो गयी. इसलिए इसका अलगसे वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है. अब चित्तका आधिभौतिकरूप बता रहे हैं॥२१॥

श्लोक :

स्वच्छत्वम् अविकारित्वं शान्तत्वम् इति चेतसः ।।
वृत्तिभिः लक्षणं प्रोक्तं यथा अपां प्रकृतिः परा॥२२॥

अनुवाद : **चित्तकी स्वच्छता अविकारिता और शान्तता की वृत्तियोंके आधारपर लक्षण कहे गये हैं जैसे जलका मूलस्वभाव है वैसे॥२२॥**

सुबोधिनी : **आधिभौतिकं लक्षयति स्वच्छत्वं निर्मलत्वम्, अविकारित्वं सर्वविकाररहित्यं, शान्तत्वं ज्ञानरूपत्वम्. बुद्धि-मनो-अहङ्कार-व्युदासार्थं त्रीणि विशेषणानि. बुद्धिः ज्ञानरूपापि विषयाकारेति न स्वच्छा, चित्तन्तु निर्विषयं केवलात्मावबोधरूपतमिति स्वच्छम्. मनस्तु विकारात्मकं स्पष्टमेव. शान्तत्वं न अहङ्कारस्य, सात्त्विकाहङ्कारस्य तथात्वेऽपि पदार्थस्य एकत्वात्,**

शान्तघोरविमूढात् केवलशान्तत्वं व्यावर्ततएव. अतएव चेतसो वृत्तिभिः लक्षणं प्रोक्तं, न एताः वृत्तयो अहङ्कारादेः भवन्ति. ननु चित्तमपि बुद्ध्यादिभिः विषयग्रहणे कलुषितं जायते, अन्यथा तन्निरोधे यत्नो न कर्तव्यः स्यात्. अतः आह यथा अपाम् इति. यद्यपि फेनतरङ्गादयोऽपि अपां भवन्ति, तथापि न तासां सहजस्वभावो अयं, किन्तु वाय्वादिकृतं, स्वभावतो निर्मलमेव. अतएव परा प्रकृतिः अपां स्वच्छैव. लक्षणंतु अकृत्रिमम्, औपाधिकास्तु कृत्रिमाः. नहि कदाचिदपि पृथिवी निर्मला भवति, वायुः वा विकाररहितो भवति, तेजो वा शान्तं भवति. अतः तत्सम्बन्धे अपां तत्-तद्भावापत्तिः॥२२॥

अनुवाद : स्वच्छता अर्थात् निर्मलता. अविकारिता = किसी भी प्रकारके विकारोंसे रहित होना. शान्तता अर्थात् ज्ञानरूपता. ये विशेषण मन बुद्धि अथवा अहंकार से पृथक् करनेके लिए कहे गये हैं. बुद्धि जो कि ज्ञानरूपा होती है तो भी अपने विषयके आकारसे रंजित होनेके कारण स्वच्छ नहीं मानी जा सकती. चित्त निर्विषय केवल आत्मावबोधरूप होनेके कारण स्वच्छ होता है. मन तो स्पष्ट तौरपर विकारात्मक ही होता है. वैसे हि अहंकार कभी शान्त हो नहीं सकता, फिर भी सात्त्विक अहंकार शान्त होता है. तो भी शान्त घोर और विमूढ़ ऐसे तीन स्वभाववाले अहंकारकी शान्तता और चित्तकी एकान्तिक शान्तता के बीच अंतर होनेसे, चित्त, अहंकारसे पृथक् रहता है. इसी कारण चित्तकी अपनी वृत्तियोंके अधारपर लक्षण कहते हैं, ऐसी वृत्तियाँ अहंकार आदिकी नहीं हो सकती. शंका कर रहे हैं कि चित्त भी बुद्धि आदिके द्वारा उन-उन विषयोंको ग्रहण करता हो तो कलुषित तो होगा ही. नहीं तो उसके निरोधकी भी आवश्यकता क्यों होनी चाहिये? उसके समाधानमें कहते हैं जैसे जलका मूलस्वभाव होता है वैसे. जैसे झाग तरंग आदि जलमें प्रकट होते हैं, वह भी जलका सहज स्वभाव नहीं होता किन्तु वायु आदिके द्वारा बन जाता है, स्वभावसे तो जल निर्मल ही होता है. इसीसे मूलस्वभाव

तो जलका स्वच्छ ही होता है. लक्षण तो कृत्रिम स्वभावके आधारपर दिये नहीं जा सकते, औपाधिक स्वभाव कृत्रिम ही होता है. पृथ्वी कभी निर्मल नहीं हो सकती. वायु कभी विकाररहित हो नहीं सकता और तेज कभी शान्त हो नहीं सकता. अतः जल जिसके साथ मिलता है वैसा स्वभाव धारण कर लेता है और वैसा ही बन जाता है॥२२॥

विवेचन : चित्तका आधिभौतिक स्वरूप बता रहे हैं कि **स्वच्छत्वं निर्मलत्वम्, अविकारित्वं सर्वविकारराहित्यं** चित्त स्वच्छ है निर्मल है सर्वविकाररहित है. मानें चित्तके ॲन्गल्से कोई वस्तु कार्य नहीं है, सब कारणरूप ही है. बुद्धिके ॲन्गल्से कार्यरूप है. इस कारणसे ही मैंने आपको पहले बताया था कि अपना मत subjective realism (आनुभविक यथार्थवाद)का है. जो कुछ भी बाहर है, वह चित्तमें पहलेसे ही है. जो चित्तमें है वह हमें बाहरसे अनुभव हो रहा है. जो चित्तमें नहीं है उसका बाहर अनुभव हो ही नहीं सकता. उदाहरणके लिए कोई वस्तु सुंदर है अथवा असुंदर है, इसका कन्सॅप्ट् (प्रत्यय) यदि आपके चित्तमें है तो ही आपको वस्तु सुंदर अथवा असुंदर दिखलायी देगी! यदि चित्तमें ही सुंदरताका कोई कन्सॅप्ट् नहीं है तो सुंदर अथवा असुंदर कैसे दिखलायी देगी. एक मजाकिया उदाहरण देता हूं. भैंसेको क्या कभी ऐश्वर्या राय सुंदर दिखायी देगी? उसे तो भैंस ही सुंदर दिखायी देगी. क्योंकि उसके चित्तमें ऐश्वर्या रायकी सुंदरता, सुंदरता है ही नहीं. इस तरह चित्तमें जो है, वह ही बाहर दिखलायी देता है. अभिषेक बच्चनको क्या भैंस सुंदर लगेगी? उसे तो ऐश्वर्या राय ही सुंदर लगेगी. आपने कभी ढोकला खाया हो और आपके चित्तमें उसका स्वाद हो तो ही आप उसे दुबारा खा सकते हो. आपने कभी खाया ही न हो तो आप उसे नहीं खा सकोगे. आपने कभी वॅस्टर्न् क्लासिकल् बीथोवन्का संगीत सुना है? आपके चित्तमें नहीं है तो आपको कभी अच्छा

नहीं लगेगा. क्योंकि अपने चित्तमें वैसा संगीत, संगीत है ही नहीं, इसलिए वह हमें अच्छा नहीं लगता. मेरा एक अमेरिकन् दोस्त था जो कि गिटारिस्ट् था, उसे मैं अली अकबरके सरोदके प्रोग्राम्में ले गया. उन्होंने वहां इतना सुंदर बजाया कि मुझे तो वाह करनेका भी होश नहीं रहा, एकदम तन्मय हो गया. मैने उस दोस्तसे पूछा कि ‘‘कैसा लगा ?’’ वह बोला ‘‘Goswami, I am getting suffocated.’’ I asked him ‘But why?’’ He said ‘In our Country, such music is played in the funeral procession of our president’’ उसे वह संगीत कोई मर जाये, उस समय जो बजाया जाता है, वैसा लगता था. अपने शास्त्रके हिसाबसे वह सिंधु भैरवी थी. वह तो बहुत मीठा राग है. पर उसे वह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा.

शान्तत्वं ज्ञानरूपत्वम्. बुद्धि-मनो-अहङ्कार-व्युदासार्थं त्रीणि विशेषणानि. बुद्धिः ज्ञानरूपापि विषयाकारेति न स्वच्छा, चित्तन्तु निर्विषयं केवलात्मावबोधरूपम् इति स्वच्छम्. ऐसा है कि बुद्धि कभी भी स्वच्छ नहीं रहती. क्योंकि बुद्धि तुरंत बाहरके विषयसे रंगा जाती है. किसी भी विषयको आप जिस तरहसे देखना चाहते हो, बुद्धि उसी प्रकारकी विषयाकार हो जाती है. मन हमेशा विकारयुक्त होता है क्योंकि वह किसी भी विषयपर टिकता ही नहीं है. अपना अहंकार ज्ञानरूप नहीं होता है. वह सभीको अपनी ओर खींचता है, इस कारण मोहरूप होता है. अहंकारको पृथक् करनेके लिए ही यहाँ विशेषण कहा है. देखो, यहां विशेषणका रोल् यहां आ रहा है. चित्तको ये तीन (निर्विषय, केवलात्मबोध, स्वच्छ) विशेषण क्यों दिये? क्योंकि चित्तको जब स्वच्छ कह रहे हैं तो वह बुद्धि नहीं हो सकता क्योंकि बुद्धि कभी स्वच्छ नहीं रह सकती. इसलिए चित्त बुद्धिसे अलग है. चित्तको जब अविकारी कह रहे हैं तो उसको मनसे अलग किया. क्योंकि मनमें सदा विकार ही आते रहते हैं. मनकी तो ऐसी स्थिति है कि वह आधी रोटीपर शाक ले कर तैयार

ही बैठा होता है विकारित होनेके लिए. आप कुछ भी बातका सुझाव दो तो मन तुरंत उसे माननेके लिये तैयार हो जाता है. पर धारण कुछ भी नहीं करता. यह उसकी एक विलक्षण बात है. और अहंकार तो ज्ञानरूप होता नहीं है, मोहरूप ही होता है.

बुद्धि ज्ञानरूप होते हुए भी विषयसे विषयाकारमें आकारित होनेके कारण स्वच्छ नहीं रह जाती. और चित्त किस प्रकारका होता है? उसमें केवल अपना प्रतिबिंब ही दीखता है और कुछ नहीं. **मनस्तु विकारात्मकं स्पष्टमेव.** मनकी विकारात्मकता तो स्पष्ट ही है. उसमें कहने जैसा कुछ है नहीं. **शान्तत्वं न अहङ्कारस्य,** अहंकार किसी भी समय शान्त हो नहीं सकता. क्योंकि **सात्त्विकाहङ्कारस्य तथात्वेऽपि पदार्थस्य एकत्वात्, शान्तघोरविमूढात् केवलशान्तत्वं व्यावर्ततएव.** अहंकारके भी तीन रूप हैं सात्त्विक राजस तामस, जो आगे बतायेंगे. उनमेंसे सात्त्विक अहंकार थोड़ा ज्ञानरूप होता है. पर राजस और तामस अहंकार ज्ञानरूप होते नहीं हैं. इस प्रकार केवल शान्तता अहंकारका लक्षण नहीं हो सकता. **अतएव चेतसो वृत्तिभिः लक्षणं प्रोक्तं,** इस तरह यह तीनों चित्तकी वृत्तियाँ हैं. **न एताः वृत्तयो अहङ्कारादेः भवन्ति.** इस तरहकी क्रिया अहंकारके द्वारा नहीं होती. **ननु चित्तमपि बुद्ध्यादिभिः विषयग्रहणे कलुषितं जायते,** शंका करते हैं कि बुद्धि यदि किसी विषयको ग्रहण करे तो उसकी कलुषितता चित्त तक पहुंचती है कि नहीं? **अन्यथा तन्निरोधे यत्नो न कर्तव्यः स्यात्.** यदि चित्त तक पहुंचती ही नहीं है तो फिर चित्तका निरोध क्यों करना चाहिये, बुद्धिका ही करना चाहिये. योग कहता है कि **"योगः चित्तवृत्तिनिरोधः"** (यो.सू.१।२) इस तरह किसका निरोध करना चाहिये, बुद्धिका कि चित्तका? यदि चित्त कलुषित होता ही नहीं है तो उसे नियंत्रित करनेसे क्या लाभ. बुद्धि कलुषित होती है तो उसे ही कन्ट्रोल् करना चाहिये! इसके उत्तरमें कहते हैं **यद्यपि फेनतरङ्गादयोपि अपां भवन्ति, तथापि न तासां सहजस्वभावो अयं, किन्तु वाय्वादिकृतं,**

स्वभावतो निर्मलमेव. जैसे जलमें भी फेन और तरंग आती हैं; एक बात समझो कि शुद्ध जलमें फेन नहीं आती है. उसमें कुछ मिलावट हो तभी फेन आती है. फेन आना जलका स्वभाव नहीं होता, किसीके प्रभाववश उसमें यह गुण आता है. वायु उसमें घुस गयी है, जो ऊपर आना चाहती है. पर स्वभावसे तो वह निर्मल ही है. इसी तरह चित्तमें यदि किसी प्रकारकी कलुषितता आती है तो वह इसका स्वभाव नहीं है. ऊपरी तौरपर दिखायी देता है. आप देखते ही होगे कि जलमें जो फेन आता है वह उसकी सतहपर ही दिखायी देता है. समुद्रमें हम जितना कचरा डालते हैं समुद्र हमें वापस लहरोंके द्वारा भेज देता है. जो उसका है नहीं अथवा जिसको उसने अपने स्वभावके रूपमें स्वीकार नहीं किया है, उसे सतहपर ला कर आपको वापस कर देता है.

अब्राहम लिंकन्का एक बहुत ही मजेदार किस्सा है. उनके एक प्रतिद्वंदी थे. दोनों एक समय बागमें घूम रहे थे और उस प्रतिद्वंदीने लिंकन्को गाली दी. लिंकन्ने बहुत बड़ी बात उस समय कही. वे बोले "आप मुझे कुछ भेंट दें और मैं नहीं लूं तो वह किसके पास वापस जायेगी?" उस व्यक्तिने उत्तर दिया "मेरे पास" इसपर लिंकन् बोले "आपने जो मुझे गाली दी, उसे मैं नहीं स्वीकारता." **अतएव परा प्रकृतिः अपां स्वच्छैव.** इसकी पराप्रकृति तो स्वच्छ ही है. **लक्षणंतु अकृत्रिमम्, औपाधिकास्तु कृत्रिमाः.** लक्षण अकृत्रिममें होता है. जो कृत्रिम होते हैं वे यातो उपलक्षण होते हैं अथवा उपाधि होती है. लक्षण तो अभिन्न अंग होता है किसी भी पदार्थका. औपाधिक जो भी गुणधर्म होते हैं वे तो उपाधिसे अलग किये जानेपर वस्तु अपनी स्वाभाविक स्थितिमें ले जाते हैं. जैसे इस बल्बमेंसे यह दूधिया काँच हटा दे तो उस प्रकारकी दूधिया रोशनी भी नहीं आयेगी. **नहि कदाचिदपि पृथिवी निर्मला भवति,** इसी तरह पृथ्वी कभी भी निर्मल नहीं होती. इसका कारण है कि

पृथ्वी सारे कचरेको पचा सकती है. पंचतत्त्वोंमेंसे और कोई भी कचरेको पचा नहीं सकता. अग्नि जला देती है. जल वापस फेंक देता है, वायु उड़ा देती है, आकाशमें तो जा ही नहीं सकता. इस तरह पृथ्वीका एक गुण है कि सारे कचरेको पचा सकती है और इतना ही नहीं उसे रि-साइकल् करके समृद्धिमें बदल सकती है. यह गुण केवल पृथ्वीमें ही है कि री-साइकलिंग्की प्रक्रियासे कचरेको वापस पृथ्वी बना सकती है. बिल्कुल माँकी तरह है. जो अपने बच्चेकी सारी गंदगीको सहन करती है. **नहि कदाचिदपि पृथिवी निर्मला भवति, वायुः वा विकाररहितो भवति, तेजो वा शान्तं भवति. अतः तत्सम्बन्धे अपां तत्-तद्भावापत्तिः** वायु कभी भी विकाररहित हो ही नहीं सकती. जहांसे भी जाती है, उसकी गंध अपनेमें समा कर जाती है. यही बात तेजके लिए है, वह कभी शान्त नहीं हो सकता. शान्त हो तो तेज नहीं है. पानीका तेजसे स्पर्श होता है तो पानी भी तेज बन जाता है. पानीका वायुसे संबंध होता है तो भाप बन जाता है और पृथ्वीसे संबंध होता है तो मलिन हो जाता है. पर ध्यान रहे कि वह पानीका अपना स्वभाव नहीं है. पानी उन उपाधियोंके कारण वह गुणधर्म ग्रहण कर लेता है.

एक शायरने कहा है *“न करदा गुनाहोंमें गिरफ्तार हुआ हूं, अब देखिये इस जुर्मकी मिलती है सजा क्या”* जो गुनाह मैंने नहीं किया उसके लिए मुझे गिरफ्तार किया गया है. अब पता नहीं मुझे कौनसी सजा मिलेगी. कोई गुनाह किया हो तो उसकी सजा तो पता चलती है. पर कुछ किया ही नहीं है तो उसकी सजाका कैसे पता चले? इसी तरह जलके साथ ऐसा ही कुछ है. बेचारा कोई गुनाह करता नहीं है पर सारे गुनाहोंकी सजा उसे ही मिलती है कि गंदा पानी है, गरम पानी है, फेनवाला पानी है. पानीका स्वभाव तो है स्वच्छ करना. किसी और वस्तुको यदि स्वच्छ करना है तो पानीका ही रोल् अधिक है. पर पानीको ही

हम यदि गंदा कर दें तो वह क्या कर सकता है? चित्त भी पानी जैसा निर्मल है.

महत् तत्त्व समझा कर अब अहंकार समझा रहे हैं. अहंकार कैसे आ रहा है, उसका मनोवैज्ञानिक क्रम समझो. जैसे बल्बका प्रकाश है. उससे प्रत्येक वस्तु प्रकाशित होती है, दिखलायी देती है. बल्ब् स्वप्रकाशित होता है और दूसरेको भी प्रकाशित करता है. चेतना स्वप्रकाशित होती है. यदि स्वप्रकाशित न हो तो किसी भी और वस्तुको प्रकाशित नहीं कर सकती. नींदमेंसे उठनेपर भी, यदि किसीने कोई धमाका करके न उठाया हो तो सबसे पहले हमें अपना खयाल आता है. उसके बाद ही जो हमें दिखलायी दे रहा है उसका खयाल आता है. इस प्रकार महत् तत्त्व चिद्-अचिद् ग्रंथी है मानें वह चेतन और जड़ का मिला-जुला रूप है. इसी कारण उसमें सबसे पहले सॅल्फ्-अवेयरनेस् (आत्मसंवेदनशीलता) जाग्रत होती है. उस जाग्रत हुयी सॅल्फ्-अवेयरनेस्का नाम ही 'अहंकार' है.

मनोवैज्ञानिक रूपसे यह बात अभी सिद्ध नहीं हुयी है; उसका कारण भी थोड़ा जटिल है. क्योंकि जो बालक गर्भमें है, उसको अपने होनेका अहसास पहले होता है कि अपनी माँके गर्भका अहसास पहले होता है, यह एक मडल्ड् इश्यु है जिसका उत्तर अभी मनोविज्ञानको नहीं मिला है. गर्भसे बाहर आनेके बाद तो उसमें बहुत सारी अवेयरनेस् पहलेसे ही पैदा हो गयी होती हैं. गर्भमें बालक सुखी भी होता है और दुःखी भी होता है. सुख-दुःख उसे अपने कारण नहीं होता है. अपितु माँ किस प्रकारसे बैठी है, वह आराममें है कि नहीं, या उसे कोई घुटन महसूस हो रही है. ऐसे सभी कारणोंसे उसे सुख-दुःख होता है. वह क्योंकि एक स्वभाव ले कर पैदा होता है, इस कारण हो सकता है कि दोनों (अपने होनेकी और माँके

गर्भके अहसासकी) ही अवेयरनेस् उसके साथ आती हो. पर यह बात सच है कि नहीं इस बारेमें अभी तक मनोविज्ञान किसी निष्कर्षपर पहुंचा नहीं है.

पर यदि हम ध्यानसे बालकको देखें तो तथ्य यह है कि छोटे बालकमें अपने वातावरणकी अवेयरनेस् पहले आती है और उसके कॉन्ट्रास्ट्में ही वह अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस्को जान पाता है. हम यह भी कह सकते हैं कि प्रकृतिके द्वारा दिया गया उसकी आत्मरक्षाके लिए एक वरदान ही है. इसी कारण आप देखते होंगे कि यदि आप बालकके सामने हँस रहे हो तो उसे हँसनेका मन होगा. आप रो रहे हो तो उसे भी रोनेका मन होगा. उसे कोई सुख-दुःख नहीं होता है, बस अपने चारों ओरके वातावरणकी अवेयरनेस् होती है. आप उसके सामने मुस्कुरायेंगे तो वह भी मुस्कुरायेगा. उसका व्यवहार एकदम बंदर जैसा होता है. पालनेका झुमका हिलता है तो वह भी अपना हाथ हिलाता है. तकनीकी रूपसे किसी अंदरूनी गहरायीमें हो सकता है कि उसे कोई सॅल्फ्-अवेयरनेस् हो. पर वह उसको व्यक्त नहीं कर पाता. बहुत बादमें व्यक्त कर पाता है. गर्भसे बाहर आनेके बाद अचानक आसपासके वातावरणकी अवेयरनेस् उसके सामने आ जाती है, उसके कारण उसकी सॅल्फ्-अवेयरनेस् थोड़ी दब जाती है.

यहां कार्य-जगत्में थोड़ा अलग सिद्धांत है. पर कम्प्यूटर्का भी यही सिद्धांत है. आप जब उसे ऑन् करते हैं तो सबसे पहले उसमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् जगती है. उसके अंदर प्रोग्राम्की जितनी भी फाइल्स् हैं, उन्हें वह पहले चॅक् कर लेता है. उसके बाद ही वह आपको अपना इस्तेमाल करनेकी छूट देता है. दूसरे चरणपर ही उसे अपने चारों ओरके वातावरणकी अवेयरनेस् जगती है. मैंने इस बारेमें एक आर्टिकल् लिखा है कि ‘Human brain and computer’

कैसे समान्तर जाते हैं! पूना युनिवर्सिटीमें मैंने एक सॅमीनार्में दिया था.

इसी प्रकार महत् तत्त्व जो कि केवल एक कॉन्शियसनेस् ही है, उसमें सबसे पहले अहंकार जाग्रत होता है. और जैसा कि हम देख ही चुके हैं कि भागवत और सांख्य की सिन्थेसिस्से कॅटेगरिकल् ॲनालिसिस् चल रही है. उसमें सांख्यने आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक, ऐसे प्रभेद नहीं किये हैं पर भागवत क्योंकि वह सांख्यको अपनी टर्मिनोलॉजीमें कहना चाह रहा है, इस कारण जैसे उसने महत् तत्त्वके आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक, यह तीन भेद किये, वैसे ही भागवत अहंकारके भी तीन भेद कर रहा है॥२२॥

(२. अहंकारके लक्षण)

श्लोक :

महत्तत्वाद् विकुर्वाणाद् भगवद्वीर्यसम्भवात्॥
क्रियाशक्तिः अहङ्कारः त्रिविधः समपद्यत॥२३॥

अनुवाद : **महत् तत्त्वके विकारके रूपमें उत्पन्न करनेके लिए आन्तरिक भगवद्वीर्यरूप क्रियाशक्ति धारण करनेवाला अहंकार संभव हुआ और उसके तीन प्रकार बन गये॥२३॥**

सुबोधिनी : **अहङ्कारस्य उत्पत्तिपूर्वकं पूर्ववद् लक्षणानि आह महत्तत्वाद् इति चतुर्भिः. विकुर्वाणाद् कार्योन्मुखात्. कालेन हि गुणक्षोभे विकृतं सत् कार्यम् उत्पादयति. न केवलं विकारमात्रेण किन्तु अन्तर्भगवच्छक्तिरपि सार्वजनिका अपेक्ष्यते. तद् आह भगवद्वीर्यसम्भवात् इति. भगवद्वीर्यस्य सम्भवो यस्मिन्. नहि जले मथ्यमाने तत्र अविद्यमानं घृतम् उत्पद्यते किन्तु दुग्धे दध्नि वा. अनेनैव वैनाशिक प्रक्रिया निराकृता, अन्यथा सर्वस्मादेव सर्वं जायेत. स्वभावस्य नियामकत्वेतु स्वभावस्यापि तथात्वे**

प्रमाणं वक्तव्यम्. अचेतनाहि सर्वे नियन्तुं शक्याः, ईश्वरएव केवलम् अनियम्यः. शास्त्रतः स्वभावस्य अन्यथाभावोऽपि न उपपद्येत. पटादौ तन्त्वादिसामग्री, चिन्तामण्यादयः च कारणत्वेन कल्प्यमानाः व्यभिचारिणः स्युः. अतो भगवच्छक्तिः एकैव सर्वभवनरूपा, प्रतिनियता समुदाये, प्रत्येकं वा, यत्रैव अवतिष्ठते भगवन्नियमात् ततएव उत्पाद्यतइति युक्तं भगवानेव तथा आविर्भवतीति न वैनाशिकगन्धोऽपि. श्रुतिरपि संवादिनी अत्र, अन्यत्र श्रुतिविरोधः च, तस्माद् युक्तम् उक्तं भगवद्वीर्यसम्भवाद् इति. ज्ञानप्रधानाद् महत्तत्वात् क्रियाशक्तिः अहङ्कारः उत्पन्नः. सच त्रिविधः. उत्पत्त्यैव तथैव समपद्यत. क्रियाहि भेदिका कारणभूतं गुणत्रयं कार्ये भिन्नतयैव उत्पादितवती॥२३॥

अनुवाद : चित्तके बाद अब अहंकारका भी उत्पत्तिके आधारपर लक्षण कहते हैं, महत् तत्त्वसे, चार श्लोकोंके द्वारा. विकार उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त अर्थात् कार्य उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त होते समय. कालके कारण गुणोंमें हलचल होनेसे महत् तत्त्व विकृत (परिणामशील) हो कर अहंकाररूप कार्य प्रकट करता है. केवल परिणामशील बन जानेसे परिणाम प्रकट नहीं होता किन्तु परिणामी कारणके भीतर भगवान्की सर्वजननात्मिका शक्तिकी भी अपेक्षा तो रहती ही है. उसे बताते हैं भगवद्वीर्यरूपद्वारा, भगवद्वीर्य जहां संभव हो. जलको मथनेसे वहां अविद्यमान घृत उत्पन्न नहीं हो जाता परन्तु दूध अथवा दही मथनेसे उत्पन्न होता है. इसके द्वारा वैनाशिक प्रक्रियाका निराकरण हो गया, नहीं तो किसी भी कारणमेंसे कोई भी कार्य उत्पन्न हो जाता. स्वभावको नियामक मानना हो तो उसके भी नियामक होनेमें कोई तो नियामक प्रमाण देना चाहिये न! सभी अचेतन पदार्थोंका नियमन किया जा सकता है पर ईश्वरका कोई नियामक नहीं होता. शास्त्रके अनुसार स्वभावका अन्यथाभाव नहीं हो सकता. कपड़े आदिमें सूत आदि सामग्रीको, वैसे हि चिन्तामणि आदिको भी कारण माननेसे कार्य-कारणभावमें व्यभिचार दोष आयेगा. इसीसे सर्वभवनसामर्थ्यरूपा एकमात्र भगवत्-शक्ति ही प्रत्येक

कारण अथवा समुदाय में नियत माननी चाहिये, जहां वह(भगवत्-शक्ति) हो वहां वह (शक्ति) भगवान्के द्वारा नियत की हुयी होती है. इसी कारण ही कार्य नियतरूपमें वहां-वहां उत्पन्न होता है. भगवान् स्वयं हि तत्-तत् रूपोंमें प्रकट होते हैं. इसलिए वैनाशिक मत सर्वथा अस्वीकार ही है. इस बारेमें श्रुतिवचन भी सुसंगत हो जाता है. दूसरे प्रकारसे माननेमें श्रुतिविरोध सामने आता है. इसीसे भगवद्वीर्यरूप कहा, वह युक्त ही है. ज्ञानप्रधान महत् तत्त्वमेंसे जो क्रियाशक्तिवाला अहंकार उत्पन्न हुआ वह तीन प्रकारका होता है. भेद प्रकट करनेवाली क्रियाएं और कारणभूत तीन गुण भिन्न प्रकारके कार्यको उत्पन्न करनेवाले हुए॥२३॥

विवेचन : महत् तत्त्वके बारेमें हमने देखा कि इसमें प्रकृतिके सत्त्वगुणकी प्रधानता है. इस कारण महत् तत्त्वमें पुरुषका चैतन्य अप्लोड् होता है, जैसे मैंने आपको समझाया था कि यह गुड्-कन्डक्टर् है. प्रत्येक बिजलीसे चलनेवाले उपकरणमें तार होता है जो बिजलीकी ॲनर्जीको उपकरणमें ठीकसे प्रवाहित करता है. इसी तरह हम देख चुके हैं कि महत् तत्त्व शुद्ध चेतनाके लिए गुड्-कन्डक्टर्का काम करता है. यद्यपि महत् तत्त्वमें सत्त्व रज तमो तीनों गुण है पर चेतनाके प्रवेशके लिये सत्त्वांश सात्त्विक = cognitive principle ही काममें आता है. राजस गुण dynamic principle है, रजके अंशमेंसे विकृत हो कर अथवा रूपान्तरित हो कर महत् तत्त्व अहंकारमें परिवर्तित हो जाता है. **भगवद्वीर्यसम्भवात्** मानें जो पुरुषमें चेतना थी, वह महत् तत्त्वमें आयी, उसने महत् तत्त्वको उत्तेजित किया और **क्रियाशक्तिः अहङ्कारः** क्रियाशक्तिवाला जो अहंकार है वह ज्ञानात्मक न हो कर क्रियाप्रधान अधिक होता है. इसीलिए 'कार' शब्दका जहां भी प्रयोग होता है वह कर्ता होनेके अर्थमें होता है : करनेवाला. जैसे 'कुंभकार' मानें घड़ा बनानेवाला. 'कलाकार' मानें कला करनेवाला. 'अहंकार' मानें अहं करनेवाला.

इस अहंकारको चेतना महत् तत्त्वसे विरासतमें मिली है, इस लिये अहंकार ज्ञानरहित क्रियाशील नहीं है, बल्कि ज्ञानात्मिका क्रियाशीलता है. इसी कारण हम भी अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस्को देखें तो उसके दोनों प्रकारके रूप हैं. हम अहंकार किसी क्रियाके रूपमें भी कर रहे हैं और हममें अहंकारकी किसी प्रकारकी अवेयरनेस् (संवेदनशीलता) भी है. क्रियारूप अहंकारका यदि उदाहरण देखना हो तो देखो कि देखती है आंख पर अहंकार कहता है कि "मैं देख रहा हूं." अहंकार करनेका काम करता है. जैसे सुनता कान है पर अहंकार तुरंत उससे संबंध स्थापित करके कहता है कि "मैं सुन रहा हूं." पैर चलता है पर अपना अहंकार कहता है कि "मैं चल रहा हूं." इस तरह अपना अहंकार सक्रिय और बोधशील है. जब यह सक्रिय नहीं होता तो अहंकार कहता है कि "मैं नहीं चलता." साठके दशकमें मैं एक गुरुजीके पास पढ़ने जाता था. उस समय मुझे कार चलानेका शौक लगा. एक दिन ऐसा हुआ कि मैंने कार चालू की और वह तो अनियंत्रित हो कर दौड़ने लगी. हुआ ऐसा था कि उसका एक्सीलरेटर् फंस गया था. बाजूमें बैठा ड्राइवर्; जो मुझे सिखा रहा था, बोला "क्यों इतना तेज दबा रहे हो?" पर मैं तो कुछ कर ही नहीं रहा था. वह तो अपने आप ही हो रहा था. मेरी हिम्मत जवाब दे गयी कि मेरे बिना कुछ करे ही यदि कार इतनी दौड़ रही है तो मेरे लिए तो मरनेके अलावा करनेको कुछ रहा ही नहीं. जब ड्राइवर्को इस बातका पता चला तो उसने तुरत ही गाड़ीका स्विच्-ऑफ् कर दिया. मेरा तो अहंकार एकदम पस्त हो गया. इस तरह जब अपनी इन्द्रिय अपने आप दौड़ने लगें तो अपना अहंकार भी पस्त हो जाता है. जैसे मेरी स्थिति थी कि मैं चला नहीं रहा हुं तो भी यह तेज़ दौड़ रही है, तो अहंकार खतम होगा कि नहीं? इसमें फिर अहं करने जैसा कुछ रह ही नहीं जाता. उदाहरणके लिए पार्किंसन् बीमारीमें हाथ अपने आप हिलने लगता है. जब इस प्रकार हाथ हिलता है तो

क्या हमें अहंकार होता है? नहीं होता. यदि मैं अभी अपना हाथ हिलाऊं तो एकदम यह अहंकार हो जायेगा कि हाथ मैं हिला रहा हुं. इसका सौंदर्य देखो कि जो भी आप क्रिया कर रहे हो उससे आपकी सॅल्फ्-अवेयरनेस् किस प्रकार समायोजित (coordinate) हो कर एकदम सक्रिय हो जाती है कि "मैं चल रहा हुं, मैं देख रहा हुं, मैं सुन रहा हुं."

एक मकानमालिक, अब तो बेचारा मर गया, वह बहुत दारू पीता था और दारू पी कर रातको घर आता था. अब क्योंकि वह ब्राह्मण था इसलिए थोड़ी अपराधभावना तो उसे होती थी, पर पीता था. जब वह आता और मैं बालकनीमें खड़ा होता तो बोलता "मैने नहीं पी है." पीता तो था पर उस समय उसका अहंकार इन्ॲक्टिव् मोड्में चला जाता था. ठीकसे समझो कि यह क्रिया है. यह पूरे तौरपर शुद्ध चेतना नहीं है. पर यह गतिशील चेतना है क्योंकि इसे विरासतमें महत्से चेतना मिली है और क्योंकि उसकी उत्पत्ति क्रियाशील महत्से हुयी है, इस कारण यह ज्ञानात्मक भी है और सक्रिय भी है.

अब इस अहंकारके डी.एन.ए. में तो सत्त्व-रज-तम गुण हैं, इसलिए यह भी इन तीनों गुणोंको लिए हुए तो है ही. **अहङ्कारस्य उत्पत्तिपूर्वकं पूर्ववद् लक्षणानि आह महत्तत्वाद् इति चतुर्भिः. विकुर्वाणात् कार्योन्मुखात्.** मानें जब महत् तत्त्व रूपान्तरणकी प्रक्रियामें होता है तब इसमेंसे अहंकार पैदा होता है. **कालेन हि गुणक्षोभे विकृतं सत् कार्यम् उत्पादयति. न केवलं विकारमात्रेण किन्तु अन्तर्भगवच्छक्तिरपि सार्वजनिका अपेक्ष्यते.** यह तो हमने पहले देखा ही है कि कालके कारण गुण-क्षोभ होता है. मानें उनमें हलचल होती है. ऐसा नहीं है कि केवल विकृत ही होता है, परन्तु अंदरकी एक शक्ति भी काम कर रही होती है. जहां भी गुण-क्षोभ होता है वहां दोनों

वस्तुएँ काम कर रही होती हैं. कोई अंदरूनी शक्ति काम कर रही होती है और साथ ही साथ कोई बाहरी शक्ति भी इसके पीछे प्रभाव डाल रही होती है.

एक और उदाहरण ध्यानमें आया है. दो तरहके नशे होते हैं. एक शराबका और एक भांगका. भांगका नशा व्यक्तिको सुस्त बना देता है. शराबका नशा व्यक्तिको और अधिक सक्रिय बना देता है. आपको लगता है कि भांग पीनेवाला समाधि लगा कर बैठा है. इसीलिए साधु भांगका नशा करते हैं जिससे लोगोंको पता न चले कि समाधि लगी है या नशा कर रखा है. और शराबकी शक्ति आपको वह काम करवा देती है जो आप साधारण स्थितिमें नहीं कर सकते. इसी तरह एक बाहरी शक्ति होती है और एक भीतरकी. इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि सॅल्फ्-अवेयरनेस्को और कॉन्शियसनेस्को क्रियाशील होनेके लिए बाहरकी शक्ति और अंदरकी शक्ति दोनों काम करती हैं. उदाहरणके लिए कोई भी फुहारा चलता हो तो जितना उसके पीछे पानीका फोर्स् होगा, उतना वह ऊंचा जायेगा. पर ऊंचे जाये अथवा नीचे, पर आता वापस धरतीकी ओर ही है. यह है बाहरकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति. हम इसमें देख सकते हैं कि अंततः तो बाहरी शक्तिके साथ समझौता तो करना ही पड़ता है. इसी तरह हमारे भीतर भी दोनों शक्तियाँ काम कर रही हैं. एक महत् तत्त्वपर पड़े कालके प्रभावकी शक्ति और दूसरी भगवान्के चिदंशकी शक्ति. इन दोनों शक्तियोंके समन्वयसे अहंकार तत्त्व उत्पन्न होता है. **तद् आह भगवद्वीर्यसम्भवाद् इति. भगवद्वीर्यस्य सम्भवो यस्मिन्. नहि जले मथ्यमाने तत्र अविद्यमानं घृतम् उत्पद्यते किन्तु दुग्धे दध्नि वा.** क्योंकि जलको आप कितना ही मथो पर उसमेंसे कुछ उत्पन्न होनेवाला नहीं है. पर दूध अथवा दहीं को आप मथो तो तुरत मख्खन बाहर आ जाता है. अब क्या मथनेकी क्रिया ही कारण है? नहीं क्योंकि दूध-दहीमें रही हुयी शक्ति भी

तो मख्खनकी उत्पत्तिका कारण है जो घनीभूत हो रही है. पानीमें वह शक्ति नहीं है. इसका अर्थ है कि भीतरकी शक्ति और बाहरकी शक्ति दोनों ही आवश्यक हैं. अर्थात् महत्‌तत्त्वमें रही हुयी कॉन्शियसनेस्‌की भीतरी शक्ति और कालके कारण होती विकृतिकी शक्ति, इन दोनोंके संयोगसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है.

अनेनैव वैनाशिक प्रक्रिया निराकृता, 'वैनाशिक प्रक्रिया'का अर्थ है; आपका अहंकार इस वैनाशिक प्रक्रियाका कभी साक्षी नहीं होता है. वैनाशिक प्रक्रियाके हिसाबसे जब आपने जन्म लिया तो आप जैसे जन्मके समय थे मानें आपका कद रंग वजन आदि, वह पांच छह महीनेमें परिवर्तित हो जाता है. अब प्रश्न है कि आपमें वह परिवर्तन आया कि आपके जन्मके रूपमेंसे एक नया रूप उत्पन्न हुआ? वैनाशिक प्रक्रियाके हिसाबसे जैसे आपके जन्मका कारण आपके माँ-बाप होते हैं, ऐसे ही आपके इस नये रूपका कारण आपका पुराना रूप होता है. इस तरह नया रूप आपका पैदा होता है, विकसित नहीं होता. इस तरह उस प्रक्रियाके हिसाबसे सारा विकास, विकास नहीं है, उत्पत्ति है. All the development is an origination according to vainashiki prakriya.

पर सांख्यप्रक्रियाके हिसाबसे सारी उत्पत्ति विकास अथवा रूपान्तरण है. यह बात फिलॉसॉफीके लिए भी सही है. लगभग पश्चिमी देशोंकी सारी फिलॉसॉफी वैनाशिक प्रक्रियासे ही पैदा हुयी है. केवल वहां समस्या यह रही है कि उनकी कोई भी फिलॉसॉफी अपनेसे पूर्वकी फिलॉसॉफीको संदर्भमें नहीं लेती. पर अपने भारतकी यह विशेषता है कि यहांकी कोई भी फिलॉसॉफी हो, वह अपने मूलको ढूंढ कर कहती है कि इसमें नया कुछ नहीं है, यह तो केवल पुराने विचारोंका रूपांतरण है.

एक बहुत बड़े दार्शनिक काश्मीरके वल्लभाचार्य हुवे, उनका

एक प्रसिद्ध श्लोक है. वे कहते हैं कि "**कुतो वा नूतनं वस्तु वयम् उत्प्रेक्षितुं क्षमा: वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रम् अत्र विचार्यताम्**" (न्या.मं.८) "कोई भी नयी परिकल्पना करनेकी सामर्थ्य मुझमें कहां है?" तो फिर आप कहना क्या चाह रहे हो? तो कहते हैं कि "जो पहले कहा गया है उसे आजके समयके अनुसार आपको ठीकसे समझाना चाहता हूं. पुरानी बातको आपको नई भाषामें समझाना चाहता हूं" यह बात लगभग सभी भारतके आचार्योंने कही है, चाहे वह नास्तिक हो, आस्तिक हो, वेदान्ती हो अथवा अवेदान्ती हो, सभीने ऐसा कहा है. श्रीशंकराचार्य भी गीताके भाष्यके आरंभमें ही कहते हैं, "**नमोस्तु ब्रह्मवित्संप्रदायकर्तृभ्यो.**" "जो कुछ भी मैं कह रहा हूं वह ब्रह्मविद् संप्रदायके अनुसार अपनी वाणीमें कह रहा हूं." महाप्रभुजी भी ऐसा ही कहते हैं "**अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यै: रामायणै: सहितभारतपञ्चरात्रै: अन्यै: च शास्त्रवचनै: सह तत्त्वसूत्रै: निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव**" (त.दी.नि.१।१०४) मैं कुछ नया नहीं कह रहा हूं. जो कुछ पहले कहा गया है उसे अपने शब्दोंमें कह रहा हूं. इसकी सुंदरता यह है कि पश्चिमकी कोई भी फिलॉसॉफी ऐसी नहीं है, जो हमारे यहां न कही गयी हो. यह बात यहाँकी फिलॉसॉफीके साथ भी है. हर बात हर जगह है, पर हमेशा उसको अपनी मौलिक-कृति मान कर कहा गया है और अपने यहां उसको अपना न मान कर विरासतमें मिला हुआ माना है. क्योंकि Mindset is for transformation and not for origination इसका कारण समझो कि किसी भी वस्तुमें जो बदलाव आ रहे हैं, चाहे वह दूध हो, दही हो, कपड़ा हो, रुई हो, हम यह जानते हैं कि नया कुछ भी उत्पन्न नहीं हो रहा है, केवल उसके रूप बदल रहे हैं. बीजमेंसे अंकुर होता है, उसमेंसे तना होता है, उसमेंसे पत्ते होते हैं, उसमेंसे फल होता है, उसमेंसे फिर बीज होता है. वह केवल अपना रूप बदल रहा है. नया कुछ नहीं हो रहा. ऐसा इसलिए है क्योंकि हमने अपने चारों ओरके वातावरणको देखा है, प्रकृतिको देखा है.

वहां वे लोग प्रकृतिकी ओर देखते ही नहीं हैं. ये बहुत गंभीर बात नहीं है, फिर भी, क्योंकि पूरा पश्चिम बर्फसे ढका रहता था तो बेचारे प्रकृतिको देखें तो देखें किस प्रकार! घरमें बैठे-बैठे अपने विचारोंमें खोये रहते थे. जब भी कुछ विचार आता तो सोचते थे कि यह हमारा मूल विचार है. चाहे वह किसी भी विषयका विचार हो. उन्हें लगता है कि इसमें मौलिकता है. इसीलिए वहां पेटेंट्पर इतना ध्यान है. जो भी रिसर्च् हुयी, जो भी विचार आया उसको तुरत पेटेंट् करा लो, कहीं इसको दूसरा न चुरा ले. एक बात और कि हर स्थानपर अपने हस्ताक्षर और कर देते हैं. अपने यहां देखो आप अजंता जाओ, ॲलोरा जाओ, वहां आपको किसीके हस्ताक्षर ही नहीं मिलेंगे. पेंटिंग् करके रख देते हैं. आपको जो समझना हो वह समझो. कोई दावा हो तो हस्ताक्षर करे न! अपने उत्तर भारतके शास्त्रीय संगीतके कम-से-कम छह सौ राग हैं. किसने बनाये, किसीको पता नहीं. दो-सौसे ढाई-सौ ताल हैं. किसने बनाई, किसीको पता नहीं. धीरे-धीरे विकसित हो गयी. किसीने अपने नाम रखनेके बारेमें गंभीरतासे सोचा नहीं. मियां मल्हार, मियांकी तोड़ी जैसे अपवादोंकी कथा और है पर पश्चिमी देशोंमें तुरत रजिस्ट्रेशन् हो जाता है.

आपको भी कई बार काल कर्म स्वभाव प्रकति पुरुष के बारेमें समझाया है. इस बारेमें महाप्रभुजीको देखें तो लगेगा कि महाप्रभुजीद्वारा समझायी गयी कॅटेगरी है. पर यह सच नहीं है. महाप्रभुजीसे ५०० वर्ष पहले, शायद श्रीशंकराचार्यजीके भी पहले, भर्तृप्रपंच करके दार्शनिक हुए थे. दुर्भाग्यसे भर्तृप्रपंचके ग्रंथ हमें मिलते नहीं हैं पर श्रीशंकराचार्य उसका संदर्भ देते हुए कहते हैं "ब्रह्मकी काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुष की पंचविध कल्पना भर्तृप्रपंचने की." श्रीशंकराचार्यजी इसका जोरदार खंडन करते हुए कहते हैं कि ब्रह्म पंचविध कैसे हो सकता है. ब्रह्म तो एक ही है." पर यही बात महाप्रभुजीने फिरसे समझायी

कि ''ब्रह्म एकविध होते हुए पंचविध भी क्यों नहीं हो सकता है? आप इसे गलत समझ रहे हो. वह एकविध नहीं है. वह एकविध हो कर भी पंचविध हो सकता है.'' महाप्रभुजीने यह उदाहरण नहीं दिया है जो आपको मैं दे रहा हुं कि हाथ एक है पर उँगली पांच हैं. अब यह बात मौलिक हुयी? यह मौलिक चिंतन नहीं है क्योंकि महाप्रभुजी कह रहे हैं कि एक ही अनेक हुआ है. एक ही पंचविध हुआ है. मैंने विचार किया कि इस बातको किस प्रकार समझा जाये तो मुझे हाथका विचार आ गया. अब मैं यदि यह दावा करूं कि यह मेरा मौलिक चिंतन है, तो वह सर्वथा गलत होगा. क्योंकि transformation of concept है. यह तो किसीकी बातको अपने शब्दोंमें रख देना.

जैसा कि मैंने आपको पहले भी बताया है कि जन्मके बाद बालककी सॅल्फ्-अवेयरनेस् प्रबल होती है कि अपने चारों ओरके वातावरणकी अवेयरनेस् प्रबल होती है, यह बात अभी भी संशयात्मक है. यह बात भी आप समझ लें कि जिसे हम 'जन्म' कह रहे हैं वह जन्म है ही नहीं, केवल एक रूपान्तरण है जो पहले गर्भमें था अब वह बाहर आ गया. मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि नौ-महीने गर्भमें रहनेके कारण बालककी अपने आपको सुरक्षित महसूस करनेकी भावना बंद वातावरणकी होती है. गर्भसे बाहर आनेके बाद उसे खुला वातावरण मिलता है, इस कारण उसमें भय पैदा होता है. उसे लगता है कि वह ऊपर गिर तो नहीं पड़ेगा इसलिए चौंकता रहता है क्योंकि उसे यह पता ही नहीं है कि ऊपर नहीं गिरा जा सकता. इसीलिए उसे बाहर आनेपर कपड़ेमें बांध दिया जाता है, जिससे वह सुरक्षित महसूस करता है. खुलेमें असुरक्षा महसूस होती है और बंधनेमें सुरक्षा. फिर जब उसी बालकके हाथ-पैर हिलने लगते हैं तो उसे समझ आ जाती है कि ऊपर नहीं गिरा जा सकता. उस समय आप उसको बांधे, तो वह रोने लगेगा. अपनी

जो संयुक्त परिवारकी व्यवस्था थी उसमें प्रत्येक घरका सदस्य अपने आपको सुरक्षित महसूस करता था. आजके नये लोगोंको यह ‘कचरा’ लगता है क्योंकि उनके अपने आज़ाद विचारोंको व्यक्त करनेमें रुकावट लगती है. यही बात नवजात बालकके साथ भी है. जैसे ही उसके हाथ-पैर हिलने लगते हैं तो उसे उनको हिलानेकी आज़ादी चाहिये, उस समय यदि बांध दें तो वह रोना शुरू कर देता है. जो पहले सुरक्षा लगती थी वही अब उसे समस्या लगती है.

पुराने ज़मानेमें हर-एक परिवार अपने पड़ौसीके यहाँ आने-जानेवालोंकी खोज-खबर रखता था, यह एक मायनेमें अपनी सुरक्षाकी व्यवस्था थी. पर अब यही बात हमें अच्छी नहीं लगती. यह बात इसलिए है क्योंकि हमेशा सुरक्षा और आज़ादी के बीच निरंतर एक द्वंद चल रहा है. जब भी आपको आज़ादी चाहिये तो सुरक्षा एक अवरोध पैदा करती है. इसी तरह जब भी आप सुरक्षित रहना चाहते हैं तो आज़ादी अवरोध पैदा करती है. यह बात सामाजिक राजनैतिक जैविक मनोवैज्ञानिक, यहाँ-तक कि आध्यात्मिक लेवल्पर भी खरी उतरती है.

महाप्रभुजीका एक श्लोक है जो किसी और संदर्भमें उन्होंने कहा है पर उसे इस संदर्भके लिए आपको बता रहा हुं. **“हरिणा ये विनिर्मुक्ताः ते मग्ना भवसागरे ये निरुद्धाः तएव अत्र मोदमायान्ति अहर्निशम्”** (नि.ल.११) हरि जिसको आज़ाद कर देते हैं वह भवसागरमें डूब जाता है और जिसको बांध कर रखते हैं वह आनंदमें रहता है. देखो, यहाँ भी सुरक्षा और आज़ादी का आपसी द्वंद है. हरि जिसको सुरक्षा प्रदान करते हैं वे उनका आनंद लेते हैं और जिसको आज़ाद कर देते हैं वे इस भवसागरमें डूब जाते हैं. यह बात एक भक्तके लिए कही गयी है. भक्तिमें आपको आज़ादी नहीं चाहिये, आप बंधे रहना चाहते हैं और ज्ञानमार्गमें आपको आज़ादी

चाहिये, बंधन नहीं. भक्तिमें एक-दूसरेके साथ बंधे रहनेमें हम अपने आपको सुरक्षित महसूस करते हैं. ज्ञानमें एक-दूसरेसे छुटकारा पानेमें हमें आज़ादी महसूस होती है. यह सिद्धांत हर स्थानपर, हर लेवल्पर काम करता है. केवल उसका संदर्भ बदल जाता है.

अब हम अपने मूल विषयपर आते हैं कि वैनाशिक प्रक्रिया क्या है? यह मूलभूत प्रक्रिया है, रूपान्तरणकी नहीं क्योंकि कोई भी रूपान्तरण अथवा परिवर्तन बंधा हुआ रहता है अपने पहले रूपके साथ. और जो नया उत्पन्न है उसे किसी प्रकारका बंधन नहीं है. किसी भी बिल्डिंग्का रेनोवेशन् कराना हो तो पुराने ढांचेको आप तोड़ नहीं सकते. उसका बंधन तो आपको स्वीकारना ही होगा. कोई नई इमारत खड़ी करनी हो तो पुराना कोई बंधन नहीं रहता, आप जैसा चाहें बना सकते हैं. इसी तरह पाश्चात्य दर्शन एक नई इमारतकी तरह है और भारतीय दर्शन perpatual renovative ideasसे (शाश्वत परिवर्तनशील प्रत्ययसे विचार) विकसित हुयी है.

प्रश्न : इसमें अहंकारकी उत्पत्तिको कैसे देखना?

उत्तर : यही तो मैं आपको समझाना चाह रहा हुं कि अहंकार महत् तत्त्वका रूपांतरण है. महत् तत्त्व जो कि पहले चेतना थी वह रूपान्तरित हो गयी सॅल्फ्-अवेयरनेस्में, यह कोई नयी उत्पत्ति नहीं है. इसीलिए महाप्रभुजी वैनाशिक लोगोंका संदर्भ दे कर कहते हैं कि अहंकार एक नई वस्तु है जो उत्पन्न हुयी है. आप अपने शरीरको भी देखेंगे कि जब आप पांच सालके थे और अब, उसमें बहुत सारे परिवर्तन आये हैं. उसमें पुराना कुछ रह ही नहीं गया है. पर पुराना शरीर आपके आजके शरीरका कारण है और आजका शरीर साइज़् शेप् उसका कार्य है. इसलिए पाश्चात्य दर्शन हमेशा नई उत्पत्तिकी बात करता है और भारतीय दर्शन जैसा कि सांख्य ट्रान्सफॉर्मेशन् में (रूपान्तरण) मानता है, भूतकालसे बन्धे रहते है. जैनोंको

पूछोगे तो उनके चौबीस तीर्थंकर, बौद्धोंको पूछोगे तो उनके चौबीस बोधिसत्त्व, अपने यहाँ देखोगे तो भगवान्‌के चौबीस अवतार, हम लोग हमेशा अपने भूतकालसे बंधे रहते हैं, उसे भूलते नहीं. वहाँ अपने भूतकालको कचरेका डब्बा ही समझा गया है, बस पुरानेको फेंको और कुछ नया बनाओ. हम पुरानेको फेंकते नहीं हैं, उसका नविनीकरण करते हैं.

अनेनैव वैनाशिकी प्रक्रिया निराकृता, अन्यथा सर्वस्मादेव सर्वं जायेत. यदि वैनाशिक प्रक्रिया सच्ची हो तो हर-एकमेंसे हर-एक चीज उत्पन्न होनी ही चाहिये तो यह सीमा क्यों कि इसमेंसे यह उत्पन्न होगा और यह उत्पन्न नहीं होगा! दूध-दहीमेंसे मक्खन पैदा होता है, पानीको कितना भी मथो कुछ नहीं होता. यदि वैनाशिक प्रक्रिया हो तो नया कुछ निकलना चाहिये. इससे सिद्ध होता है कि मक्खन अपने अतीतसे जुड़ा हुआ है और वह अतीत है दूध अथवा दही. हम यह भी देख सकते हैं कि गायका मक्खन पीले रंगका होता है और भैंसका सफेद रंगका. मक्खन तो दोनों हैं पर वे दोनों अपने अतीतसे जुड़े हुए तो हैं ही. ऊपर पहाड़ोंमें जो लोग भेड़ चराते हैं, वे उसका दूध निकाल कर मक्खन बनाते हैं. यदि आप वहाँ जाओ तो आपको दूधवाली चाय न पिला कर मक्खनवाली चाय पिलाते हैं. अब मक्खन पीला होता है कि लाल, यह मुझे नहीं पता पर उनको वही उपलब्ध है. अब जैसे भेड़का होता है ऐसे ही ऊंटका भी होता होगा, और जिसकी हिम्मत हो तो बाघका भी तो दूध जमा सकता है. पुराने जमानेमें ज्योतिषी ऐसी ही बदमाशी करते थे कि “आपको इस ग्रहकी यह बाधा है, आप बाघनीका दूध ले आओ तो बाधा दूर हो जायेगी.” कोई बाघनीका दूध लाता नहीं था इसलिए ग्रहबाधा भी दूर नहीं होती थी.

स्वभावस्य नियामकत्वेतु स्वभावस्यापि तथात्वे प्रमाणं वक्तव्यम्.

बुद्धके समयमें वैनाशिक प्रक्रियाके समानान्तर एक स्वभाववाद भी था. पाँच-छह वाद थे, एक यदृच्छावाद था, एक स्वभाववाद था. जैन लगभग स्वभाववादमें मानते है. वे कहते हैं कि जगत् अपने स्वभावसे उत्पन्न होता है, स्वभावमें स्थित रहता है और स्वभावके कारण ही नाश होता है. इसमें कुछ भी करनेके लिए ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है, यह सब स्वभाववश ही चल रहा है. और उनका तर्क बहुत ही प्रभावशाली है कि यदि वस्तुका कुछ करनेका स्वभाव ही न हो तो कर्ता उसमें कर ही क्या सकता है? जैसे हम लोग भी कहते हैं कि यदि दूध और दही का स्वभाव ही न हो मक्खन बननेका तो पैदा करनेवाला क्या मख्खन पैदा कर सकता है? जो मथ कर दूध-दहीमेंसे मख्खन निकाल रहा है उसे उनका स्वभाव तो स्वीकारना ही होगा. जब आप स्वभाव स्वीकार ही रहे हो तो लाघव हो रहा है. फिर दूसरी कोई चीजको स्वीकारनेकी क्या आवश्यकता है. ऑकम्स् रेज़र् वापरो. जो स्वभावसे सब कुछ पैदा हो रहा हो तो कर्ताकी क्या आवश्यकता है? यह स्वभाववादीकी दलील है.

स्वभाववाद वैनाशिक प्रक्रियासे विलोममें था. बुद्धके समयमें यह स्वभाववाद बहुत ही प्रसिद्ध था. जैनोंके अलावा भी और बहुतसे स्वभाववादी दार्शनिक थे जो अब खतम हो गये हैं. पर जैनोंने अभी भी उसे संभाल कर रखा है.

अपने यहां निरीश्वर सांख्य, केवल प्रकृति और पुरुष को ही मानता था. पर सेश्वर सांख्य, काल कर्म स्वभाव प्रकृति और पुरुष को मानता है. स्वभाववादी प्रकृति-पुरुषको भी नहीं मानते. वे कहते थे कि कोई वस्तु यदि स्वभावसे ही जड़ और चेतन है, तो इसमें आपको प्रकृति-पुरुषकी आवश्यकता कहाँसे आ गयी! पर उनसे भी पहले भर्तृप्रपञ्च वेदान्ती और उनसे भी पहले भागवतने ब्रह्मके पाँच

रूप काल-कर्म-स्वभाव-प्रकृति-पुरुषको स्वीकार करके उन सारे दर्शनोंका एक प्रकारसे संश्लेषण (synthesis) करके बताया. महाप्रभुजी क्योंकि अपना दर्शन भागवतसे उठा रहे हैं और सभी उपनिषदोंमें केवल ब्रह्मका ही वर्णन आता है; केवल एक उपनिषद्में काल कर्म स्वभाव प्रकृति और पुरुष का वर्णन आता है. पर महाप्रभुजीने ब्रह्मके उन पाँच रूपोंको, जो कि भर्तृप्रपञ्च कहते थे, अक्षरब्रह्मका स्वरूप माना है. हम लोग स्वभाववादियोंकी तरह सृष्टिकी रचनाका कारण केवल स्वभावको ही न मान कर औरोंको भी मानते हैं. हम यह नहीं कहते कि स्वभाव किसी कामका नहीं है पर ऐसा कहते हैं कि स्वभाव कर्ताके सहयोगमें काम कर रहा है.

उत्पत्तिवादी कहते हैं कि ऐसा कोई है जो निरंतर कुछ-न-कुछ नया पैदा कर रहा है. हमारा मत है कि ऐसा नहीं है कि नया कुछ उत्पन्न हो ही नहीं रहा, पर जिसको तुम नया कह रहे हो, उसका कहीं-न-कहीं प्राचीन कालमें संदर्भ मिल ही जायेगा. उदाहरणके लिए आज-कलकी लड़कियोंके कपड़ोंका जो फॅशन् है, वह पुरानी प्रतिमाओंमें देखें तो मिल ही जायेगा. हम समझते हैं कि हमने किया है इसलिए यह इनोवेशन् है पर इसकी गहरायीमें जायेंगे तो ज्ञात होगा कि यह तो केवल रेनोवेशन् ही है.

प्रश्न : यहां नियामकका अर्थ क्या है?

उत्तर : नियम जो बनाता या पलवाता हो उसे 'नियामक' कहते हैं. पर उस नियामककी इस रचनामें चलती कितनी है? केवल बीस प्रतिशत, सौ-प्रतिशत नहीं. ऐसे ही स्वभावके कारण ही यह सृष्टि चल रही है, ऐसा नहीं है. स्वभावको भी किसी-न-किसी प्रभावकी अपेक्षा तो रहती ही है. सालों तक जीवविज्ञानमें यह चर्चाका विषय रहा कि Human personality is a nature or nurture. आदमीका व्यक्तित्व उसके स्वभाववश है अथवा वह गढ़ा गया है.

कोई नेचर्‌वादी थे तो कुछ लोग नर्चर्‌वादी थे. 'माय्‌ फेयर्‌ लेडी' नामकी फिल्म आयी थी. उसमें यही विचार किया गया था कि आदमीका व्यक्तित्व उसके स्वभाववश है कि गढ़ा गया है. एक प्रोफेसर्‌ उसमें चॅलेंज्‌ लेता है कि गढ़ा गया है मानें किसी भी व्यक्तिको आप जैसा बनाना चाहते हैं वैसा उसको वातावरण दे कर बना सकते हैं. वह एक सब्जी बेचनेवालीके लिए कहता है कि "मैं इसको एक प्रिन्सेस्‌की तरह बना सकता हुं." वह उसको उसी तरहकी ट्रेनिंग्‌ देता है और उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली हो जाता है कि राजकुमार भी उसके ऊपर मोहित हो गया. इसी दौरान राजमहलकी स्त्रियोंके साथ वह रेस्‌ खेलने जाती है, वहां एकदम खेल देख कर जंगलियोंकी तरह चिल्ला-चिल्ला कर खुश होने लगती है. यह देख कर पास खड़ी रानियाँ तो बेहोश ही हो जाती हैं कि यह उनके साथ कौन आ गया! उसका मूल स्वभाव वहाँ प्रकट हो ही जाता है. इस बातपर वह प्रोफेसर्‌ अपनी हार मंजूर कर लेता है. ऐसा नहीं है कि नर्चर्‌ काम नहीं करता है पर कहीं-न-कहीं स्वभाव प्रकट हो ही जाता है. इस तरह जो भी कार्य यदि स्वभावसे पैदा हो रहा है तो उसे काल कर्म प्रकृति पुरुष किसी भी दूसरी चीजकी आवश्यकता नहीं है. इसी प्रकार जो कालसे पैदा हुआ है उसे बाकी चारकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि काल अपने आप ही सारे कार्य कर देगा. ऐसे कई अलग-अलग वाद थे पुराने जमानेमें. भागवतने इन सारे वादोंका समन्वय करके इन सभीको एक ब्राह्मिक दृष्टि दे कर इसका एक ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत किया कि ब्रह्म इन सारे वादोंका टोटल्‌ है. इसीलिए कहा है कि **स्वभावस्य नियामकत्वेतु स्वभावस्यापि तथात्वे प्रमाणं वक्तव्यम्‌.**

महाप्रभुजी कहते हैं कि "चलो आप कहते हो कि स्वभाव ही नियामक है तो फिर उसका प्रमाण प्रस्तुत करो. हम जब यह

कह रहे हैं कि कर्ता प्रत्येक वस्तुका नियामक हो तो कर्ताका कर्ता बताओ! इसका उत्तर न मिलनेपर आप कहते हो कि इसीलिए कर्ता नहीं है. स्वभावसे ही सब कुछ पैदा हो रहा है तो आप फिर यह बताओ कि स्वभावका स्वभाव किसने गढ़ा? बात तो एक ही हो गई.'' संस्कृतमें डिबेट्का एक सिद्धांत है ''**यश्चोभयोः समो दोषः परिहारश्च ययोः समः**'' मानो कि किसी व्यक्तिकी कोई धारणा है कि कोई वस्तु इस प्रकार है, उस धारणामें कोई दोष आ रहा है और आप उसको उजागर करके कह रहे हो कि आपकी यह धारणा इस कारणसे गलत है और आप उसके सामने अपना मत प्रस्तुत कर रहे हो. उसमें भी यदि वही दोष आ रहा है तो प्रश्न यह उठेगा कि आप उस दोषका परिहार किस प्रकार करेंगे? यदि परिहार नहीं हो सकता हो तो आप अपने मतको प्रस्तुत करनेके अधिकारी नहीं हैं. आपको कोई भी यदि आक्षेप लगाना है तो पहले आप अपने मतके बारेमें विचार कर लो कि उसमें भी वह दोष तो नहीं है. नहीं तो उस चर्चाका कोई अंत ही नहीं आयेगा. यह पुराने समयकी चर्चाका नियम था, जो भी मध्यस्थ व्यक्ति होते थे वह ऐसा होनेपर चर्चाको तुरंत रोक देते थे. आज-कल तो टी.वी.पर ऐसी चर्चाको ही बढ़ावा देते हैं क्योंकि उन्हें तो केवल काँय-काँय ही करनी है. उस चर्चाका कोई निष्कर्ष तो निकलता नहीं है. पुराने जमानेका अनुशासन ऐसा था कि आक्षेप और परिहार एक जैसे हो तो चर्चाको तुरंत बंद कर दिया जाता था. बस यही बात महाप्रभुजी कह रहे हैं कि ''यदि आप कर्ताके कर्ताका प्रश्न उठा रहे हो तो हम स्वभावके स्वभावका प्रश्न उठा रहे हैं. व्यर्थमें ऐसी वैनाशिक चर्चा करनेका लाभ क्या है? इसका कोई निष्कर्ष तो निकलेगा नहीं.''

अचेतनाहि सर्वे नियन्तुं शक्याः, ईश्वरएव केवलम् अनियम्यः. इनमें जो अचेतन है जैसे काल कर्म और स्वभाव, ये 'नियामक'

मानें कन्ट्रोलर् नहीं हो सकते. जो चेतन है वही नियमन कर सकता है. क्योंकि चेतन स्वयं प्रकाशित है और दूसरेको भी प्रकाशित कर सकता है. जो स्वयं नियंत्रित होना जानता है, वही तो दूसरेको नियंत्रित कर सकता है. जो स्वयं ही नियंत्रित नहीं है वह किसीका क्या नियंत्रण कर पायेगा! चेतना स्वनियंत्रित है इसी कारण वह दूसरेको भी नियंत्रणमें रख सकती है, यह अपना सिद्धांत है.

प्रकृतिमें ज्ञान नहीं है, क्रियाशक्ति है और पुरुषमें ज्ञानशक्ति है. जब प्रकृति और पुरुष दोनोंमें आपसी संवाद होता है तब पुरुष प्रकृतिको नियंत्रित करने लगता है, क्योंकि प्रकृति क्रियाशील है. प्रकृतिका प्रभाव पुरुषपर अवश्य पड़ता है पर नियमन नहीं कर सकती. जैसे अपने चारों ओरका वातावरण हमें प्रभावित तो करता है पर नियंत्रित नहीं करता. क्योंकि उस वातावरणमें रहना कि उसे छोड़ना यह तो अपने हाथमें है. आप इसका एक स्पष्ट प्रमाण देखिये. कई प्रजाति जो पानीकी थी, उन्होंने तय किया कि जमीनपर आना है. प्रयास करते - करते धीरे-धीरे आ गये. जो जमीनकी प्रजाति थी उन्होंने पानीमें रहनेका प्रयास किया तो व्हेल् मछली बन गयी. इस तरह वातावरण हमको प्रभावित तो कर सकता है पर हम चाहें तो उसे छोड़ सकते हैं. यदि यह संभावना न हो तो आज इतने भारतीय अमेरिका कॅनेडा ऑस्ट्रेलिया क्यों जा रहे हैं? क्योंकि इस वातावरणके जीव होते हुये भी उन्होंने अपने वातावरणको बदलनेका निश्चय किया है. अपने चारों ओरका वातावरण हमें प्रभावित तो कर सकता है पर पकड़ कर रख नहीं सकता. इस प्रकार चेतन होनेका यह लाभ तो है कि आप चाहो तो अपने वातावरणको बदल सकते हो. किसी दूसरेसे नियंत्रित होनेके कारण जड़में यह संभावना नहीं है. इसका कारण यह है कि जड़की दृष्टि नहीं होती केवल स्वभाव ही होता है, चेतनकी दृष्टि होती है.

शास्त्रतः स्वभावस्य अन्यथाभावोपि न उपपद्येत. शास्त्रमें कई

स्थानोंपर जिस वस्तुका जैसा स्वभाव है, उसको बदलनेकी भी प्रक्रिया बतायी गयी है. पर यह कठिन है, किसी वस्तुका स्वभाव नहीं बदलता तो नहीं ही बदलता. आपको एक रोचक बात बताता हुं. इससे संबंधित नहीं है पर क्योंकि यह विषय चल रहा है इसलिए आपको बताना आवश्यक लग रहा है. शास्त्रके हिसाबसे "**ब्राह्मणस्य हि देहो अयं क्षुद्रकामाय नेष्यते**" (भाग.पुरा.११।१७।४२) जिसे भी समाजने ब्राह्मणके रूपमें स्वीकार किया है उसे किसी क्षुद्र कामनाके लिए नहीं प्रयास करना चाहिये, उसे तो तप करनेके लिए बनाया गया है. ऐसा करनेके लिए शास्त्र क्यों कह रहा है क्योंकि ब्राह्मण जितना तप करेगा उतना उसका नियंत्रण अपने देहपर होगा. देहपर नियंत्रणकी आवश्यकता इसलिए है क्योंकि इससे आप अपनी चेतनाको अपनी देहसे पृथक् करके आत्मचिंतन कर पाओगे. अन्यथा आप अपनी दैहिक कामनाओंमें ही उलझे रहोगे. ऐसा होनेपर आप कभी भी अंतर्मुखी नहीं हो पाओगे और आत्मचिंतन नहीं कर पाओगे. इसी कारण शास्त्रने ब्राह्मणकी फिज़िकल् सब बातको छूड़ा दिया.

पुष्टिमार्गमें मरजाद(मर्याद) कहाँसे घुसी उसका स्रोत बता रहा हुं. ब्राह्मणके शारीरिक क्रिया-कलापमें देह छू जाता है जैसे जाजरू गये तो छू गये, पेशाब गये तो छू गये, थूका तो छू गये. जब भी आपका यह भाव दृढ़ हो जायेगा कि हर शारीरिक आवश्यकतासे यदि व्यक्ति छू जाता हो तो आपको उस शरीरके प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा. यह एक प्रकारका संस्कार है. उस समयमें साबुन नहीं था पर आप सुनोगे तो आपको भी ख्याल आयेगा कि शास्त्र ऐसा कहता है कि एक बार जाजरू जाना हो तो आपको तीन बार तो मिट्टीसे पैर धोने चाहिये. दस बार बाँया हाथ धोना चाहिये और छह बार दायाँ हाथ धोना चाहिये. अब एक बार जाजरू जानेमें इतना सब करना पड़ता हो तो आपको वहां जानेमें आलस आयेगी. इस तरह आपको अपनी हर शारीरिक क्रिया करनेमें आलस

आयेगी. जब ऐसी आलस आयी तो आपको लगेगा कि मैं यह शरीर नहीं हुं पर शरीर मेरी आत्माके ऊपर चढ़ा हुआ एक खोल है. ऐसे नियम शूद्रोंके लिए नहीं हैं. उनके लिए केवल स्वच्छताका नियम था शुद्धिका नहीं. पर ब्राह्मणोंके लिए स्वच्छताके साथ शुद्धिका भी नियम था.

हर स्वच्छ वस्तु शुद्ध नहीं है. उदाहरणके लिए अस्पतालका बिस्तर जिसके ऊपर कोई मर गया है, धोके साफ हुवा होनेके कारण स्वच्छ हो सकता है पर शुद्ध नहीं. इस प्रकार हर वस्तुको शुद्ध करते-करते आप अपनी सारी शारीरिक आवश्यकताओंसे तंग आ जायेंगे. एक संस्कारके रूपमें शास्त्र ब्राह्मणको वैराग्यके लिए इस प्रकार तैयार करता है. समस्या कहाँ खड़ी हुयी कि कई ब्राह्मणोंको इससे वैराग्य तो सिद्ध हुआ नहीं पर वह अपने आपको औरोंसे ऊँचा समझने लगें. यह बात तो शास्त्रके प्रोग्राम्में थी ही नहीं. यही बात अपने पुष्टिमार्गमें मरजादकी तरह आ गयी. मरजाद लेनेका मुख्य कारण यह था कि आप सभीसे घुलें-मिलें नहीं, जिससे आप अपनी भक्तिपर अपना ध्यान केंद्रित कर सकें. यह बात तो हुयी नहीं पर उनमें एक अहंकार आ गया कि "आप बिनमरजादी! तो फिर आपके हाथका हमें नहीं चलेगा." इस तरह कुत्तेकी पूंछको बारह साल भी सीधा करके रखो तो भी जब खोलोगे तो टेढ़ीकी टेढ़ी ही रहेगी. इस तरह स्वभाव कहीं न कहीं तो बाहर प्रकट हो ही जाता है. पर शास्त्रमें यह एक प्रोग्राम्के तहत बात कही गयी थी कि जिससे आपमें शरीरके प्रति वैराग्यकी भावना जाग्रत हो और आप अंतर्मुखी हो. पर वह न हो कर व्यक्तिका स्वभाव आड़े आ गया और उसमें अहंकार जाग्रत हो गया. यह केवल अपने यहां ही नहीं; बौद्धोंमें क्रिश्चनोंमें जैनोंमें सभी जगह है. यहाँ-तक कि वैज्ञानिकोंमें भी है.

एक बार मैं अपनी शारीरिक जाँचके लिए एक अस्पताल

गया था. वहाँ एक व्यक्ति मेरे फेफड़ोंकी जाँच करने आया. उस जाँचमें आपके मुंहमें एक नली लगा कर आपको कहते हैं कि उसमें फूंक मारो. वह व्यक्ति सीधा मेरे सामने टॉयलेट्से आया और उसने हाथ धोये बगैर मेरे मुंहमें नली ठूंसनी चाही. मुझे उसके हाथसे दुर्गंध आ रही थी. मैने उससे कहा "आप शायद साबुनसे हाथ धोना भूल गये हैं." अरे, आप एक साइंस्की लॅब्में काम कर रहे हो, आप ही सफाई नहीं रखोगे और दूसरोंको सिखाना चाहोगे तो कोई कैसे आपकी बात मानेगा! इस तरह मोटे तौरपर जितनी गंदगी मंदिरोंमें होती है, उतनी घरोंमें नहीं होती. इसका कारण यही है कि लोग मंदिरमें रहनेका अहंकार जाग्रत कर लेते हैं पर उसके पीछेका कारण भूल जाते हैं. इसमें मंदिर अथवा डॉक्टर् का दोष है, ऐसा नहीं है पर उनका स्वभाव आड़े आ रहा है. जितने भी अपने स्कूलोंके अध्यापक हैं, उन्हें पढ़ाना नहीं आता क्योंकि उन्हें अपने विषयकी अच्छी जानकारी नहीं होती. परीक्षामें पास हो कर अध्यापक बन जाते हैं. इसलिए आप उनसे प्रश्न पूछो तो उन्हें क्रोध आता है. उन्हें जितना आता है उतना तो वह बता देते है पर कोई नया प्रश्न आ जाये तो उन्हें क्रोध आ जाता है. देखो, यह स्वभाव आड़े आ रहा है. अपना अहंकार इसी तरह काम करता है. यह एक जादूकी तरह है. अहंकार जैसा जादूगर अपने शरीरमें दूसरा नहीं है. जैसा आपने सुना ही होगा कि *"प्राण जाये पर वचन न जाय."* अहंकार अपने प्राण छोड़नेको तैयार है पर अपनी मूंछकी मरोड़ नहीं. यह अपने शरीरमें ऐसी अभूतपूर्व वस्तु है.

प्रश्न : पुष्टिमार्गमें यह जो मर्यादकी व्यवस्था है, क्या वह शास्त्रीय है?

उत्तर : पुष्टिमार्ग इस बारेमें एकदम मौन है. पुष्टिमार्गके अनुसार यदि आपको शास्त्रवर्णित अभिमान है तो आप शास्त्रके बंधनोंको

छोड़ नहीं सकते. पर भक्ति शास्त्रकी मोहताज नहीं है. जो शास्त्रके अनुसार चल रहा है अथवा जो नहीं चल पा रहा, भक्ति तो दोनों ही कर सकता हैं. पर समस्या यह है कि जैसे ही ऐसा कहनेमें आया तो लोग उसका यह अर्थ लगा लेते हैं कि पुष्टिमार्गमें शास्त्रकर्म निभानेकी आवश्यकता नहीं है. आ गया न मनुष्य स्वभाव बीचमें! पुष्टिमार्ग कभी भी यह नहीं कहता कि शास्त्रवर्णित कर्तव्य आप नहीं करो. पुष्टिमार्ग तो आपके ऊपर छोड़ देता है कि आपसे निभता हो तो आप करो और नहीं निभता तो आपकी भक्तिमें बाधक नहीं होगा और इसके साथ ही उन शास्त्रीय विधानोंका फोकस् पॉइन्ट् भक्तिके अर्थ होना चाहिये, यह समझाता है. हमसे यह तो निभता नहीं है और शास्त्रीय कर्तव्यपे हम टीक जाते हैं. यहाँ-तक कि उसका आरोप ठाकुरजीपर भी लगाते हैं कि हमारी पक्की मर्यादके ठाकुरजी, बिन-मर्यादके ठाकुरजीसे बड़े हैं, उनके साथ एक सिंहासनपर नहीं बिराज सकते. अरे, ठाकुरजीमें क्या छोटा और क्या बड़ा! यह सब मनुष्यके स्वभावका भक्तिमें दुरुपयोग है.

शास्त्रतः स्वभावस्य अन्यथाभावोपि न उपपद्येत. स्वभावका अन्यथाभाव शास्त्र समझाता ही है कि ब्राह्मणका स्वभाव है पर उसे सुधारना हो तो किस प्रकारका संस्कार किया जाये जिससे उसका अन्यथाभाव न हो जाये. आजकी तारीखमें भी हम देख सकते हैं कि जेहादियोंको इस प्रकारकी ट्रेनिंग् नहीं दी जाती कि कैसे मारना है बल्कि इस बातकी दी जाती है कि कैसे मरना है, इस कारण वे डरते ही नहीं हैं. सेनाको ट्रेनिंग् दी जाती है मारनेकी, इसलिए उन्हें किसीको मारना भी हो तो एक प्रकारका भय रहता है. इससे निष्कर्ष निकलता है कि ‘संस्कार’ मानें नर्चर् काम नहीं करता, ऐसा नहीं है और ऐसा भी नहीं है कि स्वभाव काम नहीं करता. पर दोनों ही अलग-अलग सूत्रोंसे काम करते हैं. स्वभाव भी काम करता है और संस्कार भी. **पटादौ तन्त्वादिसामग्री, चिन्तामण्यादयश्च कारणत्वेन**

कल्प्यमाना: व्यभिचारिण: स्यु:. पट आदिको बनानेके लिए तन्तु जैसी सामग्री चाहिये पर चिन्तामणिसे मांगे तो तुरंत दे देती है. चिन्तामणि अपने स्वभाव अथवा क्रिया से वस्तुको पैदा नहीं करती है पर आप जो मांगो वह दे देती है. अब इसमें हम कर्ता अथवा निमित्त-कारण ढूंढने जायें तो हमें कुछ मिलेगा ही नहीं. **अतो भगवच्छक्ति: एकैव सर्वभवनरूपा, प्रतिनियता समुदाये, प्रत्येकं वा, यत्रैव अवतिष्ठते भगवन्नियमात् ततएव उत्पाद्यतइति युक्तं भगवान्एव तथा आविर्भवतीति न वैनाशिकगन्धोऽपि.** अत: आपको एक भगवत्-शक्ति ऐसी माननी पड़ेगी कि जो समुदायमें मानें सभीमें और प्रत्येकमें काम कर रही है. इस तरह यह शक्ति जहाँ हो वहाँ वस्तु उत्पन्न हो जाती है और जहाँ वह शक्ति उस प्रकारकी नहीं होती वहाँ वह वस्तु पैदा नहीं होती. इस तरह जो वस्तु पैदा हो रही है और जो वस्तु पैदा कर रही है, वे दोनों ही भगवान् हैं. यदि आप इस सिद्धांतको मान रहे हैं तो आप वैनाशिक प्रक्रियाको माननेके लिए बाध्य नहीं हैं.

श्रुतिरपि संवादिनी अत्र अन्यत्र श्रुतिविरोध: च. तस्माद् युक्तम् उक्तं भगवद्वीर्यसम्भवाद् इति. ज्ञानप्रधानाद् महत्तत्त्वात् क्रियाशक्ति: अहङ्कार: उत्पन्न:. सच त्रिविध:. उत्पत्त्यैव तथैव समपद्यत. क्रियाहि भेदिका कारणभूतं गुणत्रयं कार्ये भिन्नतयैव उत्पादितवती. ज्ञान-प्रधान जो महत्तत्त्व है, उससे क्रिया-शक्ति, अहंकार आदि उत्पन्न होते हैं. वे त्रिविध रूपसे प्रकट होते हैं, यह आगे बता रहे हैं॥२३॥

श्लोक :

वैकारिकस् तैजसश्च तामसश्च यतो भव: ॥
मनसश्च इन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि॥२४॥

अनुवाद : **वैकारिक सात्त्विक तैजस् और तामस, ऐसे तीन रूपोंसे प्रकट हुए उस अहंकारमेंसे मन, पांच इन्द्रिय, महत् और पंचमहाभूत**

प्रकट होते हैं ।।२४।।

सुबोधिनी : **आध्यात्मिकस्वरूपमिव तान् भेदान् गणयति वैकारिक: इति. वैकारिक: सात्त्विक: तैजसो राजस: तामसश्च. आध्यात्मिके गुणाएव सधर्मा: लक्षणानि. यत: त्रिविधाद् मनस: इन्द्रियाणां भूतानां च सम्भव:. महताम् इति तन्मात्राणाम्. महतामपि कार्यजननमपि लक्षणम्. ‘‘मन:प्रभृति-कार्यजनक-सत्त्वादिगुणवत्त्वं’’ वा लक्षणम् अव्यभिचारात् ।।२४।।**

अनुवाद : अहंकारके आध्यात्मिक स्वरूप जैसे अनेक प्रभेदोंकी गणना करते हैं. वैकारिक = विकृत सात्त्विक तैजस् = राजस और तामस. आध्यात्मिक कार्योंमें गुण ही उत्पादक होनेसे धर्म और लक्षण भी बन जाते हैं. क्योंकि मन भी त्रिविध होनेके कारण उसमेंसे इन्द्रिय और पंचमहाभूत प्रकट होते हैं. महद्भूत अर्थात् तन्मात्रा. महद्भूतका लक्षण भी कार्यजनन होता है. इसी कारण ‘‘मन आदि कार्योंका जनक हो कर जो सत्त्वादि गुणवाला होता है वह अहंकार’’ ऐसा अव्यभिचारी लक्षण फलित हुआ ।।२४।।

विवेचन : अब अहंकारकी आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक स्वरूपकी गणना करते हैं. **वैकारिक: सात्त्विक: तैजसो राजस: तामस: च.** वैकारिक = सात्त्विक, तेज = राजस, और तामस, यों तीन प्रकार अहंकारके होते है. **यत: त्रिविधाद् मनस: इन्द्रियाणां भूतानां च सम्भव:.** इनमें सात्त्विक अहंकारसे मनकी उत्पत्ति होती है, राजस अहंकारसे इन्द्रिय उत्पन्न होती हैं और तामस अहंकारसे तन्मात्रा उत्पन्न होती हैं. ‘सात्त्विक’ मानें ज्ञानात्मक (cognitive) ‘राजस’ मानें क्रियाशील (dynamic) और ‘तामस’ मानें जड़ (inertial). अब देखो कि मन प्रतिक्रिया देनेके लिये हमेशा सावधान होता है. इसलिए यह सात्त्विक अहंकारमेंसे उत्पन्न होता है. सारी इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं, विषयके साथ सदा पारस्परिक व्यवहारके मोड्में रहती हैं, इस कारण अहंकारके

राजस अंशसे पैदा होती हैं. तामस अहंकारसे रूप रस गंध स्पर्श आदि तन्मात्रा पैदा होती हैं.

अब यहाँ प्रश्न होता है कि सॅल्फ्-अवेयरनेस्से, दूसरोंकी अवेयरनेस् तो पैदा होती है, यह समझ आता है कि उसमें मनका कुछ रोल् है. क्योंकि मन अपने बारेमें तो कभी ही सोचता है, हमेशा दूसरोंके बारेमें सोचता है. इन्द्रियाँ हमेशा किसी दूसरे विषयसे बात करनेको उत्साहित रहती हैं. जान कर अथवा अनजानेमें इन्द्रियाँ कभी भी अपने विषयसे संबंध बनाये बिना रह ही नहीं सकती. उदाहरणके लिए यदि मैं आपको कहूं कि यह पंखा चल रहा है उसकी आवाज़ आपको आ रही है कि नहीं? आपको आवाज़ कानसे तो सुनायी दे रही थी, पर जब आपका मन उसमें गया तब ही आवाज़ बराबर सुनायी दी. कान उस ध्वनिको पहलेसे ही सुन रहा था पर सुनायी हमें तब दिया जब हमारा मन उस ओर आकृष्ट हुआ. आँख तो जो भी उसके सामने है वह देख ही रही होती है, उसी प्रकार जो गंध वातावरणमें है, नाक उसे सूंघी ही जा रही होती है, पर मन उसके ऊपर ध्यान दे तो ही हमें ख्याल आयेगा. मन यदि उस ओर नहीं ध्यान दे रहा तो हमें ख्याल ही नहीं आयेगा. इसी प्रकार हाथ अथवा पैर की क्रिया अपने आप चलती रहती है पर आप ध्यान दो तो ही आपको ख्याल आयेगा. उदाहरणके लिए हम जब चल रहे होते हैं तो हमारे हाथ भी हिल रहे होते हैं. क्या वह हमारी इच्छासे हिल रहे हैं? नहीं, वे तो अपने आप हिल रहे हैं. शरीरमें यह व्यवस्था है ही कि कर्मेन्द्रिय अपना काम स्वत: करती रहती हैं.

कई बार ऐसे केस् भी सामने आये हैं कि लोग नींदमें लोगोंका मर्डर् तक कर आते है. जाग्रत अवस्थामें किसी बातपर उन्हें उस व्यक्तिपर क्रोध आया था, पर मारनेकी हिम्मत नहीं पड़ी तो सोते हुए ही अनजानेमें उस व्यक्तिकी हत्या कर आये. ऐसे कई केस्

मनोवैज्ञानिकोंने देखे हैं. आपने यह भी देखा होगा कि कई बार जब मुर्देको जलाया जाता है और उसपर वजन नहीं रखा जाता तो नसोंकी ऐठनके कारण मुर्दा बैठ जाता है. इसीलिए उसकी छातीपर अधिक लकड़ी रखनी पड़ती हैं. यह सब मॅकेनिकल् ही होता है क्योंकि सैद्धांतिक तौरपर इस शरीरको क्रियाशील ही बनाया गया है. सभी इन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रिय हो चाहे ज्ञानेन्द्रिय, उन्हें क्रियाशील ही बनायी गयी है. वे विषयके साथ निरंतर संवादके मोड्में ही रहती हैं. इसी कारण उन्हें 'राजस' कहा गया है.

तामस हमेशा इनर्शियामें रहता है. न तो वह क्रियाशील होता है और न ही वह ज्ञानशील होता है. इससे आप इस तरह भी समझ सकते हैं कि ये स्टेटिक्-एनर्जीसे इनर्शियामें चली जाती हैं. और काइनेटिक्-एनर्जी डायनेमिक् फन्कशन् करने लगती है. इस तरह तन्मात्राएं हमेशा इनर्शियामें ही रहती हैं. यदि आप उनकी ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं तो वे आपके पीछे नहीं आयेगी. जैसे कोई भी रूप आपको यह नहीं कहेगा कि उसे देखो ही, कोई गंध यह नहीं कहेगी कि उसे आप सूंघो ही, कोई शब्द यह नहीं कहेगा कि आप उसे सुनो ही. वे हमेशा एक प्रकारके इनर्शियामें रहती हैं. आप उनपर ध्यान दें तो ठीक, नहीं दें तो भी ठीक. आपने देखा होगा कि लोग आगके ऊपरसे चल कर निकल जाते हैं क्योंकि उन्होंने अपने मनको यह निर्देश दे रखा होता है कि स्पर्शपर ध्यान नहीं देना. इस तरह वे आगके ऊपरसे नंगे पैर निकल जाते हैं. **महतामपि कार्यजननमपि लक्षणम्. मनःप्रभृतिकार्यजनक-सत्त्वादिगुणवत्त्वं वा लक्षणम् अव्यभिचारात्.** मनःप्रभृति कार्यजनक-सत्त्वादिगुणवाला इस अहंकारका लक्षण है.

(अहंकारका आधिदैविक स्वरूप)

श्लोक :

सहस्रशिरसं साक्षाद् यम् अनन्तं प्रचक्षते।।

‘सङ्कर्षणा’ख्यं पुरुषं भूतेन्द्रिय-मनोमयम्॥२५॥

अनुवाद : **यह अहंकार हजार सिरवाला ‘अनंत’ कहलाता है और उसका ‘संकर्षण’ नाम भी है. वह भूतेन्द्रियमनोमय (भूत इन्द्रिय और मन रूपी) पुरुष बन जाता है॥२५॥**

सुबोधिनी : **आधिदैविकं लक्षयति सहस्रशिरसम् इति. यथा पूर्वं वासुदेवः तथा अत्र सङ्कर्षणः. स्वभावतो अयं तामसः प्रलयकर्ता च. अहङ्कारेण उत्पादितं नाशकमेव. तस्य अनेकधा उत्पत्तिज्ञापनार्थं देवतायाम् अनन्तानि शिरांसि निरूप्यन्ते सहस्रशिरसम् इति. सुखभेदाः वा, “सहस्रसम्मितः स्वर्गो लोकः”( ) इति श्रुतेः. अतएव अहङ्कारेण कालनिरूपित-कर्माणि सफलानि अनन्तानि. ‘अनन्त’शब्दः काले, सङ्कर्षणे, शेषे च प्रवर्तते. प्रचक्षते इति प्रमाणम्. सात्त्वता यं सङ्कर्षणाख्यं प्रचक्षते इति सम्बन्धः. सा काचिद् अन्या देवता भविष्यति इति आशङ्क्य आह पुरुषम् इति. पुरुषएव सङ्कर्षणः, न मूलभूतः कालः. तस्य त्रिविधाहङ्काराधिष्ठातृत्वाय रूपत्रयम् आह भूतेन्द्रिय-मनोमयम् इति. तत्र विद्यमानानि भूतेन्द्रियमनांसि कार्ये आविर्भवन्ति. ‘मयट्’प्रत्ययः प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते; प्राचुर्ये च अयम्॥२५॥**

अनुवाद : अब अहंकारका आधिदैविक स्वरूप बता रहे हैं. अहंकारके आधिदैविक स्वरूपका लक्षण हजार सिरवाला है. जैसे आगे वासुदेव थे वैसे ही यहां संकर्षण है. स्वाभाविकरूपसे अहंकार तामस और प्रलयकर्ता होता है. इसीसे अहंकार जैसा भी उत्पन्न होता है वह नाशक ही होता है. उसकी उत्पत्ति अनेक प्रकारसे होती है, उसे बतानेके लिए संकर्षण देवताके अनंत सिरोंका निरूपण करते हैं ‘हजार सिरवाला’ कह कर, अथवा तो ‘अनन्त सिर’का अर्थ अनन्त प्रकारके सुख भी हो सकता है, क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि “स्वर्गलोक हजारों प्रकारके सुख प्रदान करनेवाला है.” ( ) इसी कारण अहंकारसे

किये जाते कालनिरूपित कर्म, सफल और अनंत होते हैं. ‘अनन्त’ शब्दका प्रयोग काल संकर्षण और शेष के लिए किया जाता है. ‘कहलाता है’ पदप्रयोगके कारण प्रमाणका सूचन किया. सात्त्वत जिसको ‘संकर्षण’ संज्ञासे बताते हैं. उसे कोई दूसरा देवता ही न मान ले इसीसे उसे ‘पुरुष’ कहा. पुरुष ही संकर्षण बनता है, मूलभूत काल नहीं. यह पुरुष तीनों प्रकारके अहंकारोंका अधिष्ठाता बन जानेके कारण, उसके तीन रूप कहे भूत इन्द्रिय और मन रूपी, वहां विद्यमान भूत इन्द्रिय और मन का कार्यतया आविर्भाव होता है. ‘भूतेन्द्रियमनोमय’ शब्दमें ‘मयट्’प्रत्यय प्रत्येकके साथ जुड़ा हुआ है, और उसका अर्थ प्रचुरता भी होता है॥२५॥

विवेचन : आपको याद हो तो मैंने आपको बताया था कि चित्त वासुदेव है, ऐसे ही अहंकार संकर्षण है. ‘वासुदेव’ मानें विष्णु, ‘संकर्षण’ मानें रुद्र. वासुदेव स्वभावके समानान्तर हैं और संकर्षण कालके समानान्तर हैं. इसीलिए अपने यहाँ कृष्णको ‘वासुदेव’ कहा गया हैं और बलरामको ‘संकर्षण’. रामको ‘वासुदेव’, ‘लक्ष्मण’को संकर्षण, विष्णुको ‘वासुदेव’ और वे जिस शेष-शैयापर पौढ़ते हैं उसे ‘संकर्षण’ कहा गया हैं. उस शेषको एक-हज़ार फनवाला माना गया है. यही बात अपने अहंकारके साथ भी है. वह एक सिरवाला नहीं हज़ार सिरवाला है. आप इसकी गणना अपने आपपर भी कर सकते हो. आप एक नामसे जाने जाते हो, आप पिता अथवा पुत्र हो, पति हो, नौकर हो अथवा मालिक हो, आप वल्लभवेदांतके विद्यार्थी हो. ऐसे आप गिनते जाओ तो हज़ारसे भी ऊपर हो जायेंगे. विष्णु ऐसे शेषके ऊपर पौढ़ते हैं. वासुदेव हज़ार फनके अहंकारके ऊपर पौढ़ते हैं. (अब यदि वासुदेव संकर्षणपर पौढ़े तो वह व्यक्ति नोर्मल् होता है पर यदि संकर्षण वासुदेवपर चढ़ बैठे तो वह व्यक्ति ॲब्नोर्मल् बन जाता है.) अहंकार आपके चित्तपर चढ़ बैठे तो आप सारे काम अपने अहंकारसे ही करोगे, चित्तसे नहीं. फिर चित्त

चाहे कहे भी कि यह काम ठीक नहीं है, तो भी अपना अहंकार उसे सुनेगा नहीं.

साहिर लुधियानवी शायर जो कि फिल्मोंके लिए गीत लिखते थे, उनका एक बहुत प्रसिद्ध गीत है *“मगर सुनो तो शेखजी अजीब शै हैं आप भी, भला शबाबो आशिकी अलग हुए भी हैं कभी”.* व्यक्ति अपने धर्मोपदेशकसे कह रहा है “आप ही बताओ कि जवानी और प्रेम भी कभी अलग हो सकते हैं?” आगे कहते हैं *“चलो जी किस्सा मुख्तसर, तुम्हारा नुक्ता-ए-नज़र, दुरुस्त हो तो हो मगर, अभी तो मैं जवान हूं.”* “हो सकता है आप सही बात कह रहे हों पर अभी ऐसी बात सुननेका मेरे पास समय नहीं है क्योंकि अभी तो मैं जवान हूं. आप कहते होंगे कि प्रेम मत करो पर मैं तो करूंगा.” देखो, अपने जवान होनेका अहंकार चढ़ बैठा चित्तपर. बात सच्ची भी हो तो भी वह स्वीकारनेको तैयार नहीं है. अहंकार इस प्रकार बोलता है.

यही बात यहाँ कह रहे हैं कि **सहस्रशिरसं साक्षाद् यम् अनन्तं प्रचक्षते** यह अहंकार हज़ार फनवाला है इसीलिए इसको ‘अनंत’ भी कहा गया है. इस अहंकार रूपी गुब्बारेमें आपको जितनी भी हवा भरनी है, भर दो, वह कभी फटेगा नहीं. एक सूफीका शेर है *“सिर बरहना नेस्तं दारम कुलाहे चार तर्क. तर्के उक्बा. तर्के दुनिया, तर्के जां, तर्के तर्क.”* पर्शियामें कोई भी व्यक्ति नंगे सिर नहीं रहता था, हमेशा सिरपर पाग जैसा पहन कर ही रहता था. पर वहाँ जो दरवेश मानें त्यागी होते थे वे कभी पगड़ी नहीं पहनते थे. सूफी कह रहा है कि “मैंने सारी पगड़ियाँ अपने सिरसे उतार फेंकी हैं पर फिर भी चार प्रकारकी पगड़ी मैंने अभी भी पहन रखीं हैं. पहली पगड़ी है तर्के उक्बा = दुनियाकी सब पदवीका मैंने त्याग किया है. उस त्यागके अहंकारकी टोपी मैंने अभी भी पहन

रखी है जिसका त्याग नहीं किया. मैंने अहंकारकी दूसरी भी पगड़ी पहन रखी है कि मैंने इस दुनियाको त्याग दिया है. तीसरी पगड़ी है कि मुझे अपनी जानकी भी परवाह नहीं है. आप सब इस जान जानेके डरसे भयभीत हो, यह अहंकार भी मेरे मनमें अभी है. चौथा कि तुम तो सारे संसारी हो और मैं बैरागी हुं. यह भी एक अहंकार मेरे मनमें अभी है.'' हमने भोगकी टोपी पहनके रखी है और उन्होंने त्यागकी टोपी पहनके रखी है. इस प्रकार शेषनाग रूपी अहंकारके अनंत फन हैं. आप एक फनको कुचलोगे तो दो फन और खड़े हो जायेंगे. इस अहंकारका ऐसा करिश्मा है.

यथा पूर्वं वासुदेवः तथा अत्र सङ्कर्षणः. स्वभावतो अयं तामसः प्रलयकर्ता च. संकर्षण तामस है क्योंकि वह हमेशा क्रियाशील नहीं रहता और न ही ज्ञानशील रहता है. ''मैं ही हूं, बाकी सब खोटे.'' आपको तो पता ही है कि 'मैं'का कोई बहुवचन नहीं है. 'तु'का बहुवचन है 'तुम', 'उस'का बहुवचन है 'उन'. यही इस अहंकारका अद्भुत माहात्म्य है. अपने अलावा किसी औरको गिने उसका नाम अहंकार नहीं. 'मैं' सदा अपने एकत्वका आनंद लेता है. अंततः स्वयंका और दूसरी वस्तुका कालकी तरह नाश ही करता है. **अहङ्कारेण उत्पादितं नाशकमेव.** जो भी अहंकारसे पैदा होता है उसका नाश तो निश्चित है. **तस्य अनेकधा उत्पत्तिज्ञापनार्थं देवतायाम् अनन्तानि शिरांसि निरूप्यन्ते सहस्रशिरसम् इति.** उसकी अनेकधा उत्पत्ति दर्शानेके लिए देवताकी तरह इसके अनेक सिर बता रहे हैं. **सुखभेदाः वा, ''सहस्रसम्मितः स्वर्गो लोकः''( ) इति श्रुतेः.** ऐसा नहीं है कि इसके केवल सहस्र सिर ही हैं अपितु उससे होनेवाले सुख भी सहस्र प्रकारके हैं. हमको जो भी अहंकार होते हैं वह उस समय सुखदायक ही होते हैं. उस मिलते हुए सुखके कारण ही हम अहंकारको छोड़ नहीं पाते.

अतएव अहङ्कारेण कालनिरूपित-कर्माणि सफलानि अनन्तानि. ‘अनन्त’शब्दः काले, सङ्कर्षणे, शेषे च प्रवर्तते. ‘अनन्त’शब्द दो वस्तुओंके लिए प्रयुक्त होता है. ‘काल’के लिए और ‘अहंकार’के लिए मानें शेषनागके लिए. **प्रचक्षते इति प्रमाणम्. सात्त्वता यं ‘सङ्कर्षणा’ख्यं प्रचक्षते इति सम्बन्धः. सा काचिद् अन्या देवता भविष्यति इति आशङ्क्य आह पुरुषम् इति.** तो क्या यह कोई अलग प्रकारका देवता है? इस शंकाके समाधानके लिए कहते हैं कि यह कोई बाहरी देवता नहीं है यह तो अपने अंदर ही है. **पुरुषएव सङ्कर्षणः, न मूलभूतः कालः.** इसको कालकी तरह मत समझ लेना. **तस्य त्रिविधाहङ्काराधिष्ठातृत्वाय रूपत्रयम् आह भूतेन्द्रिय-मनोमयम् इति.** यह अहंकार अपने भीतर तीन प्रकारसे शासन करता है, भूत इन्द्रिय और मन पर. जो अपने मन अथवा इन्द्रियों पर नियंत्रण करनेका प्रयास करते हैं, उन्हें उस प्रकारका अहंकार विकसित करना पड़ता है. अहंकार विकसित होगा तभी मन नियंत्रणमें आयेगा, नहीं तो नहीं.

तत्र विद्यमानानि भूतेन्द्रियमनांसि कार्ये आविर्भवन्ति. ‘मयट्’प्रत्ययः प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते. प्राचुर्ये च अयम्. इस अहंकारको भूतेन्द्रियमनोमय इस कारणसे कहा जाता है क्योंकि भूत इन्द्रिय और मन यह तीनों अहंकारसे ही प्रकट होते हैं. आपमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् होगी तो ही आपमें दूसरी वस्तुकी अवेयरनेस् आयेगी. आपमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् होगी तो ही आपमें अपनी इन्द्रियोंकी सेन्सरी अवेयरनेस् आयेगी. आपमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् होगी तो ही आपमें अपने मनकी मानें मॅन्टल्-अवेयरनेस् आयेगी. जब आप अपने आपके बारेमें ही अवेयर् नहीं हो तो आपका मन भी कहीं खो जायेगा. आपने देखा ही होगा कि हमारी सॅल्फ-अवेयरनेस्को चॅक् करनेके लिये डॉक्टर् पैरमें कांटा चुभाता है अथवा हथौड़ी मारता है और आपको झटका लगता है तो वह समझ जाता है कि हमारी सॅल्फ्-अवेयरनेस् काम कर रही है. यदि संवेदना प्रकट नहीं होती तो डॉक्टर् इस निष्कर्षपर पहुँच जाता है

कि हमारी सॅल्फ्-अवेयरनेस् खत्म हो गयी है. आप देखो कि हम सो रहे हों और कोई हमारा नाम जोरसे पुकारे तो हम जग जाते हैं क्योंकि अपना अहंकार सबसे पहले जग जाता है. किसी औरका नाम पुकारे तो जगते नहीं हैं. इस तरह हम देख सकते हैं कि अहंकार कितनी विचित्र वस्तु है! इसमें देव दानव मानव तीनों ही रह रहे हैं.

श्लोक :

कर्तृत्वं कारणत्वं च कार्यत्वं च इति लक्षणम्॥
शान्त-घोर-विमूढत्वम् इति वा स्याद् अहङ्कृतेः॥२६॥

अनुवाद : **अहंकारका लक्षण कर्तापने कारणपने और कार्यपने के आधारपर तीन प्रकारका होता है. अथवा अहंकार शान्त घोर और विमूढ़ होता है॥२६॥**

सुबोधिनी : **आधिभौतिकं लक्षयति कर्तृत्वम् इति. कर्तृत्वं प्राणिषु विद्यमानाहङ्कारस्य सात्त्विकस्य लक्षणं, कारणत्वं राजसस्य, कार्यत्वं तामसस्य. एतद् धर्मपुरःसरं लक्षणम्. धर्मिपुरःसरम् आह शान्त-घोर-विमूढत्वम् इति. शान्तत्वं सात्त्विकस्य स्वरूपलक्षणम्, अतएव अहङ्कारेण शान्तिः अप्रयोजिका. घोरत्वं राजसस्य, विमूढत्वम् तामसस्य. निरहङ्कारस्य न एते भावाः उत्पद्यन्ते. अतएव भगवत्परः त्रितयविलक्षणो भवति. वा इति विकल्पार्थः. अहङ्कृतेः अहङ्कारस्य. भौतिकस्य दुर्बलत्वात् स्त्रीत्वम्॥२६॥**

अनुवाद : अहंकारके आधिभौतिक स्वरूपका लक्षण कह रहे हैं. [१] कर्तृत्व प्राणियोंमें सात्त्विक अहंकारका लक्षण, [२] कारणपना राजसका और [३] कार्यपना तामसका. यह लक्षण अहंकारके धर्मोंके आधारपर किया गया है. अब स्वयं अहंकार धर्मीके आधारपर भी शान्त घोर और विमूढ़ होता है. शान्त होना सात्त्विक अहंकारका स्वरूप लक्षण है, इसीसे

अहंकारके कारण कभी किये गये कार्योंमें शान्तिकी अपेक्षा होती नहीं है (अहंकारका स्वयं अपने स्वरूपमें शान्तिका अनुभव करनेके कारण.) घोर होना राजसका लक्षण है, विमूढ़ होना तामसका. जो अहंकारके अतिरेकसे रहित होता है उसके हृदयमें ऐसे भाव कभी उत्पन्न होते ही नहीं हैं. अतएव जो अहंकार भगवान्‌में परायण हो जाता है वह इन तीनोंसे विलक्षण हो जाता है. ऐसे वैकल्पिक स्वरूपको सूचित करनेके लिए विकल्पार्थक 'अथवा' का प्रयोग किया है. भौतिक अहंकारकी दुर्बलता दिखानेके लिए उसे 'अहंकृति' कहा गया है॥२६॥

विवेचन : **कर्तृत्वं कारणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम्** अहंकार कर्ता भी कार्य भी और कारण भी है. कार्य है महत् तत्त्वका, कारण है भूतेन्द्रियमनोमयका और भूतेन्द्रियमनोमयसे जो भी कार्य आप करते हो उसका कर्ता अहंकार ही होता है. सच बात तो यह है कि स्वयंप्रकाश जीव-चेतना (consciousness) कर्ता नहीं होती. वह तो अहंकारका सहारा ले कर ही कर्ता बनती है. चेतना और सॅल्फ्-अवेयरनेस् दो अलग वस्तुएं हैं. चेतनाको सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌के साथ जोड़ा गया है. क्योंकि चेतना महत्‌में डाली गयी है और महत्‌को स्वयंप्रकाश चेतना प्रकृतिसे विरासतमें मिली है. आप अपनी इस चेतनाको सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌के माध्यमसे ही देख सकते हैं. अन्यथा हम कभी भी उस चेतनाकी जानकारी प्राप्त ही नहीं कर सकते. स्वयंप्रकाश चेतना तो अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌के साथ मिश्रित हो चुकी है. अधिक-से-अधिक आप अपने बारेमें जान सकते हैं, अपनी चेतनाके बारेमें नहीं.

आधिभौतिकं लक्षयति कर्तृत्वम् इति. अहंकारका कर्तृत्व आधिभौतिक है. **कर्तृत्वं प्राणिषु विद्यमानाहङ्कारस्य सात्त्विकस्य लक्षणं, कारणत्वं राजसस्य, कार्यत्वं तामसस्य.** प्राणियोमें कर्तृत्व, अहंकारका सात्त्विक-लक्षण है, कारण होना राजसलक्षण है और कार्य होना तामसलक्षण है.

शान्त-घोर-विमूढत्वम् इति वा स्याद् अहङ्कृते: अहंकार शान्त घोर और विमूढ़ तीनों प्रकृतिका होता है. जैसे हम ॲलीफॅन्टाकी गुफामें जायें तो वहाँ त्रिमूर्तिके तीन मुख हैं. एक शान्त है, दूसरा घोर है और तीसरा विमूढ़ है. बहुतसे लोग समझते हैं कि वे ब्रह्मा विष्णु और शिव के मुख हैं पर ऐसा नहीं है. दायीं ओरका मुख घोर मानें भैरवका है, वह भयंकर दीखता है. बायीं तरफका मुख पार्वतीका है, वह एकदम शिवपर मोहित है मानें प्रेमभावसे विमूढ़सा दिखता है. और बीचका मुख शिवका शान्तरूप है. इसे सात्त्विक राजस और तामस भी कह सकते हैं. **तद् धर्मपुरःसरं लक्षणम्. धर्मिपुरःसरम् आह शान्त-घोर-विमूढत्वम् इति. शान्तत्वं सात्त्विकस्य स्वरूपलक्षणम्, अतएव अहङ्कारेण शान्तिः अप्रयोजिका. घोरत्वं राजसस्य, विमूढत्वं तामसस्य.** जब भी अहंकार घोर हो जाता है तो उस हालतमें हमें कभी भी शान्ति नहीं मिलती है. घोर अहंकारको आप शान्त बैठनेको बोलें तो वह कभी संभव नहीं होगा. **निरहङ्कारस्य न एते भावाः उत्पद्यन्ते.** पर जो भी व्यक्ति निरहंकारी हो जाता है, वह न घोर, न विमूढ़ और न ही शान्त रह जाता है. **अतएव भगवत्परः त्रितयविलक्षणो भवति. वा इति विकल्पार्थः.** अब-तककी चर्चा तो स्वपर अहंकारकी थी. पर यदि यह अहंकार भगवत्पर हो जाये तो ये तीनों गुण अथवा अवगुण प्रभावशाली नहीं रहते और भक्तिभाव उदात्तीकृत हो जाती है. भगवत्पर होनेके कारण कार्य भी होगा तो भक्तिरूप होगा, शान्ति भी भक्तिरूप और विमूढ़ता भी भक्तिकी होगी. यदि स्वपर है तो शान्त घोर और विमूढ़ता का गुणधर्म प्रकट होता है.

अब आगे 'मन' आ रहा है. वासुदेव संकर्षण के बाद 'अनिरुद्ध'. मनको 'अनिरुद्ध' माननेमें आया है. अनिरुद्ध इसलिए क्योंकि उसको रोका नहीं जा सकता. अहंकार चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो उसे आप चाहो तो रोक सकते हो. पर मनको रोका नहीं जा सकता॥२६॥

(३. मनके लक्षण)

श्लोक :

वैकारिकाद् विकुर्वाणाद् मनस् तत्त्वम् अजायत।।
यत् सङ्कल्प-विकल्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः।।२७।।

अनुवाद : **वैकारिक सात्त्विक अहंकार, जो विकारको उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हुआ हो उस समय, उससे मन(रूप) तत्त्व प्रकट हुआ, संकल्प और विकल्प रूपी हो. कामनाका जनक बनता है।।२७।।**

सुबोधिनी : **मनसः उत्पत्तिम् आह वैकारिकाद् इति. अर्द्धेन उत्पत्तिः आध्यात्मिक लक्षणञ्च अर्द्धेन. चरणत्रयेण आधिदैविक लक्षणं, चरणञ्च अन्यत्. वैकारिकात् सात्त्विकाद्, विकुर्वाणात् कालकृतगुणक्षोभयुक्तात्. भगवद्वीर्यसम्भवाद् इति सर्वत्र अनुसन्धेयम्. सात्त्विकस्य विकारो न भविष्यति इति आशङ्क्य पुनः उक्तं विकुर्वाणाद् इति. मनसो दुष्टत्वम् अन्नमयत्वं वा आशङ्क्य तन्निराकरणार्थं 'तत्त्व'पदप्रयोगः मनः तत्त्वम् अजायत इति. तस्यापि आध्यात्मिकस्य कार्यस्वरूपलक्षणे आह यत् सङ्कल्प-विकल्पाभ्याम् इति. सङ्कल्पविकल्परूपत्वं स्वरूपलक्षणं, कामजनकत्वं कार्यलक्षणम् इति।।२७।।**

अनुवाद : वैकारिक आदि इन दो श्लोकोंमेंसे पहलेके आधे चरणमें उत्पत्ति (कारण)लक्षण और दूसरे आधेमें आध्यात्मिक अहंकारका लक्षण निरूपित हुआ है. बाकीके तीन चरणोंमें आधिदैविक लक्षण, और बाकीके अन्तिम चरणमें भौतिक अहंकारके लक्षणका निरूपण है. वैकारिक अर्थात् सात्त्विक, विकारको उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त. इस कालद्वारा जो गुणोंमें हलचल होती है उसके कारण. आन्तरिक भगवद्वीर्यरूपद्वारा, इन सभीको जोड़ कर अर्थ ग्रहण करना. सात्त्विकसे विकार किस प्रकार उत्पन्न होगा? उसका समाधान देते हैं, विकारको उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त होता हो तब. मनको सदोष अथवा अन्नमय ही मानते हो ऐसी धारणाका निरास करनेके लिए 'तत्त्व'पदका प्रयोग किया, 'मन' तत्त्वके

जन्मके द्वारा. उस मनका आध्यात्मिक स्वरूप और कार्य के लक्षण देते हैं, संकल्प - विकल्परूपोंके द्वारा. संकल्प और उसमें भी विकल्प रूप होना यह मनका स्वरूपलक्षण है और कामनाओंका जनक होना मनका कार्यलक्षण है॥२७॥

विवेचन : वैकारिक अहंकारसे 'मन'तत्त्व पैदा होता है. संकल्प और विकल्प उसके कार्य हैं. जितनी भी अपनी कर्मेन्द्रिय हैं उनसे सम्बन्धित संकल्प करना मनका काम है और जितनी भी अपनी ज्ञानेन्द्रिय हैं, उनके द्वारा जो भी हमें पता चलता है, उनका विकल्प भी मन ही ढूंढता है. जब भी ज्ञानेन्द्रियोंसे हमें कुछ पता चलता है तो कुछ ही क्षणोंमें मन उसके विकल्प ढूंढ लेता है. उदाहरणके लिए मैं आपके सामने यह इन्विटेशन् कार्ड रखता हुं. तुरंत आपका मन विकल्प ढूंढना शुरू कर देगा, जैसे यह कहाँका कार्ड है, कॉलेज्का है, फिलॉसॉफी डिपार्टमॅन्ट्का है कि कहीं औरका! ये सारे विचार मनमें आते हैं. कोई भी एक वस्तु यदि आँख अथवा कान के सामने आये तो उसके कई विकल्प क्षणभरमें मन विचार लेता है. इसीलिए यह अनिरुद्ध है. उसमेंसे चुन कर जो बुद्धिको देता है, उसे बुद्धि या तो स्वीकार लेती है अथवा अस्वीकार करती है. इसीलिए मनकी इस प्रवृत्तिको यदि हम रोक दें तो मन काम करना ही बंद कर देता है. क्योंकि जो कुछ भी हम बोल सकते हैं, कर सकते हैं, विचार सकते हैं, उसकी मनके पास यह शक्ति रही हुयी है. जैसे ही क्रिया करना हम चाहें, उसी समय मन कहेगा कि "ऐसे करोगे तो यह होगा, वैसे करोगे तो वह होगा." अहंकारका सौंदर्य इसमें है कि आपका जो अहंकार है आप उसमें ही मस्त रहते हो. पर मन एकसे संतुष्ट नहीं होता, उसे तुरंत विकल्प चाहिये. इसीलिए मनको 'अनिरुद्ध' कहा गया है.

मनसः उत्पत्तिम् आह वैकारिकाद् इति. अर्द्धेन उत्पत्तिः आध्यात्मिक

लक्षणञ्च अर्द्धेन. चरणत्रयेण आधिदैविक लक्षणं, चरणञ्च अन्यत्. वैकारिकात् सात्त्विकाद्, विकुर्वाणात् कालकृतगुणक्षोभयुक्तात्. भगवद्वीर्यसम्भवाद् इति सर्वत्र अनुसन्धेयम्. मनका यहाँ भी कालकृत गुण-क्षोभ है और भगवद्वीर्य यहाँ भी काम कर रहा है. **सात्त्विकस्य विकारो न भविष्यति इति आशङ्क्य पुनः उक्तं विकुर्वाणाद् इति.** आप कहते हो कि सात्त्विकका विकार नहीं हो सकता तो कहते हैं कि ऐसा नहीं है. सात्त्विकका भी विकार हो सकता है, उसका भी आकार बदल सकता है. **मनसो दुष्टत्वम् अन्नमयत्वं वा आशङ्क्य तन्निराकरणार्थं 'तत्त्व'पदप्रयोगः मनः तत्त्वम् अजायत इति.** वेदमें एक वचन आता है ‘‘**अन्नमयं हि सोम्य! मनः आपोमयः प्राणः तेजोमयी वाग्**’’ (छान्दो.उप.६।५।४) जिसको गुजरातीमें कहते हैं कि ‘‘जो खाओ तो उसकी डकार आती है!’’ ऐसे जैसा अन्न होता है वैसा ही आपका मन बनता है. यह जो अन्नके साथ मनका संबंध बताया गया है, वह कार्य-कारणभावसे नहीं बताया गया अपितु प्रभाव और प्रभावित होनेके भावसे दिखलाया गया है. **तस्यापि आध्यात्मिकस्य कार्यस्वरूपलक्षणे आह यत् सङ्कल्प-विकल्पाभ्याम् इति. सङ्कल्पविकल्परूपत्वं स्वरूपलक्षणं, कामजनकत्वं कार्यलक्षणम् इति.** संकल्प और विकल्प करना मनका स्वरूपलक्षण है. इसके बाद जो भी आपने संकल्प अथवा विकल्प किये हैं, उससे पैदा होते काम भी इसी मनके कारण होते हैं. कामजनक होना इसका कार्यलक्षण है. आप इसका क्रम देखो. सबसे पहले चेतना. उसके बाद self-awareness, उसके बाद संकल्प-विकल्प और उसके बाद कामना॥२७॥

श्लोक :

यद् विदुर् हि 'अनिरुद्धा'ख्यं हृषीकाणाम् अधीश्वरम्॥
शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः॥२८॥

अनुवाद : **जो 'अनिरुद्ध' आख्यासे जाने जाते हैं क्योंकि वे**

हृषिकों (इन्द्रियों) के अधीश्वर होते हैं. योगीजन उसे शरद ऋतुका इन्दीवर = नीलकमल जैसा मान कर उनका संराधन करते हैं।।२८।।

सुबोधिनी : **आधिदैविकं लक्षयति यद् विदुः इति. अनिरुद्धः पालकः तस्य देवः. यतो न केनापि निरुद्धः, सएव पालको भवति. यद् यस्माद् हृषीकाणाम् इन्द्रियाणाम् अधीश्वरम् 'अनिरुद्धा' ख्यं विदुः इति सम्बन्धः. इन्द्रियनियामकत्वं तस्य लक्षणम्. बलिष्ठत्वं प्रभुत्वञ्च. प्रतीकारकरणार्थम् आधिदैविक लक्षणम्. तत्र प्रतीकारार्थं भगवदुपासनैव कर्तव्या इति शारदेन्दीवरश्यामम् इति उक्तम्. इन्दीवरं रात्रिविकासि, शरच्च सर्वदोषविवर्जिता, श्यामः च गुणः शृङ्गारात्मको भवति. तेन स्नेहेन सर्वकालेषु सर्वदोषाभावेन भगवत्सेवायां मनोदोषाः निवर्तन्ते इति उक्तम्. भौतिकं लक्षयति योगिभिः शनैः संराध्यं वशीकरणयोग्यं मनः. देवतातु न शनकैः आराध्या, दीर्घकालाऽऽदर-नैरन्तर्याणां सर्वत्र भजनहेतुत्वेन निरूपणात्।।२८।।**

अनुवाद : अब आधिदैविकका लक्षण (कह रहे है). अनिरुद्ध यह मनका पालक देव है. क्योंकि जिसका कोई निरोध न कर सके वही पालक हो सकता है. क्योंकि जो हेतुके कारण हृषिकोंके = इन्द्रियोंके अधीश्वरको 'अनिरुद्ध' आख्यासे पहचाना जाता है. इन्द्रियोंका नियामक होना उसका लक्षण है. बलिष्ठ होना प्रभु होना. उस मनके प्रतिकार करनेके लिए आधिदैविक लक्षण कहनेमें आया है. मनका प्रतिकार करनेके लिए भगवान्‌की उपासना करनी यह एक उपाय है. वह उपास्यरूप है, शरद ऋतुके नीलकमलके जैसे. इन्दीवर रात्रिमें खिलनेवाला और शरद ऋतु सभी दोषोंसे विवर्जित होती है, नीला रंग अथवा गुण शृंगार रसात्मक होता है. इसी कारण स्नेह रख कर सर्वकालमें सर्वदाषोंके अभावके कारण भगवत्सेवा करते हुए मन दोषोंसे निवृत्त हो जाता है. अब भौतिक अहंकारका लक्षण कहते हैं. योगीजन धैर्यसे संराधन करते हैं. मनको वशमें लाना योग्य है. देवताकी आराधना कभी हलकेसे नहीं अपितु दीर्घकाल तक और आदरभावसे सातत्यपूर्वक

करनी चाहिये. क्योंकि सर्वत्र इसे भजनके हेतुके रूपमें वर्णित किया गया है॥२८॥

विवेचन : **यद् विदुः इति, अनिरुद्धः पालकः तस्य देवः. यतो न केनापि निरुद्धः, सएव पालको भवति.** ‘अनिरुद्ध’का अर्थ है पालन करनेवाले. ये उनके देवता हैं. जो किसीसे निरुद्ध नहीं हो सकते अर्थात् किसीसे रोके नहीं जा सकते वे पालक होते हैं. **यद् यस्माद् हृषीकाणाम् इन्द्रियाणाम् अधीश्वरम् ‘अनिरुद्धा’ख्यं विदुः इति सम्बन्धः.** ‘हृषीक्’ मानें इन्द्रिय, मन इन्द्रियोंका राजा है. **इन्द्रियनियामकत्वं तस्य लक्षणम्. बलिष्ठत्वं प्रभुत्वञ्च. प्रतीकारकरणार्थम् आधिदैविकलक्षणम्.** मन इन्द्रियोंका नियामक है, बलिष्ठ है और इन्द्रियोंका प्रभु है. यह मनका आधिदैविक लक्षण है. **तत्र प्रतीकारार्थं भगवदुपासनैव कर्तव्या इति शारदेन्दीवरश्यामम् इति उक्तम्.** एक बात समझो कि कमलकी कई प्रजातियोंमेंसे एक रातमें खिलता है वह नीले रंगका होता है. जो दिनमें खिलता है वह या तो गुलाबी अथवा सफेद अथवा पीले रंगका होता है. रातमें खिलनेवाले कमलको ‘कमलिनी’ या ‘नीलकमल’ भी कहनेमें आता है. कमल भी कई प्रकारके होते हैं. एक ब्रह्मकमल होता है जो रातको बारह बजेके बाद खिलता है और सुबह चार बजे बंद हो जाता है. नीलकमल रातको ही खिलता है और दोपहर-तक खिला रहता है. जो कमल सूर्योदयपर खिलता है, वह सूर्यास्तपर बंद हो जाता है क्योंकि उसका संबंध सूर्यसे है. अब शंका करते हैं कि मनकी किस देवताके रूपमें उपासना करनी चाहिये. तो कहते हैं कि अनिरुद्ध जो भगवान्‌के पौत्र थे उनका रंग नीलकमलकी तरह था. आप देखेंगे तो कृष्णका रंग भी नीलकमलकासा ही बताते हैं. **इन्दीवरं रात्रिविकासि, शरत् च सर्वदोषविवर्जिता** उस नीलकमलको ‘इन्दीवर’ भी कहते हैं और वह केवल शरद ऋतुमें ही खिलता है. “इन्दी = लक्ष्मी+वर=श्रेष्ठ वरणीय”.

श्यामः च गुणः शृङ्गारात्मको भवति. आप एक बात यह

समझिये कि शृङ्गार मानें प्रेम. शृङ्गार रौद्र वीर हास्य यह सब अलग-अलग रस हैं. रंगोंके बारेमें अपने दृष्टिकोण और पाश्चात्यके दृष्टिकोण में थोड़ा भेद है. उनके यहाँ नीला रंग करुणाका रंग है, जैसे कि दुःखके गीतोंके लिए *ब्लूज़्* कहा जाता है. और यह भी कहते हैं कि *I am in pink* मानें ‘‘मजेमें हुं.’’ इस तरह उनके यहाँ गुलाबी प्रेमका रंग है और नीला दुःखका रंग है. अपने यहाँ नीला प्रेमका रंग है और गुलाबी दुःखका रंग है. आज-कल तो लोग शादीमें गुलाबी साफा बाँधने लगे हैं पर पुराने ज़मानेमें गुलाबी साफा मृत्युके प्रसंगमें ही बाँधा जाता था. यह अपना विचार नहीं यूरोप्का विचार है. उनके यहाँ लाल खतरेका रंग है और अपने यहाँ लाल अनुरागका रंग है. क्योंकि ‘रक्त’ शब्द रागसे बना है और ‘राग’ मानें अनुराग. इसीलिए रागका रंग रक्त है. जो प्रेम नर-नारीमें होता है, उसका रंग नीला माननेमें आया है. **तेन स्नेहेन सर्वकालेषु सर्वदोषाभावेन भगवत्सेवायां मनोदोषाः निवर्तन्ते इति उक्तम्.** इसीलिए आपका प्रेम मानें आपकी शृङ्गारात्मिका भक्ति यदि भगवान्की तरफ मुड़ जाये तो सारी समस्याओंका समाधान निकल आता है. इसीलिए अपने यहाँ यमुनाजीके लिए कहा गया है *‘‘श्याम संग श्याम ह्वै रही श्रीयमुने.’’* अपने यहाँ यमुनाजीका चित्र भी नीलकमल जैसा बनाते हैं. **भौतिकं लक्षयति योगिभिः शनैः संराध्यम्.** मनकी आराधना तो योगी भी शनैः शनैः करें तो ही की जा सकती है. जल्दबाज़ीमें मन नियंत्रणमें नहीं आ सकता. **वशीकरणयोग्यं मनः. देवतातु न शनकैः आराध्या, दीर्घकालाऽऽदरनैरन्तर्याणां सर्वत्र भजनहेतुत्वेन निरूपणात्.** दीर्घकाल तक आप इसकी आराधना करो तो मन आपके नियंत्रणमें आयेगा अन्यथा नहीं. अब मनके बाद बुद्धिका प्रसंग आ रहा है॥२८॥

(४. बुद्धिके लक्षण)

श्लोक :

तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वम् अभूत् सति॥

द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः ॥२९॥

अनुवाद : हे सति माता! तैजस मन जब विकार उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त होता है, तब वह बुद्धि तत्त्व बन जाता है. जो सद्रूप द्रव्य हो उसके स्फुरणके बाद होता विज्ञान और इन्द्रियोंके ऊपर अनुग्रह. (यह बुद्धिका लक्षण है) ॥२९॥

सुबोधिनी : बुद्धेः उत्पत्तिम् आह तैजसात्तु इति. 'तु'शब्दः सात्त्विकोत्पत्तिपक्षं व्यावर्तयति. विकुर्वाणाद् राजसाद् बुद्धितत्त्वम् अभूत्. सति! इति सम्बोधनं तैजसत्वेऽपि सद्बुद्धिरेव उत्पद्यते इति निरूपणार्थम्. सति विषये वा, सर्वविषयिकैव बुद्धिः उत्पद्यते इति. अतएव अस्याः आधिदैविकं रूपं न निरूप्यते. आध्यात्मिकं लक्षयति द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इति. यथा इन्द्रियप्रेरकत्वं मनसः तथा इन्द्रियानुग्राहकत्वं बुद्धेः. बुद्ध्यैव अनुगृहीतानि इन्द्रियाणि पश्यन्ति कुर्वन्ति च. अतएव बुद्धितारतम्येन इन्द्रियज्ञानक्रिययोः तारतम्यम्. एतत् कार्यानुसारि लक्षणम्. द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इति स्वरूपलक्षणम्. द्रव्यस्य घटादेः स्फुरणे सति शब्देन, संस्कारेण, आलोकेन वा यद् विशिष्टज्ञानम्. यस्मात् केवलं चक्षुषा ज्ञाने तारतम्यं न स्यात्. स्वतःस्फुरणं योगजधर्मादिभिरपि भवति, अतो द्रव्यस्फुरणएव विज्ञानं बुद्धेः लक्षणम् ॥२९॥

अनुवाद : यहाँ 'तो' शब्दका प्रयोग हुआ, इससे सात्त्विक मनसे नहीं ऐसा अर्थ समझना चाहिये. राजस मन विकार उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त हो, तब बुद्धितत्त्व बन जाता है. 'सति'! संबोधन तैजस होनेपर भी सद्बुद्धि ही उत्पन्न होती है ऐसा बतानेके लिए. अथवा सद्रूप विषयके बारेमें, सर्वविषयिका बुद्धि उत्पन्न हो सकती है. अतएव इसका आधिदैविक स्वरूपका निरूपण नहीं किया है. आध्यात्मिक लक्षण देते हैं, द्रव्यके स्फुरणके बाद होता जो विज्ञान वह बुद्धिवृत्ति रूप होता है. मन जैसे इन्द्रियोंका प्रेरक बनता है, वैसे इन्द्रियोंके ऊपर अनुग्रह प्रकट करना, बुद्धिका कार्य है. बुद्धिसे अनुगृहीत इन्द्रियाँ

देख सकती हैं और कुछ भी कर सकती हैं. इससे बुद्धिमें प्रकट तारतम्यके कारण इन्द्रियज्ञान और क्रिया में भी तारतम्य प्रकट होता है. यह कार्यानुसारी लक्षण हुआ. अब स्वरूपलक्षण कहते हैं. द्रव्यके स्फुरणके बाद विज्ञान होता है वह बुद्धि. घड़े आदि द्रव्यका स्फुरण होनेसे शब्द अथवा संस्कार के कारण अथवा प्रकाशके कारण जो विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है, क्योंकि केवल चक्षुसे ही जो ज्ञान होता है तो उसमें तारतम्य नहीं प्रकट होना चाहिये. क्योंकि द्रव्यके बिना भी स्वतः स्फुरण योगजधर्मो आदिसे ही संभव है, इसीसे द्रव्यके स्फुरणसे उत्पन्न होता विज्ञान बुद्धिके लक्षणके रूपमें कहा॥२९॥

(बुद्धिकी पृथक्-पृथक् वृत्ति)

श्लोक :

संशयो अथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च॥
स्वापः इति उच्यते बुद्धेः लक्षणं वृत्तितः पृथक्॥३०॥

अनुवाद : **[१]संशय तदुपरांत [२]विपर्यास [३]निश्चय [४]स्मृति [५]स्वाप इतने लक्षण बुद्धिके अलग-अलग वृत्तियोंके कारण भिन्न-भिन्न होते हैं॥३०॥**

सुबोधिनी : **आधिभौतिकं विभागनिरूपणेनैव लक्षयति [१]संशयः इति. द्रव्यस्फुरणतारतम्याद् बुद्धिः नानाविधा. संस्कार-तेजसोः तुल्यप्रकाशकत्वे विशेषास्फुर्तौ समः संशयः, अल्पविशेषस्फुर्तौ उत्कटकोटिकः.**

[२]विपर्यासः संस्कारप्राबल्यात् तेजः तदनुगुणमेव धर्मं प्रकाशयति. अथ इति एकस्फुरण-नियामकत्वाय. विपर्यासो भिन्नार्थप्रतिपादकः. क्रिया-ज्ञानयोः च भिन्नविषयत्वम्. अनेन अन्यख्यातिरेव सिद्धान्तः इति उक्तम्. अन्यथात्वे यथार्थत्वं स्यात्. "रजतम् अहं जानामि" इत्येव अनुभवः, नतु "रजतत्वेन जानामि" इति. बुद्धेः तत्त्वरूपत्वाद् न आत्मख्यातिः. संस्कारशब्दयोः पदार्थमात्रापेक्षितत्वाद् न देशकालादिवैशिष्ट्यं नियामकम्.

श्लोक २९-३०का विस्तृत विवेचन पृष्ठक्रमांक १७६से किया है.

“रजतम् अनुभवामि” इति अनुव्यवसायाद् न प्रमुष्टतत्तारूपा स्मृतिः. एकज्ञानतुल्यत्वात् च न ज्ञानद्वयम्. संस्कारप्राबल्याद् न अनिर्वचनीयरजतापेक्षा. अतएव न असत्ख्यातिः. तस्माद् अन्यख्यातिरेव सर्वजनीना.

[३] निश्चयो यथार्थानुभवः. [३/क] अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्; अतएव, स्मृतिः न निश्चयात्मिका, अर्थाभावात्. [३/ख] अनुमितिरपि सम्बन्धिव्यवधानेन अर्थजनितैव. सादृश्यं रूपादिवत् पदार्थो धर्मरूपः, निरूपकभेदसहिष्णुः तद्धर्मः, तद्धर्म-सजातीयो वा. सः लक्षणत्वेन ज्ञातो द्रव्यस्फुरणेन स्फुरितः संस्कारेण शब्दाभिव्यक्तौ वाक्यप्रामाण्याद् अध्यवसीयते “गवयो अयम्” इति. चक्षुः सहकारिवाक्यं, वाक्यसहकृतं सादृश्यं वा. अनुग्राहकाणां न प्रमाणान्तरत्वम्. [३/ग] शब्दोऽपि निश्चयएव, धर्मसादृश्यातिरिक्त-संस्कारजनकत्वात्. शब्देन च द्रव्यस्फुरणात् चक्षुषो अपेक्षाभावात् प्रमाणान्तरम्. त्रीण्येव प्रमाणानि : इन्द्रियाणि, शब्दः, मनः च इति. चक्षुः श्रोत्रं मनो वा, स्पर्शादीनाम् अन्यशेषत्वम्. मनस्तु योगजधर्मसहितमेव प्रमाणम्, अन्यत्रतु अप्रमाणम्. अतएव स्मृतिः अप्रमाणम्. सङ्घातात्मज्ञानं च अप्रमाणं, विपर्ययरूपत्वात्.

[४] स्मृतिः स्वतन्त्रा, बुद्धिः संस्कारजनिका.

[५] स्वापः स्वप्नरूपः, भिन्नसृष्टिविषयत्वाद् न पूर्वोक्तेषु अन्तर्भावः.

सुषुप्तिस्तु न बुद्धिः, मौढ्यत्वेन परं बुद्ध्यवस्था. आत्मनः स्फुरणन्तु स्वतः, स्वप्नभेदएव वा, निद्रानिमित्तत्वात्.

एवं पञ्चधा बुद्धेः वृत्तितो लक्षणं पृथग् ज्ञेयम् इति अर्थः ।।३०/क।।

अनुवाद : [१] **संशय** द्वारा. द्रव्यके स्फुरणके तारतम्यके कारण बुद्धिके अनेक प्रकार होते हैं. पहले हुए अनुभवका संस्कार और प्रकाश दोनों (यदि) सम्यक् रीतसे वस्तुको प्रकाशित करते हो और प्रकाशित वस्तुकी विशेषता स्फुरित नहीं होती हो तो समकोटिक संशय होने लगता है. जो विशेष कभी अल्प स्फुरित होता हो तो उत्कटकोटिक संशय होने लगता है.

[२] **विपर्यास** पूर्वानुभूतिके संस्कार जब प्रबल हो जाते हों और प्रकाश

भी उसके अनुसार वस्तुके गुणधर्मोंको प्रकाशित करने लगे तो ‘विपर्यास’ कहलाता है. अर्थात् कोई एक वस्तुके स्फुरणकी नियतिके कारण विपर्यास सामने अर्थात् जो दिखायी देता हो, उसके स्थानपर कोई भिन्न ही वस्तु दिखायी देने लग जाये. क्रिया और ज्ञान दोनों अलग-अलग वस्तुके बारेमें होने लगे. इसे अन्यख्याति ही सिद्धांतके रूपमें स्वीकार करनी चाहिये. वस्तु स्वयं ही अन्यथा दीखती होती तो अनुभूति यथार्थ बन जाती माननी चाहिये थी. जबकि अनुभव तो ऐसा ही होता है कि “रजतको मैं जानता हुं.” न कि “रजतपनेके रूपमें जानता हुं.” बुद्धि स्वयं तत्त्वरूप होनेसे, आत्मख्याति भी स्वीकारी ही नहीं जा सकती. पूर्वानुभूतिके संस्कार और शब्द तो प्रत्येक पदार्थके अनुभवमें अपेक्षित होते है, देश या काल आदिके वैशिष्ट्यको अत: यहां नियामक नहीं माना जा सकता. “रजतका अनुभव मैं कर रहा हुं” ऐसे अनुव्यवसायके कारण पहले देखी हुयी चांदीका तत्ता(चांदीपना) चुरा लिया गया हो ऐसी स्मृति माननेका भी कारण दिखलायी नहीं देता. भ्रांति तो कोई एक वस्तुके बारेमें होते ज्ञानरूपसे अनुभवमें आती है. उसमें स्मरण और अनुभव ऐसे दो ज्ञान मान्य नहीं किये जा सकते. इसी तरह पूर्वानुभूतिके संस्कार प्रबल होनेसे यदि भ्रमणाकी व्याख्या की जा सकती हो तो, निरर्थक अनिर्वचनीय रजतकी अपेक्षा ही कहां रह जाती है? इसीसे असत्ख्याति भी स्वीकार नहीं की जा सकती. इसी कारण अन्यख्याति सभीके अनुभवकी गवाहीसे सिद्ध होती है.

[३] निश्चय अर्थाद् यथार्थ अनुभव. [३/क] इसमें जानने योग्य यह है कि अर्थ = विषय ज्ञानका आधा अंग होता है; अत: अर्थ न होनेके कारण स्मृति निश्चयात्मक नहीं लगती. [३/ख] अनुमान भी किसी हेतुरूप सम्बन्धीको बीचमें रख कर अन्तमें तो स्वयंके विषयरूप अर्थसे उत्पन्न होता है. उपमान भी अन्तत: तो सादृश्य रूप गंध आदिकी तरह या तो पदार्थ अथवा पदार्थका धर्मरूप होता है. वह निरूपक होनेके भेदको सहनेवाला(सहिष्णु) निरूपित वस्तुका धर्म होता है; अथवा,

उसके जैसा धर्म. उसको जब कभी लक्षणकी तरह बुद्धि स्वीकार करती है तब निरूपित द्रव्यके स्फुरणके कारण स्फुरित होते संस्कार अथवा शब्दों से वह अभिव्यक्त होता है. यह धर्मबोधक है जो “रोज (नीलगाय) गाय जैसा पशु है” इस वाक्यप्रामाण्यसे समझा जा सकता है कि “यह रोज है.” इसमें चक्षुको सहकार देनेवाला वाक्य अथवा वाक्यार्थके साथ अनुभवमें आता हुआ सादृश्य प्रमाण बन जाता है. ज्ञानके अनुग्राहकोंको अलग प्रमाण नहीं माननेमें आता है. [३/ग]शाब्दज्ञान भी निश्चयरूप ज्ञान ही है, धर्म अथवा सादृश्य से भिन्न संस्कारोंका जनक होनेके कारण. और उस शब्दके कारण द्रव्यका स्फुरण होता है, तब चक्षुकी अपेक्षा नहीं होती. इसीसे शब्दको अलग प्रमाण मानना योग्य है. प्रमाण तो तीन ही हैं : इन्द्रिय शब्द और मन. अथवा चक्षु श्रोत और मन. स्पर्श आदि तो अन्य प्रमाणोंके अंगरूप ज्ञान उत्पन्न करते हैं. और मन तो योगजन्य सामर्थ्ययुक्त हो तभी प्रमाण बनता है, दूसरी तरहसे वह नियतरूपमें प्रमाण नहीं बन सकता. इसी कारण स्मृतिं भी प्रमाण नहीं बनती. देहसंघातके बारेमें जो आत्मा होनेकी अनुभूति होती है वह तो अप्रमाण ही है, विपर्यास होनेके कारण.

[४]**स्मृति** रूप ज्ञानकी उत्पत्ति अर्थके आधीन नहीं होती परन्तु अर्थसे स्वतंत्र संस्कारसे होती है. उन संस्कारोंकी जनिका **बुद्धि** होती है.

[५]**स्वाप** तो स्वप्नरूप होनेसे, वह अलग ही सृष्टि है. इस बारेमें पूर्वोक्त ज्ञानके प्रकारोंमें उसका अन्तर्भाव नहीं होता.

सुषुप्तिको बुद्धिरूप नहीं माना जा सकता क्योंकि वह तो बुद्धिकी एक मूढ़ावस्था (काम न करती निष्क्रिय अवस्था) है. आत्माका स्फुरण तब अपने आप ही होता है, अथवा निद्राके कारण होता स्वप्नज्ञान जैसा वह कोई प्रकार है.

ऐसे बुद्धिकी भिन्न-भिन्न वृत्तियोंके पांच प्रकारोंका भिन्न-भिन्न लक्षण जानने लायक है॥३०/क॥

सुबोधिनी : **अनेन ''उभयम् एकं ज्ञानम्'' इति पक्षाः निवारिताः. अतः इदम् अंशेऽपि ''इदं रजतम्'' इति ज्ञानम् अप्रमाणं, नहि ज्ञाने अंशो अस्ति. ''सो अयं देवदत्तः'' इति अनुभवएव, अभ्यासज्ञाने पूर्वज्ञानसंस्कारवत् पूर्वस्मृतिरपि चक्षुषः सहकारिणी. भ्रम-प्रमा-समूहावलम्बनम् ''एकदेशविकृतम् अनन्यवद् भवति'' (पाणि.परि.पा.३७) इति न्यायेन भ्रमाधिक्ये विपर्ययएव, प्रमाधिक्ये निश्चयः, समानरूपत्वेतु सम्भावनावान् संशयः. सम्भावनादीनां संशयान्तःपातित्वम् अप्रमाणमेव. तत् सिद्धार्थवाक्येतु प्रत्यक्षसहकारित्वात् प्रत्यक्षहेतुत्वमेव. साध्यार्थेतु लौकिके वाक्यार्थे. बुद्धिकल्पितः इति प्रमाणाभावेन अप्रामाण्येऽपि प्रमेयबलात् प्रमाणमेव. लोके वाक्यार्थो न अपूर्वः वक्तृज्ञानविषय-विषयित्वात्, तद्बोधनसमर्थ-पदसमूहस्यैव प्रयोगात्. पदेभ्यः पदसमूहो भिन्नः, सएव वाक्यार्थे करणम्; अन्यथा पदे वृत्तिद्वयम् आपद्येत. पदार्थकरणपक्षेतु वाक्यार्थः शाब्दो न स्यात्. सम्भावितं सर्वमेव अप्रमाणम् इति अग्रे वक्ष्यते॥३०/ख॥**

अनुवाद : इससे ''उभयविध ज्ञान मिल कर एक ज्ञानको घड़ता है.'' ऐसा पक्ष निरस्त हो गया. अतः सीपके बारेमें ''यह चांदी है'' ऐसा ज्ञान भी 'यह' अंशमें भी अप्रमाण है. क्योंकि ज्ञानमें ऐसा कोई अंश सम्भव नहीं है. ''वह यह देवदत्त'' यह भी अनुभव ही है, अभ्यासात्मक ज्ञानमें पूर्वज्ञानके संस्कारोंके अनुरूप पूर्वस्मृति भी चक्षुको सहकार देती है. भ्रमज्ञान और प्रमाज्ञान मिल कर जो समूहावलम्बी ज्ञान होता है वह ''एकदेशके विकृत होनेपर सम्पूर्ण वस्तु बदल नहीं जाती.'' (पाणि.परि.पा.३७) इस न्यायसे यदि भ्रमज्ञानकी मात्रा अधिक हो तो भ्रम और प्रमाज्ञान की मात्रा अधिक हो तो प्रमारूप निश्चय ही होता है. यदि दोनों ज्ञान समान मात्रामें हो तो सम्भावनावाले संशयका प्रकार बन जाता है. सम्भावना आदि ज्ञान संशयान्तःपाती होनेके कारण अप्रमाण ही होता है. सिद्धार्थबोधक वाक्य तो प्रत्यक्षज्ञानका सहकारी होनेसे उसे प्रत्यक्षज्ञानके हेतुके रूपमें मान्य करना चाहिये. साध्यार्थबोधक वाक्य, यदि लौकिक विषयके

बारेमें हो तो बुद्धिकल्पित होनेके कारण वह प्रमाण नहीं माना जा सकता, फिर भी प्रमेयबलके कारण प्रमाण बन जाता है. लोकमें तो कोई भी वाक्यार्थ अपूर्व होता ही नहीं है, वक्ताके ज्ञानके बारेमें होनेके कारण, वक्ताको क्या ज्ञान हो रहा है वह बतानेके लिए ही योग्यपदका समूह इकठ्ठा करनेमें आता है. पदसे पदोंका समूह भिन्न होता है, वही वाक्यार्थमें साधन बनता है; नहीं तो पदोंमें दो-दो अलग अर्थबोधक वृत्तियाँ स्वीकारनी पड़ेंगी और शाब्दबोधमें जो पदार्थोंके करण माननेमें आये तो वाक्यार्थको शाब्द ही नहीं माना जा सकेगा. सम्भावित तो सभी अप्रमाण ही होता है, वह आगे बताया जायेगा॥३०/ख॥

(इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका निरूपण)

श्लोक :

तैजसानि इन्द्रियाण्येव क्रिया-ज्ञान-विभागशः॥
प्राणस्य हि क्रियाशक्तिः बुद्धेर् विज्ञानशक्तिता॥३१॥

अनुवाद : **तैजस इन्द्रिय ही क्रिया और ज्ञान के विभागोंमें बट कर दो तरहकी हो जाती है. प्राणकी क्रियाशक्ति और बुद्धिकी विज्ञानशक्ति का उपयोग करके॥३१॥**

सुबोधिनी : **एवम् अन्तःकरणचतुष्टयोत्पत्तिम् उक्त्वा इन्द्रियोत्पत्तिम् आह तैजसानि इति. ज्ञानकरणकानि क्रियाकरणकानि च उभयविधान्यपि राजसान्येव, नतु ज्ञानकरणकानि सात्त्विकानि, क्रियाकरणकानि तामसानि वा. "ज्ञान-क्रियान्यतरकरणम् इन्द्रियम्" इति "करणम् अतीन्द्रियम् इन्द्रियम्" इति वा. तत्त्वानि दशाऽपि भिन्नानीति न एकं लक्षणं निर्दिष्टम्. उभयेषां राजसत्वे हेतुम् आह प्राणस्य हि इति. क्रियायां प्राणो मूलं, ज्ञाने बुद्धिः. उभयं राजसम् इति अर्थाद् उक्तं भवति. 'प्राणो' नाम आसन्यः महत्तत्वभेदः, भगवद्रूपो वा. राजसाहङ्कारेतु तस्य अवतारइति न तत्त्वतः, नाऽपि उत्पत्तिः निरूपिता. मतान्तरसिद्धानां वैदिकानां वा प्राणानाम् अत्र**

ग्रहणम्, इन्द्रियाणाम् आध्यात्मिकरूपो वा प्राणः. बुद्धी राजसी इति तदनुगृहीतानि सर्वाणि राजसानि. प्राणस्तु क्रियाप्रधानइति राजसत्वम्. प्राणोऽपि सर्वेन्द्रियानुग्राहकः क्रियाजनिका शक्तिः. विज्ञानरूपा शक्तिः वा यस्याः, तस्याः बुद्धेः भावो वक्ष्यति अग्रे. इन्द्रियाणां लक्षणानि भिन्नानि॥३१॥

अनुवाद : ऐसे अन्तःकरणके चारों प्रकारोंकी उत्पत्तिके निरूपणके बाद अब इन्द्रियोंकी उत्पत्तिके बारेमें कह रहे हैं, तैजस आदि. ज्ञान उत्पन्न करनेवाली और क्रिया उत्पन्न करनेवाली दोनों ही प्रकारकी इन्द्रिय हकीकतमें राजस होती हैं, न कि ज्ञानकी सात्त्विक और क्रियाकी तामस. क्योंकि ‘‘ज्ञान या क्रिया दोमेंसे एकका करण बने वह इन्द्रिय’’, अथवा तो ‘‘अतीन्द्रिय करण वह इन्द्रिय’’ ऐसा लक्षण अभिप्रेत है. यह दसों-दस इन्द्रिय अलग-अलग होनेके कारण विभिन्न तत्त्व हैं. इसीसे कोई एक लक्षण नहीं दिया है. दोनों ही राजस हैं उसका हेतु कहते हैं, प्राणकी... आदि, हरेक क्रियामें मूल प्राण होता है, ज्ञानमें मूल बुद्धि होती है. इसी कारण दोनों राजस ही हैं. यह तो बिना कहे भी कहे जैसा ही है. प्राण यह महत् तत्त्वका एक आसन्य(मुखमें रहा हुआ) प्रकार है, अथवा तो भगवद्रूप है. राजस अहंकार तो उसका अवतार होनेसे तत्त्वभेद नहीं होता है. उसकी उत्पत्ति भी कहीं निरूपित नहीं की गयी है. अथवा तो मतान्तरोंमें प्रसिद्ध अथवा वैदिकोंमें प्रसिद्ध प्राणोंको यहाँ स्वीकार लेना चाहिये, अथवा तो प्राणको इन्द्रियोंका आध्यात्मिक रूप समझना चाहिये. बुद्धि भी राजसी होनेके कारण उससे अनुगृहीत सभी राजसी होते हैं. प्राण तो क्रियाप्रधान होनेसे राजस होता है. प्राण भी सभी इन्द्रियोंपर अनुग्रह करनेवाला होता है. उसकी शक्ति क्रियाको उत्पन्न करनेवाली होती है. जिसकी शक्ति विज्ञानरूपा हो उस बुद्धिकी बाबतमें आगे कहा जायेगा. इन्द्रियोंके लक्षण भिन्न-भिन्न हैं॥३१॥

विवेचन : **तैजसानि इन्द्रियाण्येव क्रिया-ज्ञान-विभागशः, प्राणस्य**

हि क्रियाशक्तिः बुद्धेर् विज्ञानशक्तिता सारी इन्द्रिय राजस हैं. इन इन्द्रियोंके दो विभाग हैं, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय. और 'प्राण' मानें जो श्वास ले रहा है और छोड़ रहा है वह 'प्राणी' कहलाता है. यह प्राण अपनेमें क्रियाशक्तिके रूपमें है. और बुद्धि विज्ञानशक्ति है. हम जो साँस ले और छोड़ रहे हैं वह अपने जीवित होनेका प्रमाण है, चेतन होनेका प्रमाण नहीं है. इसीलिए जब भी कोई व्यक्ति कोमामें जाता है तो देहके बहुत सारे क्रिया-कलाप चलते रहते हैं. रक्त कोशिकाओंमें बहता रहता है, श्वास और पाचन की क्रिया चलती रहती हैं. ये सब प्राणशक्तिकी क्रियाएं हैं. इस तरह शरीरमें एक प्राणशक्ति अलग है और बुद्धिशक्ति अलग है. बुद्धिकी शक्ति ज्ञानात्मक है, प्राणकी शक्ति क्रियाप्रधान है पर ज्ञानात्मक नहीं है. इसीलिए हमें पता नहीं चलता कि क्या चल रहा है पर यह सारी क्रियायें अपने आप चलती रहती हैं. हमें अपना ब्लड्-प्रेशर् पता नहीं चलता जब-तक कि उसको नापा न जाये. हमें पता नहीं चलता कि खाया हुआ कैसे पच रहा है पर वह अपने आप पच रहा है. हमें पता नहीं चलता कि हमें कब नींद आ जाती है पर नींद हमें अपने आप आ जाती है. यह सब प्राणशक्तिकी क्रियायें हैं. तकनीकी तौरपर अपने अंदर कार्बन्‌की मात्रा जब बढ़ती है तो हमें एक प्रकारका नशा आता है, नशा आनेसे ब्रेइन् काम करना बंद कर देता है. ऐसा होनेपर बुद्धि सो जाती है. इस कार्बन्‌को हम साँसके द्वारा जब बाहर निकाल देते हैं और शरीरमें ऑक्सिजन्‌की मात्रा बढ़ जाती है तो हम जग जाते हैं. जगनेके बाद अहंकार जगता है, मन जगता है, बुद्धि जगती है, इन्द्रिय जगती हैं, सभी क्रियाशील हो जाते हैं. निद्रावस्थामें यंत्रकी तरह सारी क्रियाएं होती हैं, उसमें अपनी अवेयरनेस् काममें नहीं आती है. इस तरह हमारे भीतर कोई प्राणशक्ति/जीवनशक्ति भी काम कर रही है और एक चेतनाशक्ति भी काम कर रही है. दोनोंके मिश्रणसे हमें ऐसा लगने लगता है कि जीते हुए मनुष्यमें अनुभव है. पर मनुष्य जीते हुये

भी उसमें अनुभव न हो और अनुभव होते हुये भी मनुष्य जीता न हो यह दोनों संभावनाएं हैं. योगमें आप अपनी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति दोनोंको ही अपने नियंत्रणमें ले आते हो. वह स्थिति समाधिकी कहलाती है॥३१॥

(शब्दादि तन्मात्राओंका निरूपण)

श्लोक :

तामसात् च विकुर्वाणाद् भगवद्वीर्यचोदितात् ॥
शब्दमात्रम् अभूत् तस्माद् नभः श्रोत्रन्तु शब्दगम्॥३२॥

अनुवाद : **तामस अहंकार जब विकार उत्पन्न करने प्रवृत्त होता है तब आंतरिक भगवद्वीर्यसे प्रेरित हो कर शब्द तन्मात्रा प्रकट होती है. उसके बाद आकाश और श्रोत्रेन्द्रिय, जहां शब्द जाता है॥३२॥**

सुबोधिनी : **भूतानां सृष्टिम् आह तामसाद् इति. तामसाहङ्कारात् पूर्ववद्विकुर्वाणात् तामसत्वादेव भगवद्वीर्येण प्रेर्यते, नतु भगवद्वीर्यसत्तामात्रम्. प्रथमतः शब्दमात्रम् अभूत्, तस्मात् पश्चाद् नभः. शब्दे प्रमाणम् आह श्रोत्रम् इति, श्रोत्रस्य गम्यम्. श्रोत्रसमधिगम्यः शब्दः. शब्दधर्माअपि शब्दएवेति लक्षणं न अतिप्रसक्तम्. श्रोत्रं गच्छतीति वा. शब्दाधाराणां न स्वतन्त्रतया गतिरिति तद्व्यावृत्तिः॥३२॥**

अनुवाद : अब पंचमहाभूतोंकी सृष्टिके बारेमें समझाते हैं, तामस आदि. तामस अहंकारसे मन उत्पन्न होता है. पहले जैसा कहा गया उसके अनुसार विकार उत्पन्न करनेमें प्रवृत्त, तामस होनेके कारण ही भगवद्वीर्यसे ही वह प्रेरित हो सकता है, केवल भगवद्वीर्यका भीतर विद्यमान होना पर्याप्त न होनेके कारण. सबसे पहले शब्द तन्मात्रा हुयी, उसके पश्चात् आकाश. यहां शब्दके बारेमें प्रमाणका निरूपण करते हैं श्रोत्रेन्द्रियसे.

जो श्रोत्रेन्द्रियसे जाना जा सकता हो उसे शब्द समझना चाहिये. शब्दोंका धर्म भी अन्तमें तो शब्दरूप ही होनेके कारण लक्षणमें कोई अतिप्रसक्ति नहीं है. श्रोत्रेन्द्रियकी ओर जो जाता हो वह शब्द. शब्दोंको आधार बना कर रहनेवाले धर्म स्वतंत्र प्रकारसे गतिमान हो नहीं सकते, इसी कारण उनकी व्यावृत्तिका सूचन किया है॥३२॥

विवेचन : इसके बाद जो पहले भूतकी बात आयी थी; 'भूत'का अर्थ यहाँ भूतकालसे नहीं है पर आपका अनुभव कॉन्सोलिडेट्(घनीभूत) हो कर ऑब्जेक्ट्का फॉर्म ले लेता है उसका नाम 'मात्रा' है. पर मात्रा न तो केवल ऑब्जेक्टिव् (वास्तविक) है और न ही केवल सब्जेक्टिव् (आनुभाविक). अंग्रेजीमें एक 'सेंसा' है अर्थात् जब हमारी ऐन्द्रियक संवेदनाका बाह्य पदार्थके साथ संपर्क होता है वह सेंसा है. और दूसरा है 'सेंस्-डेटा' (इन्द्रियग्राह्यार्थ). अपनी आँखमें प्रतिबिंबित होता है वह सेंस्-डेटा है. सेंस् डेटा आँखमें एक सेंसेशन् उत्पन्न करता है. वह सेंसेशन् मनके पास जाता है. मन उसका अनेक विकल्प देता है और अहंकारके पास भेजता है. अहंकार उसको जज् करता है. जैसे किसी भी कार्यालयमें क्लर्क् जो-जो व्यक्ति साहबको मिलने आता है उनकी पूरी सूची बना कर अंदर भेजता है, वही काम मन करता है. मन अहंकारके टेबल्के ऊपर रख देता है. उसके बाद बुद्धि निर्णय करती है कि किसे मिलने आने देना है और किसे नहीं. जिसे वह आगे जाने देनेका निर्णय लेती है वह सेंसेशन्से (निर्विकल्प प्रत्यक्ष) पर्सेप्शन् (सविकल्प प्रत्यक्ष) बन जाता है. इस प्रकार सेंसेशन् पर्सेप्शन्में परिवर्तित हो गया. यह पर्सेप्शन् पुनः बुद्धिमें जाता है और वहाँ जा कर बुद्धि उसे recognise or doubt or distort जिस खातेमें interpret करना चाहती है उसमें interpret कर देती है. यह एक प्रकारका नेट्वर्क् है, टु ॲन्ड् फ्रो. बुद्धिमें यह तत्काल काम होता है. इस तरह जितनी भी तन्मात्रा हैं, वे केवल बाहरका विषय नहीं हैं और न ही केवल भीतरका पर सॅन्स्-डेटा,

इन्द्रिय और बाह्य वस्तु, दोनोंके आपसी व्यवहारका परिणाम है. इसीलिए इसे 'तन्मात्रा' कहा गया है.

थोड़ा और समझनेकी कोशिश करें. जैसे यह नीले रंगका मोबाइल्कवर् है. इसके ऊपर लाइट् अलग-अलग वेव्-लेंथ्की पड़ रही है. जिस वेव्-लेंथ् लाइट्की कवर्से परावर्तित होती है उस वेव्-लेंथ्की लाइट् हमारे आँखके रेटीनापर जा रही है. वहाँ रॉड्स् और कॉन्स् हैं वह उनकी वेव्-लेंथ्के हिसाबसे ग्रहण करते हैं तब कवर् ब्लु दीखता है. अब क्या यह माना जायेगा कि यह कवर् नीला है या यह कहा जायेगा कि रंग आपकी आँखमें है! क्योंकि आँखमें ही यदि इस रंगको ग्रहण करनेकी शक्ति न होती तो यह रंग हमें दिखायी ही नहीं देता. नीला रंग हमें आँख और मोबाइल्कवर्के आपसी सहयोगके कारण दीखाई देता है. यह जो डेटा है वह भूत नहीं पर 'तन्मात्रा' कही जाती है. 'मात्रा' मानें एक-दूसरेके सहयोगसे पैदा की जाती खिचड़ी. यह न तो पूरे तौरपर ऑब्जॅक्टिव् है और न ही सब्जॅक्टिव्. इस मात्राको अंग्रेजीमें 'सेंस्-डेटा'(ऐन्द्रियकोपलब्धि) कहते हैं. सॅन्सा विसा-विस् सॅन्स्-डेटा. इस तरह रूप रस गंध शब्द स्पर्श सेंसा नहीं हैं. पर सेंसा और ज्ञानेन्द्रियों के सहयोगसे उत्पन्न होता हुआ एक परिणाम है. इसे हम 'सॅन्स्-डेटा' = 'मात्रा' कहते हैं. इसीके कारण हमें आकाशका प्रत्यक्ष होता है. यही बात अगले श्लोकमें बतायी गयी है॥३२॥

श्लोक :

अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टृलिङ्गत्वमेव च॥
तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः॥३३॥

अनुवाद : **शब्द अर्थका आश्रयरूप होता है और अर्थ अथवा विषय का कोई पुरुष द्रष्टा है, उसका लिंग = हेतु भी होता**

है. शब्द आकाशकी तन्मात्रा होती है. ऐसे यह लक्षण विद्वान जानते हैं॥३३॥

सुबोधिनी : **शब्दस्य लक्षणानि आह अर्थाश्रयत्वम् इति, अर्थोहि शब्दम् आश्रित्य तिष्ठति. अर्थस्य घटपटादेः रूपत्रयं : तत्र यद् आधिदैविकं रूपं तत् शब्दनिष्ठं शब्दैकसमधिगम्यं शब्देन नित्यसम्बद्धम्. आधिभौतिकन्तु प्रकटरूपं, तस्य न शब्दाश्रयत्वं किन्तु पृथिव्याद्याश्रितत्वमेव. आध्यात्मिकन्तु ज्ञानेच्छाप्रयत्नाश्रितम्. त्रितयभेदेन सर्वत्र लक्ष्यते. शब्दस्य अर्थाश्रयत्वं लक्षणं, नतु आकाशस्य. लक्षणान्तरम् आह द्रष्टृलिंगत्वमेव च इति, द्रष्टाहि अर्थानाम् आध्यात्मिकन्तु अर्थं सम्बन्धित्वेन ज्ञापयति; यथा, भित्तिव्यवहितो गजं दृष्ट्वा "गजो अयम्" इति वदति, तदा अन्तःस्थितवाक्यप्रयोक्ता गजदर्शनवान् इति लक्ष्यते. स्वराद् वा "देवदत्तो अयम्" इति धर्मतो लक्षणम्. चकाराद् दृश्यज्ञापकत्वं च. भौतिकमपि घटादिकं बोधयति इति अर्थः. लक्षणान्तरम् आह तन्मात्रत्वं च नभसः इति. नभसः तन्मात्रत्वं सूक्ष्मरूपत्वं शब्दस्य लक्षणं, सूक्ष्मावस्था शब्दः स्थूलावस्था नभः इति. केचिद् अन्यथा मन्यन्ते इति स्वोक्ते प्रमाणम् आह कवयो विदुः इति॥३३॥**

अनुवाद : अब शब्दके लक्षण कहते हैं, अर्थका आश्रयरूप होता है आदि. अर्थ शब्दोंमें आश्रित हो कर रहता है. अर्थ जो घटपट आदि, उसके तीन रूप होते हैं : उसमें जो आधिदैविक रूप होता है वह शब्दमें रहता है. वह केवल शब्दसे ही गम्य और शब्दसे नित्य सम्बन्ध रखनेवाला होता है. आधिभौतिक रूप प्रकट पदार्थ है, वह शब्दोंमें आश्रित नहीं होते किन्तु पृथ्वी आदि पंचमहाभूतोंमें आश्रित होते हैं. आध्यात्मिक रूप ज्ञान इच्छा और प्रयत्न में आश्रित होता है. यह तीन प्रभेद हर जगह दिखायी देते हैं. अर्थका आश्रय होना यह शब्दका लक्षण बताया, आकाशका नहीं. दूसरा लक्षण बताते हैं कोई पुरुष द्रष्टा है उसके लिंगद्वारा. जिस पुरुषने जो कुछ देखा हो उसके अर्थका द्रष्टा, उसमें अर्थ आध्यात्मिक रूपसे रहा

होनेके कारण, उसके सम्बन्धीके रूपमें वह द्रष्टा शब्दको बताता है, जैसे कि दीवारके दूसरी ओर कोई हाथीको देख कर “हाथी आया” ऐसा कहता है, तब भीतर रहनेवाला वाक्यप्रयोग करनेवालेने हाथी देखा ही होगा, ऐसा समझ जाता है. कोई कुछ भी बोले तो उसके स्वरोंके कारण भी “यह देवदत्त बोला” ऐसा समझनेमें आता है. यह सारे लक्षण धर्मके आधारपर दिये गये. दृश्यका ज्ञापक होना भी बतानेमें आया. भौतिक घड़ा आदि अर्थोंका भी ज्ञान शब्द देता है. दूसरा लक्षण कहते हैं शब्द आकाशकी तन्मात्रा कह कर. आकाशकी तन्मात्रा होना अर्थात् सूक्ष्मरूप होना वह शब्दका लक्षण है, शब्द यह सूक्ष्मावस्था, आकाश यह स्थूलावस्था. कोई-कोई अन्यथा मानते हैं, इसीसे स्वयं कहा उसमें प्रमाण देते हैं, विद्वान जानते हैं॥३३॥

विवेचन : आकाश क्या है? तो कहते हैं कि जहाँ शब्दका/साउन्ड् वेव्का अनुभव होता हो वहाँ आकाशका अनुभव होता है. जैसे यह पंखा यदि अपारदर्शक या सॉलिड् होता तो सिलींग् और पंखाके बीचमें आकाश नहीं दीखता. पर आकाश दीखता है क्योंकि लाइट्को पंखा व्यवधान नहीं करता. वैसे जहाँ साउन्ड्को व्यवधान नहीं होता वहाँ आकाशका अनुभव होता है. जहाँ साउन्ड्का अनुभव होता है वहाँ आकाशका अनुभव होता है, रूपका जहाँ अनुभव होता है वहाँ तेजका अनुभव होता है, स्पर्शका जहाँ अनुभव होता है वहाँ वायुका अनुभव होता है जहाँ गन्धका अनुभव होता है वहाँ पृथ्वीका अनुभव होता है. जहाँ तरलताका अनुभव होता है वहाँ जलका अनुभव होता है. इस तरह पंचमहाभूतका अनुभव हमें होता है. यह पूरी प्रक्रिया है बुद्धिके कार्य करनेकी॥३३॥

(पंचमहाभूतोंमेंसे आकाशका निरूपण)

श्लोक :

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च॥

प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम्।।३४।।

अनुवाद : **पृथ्वी आदि भूतोंको अवकाश प्रदान करनेवाला और प्राण इन्द्रिय आत्मा के भीतर और बाहर रहा हुआ धिष्ण्य = आधारस्थान होना आकाशकी वृत्तियोंका लक्षण है।।३४।।**

सुबोधिनी : **आकाशं लक्षयति भूतानाम् इति, भूतानां प्राणिनां छिद्रदातृत्वम्, बहिरन्तःस्वरूपत्वं, प्राणेन्द्रियान्तःकरणाधारत्वं च इति नभसो लक्षणत्रयम्. छिद्रम् अवकाशः, बहिरन्तर्व्यवहारः आकाशविषयएव. पृथिव्यादेः आवरणरूपस्य न बहिरन्तर्व्यवहारविषयत्वम्, परिच्छेदकत्वं परम्. प्रदेशोऽपि न व्यवहारहेतुः तुल्यत्वात्. विवरे च व्यवहारः. अतः आकाशस्यैव. चकारात् पृथिव्यादिसर्वाधारत्वं च लक्षणम्. लक्षणान्तरम् आह प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वम् इति, प्राणानाम् इन्द्रियाणाम् अन्तःकरणस्य च धिष्ण्यम् आधारभूतं स्थानम्. 'धिष्ण्य' शब्देन वैदिकत्वं तस्य स्थानस्य द्योतितम्. नभसो वृत्तिलक्षणम् इति, नभोहि त्रिधा वर्तते : स्वस्य आधिभौतिकं रूपं स्वयं प्रयच्छतीति आधिदैविकत्वम्, बहिरन्तर्व्यवहाराश्रयम् इति आध्यात्मिकत्वं, देहान्तःस्थितपदार्थाश्रयत्वेन आधिभौतिकत्वम्।।३४।।**

अनुवाद : अब आकाशका लक्षण, भूतोंको, प्राणियोंको अवकाश प्रदान करनेवाला, बाहर और भीतर रहा हुआ आधारस्थान, प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण का आधारस्थान होना यह आकाशका लक्षण है. आकाश = अवकाश, जिसको बाहर और भीतर ऐसा व्यवहार आकाशके बारेमें होता है. पृथ्वी आदिके आवरणरूप आकाश भीतर और बाहर व्यवहारका विषय बन कर परिच्छेदक होता है. प्रदेश भी व्यवहारका हेतु नहीं बनता, तुल्य होनेके कारण. विवरमें (छिद्रमें) ही व्यवहार संभव होता है. इसी कारण आकाश ही हेतु है. और पृथ्वी आदि सभीका आधार होना भी लक्षण है. दूसरा लक्षण देते हैं प्राण इन्द्रिय और आत्मा का आधारस्थान होना; प्राणोंका अर्थात् इन्द्रियोंका

और अन्त:करणका आधारभूत स्थान. 'धिष्ण्य' शब्दप्रयोगके कारण वैदिकता उस स्थानकी बतायी. आकाशकी वृत्तियोंका लक्षण अर्थात्, आकाश तीन प्रकारसे रहता है. स्वयंका आधिभौतिकरूप स्वयं ही देनेके कारण आधिदैविकता, भीतर और बाहर होनेके बारेमें व्यवहारका आश्रय होना यह आध्यात्मिकता, देहके भीतर रहे पदार्थोंका आश्रय होनेके रूपमें आधिभौतिकता॥३४॥

विवेचन : जो पंचमहाभूत हैं उसके लिए स्पेस् पैदा करता है कि भूत यहाँ है. जैसे यह मेज़ यहाँ है, यह कुर्सी यहाँ है. यह स्पेस् ही तो बाताता है कि कौनसी चीज कहाँ है. यह आकाश भूतके बाहर भी है और भीतर भी. प्राण इन्द्रिय आत्मा और बुद्धि का आधारस्थान यह आकाश ही है. इसके बिना तो कोई वस्तु हो नहीं सकती. हर वस्तु किसी न किसी स्पेस्में तो है ही. आज साइंस् भी यही बात कह रहा है कि मॅटर् जहाँ गति करती है वह स्पेस् है, जिसके कारण मॅटर् गति करती है वह एनर्जी है. मॅटर् जिस स्पीड्से मूव् करती है उसका नाम 'टाइम्' है और जो चल रहा है वह मॅटर् है. जहाँ मॅटर् मूव् नहीं कर रही है वह आकाश नहीं है. बौद्धोंके अनुसार 'आकाश' मानें जहाँ प्रतिघात नहीं होता अथवा जहाँ कोई रोकता नहीं है. रोके वह आकाश नहीं है. बुद्ध नकारात्मक परिभाषा देते हैं पर हम कहते हैं कि रोकता नहीं है इतना ही नहीं पर जो भूतोंको स्थान देता है वह भी आकाश है. सारी मॅटर् आकाशमें ही तो है. यह सकारात्मक परिभाषा है. It allows you to move, it allows you to be also there. पृथ्वीका गुण केवल रोकना ही नहीं है उसमें गंध भी है. आगका गुण केवल जलाना नहीं है वह आकाशमें ऊपर भी जाती है. आकाश यह फॅसेलिटी देता है॥३४॥

संक्षेपमें यह विवरण सांख्यका पूरा हुआ. हमने अक्षरब्रह्मसे शुरू

करके काल कर्म स्वभाव प्रकृति पुरुष महत् अहंकार तन्मात्रा दस-इन्द्रिय और पंचमहाभूत को देखा. पंचमहाभूतमें केवल आकाश लिया है क्योंकि बाकी चार भूतोंको हम इसी प्रकार समझ सकते हैं. यदि आप इसकी गणनाको ठीकसे समझ पायेंगे तभी आप अपनी चेतना और अहंकारादिको पृथक् कर पायेंगे. आपकी चेतनाका स्वरूप क्या है? वह इन सारी चीजोंसे परावर्तित होती है तब चेतना बनती है. वह इसका अंग नहीं है पर विटनेस् (साक्षी) है इन सारी गणनाओंकी. यहाँ जा कर सांख्य, प्रकृति और पुरुष का भेद प्रकट करता है. और जहाँ यह भेद एकाकार हो रहा है उसका नाम 'अक्षरब्रह्म' है. और उस अक्षरब्रह्ममें पुरुषोत्तम रहते हैं जो हम चौबीसवें अध्यायमें भक्तिमें देख चुके हैं.

अपने पुत्रमें मोह करना कि नहीं इसके उत्तरमें कपिलदेवजीके द्वारा दिया गया अपनी माँको सांख्य योग और भक्ति का उपदेश है.

* * *

।। बुद्धितत्त्व और बुद्धिवृत्ति ।।

(कठिनांश विस्तृत विवेचन)

छब्बीसवे अध्यायके अन्तर्गत श्लोक २९ एवं ३० में निरूपित बुद्धितत्त्व और बुद्धिवृत्तिका विस्तृत विचार करेंगे.

(प्रकृतिके राजस अंशके विकारसे बुद्धितत्त्व)

तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वम् अभूत् सति ।।
द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः ।।२९।।

सात्त्विक राजस और तामस, प्रकृतिके यह तीन गुण हैं जिनमें सात्त्विक स्थिर (stable) है, राजस चंचल (agile) है और तामस, निष्क्रिय होनेका (inertial) द्योतक है. ये गुण प्रत्येक द्रव्यमें होते हैं, कोई द्रव्य प्रधानतया स्थिर होता है कोई चंचल और कोई निष्क्रिय. एक बात और है कि कोई भी द्रव्य पूरे तौरपर इनमेंसे कोई एक गुण धारण नहीं करता, प्रत्येकमें कुछ अनुपातमें अथवा relatively यह तीनों ही गुण होते हैं. इसलिए पुराने ज़मानेमें फिलॉसॉफीमें बहुत बड़ा झगड़ा था कि यदि कोई द्रव्य स्थिर ही हो तो उसे हिलाने-चलानेके लिए किसी औरकी आवश्यकता होगी, मतलब उसके लिए कोई कर्ता चाहिये. तो कहा गया कि कर्ता भगवान् है. अब समझो कि खिड़कीमेंसे एक धूलका कण मेरे घरमें घुसा अपनी अस्थिरताके कारण, तो क्या भगवान् उसे धक्का मार कर घुसा रहे हैं? नहीं, यह तो अपने स्वभावसे घुस रहा है. और भगवान् यदि इतनी छोटी-छोटी बातोंपे ध्यान देंगे तो इस दुनियाको कैसे चलायेंगे? कितने कण अंदर आये, बाहर गये, नाकमें घुसे और कितनेके कारण कोरोना आया, इन सब बातोंके लिए भगवान् नहीं बैठे हैं, उनका भगवत्त्व ही खंडित हो जायेगा. हम सभी बातोंमें भगवान् ढूंढते हैं पर यह भगवान्को ढूंढनेकी प्रक्रिया सही नहीं है.

अभी ही किसीने मुझसे कहा था कि "एक भाई अचानक ही मर गया. भगवान्ने उसके साथ ऐसा क्यों किया?" मैंने कहा "यह भगवान्ने किया या कोरोनाने?" वह बोला "पर भगवान् तो सब कुछ करता है!" मैंने कहा "भगवान् सब कुछ करता है पर इतने छोटे-छोटे काम नहीं करता!" भगवान्ने कई चीजें ऑटोमेशन् मोड्में डाल दी हैं, अर्थात् प्रकृतिका निर्माण ही इस प्रकार किया है कि इसमें पैदा होती कोई भी वस्तु चाहे वह सात्त्विक हो राजस हो अथवा तामस हो, वह रिलेटिवली स्थिर है अथवा चंचल है अथवा तो निष्क्रिय है. बहुतसे लोग स्थिर और निष्क्रिय में भेद नहीं कर पाते हैं, अपने यहाँ इस बातमें भेद रखा गया है. Stability is not inertia, दोनोंमें भेद है. जैसे काइनेटिक् फोर्स् होता है उसी प्रकार स्टॅटिक् फोर्स् भी होता है. ऐसी एनर्जी जो आउट्पुट् नहीं दे पा रही है उसका नाम है 'inertial' अर्थात् निष्क्रिय. यदि स्थिर भी है तो उसके लिए एनर्जीकी ज़रूरत होती है 'static energy'. (स्वभाव/स्थितिशक्ति) उदाहरणके लिए पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा कर रही है पर सूर्यको छोड़ कर जाती नहीं है, वह अपने पथपर static है. देखो, यहाँ दोनों बात मॅनेज् हो रही हैं, उसमें स्टॅटिक् एनर्जी भी काम कर रही है और काइनेटिक् एनर्जी (कर्म/गतिशक्ति) भी.

दूसरा उदाहरण समझो कि हमारे अंदर शिराओंमें जो खून बह रहा है वह कभी उनके बाहर तो नहीं आता हवाके दबावके कारण, यह उसकी स्टॅटिक् एनर्जी है. पर वह बह भी रहा है, हृदयके पंप् करनेके कारण ही सही पर बह तो रहा है, यह उसकी काइनेटिक् एनर्जी है. इस प्रकार दोनों एनर्जी साथ काम कर रही हैं. ऐसा नहीं समझना चाहिये कि काइनेटिक् एनर्जी है तो स्टेटिक् नहीं होगी और स्टॅटिक् है तो काइनेटिक् एनर्जी नहीं होगी. इसी प्रकार इनके साथ एक प्रकारका इनर्शिया भी काम कर रहा है. यह अपनी प्रकृतिके काम करनेका स्पष्टीकरण है. अब एक बार

इस प्रकृतिकी रचना भगवान्ने कर दी इसके बाद वह इसके काममें दखलंदाजी नहीं करता.

जैसे सरकार जब कोई शहर बनाती है तो गटर्की प्रणाली उसमें बना देती है. उसके बाद क्या आपके टॉयलेट्में फ्लश् करने गवर्नर् आता है? वह तो आपको ही करना पड़ता है. इसी तरह भगवान् तो सिस्टम् बनाता है और हम सिस्टम् यूज़र् हैं. सिस्टम् इसी तरह चलती है कि न किसीको मारता है न ही किसीको जिवाता है. सिस्टम्के तहत सब अपने आप चल रहा है. किसीको बच्चा न हो रहा हो तो हम सिद्धि-विनायक या श्रीनाथजी की मानता मानने पहुँच जाते हैं. भगवान् क्या ऐसा धंधा करने बैठे हैं कि "तुम्हारा पति यदि बच्चा पैदा नहीं कर सकता तो मैं पैदा करने आ जाऊं!" भगवान्को कोई और काम है कि नहीं! ऐसे-ऐसे खोटे अर्थमें हम भगवान्का दुरुपयोग करते हैं. जिसने यह मॉबाइल्की सिस्टम् बनाई, क्या वह तुम्हारा मोबाइल् ठीक करने खुद आयेगा? उसने तो सिस्टम् दे दी है. अब यह आपके ऊपर है कि आप उसका उपयोग कितनी बुद्धिमत्तासे करते हैं! बेवकूफोंकी तरह उसका उपयोग करेंगे तो उसका वैसा ही परिणाम आयेगा. इस तरह भगवान् सभी कुछ करता है इसलिए हर काम स्वयं करता है ऐसा नहीं मान लेना चाहिये.

कुछ समय पहले मैंने एक कविता पढ़ी थी, उसमें कवि कहता है कि "हे भगवान्! तुझसे तो तेरी माया शक्तिशाली है क्योंकि तू तो अपने ग्रंथोंमें कहता है कि काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य नहीं करो पर माया तो हमसे यही काम करा रही है. अर्थात् तेरी बनायी सृष्टिमें तेरा हुकम नहीं चल कर, मायाका हुकम चल रहा है. तो फिर तू किस कामका?" हमें भी यही बात सताती है कि भगवान् फिर किस कामके? पर इसमें समझनेकी बात यह है कि भगवान्ने काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य की

सिस्टम् बनायी है पर उपयोगमें तो आप ला रहे हो. जैसे कार् किसीने बनायी और आपने उसका ॲक्सिडेंट् कर दिया, उसके बाद आप उस बनानेवालेको गाली दे रहे हो कि उसने ऐसी कार् क्यों बनायी कि जिसका ॲक्सिडेंट् हो सकता है. यह कोई समझदारीकी बात है? या तो हम यह कहेंगे कि भगवान् कुछ नहीं करता हम ही सब कुछ करते हैं, यह अपना अहंकार है. इस अहंकारकी सुंदर सिस्टम् भी भगवान्ने हममें भरी है और जब यह अहंकार टूट जाता है किसी कारणवश तो हम कहने लगते हैं कि हम तो कुछ करते ही नहीं, सब भगवान् कर रहे हैं. अरे भई! भगवान् सिस्टम् प्रोवाइडर् है और आप उसके यूज़र् हो. अहंकारकी सिस्टम् भगवान्ने बनायी है, इस कारण भगवान् सर्व-कर्ता हैं. उसका सदुपयोग दुरुपयोग अथवा अनुपयोग करना, यह तो आपके ऊपर है.

उसी प्रकार भगवान्ने बुद्धि बनायी. उस बुद्धिका उपयोग संशय निश्चय भ्रम स्मृति में करना अथवा केवल शेखचिल्लीकी तरह सपने ही देखते रहना! कुछ लोग सोते हुए ही नहीं, जागते हुए भी सपने देखते हैं. सोते समय आनेवाले सपने तो बहुत भोले होते हैं पर जाग्रत अवस्थाके सपने बहुत ही खतरनाक होते हैं. सपने भी अनुपातमें ही देखने चाहियें, यदि अनुपातमें देखेंगे तो हमारे विकासके लिए ही लाभकारी होंगे. यदि हम स्वप्न नहीं देखेंगे तो हम विकास कर ही नहीं पायेंगे, भविष्यके विकासके लिए स्वप्न हमारे अंदर रखी हुयी बहुत ही आवश्यक चिप् है. पर यदि भविष्यके बारेमें हम इतना सोचने लगें कि हम वर्तमानको भुला ही बैठें तो हम खड्डेमें ही गिरेंगे. इतना भविष्यके बारेमें नहीं सोचना चाहिये.

इसी कारण भगवान्ने इस ‘तैजस’ अर्थात् प्रकृतिके राजस अंशमेंसे बुद्धिको बनाया है. आप उसका उपयोग करो अथवा न करो पर वह अपने आप चलती है, स्वयं कुछ-न-कुछ करती रहती है. जैसे एअरपोर्ट्पर एस्केलेटर् लगे रहते हैं, आप ऊपर चढ़ना चाहो कि

न चाहो, वह आपको ऊपर पहुँचा ही देता है. आपको केवल एक सावधानी रखनी है कि जब यह आपको ऊपर ले कर जा रहा है तब आपको उसपर पकड़ कर खड़े रहना है. जब आपकी बुद्धि आपको किसी विचारमें उलझा रही है तब आपको उसपर थोड़ा ध्यान देनेकी आवश्यकता है. यह सही है कि स्वभावत: बुद्धि चंचल तो है पर उसकी इस चंचलताका हमें दुरुपयोग अथवा अनुपयोग न करके सदुपयोग करना चाहिये. तभी वह हमें हमारा इच्छित परिणाम देगी नहीं तो दुष्परिणाम ही होगा.

('सति'का अर्थ)

यहाँ 'सति' शब्द आया है जो महाप्रभुजी कहते हैं कि हो सकता है कपिलजी अपनी माँको संबोधित करके कह रहे हों. पर इसका एक दूसरा अर्थ भी महाप्रभुजी यहाँ बताना चाह रहे हैं कि ''जो है उसके साथ इन्टर्एक्ट् करना.'' यहाँ 'है'का अर्थ वर्तमान ही नहीं, भूत और भविष्य में जो 'है', उसके लिए यहाँ 'सत्' शब्दका प्रयोग किया गया है. जो था, जो है और जो होगा उसके साथ इन्टरॅक्शन् करनेके लिए बुद्धि बनायी गयी है **बुद्धितत्त्वम् अभूत् सति.**

प्रश्न : यहाँ 'सत्'शब्दका प्रयोग किया गया है. जो था, जो है और जो होगा; उसके साथ इन्टरॅक्ट् करनेके लिए बुद्धि बनायी गयी है. यह बुद्धिका काम है. मेरा प्रश्न है कि टीकामें 'पूर्णविज्ञान'का अर्थ कुछ और दिया है. तो यहाँ इसको किस प्रकार समझना चाहिये?

उत्तर : देखो! कोई भी सॅन्स्-डेटा अर्थात् आंखसे दीखती वस्तु, कानसे सुनाई देती ध्वनि, नाकमें आती गंध आदि, उसके साथ जब भी हमारा कोई सॅन्सरी-ऑर्गन् इन्टरॅक्टिव् मॉड्में आता है, उस समय सॅन्सेशन् होता है. हमें उस प्रत्यक्षका(निर्विकल्पक) ठीकसे ज्ञान नहीं होता पर कुछ है ऐसा अनुभव होता है. उसके बाद हमारे

अंदर उस वस्तुका पर्सेप्शन् (सविकल्पक प्रत्यक्ष) बनता है. उसके बाद उसका रिकलॅक्शन् (स्मरण) होता है कि जो देख रहे हैं वह पहले कभी देखा था कि नहीं, उसके बाद रॅकग्निशन् (प्रत्यभिज्ञा) होता है.

यह सब अनुभूतिकी स्टेजिज़् हैं और इस सारी प्रक्रियाका वर्णन कविने इस प्रकार किया है **“चयः त्विषाम् इति अवधारितं पुरा ततो शरीरीति विभाविताऽऽकृतिं, विभुः विभक्तावयवः पुमान् इति क्रमाद् अमुं नारदः इति अबोधि सः”** (शिशु.वध १।३) जब नारदजी सभामें आ रहे थे तब ऐसा लगा कि कोई प्रकाशका पुंज आ रहा है. फिर थोड़ा ध्यान देनेपर लगा कि कोई शरीरी है. फिर लगा कि कोई पुरुष आ रहा है. उसके बाद पास आनेपर पता चला कि नारदजी आये हैं. हमारे साथ भी ऐसा ही होता है कि यदि कोई चिड़िया हमारी आँखोंके सामनेसे तेजीसे उड़ जाय तो हम निश्चय नहीं कर पाते हैं कि वह कबूतर था कि कौआ था कि कोयल थी? पहले लगता है कि कोई काली वस्तु उड़ी होगी, फिर लगता है कि नहीं कोई चिड़िया थी. जो लोग एअरपोर्ट्के पास रहते हैं उन्हें पता होगा कि सांझके समय पूर्वसे एक लाइट् आती हुयी दिखायी देती है. उस लाइट्के प्रकाशमें और तारेकी रोशनीमें बहुत अंतर नहीं दिखायी देता. बिल्कुल ऐसा लगता है कि पूर्व क्षितिजमें कोई तारा उगा है. उसके बाद धीरे-धीरे वह प्रकाश तेज होता जाता है तब पता चलता है कि यह तो हवाई जहाज है. इस तरह अनुभूतिकी स्टेज् ऐसी है कि पहले सॅन्स्डेटा सॅन्सरी ऑर्गन्को स्टिम्युलेट् करने लगे, तब सॅन्सेशन् (निर्विकल्पक प्रत्यक्ष) होता है. सॅन्सेशन्के बाद पर्सेप्शन् (सविकल्पक प्रत्यक्ष) और उसके बाद रिकलॅक्शन् और अंतमें रॅकग्निशन्. इस सबके बाद हमारे दिमागमें किसी वस्तुका कॉन्सेप्ट् (प्रत्यय) साफ होता है.

इसमें समझनेकी बात यह है कि स्फुरणका अर्थ केवल सॅन्सेशन्

होता है. जैसे कोई आवाज़ आ रही है पर हम नहीं पहचान पा रहे हैं कि क्या है. कुछ दिखायी दे रहा है पर क्या दिखायी दे रहा है पता नहीं चलता, इस अनुभूतिको 'स्फुरण' कहा जाता है. इसके विकासकी सीढ़ियाँ हैं, सॅन्स्-स्टिम्युलेशन्—>सॅन्सेशन् —>पर्सेप्शन्—> रिकलेक्शन्—>रॅकग्निशन् और उसके आधारपर हमारा कन्सेप्शन् साफ बनता है. 'द्रव्यस्फुरणम्' का अर्थ है स्टिम्युलेशन् और सॅन्सेशन्, और उसीसे किसी वस्तुके बारेमें पर्सेप्शन् बनता है. यदि हम पर्सीव् कर पायेंगे तो ही हम स्मरण कर पायेंगे कि इसे पहले देखा है कि नहीं. स्मरणके बाद ही हमें याद आयेगा कि हाँ इसे पहले देखा है और अब मैं इसे अच्छी तरह रॅकग्नाइज़् कर सकता हुं.

इस तरह सबसे पहले द्रव्यका स्फुरण होगा. स्फुरण होनेके बाद 'विज्ञानम्' अर्थात् किसी एक विशेष प्रकारका ज्ञान कि जो केवल सॅन्सेशन् तक ही सीमित नहीं है, बल्कि रॅकग्निशन् तक ले कर जानेवाला है. उसके बाद यदि अपनी बुद्धि 'स्व' अवस्थामें हो; क्योंकि बुद्धि भी तीन अवस्थाओंमें जा सकती है. पहली इनर्शिया अर्थात् (तामस) निष्क्रियतामें, दूसरी ओवर्-एक्साइटमॅन्ट् अर्थात् (राजस) चंचलतामें और तीसरी स्टेबिलिटी अर्थात् (सात्त्विक) स्थिरतामें. अब बुद्धि यदि स्थिर हो तो **इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः** वह इन्द्रियोंपर अनुग्रह करती है. पर यदि जड़ (तामस) हो जाये तो परिणाम कुछ और ही निकल कर आयेगा.

मैं अक्सर एक उदाहरण देता हुं. एक कक्षामें अध्यापक पढ़ा रहा था. उसी कक्षामें एक विद्यार्थी पढ़नेके बजाय खिड़कीसे बाहर झांक कर एक साँपको अपने बिलमें जाते हुए देख रहा था. अध्यापकने देखा कि विद्यार्थीका ध्यान पढ़नेमें नहीं है तो उन्होंने कहा "अरे कुछ भेजेमें गया कि नहीं?" विद्यार्थी बोला "सर, चला तो पूरा गया, बस पूंछ ही बाकी है." ऐसा उसने इसलिए कहा क्योंकि

उसका दिमाग अध्यापक जो पढ़ा रहा था उसमें नहीं लगा था पर साँपके बिलमें घुसनेमें लगा हुवा था. सहज संभव है कि मन जहाँ है, बुद्धि उसको उसी प्रकार समझ कर उसकी व्याख्या उसी प्रकार करे. बुद्धिकी जड़ावस्था हो तो सुननेके बाद भी हमें यही लगता है कि कुछ समझ नहीं आ रहा. पर यदि बुद्धि स्वस्थ है अर्थात् सात्त्विक अवस्थामें है तो जो-जो भी सूचनाएं इन्द्रिय भेज रही हैं उनकी सही व्याख्या वह करेगी. मूल बात इतनी थी.

(बुद्धिका स्वरूपलक्षण = द्रव्यस्फुरणविज्ञानम्)

महाप्रभुजी कहते हैं कि इसके कारण हमें **'द्रव्यस्फुरणविज्ञानम्'** जो द्रव्य (रूप,रस,गंध,स्पर्श,ध्वनि) जो ज्ञानेन्द्रियको स्टिम्युलेट् (स्फुरित) करते है. Stimulation हुआ उसका विज्ञान हो रहा है, उसको उसी प्रकारसे समझना. यह हमें बुद्धिके द्वारा ही हो सकता है. What is it that causes stimulation on my sensory organs, which organ is getting stimulated and why is it stimulating. यह केवल ज्ञान नहीं है विज्ञान है. 'विज्ञान' अर्थात् विशेष ज्ञान. यह बुद्धिका काम है.

(बुद्धिका कार्यलक्षण = इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः)

और इस प्रकारका विज्ञान होनेसे **इन्द्रियाणाम् अनुग्रहः** हमें जो इन्द्रियोंसे दीख रहा है वह कैसे दीख रहा है? इन्द्रियोंपर बुद्धिके अनुग्रहके कारण. कानसे हमें सुनायी इसीलिए दे रहा है क्योंकि श्रवणेन्द्रियपर बुद्धि अनुग्रह कर रही है. जैसे पहले-पहले मैं अपनी वल्लभवेदांतकी क्लास्में देखता था कि लोग आगे आ कर बैठ जाते थे और क्लास् प्रारंभ होनेसे पहले सो जाते थे और आखिरमें जाग कर मुझसे कहते थे कि "आपका लॅक्चर् कभी भी मिस् नहीं किया जा सकता!" इसका कारण समझो, जो भी आप कानसे सुन रहे हो, बुद्धि उसपर अनुग्रह नहीं कर रही है. बुद्धि यदि

अनुग्रह करे तो कानसे जो सुना जा रहा है उसकी प्रोसेसिंग् होगी और यह होगी तो उसका परिणाम भी आयेगा. यदि बुद्धि प्रोसेसिंग् न करे तो जो भी सुना है वह अनसुना ही रहेगा. मेरे कहनेका अर्थ है कि इन्द्रियोंपर अनुग्रह करना यह बुद्धिका मेजर् रोल् है और वह इनपर किस प्रकार अनुग्रह करती है उसकी गणना यहाँ की गयी है.

बुद्धेः उत्पत्तिम् आह तैजसात्तु इति. बुद्धि किस प्रकार उत्पन्न हुयी उसका खुलासा कर रहे हैं कि **तैजसात्तु** अर्थात् राजस. अब बुद्धि सात्त्विक गुणसे उत्पन्न क्यों नहीं हुयी इसका कारण समझो कि राजस गुणसे मन उत्पन्न हुआ है इसलिए हमेशा चंचल रहता है. और अहंकार तामससे उत्पन्न हुआ है इस कारण हमेशा इनर्शियाके मूड्में रहता है. ‘अहंकार’ अर्थात् सॅल्फ्-अवेयरनेस्. वह हमेशा इतनी इनर्शियामें रहती है कि उसमें कोई बदलाव आता ही नहीं है. उदाहरणतया बचपनसे अब-तक हम इतने बड़े हुए और अपने विचारोंमें भावोंमें व्यवहारमें शब्दज्ञानमें समझमें शरीरमें कितने सारे बदलाव आ गये हैं पर इतने सारे परिवर्तनोंको हमारी सॅल्फ्-अवेयरनेस् गिनती ही नहीं है. बचपनसे बुढ़ापे तक हमारे चेहरेमें बहुत बदलाव आते हैं, ये दूसरोंको महसूस होते हैं पर हमें ऐसा कभी नहीं लगता कि हम बदल गये हैं. इसलिए यह समझो कि अहंकार हमेशा स्टॅटिक् मूड्में ही रहता है. दूसरे शब्दोंमें इसे ‘तामस’ कहा जाता है.

मनके अनुपातमें बुद्धि थोड़ी कम चंचल है. मन और बुद्धि की चंचलता अथवा राजसता का रूप इस प्रकार समझ सकते हैं. जो लोग कम्प्यूटर्का उपयोग करते हैं उन्हें यह बात ठीकसे समझ आयेगी कि उसमें हम कर्सर्की स्पीड् निर्धारित करते हैं जिस स्पीड्पर कम्प्यूटर् ऑपरेट् कर पाते हों उसके आधारपर. एक बार उसकी

स्पीड् आपने निर्धारित कर दी, उसके बाद वह इतना चंचल नहीं रहता, एकदम बुद्धिके मोड्में आ जाता है. वह चलता नहीं है, ऐसी बात नहीं है पर जैसे पहले दौड़ रहा था वैसे नहीं दौड़ता. और वही यदि हम माउस्के साथ चलायेंगे तो वह फिर दौड़ना चालू कर देगा. ठीक इसी प्रकार मनको समझना चाहिये, एकदम माउस्के सहारे दौड़नेवाले कर्सर्की तरह है. एक ग़ज़ल है *“ये करें और वो करें, ऐसा करें वैसा करें, ज़िंदगी तो दो दिनकी है, दो दिनमें हम क्या-क्या करें?”* मन ठीक इसी प्रकारका है, “क्या करूं, क्या करूं?” बस यही पूछता रहता है, बुद्धि इतनी उत्तेजनावाली नहीं होती. और यह बात भी समझनेकी है कि मन ऐसा है इसका भी जीवनमें एक सकारात्मक रोल् है. ज्ञानी लोग हमेशा इसे गाली देते रहते हैं कि ‘मन चंचल है’ पर इसे तो बनाया ही ऐसा गया है. संस्कृतमें एक नियम है कि ‘चंचल’ शब्दमें दो बार ‘च’ आया है, तो जो हमेशा चलनेके लिए तैयार रहता हो उसको ‘चंचल’ कहा जाता है. बुद्धि इतनी चंचल नहीं है पर निश्चल भी नहीं है, अंतर इतना है. बुद्धि यदि मनकी तरह चंचल हो जाये तो कुछ समझ ही नहीं आयेगा.

बहुत प्रसिद्ध एक चुटकुला है. एक व्यक्ति किसी गानेके कार्यक्रममें गया था. गानेके बीचमें वह थोड़ी देरके लिए बाहर आया, उसी समय एक व्यक्ति अंदर जानेकी तैयारी कर रहा था. बाहर आनेवाले व्यक्तिसे उसने पूछा “अंदर कैसा प्रोग्राम् चल रहा है?” दूसरेने उत्तर दिया “पूरा हॉल् गानेवालेकी आवाज़से भर गया है.” तो पहलेने पूछा “तो वहाँ बैठनेकी जगह बची है कि नहीं?” अरे, आवाज़के हॉल्में भरनेसे बैठनेकी जगह नहीं भरती! इस प्रकार बुद्धिके अस्थिर होनेपर ऐसी स्थिति हो जाती है. ऐसी स्थितिमें बुद्धि इन्द्रियपर अनुग्रह नहीं करती, यदि स्थिर हो तो अनुग्रह करती है. अपने यहाँ अनुग्रहका अर्थ ‘कृपा’ लिया जाता है पर कृपा इसका इट्मॉलॉजिकल्

अर्थ नहीं है, रूढ़ अर्थ है. सिम्पॅथीके अर्थमें 'अनुग्रह'का अर्थ कृपा कर दिया गया है. आपको जो अनुभव हो रहा है वह मुझे भी हो तो 'सिम्पॅथी' कहलाता है पर जो आप ग्रहण कर रहे हो वह मैं भी यदि ग्रहण कर रहा हुं, तो उसका अर्थ होता है 'अनुग्रह'. भगवान् अपने ऊपर अनुग्रह करते हैं उसका अर्थ है कि अपनी जो स्थिति है वह भगवान् भी स्वीकार कर रहे हैं. वह स्थिति प्रसन्नताकी भी हो सकती है और दुःखकी भी. बुद्धि अनुग्रह करती है उसका अर्थ यह है कि इन्द्रियाँ जो भी सूचनाएं बुद्धिको भेज रही हैं, उन्हें बुद्धि यदि अटॅन्ड् करे तो बुद्धिका अनुग्रह कहा जायेगा. इन्द्रियाँ सूचनाएं भेज रही हैं पर बुद्धि उन्हें अटॅन्ड् ही नहीं कर रही है तो उल्टे-सीधे ही अर्थ निकालेगी जैसे "पूंछ बाकी रह गयी है", "बैठनेकी जगह बची कि नहीं?" क्योंकि इन्द्रियोंसे जो सूचना आ रही है, बुद्धि अनुग्रह नहीं कर रही है.

सति! इति सम्बोधनं तैजसत्वेऽपि सद्बुद्धिरेव उत्पद्यते इति निरूपणार्थम्. सति विषये वा, सर्वविषयिकैव बुद्धिः उत्पद्यते इति. 'सति' अर्थात् विषयमें बुद्धि उत्पन्न हो रही है. असत्में बुद्धि उत्पन्न होती है कि नहीं यह एक बहुत बड़ा डिबेटेबल् इश्यु है फिलॉसॉफीका. उदाहरणके लिए रेगिस्तानमें पानी तो है नहीं पर मरीचिका दिखायी देती है. अब प्रश्न यहाँ यह है कि यह भ्रम हमें आंखसे दिखायी दे रहा है कि बुद्धि उसका इन्टरप्रिटेशन् उस प्रकार कर रही है? अंधेरेमें रस्सीपर साँपकी भ्रांति होती है तो साँप हमें आंखसे दिखायी दे रहा है या बुद्धि उसकी व्याख्या साँपके रूपमें कर रही है? इस बारेमें एक मत ऐसा है कि बुद्धि अपना विचार करनेमें स्वतंत्र है, इस कारण ही हमें भ्रम होता है. न्यायमतके अनुसार विषयसे इन्द्रियाँ जुड़ती हैं, इन्द्रियोंसे मन जुड़ता है, मनसे अहंकार जुड़ता है और अहंकारसे बुद्धि जुड़ती है. यह सारी प्रक्रिया क्षणसे भी कम समयमें संपन्न हो जाती है.

उदाहरणके लिए कोई एक शब्द मैं आपको कहूं और आप इस शब्दसे संबंधित दूसरी वस्तु विचारनेको कहूं तो कितने ही विचार तुरंत एक साथ आपके दिमागमें आ जायेंगे! जैसे मैं 'चश्मा' कहूं तो किसीके दिमागमें आंख आयेगी, किसीके दिमागमें काँच आयेगा, किसीके दिमागमें नंबर आयेगा. जिसके मनमें उससे संबंधित जो वस्तुकी धारणा अधिक होगी वह ही उसके दिमागमें पहले आयेगी. धीरे-धीरे सभी वस्तुएं आयेंगी क्योंकि जो वस्तु दिखायी दे रही है उसके सारे विकल्प अपने दिमागमें हैं.

जो भी शब्द हम पहले बोल रहे हैं, उसके बादके शब्दोंमें ऑर्डर् आ रहा है. उसे सोचनेमें कोई समय तो लगता नहीं है पर आते ऑर्डर्में ही हैं, यह एक प्रक्रिया है. इस प्रकार मन सारे विकल्प अहंकारके समक्ष रख देता है. उसके बाद अहंकार उसमेंसे चुनता है कि "यह सूचना जो आयी है वह पहले कभी आयी है कि नहीं और आयी है तो वह सुखरूप थी कि दुःखरूप" इस विचारके साथ उस सूचनाको बुद्धिके पास भेज देता है, जिसके बाद बुद्धि उसका बराबर ॲनेलेसिस् करती है. अब यह बात 'विज्ञान'से समझ आ गयी है. 'विज्ञान' अर्थात् समझ.

(यथार्थवाद और कल्पनावाद)

सारी बात यहाँसे शुरू हुयी है कि समझ जो बुद्धिमें आ रही है वह किसी विषयके कारण आ रही है कि बुद्धि अपने आपसे कोई समझ पैदा कर रही है? हम यदि कल्पना करने लगें तो हमें ऐसा लगता है कि बुद्धि विषयके अधीन कल्पना नहीं करती क्योंकि बुद्धि तो ऐसी-ऐसी कल्पना कर सकती है कि जिसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते! पर जो भी कल्पनाके ॲलिमॅन्ट्र हैं उन सबको बुद्धि पहलेसे ही जानती है. जो मूल है वह केवल arrangement है. जैसे आपको कीचड़ मालूम है, कमल मालूम है और आप

कल्पना कर रहे हो कि कीचड़के बिना आकाशमें भी कमल खिल सकता है. यह कल्पना आपको आयी कहाँसे? Because your intellect is aware of space and is also aware of lotus there for it connects lotus with the space instead of mudding water. Then we think that it is a new imagination. but nothing can be imagined totally new, it is only arrangment of object which you have experienced. इस प्रकार कल्पनामें भी अत्यन्त असद् विषय होता नहीं है. यह एक मत है.

दूसरी फिलॉसॉफी ऐसा कहती है कि बुद्धिपर भरोसा नहीं करना चाहिये क्योंकि वह तो सपने दिखाती है. इस लिये बुद्ध भगवान् कहते हैं कि जैसे स्वप्नावस्थामें कुछ होता नहीं है और बुद्धि दिखाती है, ऐसे जाग्रतावस्थामें कुछ है नहीं और बुद्धि दिखा रही है, असलमें यह सब स्वप्न ही है.

अंग्रेजीमें इसे 'रियलिज़म्' (यथार्थवाद) और 'आइडियलिज़म्' (कल्पनावाद) का नाम दिया गया है. 'रियलिज़म्' अर्थात् बुद्धिका विषय रियल् (वास्तविक) है, 'आइडियलिज़म्' अर्थात् बुद्धि आइडियाको (कल्पना) ही विषय बनाती है, रियल्को नहीं. Intellect can understand its own idea. It cannot understand any external object, यह idealism है. यह दर्शन जब अपने चरमपर पहुँचता है तो ऐसा प्रपोज़् करता है कि जब व्यक्तिकी आँख खुलती है तभी जगत् पैदा होता है, आँख बंद होनेपर जगत् भी गायब हो जाता है. बहुतसे लोग और वैज्ञानिक उनका मज़ाक उड़ाते हैं पर ऐसा नहीं है कि कुछ फिलॉसॉफर् ही आइडियलिस्ट् थे, बहुत सारे अच्छे वैज्ञानिक भी आइडियलिस्ट् हुए हैं.

इस तरह एक सिद्धान्त यह है कि विषयका आपको अपनी बुद्धिके आइडियाके हिसाबसे अनुभव होता है और आपको विषयके

कारण आइडिया फॉर्मेट् होता है. यह दूसरा सिद्धान्त है. पहलेको 'आइडिलिज़म्' और दूसरेको 'रियलिज़म्' कहा जाता है.

(महाप्रभुजीको अभिमत यथार्थवादका स्वरूप)

इसमें अपने भागवतका और महाप्रभुजीका सिद्धान्त रियलिज़म्का है. वे कहते हैं कि बुद्धि जब किसी वस्तुको अपना विषय बनाती है तो 100% subjective नहीं होता, आइडिया होता है पर वह वस्तुजन्य होता है. वह प्रक्रिया हम देख ही चुके हैं : ऑब्जेक्ट्→सॅन्सेशन्→ पर्सेप्शन्→ रॅकग्निशन्→कन्सेप्शन्. इसलिए महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **सति विषये वा, सर्वविषयिकैव बुद्धिः उत्पद्यते इति.** सारे विषयोंके बारेमें बुद्धि उत्पन्न हो सकती है. **अतएव अस्याः आधिदैविकं रूपं न निरूप्यते.** इसीलिए यहाँ बुद्धिके आधिदैविक स्वरूपका निरूपण नहीं किया जा रहा है. इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि बुद्धिका आधिदैविक स्वरूप है ही नहीं, क्योंकि यहाँ कपिलगीतामें मन बुद्धि अहंकार का आधिदैविक रूपका वर्णन इस प्रकार हुआ है. अहंकारका संकर्षणके रूपमें, चित्तका वासुदेवके रूपमें, मनका अनिरुद्धके रूपमें और बुद्धिका प्रद्युम्नके रूपमें. 'प्रद्युम्न' अर्थात् जो अच्छी तरहसे प्रकाशित करता हो. 'अनिरुद्ध' अर्थात् जिसको नियंत्रित नहीं किया जा सके. मनसे ही मनका निरोध हो सकता है तो फिर मन अनिरुद्धका अनिरुद्ध ही रहा. 'संकर्षण' अर्थात् जो हर वस्तुको अपनी ओर खींचता हो. अपने अहंकारमें भी यही विशेषता है. आंख देखती है तो अहंकार कहता है कि मैंने देखा. सुना कानने है पर अहंकार कहता है कि मैंने सुना. नाक सूंघ रही है पर अपनी सॅल्फ्-अवेयरनेस् कहती है कि मैंने सूंघा है. 'संकर्षण' अर्थात् जितनी भी वस्तुएं हैं उन्हें अपनी तरफ खींचता है, जैसे गुरुत्वाकर्षण अपनी ओर खींचता है, वैसे अहंकार हर सूचनाको अपनी ओर खींचता है.

अतएव अस्याः आधिदैविकं रूपं न निरूप्यते. आध्यात्मिकं लक्षयति

द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इति. इसका आधिदैविक रूपका निरूपण न करके आध्यात्मिक स्वरूपका वर्णन करते हैं कि **द्रव्यस्फुरणविज्ञानम्.** आजकल 'आध्यात्मिक' शब्दका प्रयोग spiritual के अर्थमें होनेसे हमें लगता है कि आत्मा आदिकी बात आध्यात्मिक बात कही जा रही है. पर संस्कृतमें इस शब्दका प्रयोग आध्यात्मिकके अर्थमें नहीं किया जाता. संस्कृतमें इस शब्दका अर्थ होता है कि जो आपके भीतर हो. जो बाहर है वह अधिभूत है और जो देवतासे संबंधित है वह आधिदैविक. बुद्धिका आध्यात्मिक रूप बता रहे हैं कि **द्रव्यस्फुरणविज्ञानम्.** द्रव्यमें जो स्फुरण हो रहा है उसका विज्ञान, यह बुद्धिका आध्यात्मिक फंक्शन् है. **यथा इन्द्रियप्रेरकत्वं मनसः** मन इन्द्रियको मोटीवेट् करता है. 'मोटीवेट्'का अर्थ है कि किसीको संचालित करना. मन इन्द्रियोंको संचालित करता है क्योंकि मन सदा चंचल स्थितिमें रहता है, मनका इन्द्रियके ऊपर कन्ट्रोल् है. इन्द्रिय अपने आपमें चंचल नहीं होती पर मनके कारण चंचल होती है. मन इन्द्रियका प्रेरक तत्त्व है.

तथा इन्द्रियानुग्राहकत्वं बुद्धेः. बुद्ध्यैव अनुगृहीतानि इन्द्रियाणि पश्यन्ति कुर्वन्ति च. बुद्धि इन्द्रियोंके साथ हमेशा थोड़ी सिम्पॅथी प्रकट करती है. इन्द्रिय जो भी सूचनाएं बुद्धिको भेजती हैं. बुद्धि यदि इन्द्रियपर अनुग्रह करती है तो इन्द्रिय कुछ देख सकती है या कुछ कार्य करनेमें सक्षम बनती है.

एक बात समझो कि हम अनुग्रहका अर्थ कृपा समझते हैं. इसका कृपा अर्थ तो है ही पर मूलमें इसका अर्थ है सहानुभूति. आपको जिसके प्रति सहानुभूति होती है तो उसे जो अनुभव हो रहा है आप उसको महसूस कर सकोगे. यदि वह व्यक्ति रो रहा है तो आपकी आँखमें भी आंसू छल जायेंगे. 'अनुग्रह' मानें जो वह ग्रहण कर रहा है, वह आप भी कर पा रहे हो. जैसे मैं दु:खी हुं और भगवान् मेरे दु:खसे दु:खी हो कर मेरा दु:ख दूर

करें तो उनका मेरे ऊपर अनुग्रह कहलायेगा. दया-करुणा, यह सब नकारात्मकताकी ओर अधिक है. जैसे आपको हँसी आये और आपको प्रसन्न देख कर मैं भी प्रसन्न होऊं तो वह भी आपके प्रति सहानुभूति ही कही जायेगी. किसीको जो सुख-दुःखका अनुभव हो रहा है उसका प्रभाव मेरे हृदयपर भी पड़ता हो उसका नाम है 'सहानुभूति'. जैसे, सितारमें प्रमुख तारोंके नीचे कुछ तार लगाये जाते हैं जिन्हें 'तरबके तार' कहते हैं, जो प्रमुख तारोंके स्वरसे मिले होते हैं. जब भी प्रमुख तार बजता है तो उनमें अपने आप झंकार आ जाती है. उन्हें अंग्रेजीमें 'सिम्पॅथेटिक् स्ट्रिंग्' कहते हैं क्योंकि जो भावना प्रमुख तारमें बज रही है वही उस तारको हो रही है. इसी प्रकार आपकी इन्द्रिय जिस सुख-दुःखका अनुभव कर रही है, बुद्धिको भी वही अनुभव हो रहा है तो बुद्धि इन्द्रियके ऊपर अनुग्रह करती है मानें उसके प्रति सहानुभूति रखती है.

बीस-पच्चीस साल पहले जब मैंने अपना पहला कम्प्यूटर् लिया तो मुझे सिखानेके लिए एक क्रिश्च्यन् आती थी. वह इतनी तेजीसे बताती थी कि जब-तक मैं समझु उसके पहले दूसरा कमान्ड् दे कर आगे बढ़ जाती थी. उससे मुझे विनती करनी पड़ी कि "आप मुझे इस विषयमें मूढ़ समझें. बिल्कुल धीरे-धीरे बोलीये और धीरे-धीरे ऑपरेट् करें, तो ही मैं इसे समझ पाऊंगा." जैसे, मैं जो विषय आपको पढ़ा रहा हुं, वह तेज बोल कर निकल जाऊं तो आपको क्या समझ आयेगा. धीरे बोलनेपर ही तो समझ आयेगा. **अतएव बुद्धितारतम्येन इन्द्रियज्ञानक्रिययोः तारतम्यम्.** इस तरह इन्द्रियके ज्ञानमें जो तारतम्य लग रहा है अर्थात् आपको 'ठीकसे समझ आया कि नहीं' इसका कारण इन्द्रिय नहीं है, बुद्धि है.

एक बहुत प्रसिद्ध चुटकुला है कि यदि आप बहरेके सामने उसकी निंदा करो तो सुन लेता है. दूसरेकी बातको नहीं सुन पाता.

इसका कारण यह है कि बुद्धि उसमें लगी हुयी होती है. मेरे कानमें भी एक बार कुछ समस्या हुयी तो मैं चॅक् करवाने गया. पहले डॉक्टर्ने मशीन्से चॅक् किया और कुछ डेटा निकाला. कौनसी वेव्लेंथ् सुनायी देती है और कौनसी नहीं, यह उसने मुझे बताया. उसके बाद उसने एक व्यक्तिको दूर खड़ा करके उससे कुछ बोलनेको कहा और मुझसे पूछा. मैंने कहा "सुनायी दे रहा है." डॉक्टर् बोला "नहीं आपको सुनायी नहीं दे रहा है, आप उसके होंठकी मूवमॅन्ट्को पढ़ पा रहे हैं. इसलिए आपको लग रहा है कि आपको सुनाई दिया." हमारे केस्में सभी इन्द्रियाँ सिन्क्रोनाइज़् हो गयी हैं इस कारण जब एक इन्द्रिय थोड़ी इन्ॲक्टिव् होती है तो दूसरी इन्द्रिय उसको सहाय कर देती है और हमें लगता है कि इन्द्रिय बराबर काम कर रही है. इसलिए कह रहे हैं कि **अतएव बुद्धितारतम्येन इन्द्रियज्ञानक्रिययोः तारतम्यम्**. इन्द्रियमें तारतम्य नहीं होता है, बुद्धिके तारतम्यके कारण इन्द्रियमें रिफ्लॅक्ट् होता है.

एतत् कार्यानुसारि लक्षणम्. यह कार्यानुसारी लक्षण है. **द्रव्यस्फुरणविज्ञानम् इति स्वरूपलक्षणम्**. कार्यानुसारी लक्षण और स्वरूप लक्षण, इस तरह किसी भी वस्तुको दो प्रकारसे पारिभाषित किया जा सकता है. By defining it's result and by defining it in it's own essence. 'स्वरूपलक्षण' अर्थात् उसका essence. जैसे पानीको हम H_2O कहते हैं, तो यह उसका स्वरूपलक्षण हुआ और पानीसे प्यास बुझती है, सफाई होती है, यह कार्यानुसारी लक्षण है. इन्द्रियोंपर बुद्धि अनुग्रह करती है यह आध्यात्मिकलक्षण है. और 'द्रव्यस्फुरणविज्ञानम्' स्वरूपलक्षण है. **द्रव्यस्य घटादेः स्फुरणे सति** द्रव्य/मॅटर् जब भी अपनी इन्द्रियोंको स्टिम्युलेट् (उत्तेजित) करता है तब **शब्देन, संस्कारेण, आलोकेन वा यद् विशिष्टज्ञानम्**. Stimulation को एक विशेष आकारमें आनेके लिए तीन वस्तु काम कर रही होती हैं क्योंकि stimulation तो जनरल आकारमें होता है. पहला है 'शब्द'. कोई भी

वस्तु सबसे पहले हमें शब्दके रूपमें उत्तेजित करती है. पर मानों कि वह इस रूपमें नहीं कर पा रही है तो फिर 'संस्कार' जागता है कि पहले इसे देखा है और तीसरा है 'आलोकेन', जैसे कम रोशनीमें हम वस्तुको ठीकसे देख नहीं पाते तो अधिक रोशनी करते हैं. इन तीन प्रकारोंसे एक ज्ञान होता है. जैसे मैंने तुम्हें नारदजीके प्रसंगमें बताया कि पहले लगा कि प्रकाशका पुंज आ रहा है. थोड़े पास आने पर लगा कि कोई शरीरी आ रहा है. बिल्कुल पास आने पर पहचाना कि ये तो नारदजी हैं. यह पर्सेप्शन्का क्रम एक प्रकारके संस्कारसे उत्पन्न होता है.

... **यद् विशिष्टज्ञानम्.** यहाँ कहना चाह रहे हैं कि एक विशिष्ट ज्ञान = thus(इत्थम्) होता है. thisका(इदम्) ज्ञान = सामान्यज्ञान. मन और इन्द्रिय आपको सामान्य ज्ञान कराते हैं पर वस्तुका विशेष प्रकारका ज्ञान तो बुद्धि ही कराती है. यह उसी तरहका कार्य है जो जज् करता है. जज्को यह तो मालूम नहीं है कि असलमें क्या हुआ, सूचना तो उसे वकील देते हैं. उसमें आकलन करके जो उसे उचित लगता है वही निर्णय देता है. हमारे दादाजीको कभी भी बच्चोंका रोना अच्छा नहीं लगता था. हम भाई-बहन आपसमें झगड़ते, फिर झगड़नेके बाद हममें रेस् लगती कि दादाजीके पास पहले कौन पहुँच कर रोये. जो पहले दादाजीके सामने रो देता था वह सही माना जाता था और दूसरेकी पिटाई होती थी.

प्रश्न : कई बार निर्णय मन भी तो लेता है. उदाहरणके लिए हमें कुछ खानेका मन किया. यह सूचना मनने बुद्धिको दी पर बुद्धिने कहा कि "नहीं, अभी खानेका सही समय नहीं है." ऐसा होनेके बाद भी हम मनकी बात मान कर खा लेते हैं. तो इसे किस प्रकार समझना?

उत्तर : देखो, गलत समयपर खानेके लिये बुद्धि ही अनुग्रह करती

है. मनने तो विकल्प दिया कि खाना चाहिये कि नहीं. अब वही दादाजीका उदाहरण याद कर लो कि पहले कौनसी सूचना बुद्धिके पास गयी. पहले जो जा कर उनके पास रो देता है, बुद्धि उसके ऊपर अनुग्रह कर देती है. आप सच्ची शिकायत ले कर भी जज्के पास देरसे जाओ तो जज् उसपर ध्यान देनेसे मना कर देता है. और झूठी शिकायत भी कोई समय रहते कर दे तो उसके पास दूसरे विकल्पके अभावमें जजमॅन्ट् झूठके पक्षमें ही कर देता है. एक बात और, जजमॅन्ट्का सच और झूठ से इतना संबंध नहीं है, उसका सीधा संबंध है सबूतोंसे. यदि कोई वकील झूठके भी अच्छे सबूत दे देता है और जज्को लगे कि अधिक संतुष्ट करनेवाले हैं तो फैसला उसके पक्षमें ही सुनायेगा. सच्चा क्या है और झूठा क्या यह बुद्धिका विषय नहीं है, यह तो इन्द्रियका विषय है. बुद्धिका विषय है कि दिये हुए सबूतोंके आधारपर वैध अथवा जायज़ क्या है और अवैध या नाजायज़ क्या है. जज्को क्या पता कि सच क्या है? वह तो अपना निर्णय केवल सबूतोंके आधारपर ही देता है. उत्तरप्रदेशमें एक व्यक्तिने कुछ किसानोंकी ज़मीन उनकी मृत्युके झूठे प्रमाण-पत्र बनवा कर अपने नाम करा ली. कुछ समय बाद उन किसानोंको पता चला तो वे अदालत गये और जज्को कहा कि वे तो ज़िंदा हैं. पर जज्ने कहा “आपकी मृत्युके सारे प्रमाणपत्र मेरे सामने प्रस्तुत किये गये हैं, मैं कैसे मान लूं कि आप ज़िंदा हैं. आप अपने ज़िंदा होनेका प्रमाणपत्र दिखाओ, तो मैं मानूं!” अब देखो, इसमें जज् गलत नहीं है, उसने तो निर्णय सबूतोंके आधारपर दे दिया. पर बेचारे किसान अपने ज़िंदा होनेका प्रमाणपत्र कहाँसे लाये क्योंकि मरनेका प्रमाणपत्र तो होता है पर ज़िंदा होनेका तो कहीं भी बनता नहीं. सच क्या है और जूठ क्या है वह बुद्धिका विषय नहीं है, वह तो इन्द्रियका विषय है. बुद्धि वॅलिड् (प्रामाणिक)या इन्वॅलिड् (अप्रामाणिक) देखती है. आप भी तो किसी भी बातको सच तभी मानते हो जिसका आपको आपके

आँख नाक कान सबूत दे रहे हैं. यदि इन्द्रिय ही बुद्धिको सबूत न दें तो उसे कैसे मालूम होगा कि वॅलिड् क्या है, उसके पास और कोई तो उपाय है ही नहीं. सच और झूठ जाननेकी योग्यता भी उसमें आ जाती है.

महाप्रभुजी इसमें एक आर्ग्युमॅन्ट् दे रहे हैं कि **यस्मात् केवलं चक्षुषा ज्ञाने तारतम्यं न स्यात्** इतना कठिन ज्ञान यदि केवल चक्षुसे ही होता हो, यह तो संभव नहीं है क्योंकि चक्षु तो केवल देखनेकी क्रिया ही कर रहा है. अर्थघटन चक्षु नहीं कर सकती है, अर्थघटनका सामर्थ्य किसी भी इन्द्रियमें नहीं है. ज्ञानमें interaction का सामर्थ्य तो बुद्धिद्वारा हो रहा है. सर्वसाधारणतया बुद्धि विषयके साथ संवाद सीधे नहीं कर सकती, उसे वह करनेके लिए इन्द्रियोंकी आवश्यकता है.

स्वतःस्फुरणं योगजधर्मादिभिरपि भवति एक बात समझो कि स्वतःस्फुरण योगज धर्मादिसे भी संभव है. योगसे मुनि इन्टॅरॅक्टिव् मोड्में गये बिना भी देख सकते थे. अतः यहाँ स्वतःस्फुरणको बुद्धिके इन्टर्प्रिटेशन्के रूपमें नहीं ले रहे हैं पर **अतो द्रव्यस्फुरणएव विज्ञानं बुद्धेः लक्षणम्.** जब बाहरी पदार्थका स्फुरण(sensation of external object) आपको होगा और उसका इन्टर्प्रिटेशन् हो तो वह बुद्धिका आध्यात्मिक कार्यलक्षण है॥२९॥

* * *

संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च।
स्वाप इत्युच्यते बुद्धेः लक्षणं वृत्तितः पृथक्॥३०॥

(अबौद्धिक पूर्वाग्रह)

एक पॉप्युलर् पूर्वाग्रह जो प्रायः सभी आधुनिक साइंस्‌की दृष्टिवालोंमें, सभी दार्शनिक दृष्टिवालोंमें अथवा अलग-अलग धर्मोंको माननेवालोंमें दिखलायी देता है कि Man is a rational animal (मनुष्य एक बौद्धिक/विचारशील प्राणी है). इसलिए वे मानते हैं कि सभी प्राणियोंसे मनुष्यका स्टेटस् थोड़ा अधिक है. नई रिसर्च्‌के बाद अब यह धारणा धीरे-धीरे टूट रही है. ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि मनुष्यने अपने बौद्धिक होनेके घमंडमें दूसरे प्राणियोंका रॅशनल् बिहेवियर् है कि नहीं इस बारेमें न तो कोई ध्यान दिया, न ही उसपर कोई प्रयोग किये और न ही उसका कोई साफ-सुथरा कॉन्सेप्ट् प्रस्तुत किया. साइंस्‌ने आज इस बारेमें बहोत तरक्की कर ली है और वे इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि मनुष्येतर प्राणियोंमें ही नहीं पर पौधों और वृक्षों में भी रॅशनालिटी(बौद्धिकता/तार्किकता/विचारशीलता) है और उनमें भी रीज़निंग् पॉवर् है.

सॅमेटिक् धर्मोंकी एक यह गलत धारणा थी कि Rationality is a sign of soul. (बुद्धिमत्ता/विचारशीलता आत्मा होनेका लक्षण है) अभी हाल ही में मैंने एक पुस्तक पढ़ी थी 'The soul of an octopus'. एक व्यक्तिने ऑक्टोपस्‌पर काफी रिसर्च् की और उसके व्यवहारमें उसे रॅशनालिटी दिखलायी दी. इसका निर्णय उसने यह किया कि "क्योंकि उसमें रॅशनालिटी है, इस कारण उसमें भी आत्मा है." अपना एक सौभाग्य रहा है कि अपने शास्त्रोंने कभी भी आत्माको रॅशनालिटीके साथ जोड़ा नहीं है. पाश्चात्य संस्कृतिके हिसाबसे जो-जो मनुष्य होनेके मापदंड थे, वे तो हमें सभी प्राणियोंमें देखनेको मिलते हैं. उदाहरणके लिए 'सामाजिकता'. मनुष्येतर प्राणियोंमें हमें अधिक

सामाजिकता देखनेको मिलती है. इतना ही नहीं, पेड़ोंमें भी यह गुण दिखलायी देता है. इस तरह यह परिभाषा कि Man is a social animal मनुष्यजातिको पारिभाषित करनेके लिए सही नहीं है. इसके बाद लोगोंने कहा कि Man is a rational animal. मनुष्यमें rationality (बुद्धिमत्ता) है, इस कारण उसमें आत्मा है. शेष प्राणियोंमें बुद्धिमत्ता नहीं है, इस कारण उनमें आत्मा नहीं है और वे ऑटोमेटा हैं. यदि इसी मापदंडको ले तो मनुष्य भी ऑटोमेटा है. और इस रॅशनालिटीके कारण ही यदि मनुष्यमें आत्मा मान रहे हैं तो हमें आजकी साइंटिफिक्-रिसर्च्को देखते हुए पेड़ोंमें कीड़ोंमें और यहाँ-तक कि कोरोना-वाइरस्में भी आत्मा माननी पड़ेगी!

(भागवतीय बौद्धिकता)

इस पूर्वाग्रहसे जब-तक हम ऊपर नहीं उठेंगे तब-तक हमें पता ही नहीं चलेगा कि ‘संशय’ अर्थात् doubt, ‘विपर्यास’ अर्थात् illusion ‘निश्चय’ अर्थात् determination ‘स्मृति’ अर्थात् memory, ‘स्वाप’ अर्थात् dream. ये सारे फंक्शन्स् आत्माके नहीं हैं बुद्धिके हैं और बुद्धि अपने यहाँ कॉन्शियस् (चेतन) प्रिंसिपल् नहीं है, अन्कॉन्शियस् (अचेतन) प्रिंसिपल् है. अब प्रश्न यह उठता है कि ‘कॉन्शियसनेस्’ अर्थात् क्या? कॉन्शियस्नेस्को रॅशनल्-अन्डर्स्टेन्डिन्ग् (बौद्धिक समझ) अथवा मिस्अन्डर्स्टेन्डिन्ग् (बौद्धिक नासमझ), संशय, स्मृति और स्वप्न से कैसे अलग समझें? यह एक फिलॉसॉफिकल् समस्या है.

इस बातपर जानेसे पहले, पाँच-दस वर्ष पहले ज्याँ मारिए लेन्ह्ने सॅल्फ्-रीप्रोडक्टिव् सेल् बनाया और इस आविष्कारके लिए उन्हें नोबेल् पुरस्कारसे सम्मानित किये गये, उनका एक आर्टिकल् टाइम्स्-ऑफ्-इन्डियामें छपा था. वह मैं तुम्हें पढ़ कर सुनाता हुं. उसमें वे कह रहे हैं “Imagine bricks that can get together to form a house. If the information is in bricks to spontaneously assemble, bricks cannot do it but molecules can.” “एक ऐसी

कल्पना करो कि ईंट अपने आप जुड़ कर मकान बन जाये. पर ऐसा होता इसलिए नहीं है क्योंकि ईंटमें अपने आप मकान बननेका कोई प्रोग्राम् नहीं है. पर व्यूहाणु ऐसा कर सकते हैं.'' व्यूहाणुको जोड़नेके लिए न तो हमें कोई गोंद लगाना पड़ता है और न ही कोई टांका लगाना पड़ता है, अपने आप जुड़ कर एक शरीरकी संरचना कर सकते हैं. वे आगे कहते हैं कि "Life for me is a much simpler problem then consciousness. The distance between living matter to non-living matter is much shorter than the living matter to thinking matter." (द्र.वाल्लभवेदान्त.पृ.२-२८) अर्थात् एक लिविंग्-मॉलेक्यूल् बनाना उसके लिए आसानसी बात है और यह लॅबोरेटरीमें भी निर्मित किया जा सकता है. जैसे ईंट जड़ है, नॉन्-लिविंग् है, उससे लिविंग् सेल्(जीवित कोश)से दूरी बहुत अधिक नहीं है. पर इस लिविंग् सेल्से थिंकिंग् सेल्की (विचारशील कोश) दूरी बहुत अधिक है और उस अंतरालको दूर करनेमें अभी विज्ञानको बहुत समय लगेगा. ऐसा सेल् बनाना कि जो रॅशनल् हो वह अत्यधिक कठिन है. जब मैं यह कह रहा हुं कि 'रॅशनल्' उसका अर्थ है कि अपने संशयोंको स्वयं दूर करनेमें सक्षम हो.

संशय होना भी एक प्रकारकी रॅशनालिटी है. किसी मूर्ख व्यक्तिको कभी कोई संशय होता ही नहीं है, जो भी सुनता है वह सभी कुछ उसके गले उतर जाता है. इस तरह संशय होना भी एक प्रकारकी रॅशनालिटी है. निर्णय लेना भी रॅशनालिटी है क्योंकि हर संशयके साथ दो विकल्प आते हैं. उन दोनोंमेंसे सच्चा विकल्प कौनसा है यह निर्णय लेना भी रॅशनल् होनेका एक मापदंड है.

और सही निर्णय, जिसके कारण लिया गया, वह स्मृति भी एक रॅशनालिटीका मापदंड है. पर जो निर्णय लिया गया है वह

याद ही न रहे कि किसी स्थितिमें हमने क्या निर्णय लिया था, तो वह रॅशनालिटी नहीं कहलायेगी क्योंकि वह तो एक्सिडेन्टल् होगा. रॅशनल् निर्णय हम लंबे समय तक इम्प्लिमॅन्ट् कर सकते हैं. इस प्रकार स्मृति भी रॅशनालिटीकी एक वॅरायटी है.

हम समझते हैं कि स्वप्न तो अपने आप ही आता है, इसपर हमारा कंट्रोल् नहीं है. पर स्वप्न उसीको आता है जो रॅशनल् है. फ्रॉइड्की सायकॉलॉजीके हिसाबसे, जिस समस्याका समाधान हम जाग्रत अवस्थामें नहीं कर सकते हैं, उसका अपने ब्रेन्में एक प्रेशर् पड़ता है और निद्रावस्थामें वह प्रेशर् ही स्वप्न बनता है. किसी समस्याका अनुभव करना भी एक प्रकारकी रॅशनालिटी है. यह नहीं है तो कोई समस्या हमें समस्या लगेगी ही नहीं. मेरे एक परिचित मित्रको बहुत साल पहले अर्नेस्ट्-हेमिंग्वेके उपन्यासपर आधारित एक फिल्म् थी ‘The Old Man And The Sea’ वह दिखानेके लिए मैं उन्हें ले गया. वे किसी फिल्मडायेरक्टर्के वहाँ तीसरे या चौथे दर्जेके असिस्टेंट् डायरॅक्टर् थे. मैंने उनसे कहा कि ‘‘आप फिल्म-लाइन्से हैं तो अच्छी फिल्म् देखो.’’ थोड़ी फिल्म आगे बढ़ी तो मैंने उनसे पूछा ‘‘आपको समझमें आ रहा है न?’’ बोले ‘‘हाँ-हाँ सब समझमें आ रहा है.’’ मुझे यह बात थोड़ी जची नहीं कि उन्हें इतनी ऊँचे दर्जेकी फिलॉसॉफिकल् कहानी कैसे समझमें आ रही है! इसलिए मैंने धीरेसे उनके कानमें कहा कि ‘‘यह कहानी ऐसे चल रही है.’’ वे बोले ‘‘अच्छा! क्या ऐसे हो रहा है!’’ अर्थात् उन्हें कुछ समझमें नहीं आ रहा था.

इस प्रकार समझमें न आना, यह एक बहुत बड़ी समझकी बात है. अक्सर हमें समझ ही नहीं आता है कि समस्या है क्या! किसी वस्तुको हम समस्याकी तरह समझते हैं, इसमें रॅशनालिटीकी बहुत बड़ी आवश्यकता है. और जिस समस्याका हम निराकरण नहीं

कर सकते हैं, उसका जो प्रेशर् दिमागपर होता है, वही स्वप्नका कारण होता है. हमें बहुत सारे इर्रॅशनल् (अतार्किक) स्वप्न आते हैं. साइकॉलॉजीके हिसाबसे एक बहुत ही प्रचलित उदाहरण है. जो मनुष्य बहुत ही महत्त्वाकांक्षी होता है, उसे अक्सर ऐसे सपने आते हैं कि जैसे वह उड़ रहा है. महत्त्वाकांक्षी होनेके लिए भी रॅशनालिटीकी बहुत आवश्यकता है. इस तरह उड़नेका स्वप्न उसे ही आता है कि जिसकी बहुत सारी महत्त्वाकांक्षा पूरी न हुई हो तो उसका दिमाग इस तरह compensate करता है कि चलो, तुम्हारी अपनी रियल्-लाइफ्में उड़नेकी कामना पूरी नहीं हुई पर तुम स्वप्नमें तो उड़ ही सकते हो. इस तरह तुम्हें उड़नेके सपने आने शुरू हो जाते हैं. स्वप्न आनेके लिए भी रॅशनालिटीकी बहुत आवश्यकता है. हालांकि स्वप्न बिल्कुल ही इर्रॅशनल् होते है पर अपना ब्रेन् यह सहन नहीं कर सकता कि किसी भी समस्याको उसकी समस्याके रूपमें रहने दिया जाये. दिमाग उसका किसी भी प्रकारसे समाधान खोजनेका प्रयास करता है. यदि तुम उस समस्याका समाधान नहीं निकाल पा रहे हो तो अपना दिमाग अपने साथ इस प्रकारके खिलवाड़ करता है.

मैं जब छोटा था तब बड़े-मंदिरमें रहता था, वहाँ मेरे सोनेकी जो जगह थी वहाँ युरिनल् नहीं था. मंदिरका परिसर इतना बड़ा था कि रातको यदि आपको जाना है तो बॉम्बे-२से बॉम्बे-४में जाना पड़ता था. वहाँ रास्तेमें एक करीब २००वर्ष पुराना लकड़ीका घर पड़ता था, रातको उसमेंसे गुजरनेके कारण ‘खड..खड..’ आवाज आती थी. उसके कारण वहाँ भूतका भास होता था. भूत समझ कर हम दौड़ते थे. उससे ज्यादा आवाज आती थी. वहाँ कोई रहता नहीं था. छोटा होनेके कारण मुझे रातको वहाँ जानेमें भय लगता था. इस भयके कारण मैंने अपनी बुद्धिका उपयोग करके यह सोचा कि “क्यों मुझे इतनी दूर लघुशंकाके लिए जाना चाहिये,

यहाँ ऊपर खिड़कीमेंसे ही क्यों नहीं कर देनी चाहिये!'' मुझे इतना पता नहीं था कि नीचे भी कोई सोया हुआ हो सकता है. जो भी था उसने मुझे इतनी अधिक गालियाँ दीं कि कह नहीं सकता. सचमें रातको लघुशंका जाना एक बड़ा त्रासका विषय था. आज भी रातको मुझे लघुशंका जाना होता है तो मैं स्वप्नमें बड़े-मंदिर पहुँच जाता हुं और युरिनल् ढूंढता रहता हुं. इस तरह किसी भी समस्याको अपना दिमाग किस प्रकार टॅकल् करता है यद्यपि इर्र्रॅशनल् तरीकासे टॅकल् करता है पर समझने लायक है. मेरे कहनेका अर्थ यह है कि ब्रेन्का समस्याको सुलझानेका अपना ही तरीका होता है. हम कॉन्शियस्ली (जाग्रतावस्था) उसी समस्याका किसी और प्रकारसे समाधान खोजते हैं और हमारा दिमाग निद्रावस्थामें किसी और ही प्रकारसे उसका समाधान खोजता है, उसके कई प्रकारके सिम्बॉल् खड़े करके.

किसी वैज्ञानिकने यह परीक्षण किया है ऐसा मेरे नोटिस्में अभी तक नहीं आया पर मनोवैज्ञानिकोंने वर्षों पहले इस बातको कहा है कि घोड़ेको तो केवल एक ही स्वप्न आता होगा कि वह अपने सवारको चाबुक मार रहा है और सवार दौड़ा रहा है क्योंकि घोड़ेको भी तो यह समस्या होगी ही कि वह दौड़ना नहीं चाहता और उसे चाबुक मार-मार कर दौड़ाया जा रहा है. इस समस्याका समाधान घोड़ा जाग्रत अवस्थामें तो कर नहीं सकता इसलिए वह स्वप्नमें इसका समाधान इसी प्रकार करता होगा. आज तो ब्रेन्की वेव्को मापनेके ॲपरेटस् (उपकरण) आ गये हैं. पता नहीं किसीने घोड़ेकी ब्रेन्-मॅपिंग् अभी-तक की है कि नहीं पर मनोवैज्ञानिक ऐसा कहते हैं कि यदि घोड़ेको स्वप्न आते होंगे तो कुछ ऐसे प्रकारके आते होंगे.

(जीवन और चेतना का भेद)

इसमें यह समझनेकी है कि अपने केस्में लाइफ् कॉन्शियस्

और थिन्किंग् प्रोसेस्, यह तीनों इकठ्ठे हो गये हैं इस कारण हमें तीनों एक ही लगते हैं. ऐसा होना सहज ही है क्योंकि जब तीन वस्तुएं एक हो जाती हैं तो हमें एक ही दिखलायी देती हैं. तीन चोटियोंको गूंथें तो गूंथनेके बाद वे एक ही लगती हैं पर जब हम उसे खोलते हैं तो हमें उस एक ही चोटीमें तीन लट दिखायी देती हैं. इस प्रकार कॉन्शियस् एक अलग लट है, थिन्किंग् प्रोसेस् एक अलग लट है और जीवन एक अलग लट है. इसका मटीरियल्-फन्कशन् अर्थात् एक्शन्-रिएक्शन् वह एक चौथी ही लट है. यह बात विज्ञानको और मॉडर्न् साइन्टिफिक् फिलॉसॉफीको अब समझमें आयी है पर अपनी भागवतमें यह बात उस ज़मानेमें कही है. हमने कभी भी ऐसा नहीं माना है, खासतौरपर भारतकी भूमिकी मिट्टीका यह चमत्कार है कि रॅशनल् होनेके कारण मनुष्यमें आत्मा है, ऐसी भ्रांत धारणा न तो भारतके नास्तिक धर्मोंको थी, न आस्तिक धर्मोंको, न लॉजिक्(तर्क)को, न सांख्यको और न ही वेदान्तको. किसी भी शाखाको नहीं थी और न ही किसी धर्मको ही थी.

(बुद्धिवृत्ति और कम्प्यूटर् के सॉफ्ट्वेर्की समानता)

ये सारे बुद्धिके फन्कशन्स् हममें एक हो गये हैं, इस कारण हमें चेतना जीवन और वैचारिकता एक दिखलायी देते हैं पर इनका कोई आपसी सम्बन्ध नहीं है, तीनों अलग किये जा सकते हैं. इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आजकी तारीखमें हम कम्प्यूटर् ले सकते हैं. कम्प्यूटर्में हमारे ब्रेन्के करीब सभी फन्क्शन्स् मौजूद हैं पर कौन ऐसा बेवकूफ होगा जो यह कहेगा कि कम्प्यूटर्में आत्मा होती है. कम्प्यूटर्को संशय होता है कि नहीं? होता ही है. जब हम स्पेल्-चॅक् प्रोग्राम्में जाते हैं तो कम्प्यूटर् कई ऑप्शन्स् दे कर पूछता है कि आपको इनमेंसे कौनसा विकल्प चाहिये. इस प्रकार संशय तो कम्प्यूटर्को होता ही है. यदि कम्प्यूटर्में पहलेसे ही फीड् कर दें कि हम यह लिखें तो इसको इस प्रकार ही समझना, तो उसे निश्चय भी

हो जाता है. इस प्रकार कम्प्यूटर्में निश्चय करनेकी क्षमता भी है. स्मृति तो कम्प्यूटर्के प्राण ही है.

इसी तरह भ्रम भी कम्प्यूटर्का प्राण है. 'भ्रम' अर्थात् माल्फन्क्शन्, संशय स्मृति और निश्चय का माल्फन्क्शन्स्. यह तीन हममें होते हैं तो कम्प्यूटर्में भी होते ही हैं, वह हँग् हो जाता है. पर कम्प्यूटर् स्वप्न देख सकता है कि नहीं, यह एक समस्या है. इन छोटे कम्प्यूटरोंको छोड़ दे और परम्-कम्प्यूटर्की बात करें, जब रातमें प्रोग्राम् फीड् कर दे तो वह सुबह तक उसका जवाब खोज कर दे देता है. जब हम उसका उपयोग नहीं भी कर रहे हैं, तब भी वह स्वप्नकी तरह काम तो कर ही रहा होता है. इस तरह हम यह नहीं कह सकते कि कम्प्यूटर् स्वप्न नहीं देख सकता.

इन बातोंसे हम यह निर्णय कर सकते हैं कि आत्माके साथ इन सभी फन्क्शन्स्का कोई रोल् नहीं है. ये सारे फन्क्शन्स् मटीरियल् फन्क्शन्स् हैं. मेटर् एक प्रकारसे अपने आपको आयोजित करता है. अभी अखबारमें आया था कि पौधेको आप काटो तो वह हवामें एक प्रकारका कॅमीकल् सिक्रीशन् करता है, जो उसके बाजूके पौधों तक यह सूचना पहुँचाता है कि उसके साथका पौधा किसी तकलीफमें है. इस तरह पौधा भी सूचनाओंका आदान-प्रदान कर सकता है. मेरे कहनेका मुद्दा यह है कि जिनमें सॅमेटिक् धर्मवाले आत्मा नहीं मानते थे, वह आत्मा तो पौधोंमें भी है. कम्प्यूटर् वे सारी क्रियाएं डिजिटल् फन्क्शन्के कारण कर रहा है पर आजकी तारीखमें कम्प्यूटर् हमारे बायोलॉजिकल्-सेल्से इन्टॅरॅक्टिव् मोड्में बहुत आसानीसे आ सकता है. इतना ही नहीं, वह बायोलॉजिकल्-सेल्से सूचनाओंका आदान-प्रदान कर सकता है और उनमें वे सूचनाएं डाल भी सकता है. ऐसे रोबोट् भी आ गये हैं कि यदि आपका मन नहीं लग रहा है तो वह आपके साथ बात करेंगे, प्रेमालाप करेंगे, खेल खेलेंगे, घरके सारे काम करेंगे. यह सारे काम रॅशनालिटीके बिना कैसे हो सकेंगे?

इस तरह हम समझ सकते हैं कि इसमें आत्मा माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है.

अपने शास्त्रोंमें आत्मा होनेके ये कोई कारण थे ही नहीं. यह कारण नहीं थे फिर भी हमारेमें रीज़निंग् पावर्(तार्किक शक्ति) थी, पर इसके कारण हमने निष्कर्ष निकाल लिया कि हममें रीज़निंग्-पावर् है, इस कारण हममें आत्मा है. और क्योंकि जानवरोंमें रीज़निंग्-पावर् नहीं है इसलिए उनमें आत्मा नहीं है, इस कारण हम उनको खा सकते हैं, वह भी उनपर बिना किसी किये गये प्रयोगके, हम यह मान बैठे. हम यह समझ बैठे कि उन्हें दर्द नहीं होता, कौन कहता है! मच्छरको पौधोंको भी दर्द होता है, सभीको दर्द होता है, सभीकी भावनाएं भी होती हैं. ये सारी भावनाएं जीवित प्राणियोंके साथ ही होती हैं ऐसा नहीं है. अभी-तक हमने ऐसी ॲप्लिकेशन् बनायी नहीं है पर लिफ्ट्में ऐसी ॲप्लिकेशन् बनायी जा सकती है कि दरवाज़ा बन्द न करने पर वह कहे कि "अरे मूर्ख! समझता क्यों नहीं है, कितनी बार कहूं कि दरवाज़ा बंद कर." अभी तो वह केवल अनुरोध करती है कि "प्लीज़् क्लोज़् द् डोर्." पर वह यह भी तो कह सकती है कि "Oh you fool! you have forgotten to close the door." अब वह गाली दे रही है तो यह इमोशन् तो है कि नहीं? गाली अपनी भावनाओंको ठेस लगनेसे ही तो निकलती है. यह भी तो एक तरहकी प्रोग्रामिंग् है. इस तरह तो मॅटर् व्यवहार करता है. इस प्रकारके जो पूर्वाग्रह हैं उन्हें अपने दिमागसे पहले निकालना होगा यदि हमें इस श्लोकका अर्थ समझना है तो!

(प्राणकी चेतनरूपता और चेतनाकी प्राणरूपता)

भागवतकी यह कारिका कह रही है कि ये सारे फन्क्शन्स् आत्माके न हो कर बुद्धिके हैं. कितनी significantबात कही है, यह हम आज समझ सकते हैं. पुराने ज़मानेमें हमारे पास तर्क करनेके लिए

उदाहरण नहीं थे कि जिनके द्वारा हम इस बातको समझा पाते. इसीलिए सब यह कहने लगे कि “इसमें बुद्धि है इसलिए इसमें आत्मा हानेके लक्षण हैं.” और फिर भारतीय भी यह बात उनकी देखा-देखी मानने लगे. पर अपने पुराने किसी भी धर्मको देख लें, चाहे वह शांकर वैष्णव शैव हो, किसीने भी यह फन्क्शन् आत्माके न मान कर बुद्धिके माने हैं. इस तरह हम समझ सकते हैं कि अपने यहाँ और उनके यहाँ के आत्माके कॉन्सेप्ट्में बहुत भेद है.

हमको यह बात समझ लेनी चहिये कि अपनी फिलॉसॉफीके हिसाबसे अपनी चेतनाको जब प्राणाध्यास होता है तो प्राणोंमें चेतना आ जाती है और चेतनामें जीवितपना आ जाता है. जब भी हम बाथ्रूम्में दरवाज़ा बंद करके नहा रहे होते हैं तो दरवाज़ेकी दरारमेंसे हवा आती रहती है. वह तब ही आती है जब बाथ्रूम्में एक्ज़ॉस्ट् हो, हवाके जानेका जब रास्ता हो तब. यदि हवाके जानेका रास्ता नहीं है तो हवा अंदर आयेगी ही नहीं. जब भी किसी भौतिक द्रव्यमेंसे हवा आ-जा रही होती है वहाँसे जीवन प्रारंभ होता है. पर केवल हवाका आना-जाना एक अलग फन्क्शन् है और चेतना एक अलग है. बाथ्रूममें हवा आ-जा रही है तो बाथ्रूम्में चेतना होगी, क्या ऐसा कहा जा सकता है! अपनेमें साँसका लेना और छोड़ना बिल्कुल बाथ्रूम्में हवाके आने-जाने जैसा है पर बाथ्रूम्को इसका अहसास क्यों नहीं होता? क्योंकि क्रिया तो है पर चेतना नहीं है. वैसे देखें तो इस बातके लिए हम बाथ्रूम्में भी सॅन्सर् लगा सकते हैं कि ‘अब हवाका दाब बढ़ रहा है अथवा कम हो रहा है तो उसे बॅलेंस् करो’. उसके आदेशके हिसाबसे एक्ज़ॉस्ट् ऑटोमॅटिकली स्पीड् कम अथवा अधिक नियंत्रित कर देगा, जैसे हवाई-जहाज़में होता है. सॅन्सर् लगानेसे वह जीवित प्राणीकी तरह व्यवहार करेगा कि नहीं! अब देखो कि इस प्रसंगमें चेतना और क्रिया दोनों आ गई. इसी तरह प्राण सचेत हो जाता है और

चेतना प्राणी हो जाती है. अब वह चाहे मनुष्य कीड़ा पौधे पक्षी अथवा जलचर हो.

(अन्तःकरण और कम्प्यूटर् के हार्डवेर्‌की समानता)

जिन लोगोंको कम्प्यूटर्‌का ज्ञान है वे इस बातको भली प्रकार समझ जायेंगे कि कम्प्यूटर्‌के हार्डवेअर्‌में एक कॉम्प्लिमॅन्ट्री मॅटल्-ऑक्साइड्-सॅमिकन्डक्टर् होता है जिसे ‘CMOS’ कहा जाता है. उस CMOSका फन्क्शन् यह है कि जब भी कम्प्यूटर् स्विच्-ऑफ् होता है, उस समय भी उसमें यह अवेयरनेस् जगाये रखता है कि वह कम्प्यूटर् है. जैसे हम जब भी सोये हुए होते हैं तब भी हममें यह अवेयरनेस् रहती है कि “मैं अमुक अमुक हुं.” इसी तरह कम्प्यूटर्‌के स्विच्-ऑफ् होनेपर भी उसे यह भान रहता है कि उसमें कौन-कौनसे प्रोग्राम् हैं. जब भी हम कम्प्यूटर्‌को स्विच्-ऑन् करते हैं तो कम्प्यूटर् सबसे पहले CMOSको रिफर् करता है उसके बाद RAMका काम आता है. ‘RAM’ अर्थात् random access memory. यह चंचल है बिल्कुल मनकी तरह, कभी एक ठिकाने टिक कर नहीं रहता. जितने भी योगी हैं वे मनके पीछे धोबीकी तरह डंडा ले कर पड़े रहते हैं कि मनको काबूमें करो. पर यदि मन काबूमें आ जाये तो आप योग भी नहीं कर पाओगे. योग भी आप इसलिए कर पा रहे हो क्योंकि आपका मन, रेन्डम् मेमरीकी तरह क्रिया कर रहा है. इस तरह कम्प्यूटर्‌का भी मन तो है ही. पर मन होनेके कारण यदि हम कहते हैं कि आत्मा है, तो कम्प्यूटर्‌में आत्मा कहाँ है? इसके बाद कम्प्यूटर्‌में ROM आता है जिसका अर्थ है read only memory. यह फन्क्शन् हमारे अहंकारकी तरह है. इस प्रोग्रामिंग्‌में आप फेर-बदल नहीं कर सकते. जन्मसे मृत्यु तक हमारा अहंकार read only memory mode में ही रहता है. अपने हाथ-पैर कट जायें, बाल सिरसे उड़ जायें चेहरा बिगड़ जाये पर अपना अहंकार कायम रहता है. उसमें कोई फेर-बदल नहीं

होता. इसके बाद कम्प्यूटर्में आता है BIOS (basic input-output system) जो कि इनपुट् और आउटपुट् का काम करता है. यह काम हमारे शरीरमें बुद्धिका है. जब हम कह रहे हैं कि बुद्धिके संशय विपर्यास निश्चय स्मृति स्वाप इतने फन्क्शन्स् हैं तो ये सारे इनपुट् और आउटपुट् के ही तो फन्क्शन्स् हैं. अब इनमें कहाँ आत्मा है? इस तरह मन बुद्धि चित्त और अहंकार के होनेके बाद भी जब कम्प्यूटर्में आत्मा होना हम नहीं मान रहे हैं तो इन फन्क्शन्स्के होनेके कारण हमारेमें आत्मा है यह बात हमें भूलनी होगी. मैं फिरसे इस बातको कहता हुं कि जीवित होना एक अलग वस्तु है, चेतन होना एक दूसरी वस्तु है और विचार करना यह तो BIOSका फन्क्शन् है, जिससे इन्पुट् और आउट्पुट् गवर्न् हो रहे हैं.

(चेतनात्मक प्राणीके उपकरण)

अपने पास मन अहंकार बुद्धि इन्द्रिय आदिके उपकरण है, इनके कारण कॉन्शियसनेस् अर्थात् इन्पुट् और आउट्पुट् की अवेयरनेस् आती है. जो बाह्य इन्द्रियके कारण चेतनामें इन्पुट् आता है और मन बुद्धि अहंकार के कारण आउट्पुट् आता है. अब इन्पुट् और आउट्पुट् आनेसे अपनी बुद्धि पूरे वर्किंग् ऑर्डर्में आ जाती है. इस तरह हम देख सकते हैं कि ये सारे सिस्टम्में केवल बुद्धिका रोल् नहीं है क्योंकि बिना चेतना बुद्धिका रोल् तो हम कम्प्यूटर्में भी देख सकते हैं. पर वहाँ चेतनाका विकल्प इलेक्ट्रिसिटी तो है ही. हममें इलेक्ट्रिसिटीका विकल्प चेतना है. इलेक्ट्रिसिटीमें अपना कोई इन्पुट् और आउट्पुट् नहीं है और कम्प्यूटर्में जो इन्पुट् और आउट्पुट् की सिस्टम् है उसमें इलेक्ट्रिसिटी नहीं है. पर जब दोनोंको मिला दिया जाता है तो कम्प्यूटर् पूरी तरह काम करना शुरू कर देता है. इस तरह हममें ये चेतना और बुद्ध्यादि उपकरण जब मिल जाते हैं तो शरीर काम करना शुरू कर देता है.

(अन्त:करणका कार्य)

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि इस प्रकार काम चल जाता हो तो इसमें अंत:करण क्या है? अंत:करणको अपने यहाँ 'चतुर्ग्रंथी' कहा गया है. चतुर्ग्रंथीका अर्थ यह नहीं है कि चार आइटम् हैं, आइटम् तो एक ही है. पर यह चार प्रकारसे व्यवहार करता है. जैसे इन्द्रिय पाँच प्रकारसे काम करती हैं, बाहरके प्रकाशकी ध्वनिकी गंधकी स्पर्शकी और स्वादकी अवेयरनेस्, ये सारी चीजे अपने अंदर एक इन्पुट्की तरह जाती हैं. इन सारी सूचनाओंको प्रोसेस् करनेवाली जो आन्तरिक सिस्टम् है उसे अपने यहाँ 'अंत:करण' कहा गया है.

अंत:करणके चार फन्क्शन्स् हैं, मन बुद्धि अहंकार और चित्त. इन चारोंका रोल् हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि जब भी किसी इन्पुट्का आउट्पुट् देना है तो वहाँ मनका प्रमुख रोल् है. जैसे कि यदि कान खुला भी है पर मन उस तरफ नहीं है तो वह आवाज़ सुनाई नहीं देगी, मन उस तरफ जायेगा तो ही हमें आवाज़ सुनाई देगी. आंखसे तो सब वस्तु दिख ही रही हैं पर यदि मन आंखके साथ नहीं है तो सामनेकी वस्तु भी हमें दिखलायी नहीं देगी. आप पंखे अथवा ए.सी. में बैठे हैं पर जब-तक आपका ध्यान कोई उस ओर आकर्षित न करे तब-तक आपको उसकी आवाज़ सुनाई नहीं देगी. आवाज़ तो थी, कान सुन भी रहा था पर मन उस ओर न होनेके कारण वह आवाज़ हमें सुनाई नहीं देती. मनका रोल् एकदम चौकीदारकी तरह है, कोई भी सूचना यदि हमारे भीतर जानी है तो मनसे पूछ कर ही जा पाती है, उसको रिश्वत देनेके बाद ही कोई अंदर जा सकता है. मनकी अपनी कोई पसंद अथवा नापसंद उसकी रिश्वत है. मनको जो अच्छा लगता है, वह उसे मिले तो तुरंत उसे अंदर जाने देता है, चाहे वह सूचना हमें कोई नुकसान ही क्यों न पहुंचाती हो!

(बुद्धिकी कार्यप्रणाली)

आप श्लोकपर ध्यान दें **"चक्षुषा आलोच्य वस्तूनि विकल्प्य मनसा तथा 'अहं'मत्यापि अहंकाराद् बुद्ध्यैव हि अध्यवस्यति"** (लक्ष्मीतन्त्र १३।३४) सबसे पहले आंख नाक कान त्वचा अथवा जीभ पर अलग-अलग तरहकी वस्तुओंसे उत्तेजनाएं होती हैं. जैसे आंखकी प्रकाशसे, कानकी ध्वनिसे आदि. जब कोई भी विषय इन इन्द्रियोंके संपर्कमें आता है और यदि मन उसमें लगा है तो तुरंत मन उनके सारे संभव विकल्प ढूंढता है और उसमें उसे कोई समय नहीं लगता. उदाहरणके लिए हमारे सामने यदि कोई जानवर आया, वह गधा है कि घोड़ा है कि बकरी है कि ऊंट है ये सारे विकल्प मनमें है. उस आधारपर मन उन सबकी तुलना करता है और उसके बाद यह निश्चय करता है कि यह हमें पसंद है कि नहीं. इसके लिए संस्कृतमें एक शब्द है 'हानोपादान उपेक्षा'. हान=हेयको छोड़ना/त्याग करना, उपादान=उपादेयको ग्रहण करना, उपेक्षा=उपेक्षणीय पदार्थोंकी उपेक्षा(निग्लेक्ट्) करना. इसके बाद यदि उसे अच्छा लगता है कि नहीं लगता कि छोड़ने लायक लगता है, उसके आधारपर मन विकल्प ढूंढता है. यह सारी सूचना मन सॅल्फ्-अवेयरनेस् (अहंकार) तक पहुँचा देता है, अर्थात् सारी सूचना RAM से ROM में चली जाती है. अहंकार इन सारी सूचनाओंको बुद्धिको भेज देता है जिसे कम्प्यूटर्‌की भाषामें 'BIOS' कहते हैं. बुद्धि इसकी एनेलॅसिस् पांच प्रकारसे करती है : संशय विपर्यास निश्चय स्मृति और स्वाप. इनके आधारपर ही बुद्धि इसका निर्णय करती है कि जो सूचना आयी है उसके साथ किस प्रकारकी प्रतिक्रिया देनी है. इसके बाद बुद्धि ॲनलॅसिस् करके वापस अहंकारके पास भेज देती है. अहंकार उसे सहमति-असहमति दे कर वापस मनके पास भेज देता है और मन कर्मेन्द्रियोंके पास भेजता है. यदि कोई भयकी बात है तो पैरोंको सूचना भाग जानेकी आयेगी, कोई कमज़ोर होगा तो हाथको मारनेकी सूचना जायेगी, जैसे मच्छर देखते ही हमारा हाथ उसे मारनेके लिए

उठ जाता है. यह सारी सूचना बुद्धिसे अहंकार, अहंकारसे मन और मनसे इन्द्रिय तक आयी.

वस्तु ऐसी है कि आंखको अच्छी लगी, मन अहंकार और बुद्धि को भी अच्छी लगी पर वह मिले नहीं तो तुरंत बुद्धि स्वप्नके मोड्में उसका हल तलाशने लगती है. इसीलिए न मिलनेवाली वस्तु, अच्छी लगती हो ऐसी वस्तुओंके सपने देखते हैं. इसीलिए एकादशीके दिन सोनेकी मनाई है, उस दिन यदि तुम सोओगे तो तुम्हें खानेके ही सपने आयेंगे. फलाहार किया हो तो आनंदसे सो सकते हो क्योंकि फलाहार तो अपने यहाँ और दिनोंसे भी भारी होता है. पर सचमें ही यदि आपने एकादशीका व्रत रखा है तो सोना नहीं चाहिये क्योंकि सोनेसे एकादशीका व्रत भंग हो जाता है. इसका कारण शास्त्रमें यह बताया है कि आप एकादशीके दिन यदि सोते हो तो मन तुरत सपनेमें खो जाता है और आपको खानेके ही सपने आने लगते हैं. बुद्धि स्वप्नमें ही मनको संतोष प्रदान करने लगती है. इससे आप समझ सकते हैं कि यह सब बुद्धिके रॅशनल् फन्क्शन्स् हैं.

इस प्रक्रियामें अगर किसीको दखल करनेका अधिकार है तो वह चित्तको है. क्योंकि जितनी भी सूचनाएं हैं वे सारी चित्तमें स्टोर् रहती हैं. यदि चित्त किसी समय प्रबल हो जाये तो अहंकार मन बुद्धि इनमेंसे किसीको भी पकड़ सकता है. श्रील रूप गोस्वामीका एक श्लोक है जिसमें वे कहते हैं कि ‘‘एक दिन एक गोपी जल भरने आयी. वह पानी भर कर अपने घड़ेपर ध्यान लगा रही थी. जब पूछा गया कि घड़ेका ध्यान क्यों धर रही है, तो वह बोली कि ‘‘मेरा चित्त कृष्णमें इतना चोंट गया है कि मैं मनको समझा रही हुं कि उसके अलावा घड़ेका भी ध्यान रखना है. नहीं तो कई बार मैं खाली घड़ा ले कर ही घर जा चुकी हुं.’’ योगी-मुनिजन

तो विषयोंमेंसे हटा कर कृष्णमें चित्त लगानेका प्रयास करते हैं और गोपी कृष्णमेंसे चित्त हटानेका प्रयास कर रही है. वह इसलिए क्योंकि उसके चित्तमें कृष्ण उतर चुका है. “**प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सति बालासौ विषयेषु धित्सति मनः प्रत्याहरन्ती ततः यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयाद् निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति**” (विदग्धमाधवम् २।१७)

मेरे एक मित्र थे. उनके चित्तमें इन्दिरा गांधी चढ़ गयी थी. आप उनसे किसी भी विषयपर बात करो; चाहे संगीतकी हो, राजनीतिकी हो, चित्रकारीकी हो, वे कहींसे भी उसे इन्दिरा गांधीकी ओर मोड़ देते थे. एक बार इन्दिरा गांधीकी बात शुरू हो जाये तो एक घंटा उनकी चर्चा चलती रहती थी. किसी औरको बोलने ही नहीं देते थे. हुआ ऐसा था कि इन्दिरा गांधीद्वारा लादी गई इमर्जन्सीमें उन्हें जेलमें डाल दिये थे. इस कारण उनके चित्तमें ऐसी चढ़ गयी कि जब आते और मैं संगीत बजा रहा होता तो पूछे कि “बाबा, क्या बजा रहे हो?” मैंने कहा “मारवा राग.” उसपर कहते “ऐसा है बाबा कि मारवा रागमें तो इन्दिरा गांधीने सबको मरवा दिया.” अरे मारवा रागमें इन्दिरा गांधी कहाँसे आ गयी! एक दिन मुझसे बोले “बाबा, यह ‘श्रीकृष्णः शरणं मम’ क्यों जपते हैं?” मैंने कहा “‘श्री’ मानें लक्ष्मी अथवा उनके रूप जैसे सीता राधा रुक्मिणी आदि और कृष्ण उनके पति.” मेरी बात काट कर वे बोले “तो इन्दिरा नाम किसका?” अब देखो ‘श्रीकृष्णः शरणं मम’में भी इन्दिरा गांधीको ले आये. उनके चित्तमें इन्दिरा घुस गयी थी. ऐसे ही गोपियोंके चित्तमें कृष्ण चढ़ गये थे. कोई भी बात छेड़ो उसमें कहीं-न-कहींसे कृष्ण आ ही जाते थे.

आधिभौतिकं विभागनिरूपणेनैव लक्षयति संशयः इति. बुद्धिको जो इन्फॉर्मेशन् इन्द्रिय मन अहंकार से मिल रही हैं वह इन्फॉर्मेशन्को

अेसेस् कैसे कर रही है, उसे उसकी पांच वृत्तियोंके द्वारा बता रहे हैं. संशय(doubt) विपर्यास(illusion) निश्चय(determination) स्मृति(memory) और स्वप्न(dream). बुद्धि इस प्रकार पांच रूपसे कार्य करती है. यह बुद्धिके आधिभौतिक विभाग हैं क्योंकि जो द्रव्यस्फुरणका विज्ञान इसे हो रहा है वह अंदर हो रहा है. पर संशय भ्रम निश्चय स्मृति और स्वप्न, ये क्रियाएं बाहरके लिए हो रही हैं.

(संशय)

यह जो पाँच वृत्ति हैं उनमें पहला है **संशय** यह दो प्रकारका हो सकता है, एक उत्कटकोटि और दूसरा अनुत्कटकोटि. पहले हम उत्कटकोटिके बारेमें विचार करेंगे. हमें संशय कब होता है जब बुद्धिके सामने दो अथवा उससे अधिक विकल्प आते हैं. उदाहरणके लिए हमारे सामने कोई जानवर आया तो वह कौनसा जानवर है; भैंस गाय गधा हाथी घोड़ा गैंडा हिप्पोपोटमस् है, क्या है? ये सारे विकल्प मन देता है पर उसका निर्णय करनेके लिए बुद्धिके पास भेजता है. इसमें बुद्धि किसी रूपमें एक पक्ष तो ले रही है, ‘‘लगता तो हिप्पोपोटमस्के जैसा है पर पता नहीं क्या है.’’ तो वह ‘उत्कटकोटिक’ कहलाता है. इसको ‘तुल्यकोटिक’ या ‘समकोटिक’ संशय भी कहते है.

यदि बुद्धि कोई पक्ष न ले कर केवल इतना संशय करती है कि ‘‘क्या है पता नहीं चल पा रहा है’’ अर्थात् जिसमें हमें निश्चय नहीं होता कि क्या है और क्या नहीं. तो वह संशय ‘अनुत्कट-कोटिक’ कहलाता है. इस तरह संशयमें भी कभी हम पक्ष लेते हैं और कभी नहीं लेते हैं. इस प्रकार दोनों तरहके संशय हो सकते हैं.

वेदमें ब्रह्मके लिए एक बहुत सुंदर वर्णन आता है **‘‘त्वं कुमार**

उत वा कुमारी तं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि'' (श्वेता.उप.४।३) तु कुमार है कि कुमारी कि तु कोई बूढ़ा है! तु कौन है? देखो, इसमें सारे संशय उत्कट दीख रहे हैं. और ''**को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुतः अजाता**'' (ऋग्वेद१०।१२९।६) यह सब क्या है समझमें नहीं आता, कुछ तो है पर क्या है पता नहीं चलती. यह अनुत्कटकोटिक संशय हो गया.

द्रव्यस्फुरणतारतम्याद् बुद्धिः नानाविधा. यदि द्रव्यके स्फुरणमें तारतम्य हो अर्थात् द्रव्य जब स्टिम्युलेट् करता है इसमें कम-ज्यादा स्टिम्युलेट् होता हो तो स्वाभाविक रूपसे बुद्धि कम-ज्यादा एसेस् करेगी. जैसे मैं स्पष्ट बोल रहा हुं तो आपको स्पष्ट ही सुनायी देगा पर यदि मैं बहुत धीरे या तेज बोलूं तो आपको कैसे सुनायी देगा? क्योंकि आपके कानको इतनी धीमी ध्वनि ठीकसे उत्तेजित ही नहीं करेगी. इस तरह उत्तेजनाके अनुपातमें बुद्धि विज्ञान करती है. जैसे, यदि रोड्पर सारी लाइट् जल रही हों तो उनपर हमारा ध्यान नहीं जाता पर कोई एक लाइट् भी अगर फ्लिकर् कर रही हो तो हमारा ध्यान तुरंत उसी ओर चला जाता है. कोई भी व्यक्ति यदि पूर्णविराम या अल्पविराम के बिना बोलता हो तो बुद्धि इनर्शिया मोड्में चली जाती है पर धीरे-धीरे यदि बोले तो बुद्धिको उस ओर ध्यान देनेकी उत्सुकता रहती है. और यदि अतिशय धीरे-धीरे बोले तो भी बुद्धि तामस हो जाती है.

संस्कार-तेजसोः तुल्यप्रकाशकत्वे विशेषास्फुर्तौ समः संशयः जिस वस्तुको आप देख रहे हो उसे याद किस प्रकार कर पा रहे हो, यह संस्कार है अर्थात् इम्प्रेशन्. जो भी आप देखते हो उसको रॅकलेक्ट् कैसे कर रहे हो? आपने जो देखा है उसका माइन्ड्पे इम्प्रेशन् पड़ता है और यह इम्प्रेशन् ही हमें वस्तुको याद करानेमें मदद करता है. यदि वह आपको वापस याद नहीं आ रही है

तो उस वस्तुको समझ नहीं सकते. **प्रकाशकत्वे विशेषास्फुर्तौ समः संशयः** देखनेकी वस्तु हो तो प्रकाश और सुननेकी वस्तु हो तो ध्वनि, इनमें कोई विशेषस्फूर्ति नहीं हो रही हो तो आपको समकोटिक संशय होगा. और **अल्पविशेषस्फुर्तौ उत्कटकोटिकः** अर्थात् आपका संस्कार विशेषस्फूर्ति करा रहा है और प्रकाश अल्पस्फूर्ति करा रहा है तो आपको उत्कटकोटिक संशय होगा. उदाहरणके लिए गाय है कि घोड़ा है कि नीलगाय है, यदि आप कम प्रकाशमें देख रहे हो तो आपको तीनों विकल्प लगेंगे पर यदि आपके संस्कार प्रबल हो जाते हैं कि इस स्थानपर घोड़ा तो आ नहीं सकता, नीलगाय आती है. कम दिखायी दे रहा है फिर भी आपको संशय उत्कटकोटिक होगा कि या तो यह नीलगाय होगी अथवा गाय. यदि संस्कार भी अल्प है और प्रकाश भी अल्प है तो आपको समकोटिक संशय होगा अर्थात् क्या है पता ही नहीं चलता. एक बार फिरसे बता रहा हुं यदि आपके संस्कार अथवा प्रकाश, इनमेंसे कोई एक वस्तु प्रबल है और दूसरी अल्प है तो आपको उत्कटकोटिक संशय होता है और यदि दोनों ही अल्प हैं तो समकोटिक संशय होता है. उत्कटकोटिकमें हमें यह लगता है कि यह होना चाहिये. और समकोटिकमें पता ही नहीं चलता कि क्या है अर्थात् आपका संशय यदि अज्ञानकी ओर झुक रहा है तो वह समकोटिक संशय है और निश्चयकी ओर झुक रहा है तो उत्कटकोटिक संशय है.

(विपर्यास)

इसके बाद आता है **विपर्यास.** विपर्यास कैसे होता है उसके बारेमें महाप्रभुजी कहते हैं कि जब अपने अंदर वस्तुके बारेमें रही पूर्वदृष्ट रूपकी इम्प्रेशन् तीव्र बन जाती है अर्थात् बाहरकी उत्तेजनाओंकी अपेक्षासे अंदरकी उत्तेजनाएं प्रबल हो जायें तो हमको भ्रम अधिक होता है. जब मैं छोटा था छह-सात बर्षका तबकी बात बता रहा हुं, मैं नासिकमें रहता था. वहाँ सभीने निर्जला एकादशीपर यह घोषणा

कर दी कि निर्जला करेंगे. मैंने सोचा यदि मैं नहीं करूंगा तो बहुत लज्जाकी बात हो जायेगी. मैंने भी यह घोषणा कर दी कि मैं भी निर्जला एकादशी करूंगा. गरमीके दिन और नासिकमें तो पहाड़ोंके कारण गर्मी पड़ती भी बहुत है. जैसे-तैसे करके दिन तो निकल गया पर रातको इतनी ज़ोरदार प्यास लगी कि नींद ही नहीं आयी. मनमें एक विचार आया कि किसीको जगा कर पानी मांग लूं पर फिर शर्म आयी कि सब निर्जला कर रहे हैं तो मैं किसीको जगा कर पानी कैसे मांगू. तभी मेरे दिमागमें एक आइडिया आया कि ऊपर छतपर एक हाथ-पैर धोनेके पानीकी टंकी रहती थी, तो उसमेंसे पानी क्यों नहीं पी लिया जाये! हिम्मत करके मैं बाहर निकल कर टंकीके पास गया. वहाँ उस टंकीसे जो पानीकी धार नीचे गिरती थी, उसपर काई जम गयी थी. वही रातको मुझे भालू जैसा दिखायी दिया. मैं डरके मारे वापस जा कर सोनेका प्रयास करने लगा पर प्यासके मारे नींद तो आयी नहीं. फिर सोचा शायद थोड़ी देर बाद भालू भाग जायेगा तब जाउंगा. मैं फिर गया तो वही भालू दिखायी दिया. जैसे-तैसे करके सुबहके पांच बजे हिम्मत जवाब दे गयी और सोचा कि भाड़में जाये भालू पानी तो अब पी ही लेना चाहिये. गया तो भालू दिखायी देना भी बंद हो गया और मैंने पानी पी लिया. वह मेरी पहली और आखिरी निर्जला एकादशी थी, उसके बाद मैंने निर्जला एकादशी कभी नहीं की. मेरे कहनेका मुद्दा यह है कि जब भी संस्कार प्रबल होता है तो ऐसा हो ही जाता है. बचपनमें भयकी प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है और उसमें भालू जैसा आकार दिखायी दिया तो उसे ही सच समझ लिया. यह विचार ही नहीं आया कि यहाँ भालू किस प्रकार आयेगा!

यही बात महाप्रभुजी समझाना चाह रहे हैं कि **विपर्यासः संस्कारप्राबल्यात्** संस्कार जब प्रबल हो जाता है तो इसमें प्रकाश क्या करेगा?

तेजः तदनुगुणमेव धर्मं प्रकाशयति. इसमें प्रकाशका कोई रोल् नहीं रह जाता, प्रकाश भी कहता है कि “जाओ, संस्कार जो तुम्हे सूचना दे रहा है उसे ही मानों, मैं इसमें चुप हो जाता हुं.” इसके बाद प्रकाश चाहे कम हो अथवा अधिक वह सूचना देना बंद कर देता है. संस्कार = इम्प्रेशन् यदि तीव्र नहीं है तो प्रकाश आपकी मदद कर सकता है.

अथ इति इसलिए यहाँ **संशयो अथ विपर्यासः** कहा. ‘अथ’शब्द संस्कृत भाषामें आरंभ आनन्तर्य अर्थान्तर और मंगल, इन चार अर्थमें प्रयोग किया जाता है. किसी भी विषयका प्रारंभ करना हो तो ‘अथ’ शब्द कहा जाता है. एक बातके बाद जब दूसरी बात आती है अर्थात् आनन्तर्य तब भी ‘अथ’ शब्दका प्रयोग किया जाता है. जैसे पहले दूज आयी फिर तीज आयी. उसे संस्कृतमें कहा जायेगा द्वितीया अथ तृतीया. तीसरा अर्थ है ‘अर्थान्तर’, जो बात आपकी चल रही है उसे बदलनेकी हो और दूसरी बात चालू करनी हो तो आप ‘अथ’ कह कर शुरू कर सकते हैं. और चौथा अर्थ होता है ‘मंगल’. जैसे हम ‘श्रीहरि’ अथवा ‘नमः श्रीकृष्णाय’ बोलें तो मंगल होता है इसमें ‘अथ’का प्रयोग करते हैं. पर यहाँ श्लोकमें आनन्तर्य अर्थ नहीं है और आरंभ भी नहीं है. क्योंकि बुद्धिका आरंभ तो हो ही चुका है. आनन्तर्य नहीं है क्योंकि संशयके बाद विपर्यास होना आवश्यक नहीं है. कभी संशयके बाद निश्चय भी हो जाता है. पर संशयके बाद यदि विपर्यास होता है तो यहाँ अर्थान्तर दीखता है. क्योंकि ज्ञानका फंक्शन् अब किसी और प्रकारसे काम कर रहा है. जो डिफाइन्ड् प्रोसिजर् है उस प्रकार नहीं पर कोई अतिरिक्त प्रक्रिया उसने ग्रहण की है, अब प्रकाशके ऊपर भरोसा न रख कर अपने संस्कारपर अधिक भरोसा कर रहा है. When your intellect does not bother about what the object is and it is more worried about how you want to interpret it then it is ‘अर्थान्तर’. इसीलिए यहाँ ‘अथ’शब्दका प्रयोग किया गया है.

इसके बाद **एकस्फुरण-नियामकत्वाय.** संशयकी एक सुंदरता है कि उसमें ज्ञान अथवा अज्ञान का संशय होता है या फिर ज्ञान अथवा भ्रमज्ञान का संशय होता है. उदाहरणके लिए भालू या काई. इसमें ज्ञान अथवा भ्रमज्ञान है और मैं कहूं कि ‘‘भालू है कि नहीं’’ तो ज्ञान और अज्ञान हो गया. दो कोटिमें ज्ञान हो रहा है. संशयमें समझकी जो फॅकल्टी है वह स्प्लिट् (विभाजित) हो जाती है. भ्रममें विभाजित नहीं होती, उसकी इन्टिग्रिटी मेइन्टेन् होती है. पर भ्रमकी इन्टिग्रिटी कुछ और ही प्रकारकी मेइन्टेन् होती है कि जिसका ओरिॲन्टेशन् ऑब्जेक्ट्में न हो कर आपके इम्प्रेशन्में है. आपने अपने संस्कारके हिसाबसे उसे जिस प्रकार लिया वह इसको उसी प्रकार इन्टर्प्रिट् करती है. मैं भ्रमका एक उदाहरण आपको देता हुं. एक फिल्म् आयी थी ‘अनवर’, उसमें जो हीरो है उसे महरू नामकी लड़कीके साथ स्नेह है. उसका एक दोस्त है जो उसको कहता है कि ‘‘प्रेम कृष्ण और मीरा की तरह करना चाहिये.’’ अनवर अपने आपको कृष्ण मानने लगता है और महरूको मीरा. वहाँ तक तो सब ठीक रहता है पर सचमें ही वह व्यवहार भी उसी तरह करने लगता है. अब देखो, यह भ्रम है, यह बात संशयकी नहीं रही कल्पनाकी नहीं रही, अब यह बात भ्रमके लेवल्की हो गयी. मैं हमेशा अपने प्रवचनमें एक रामदासभाईका उदाहरण देता हुं. उनको यह भ्रमणा थी कि वह वैजयंतीमालाके पति है. वह आ कर एक दिन मुझसे बोले ‘‘श्यामबाबा, आपको पता है कि इस बार नयी फिल्म्में वैजयंतीमालाने अपना नाम वी.आर.कापड़िया लिखा है.’’ मुझे भी बड़ा अजीब लगता था क्योंकि उनके कई दांत निकल चुके थे, हाथमें चमड़ीकी कोई बीमारी थी. मुझे लगता कि वैजयंतीमालाको कोई और नहीं मिला? वैजयंतीमालाका जो रियल्

पति था, बाली, उसपर इन्हें गुस्सा आता था और मुझसे कहते कि "आज वैजयंतीमालाने बालीको दो चांटे जड़ दिये और कहा कि आप मेरे पति नहीं हो, रामी मेरा पति है." यह संशयके ऊपरकी बात है, यह है भ्रम. हम उसकी हाँ-में-हाँ मिलायें तो वह बहुत प्रसन्न रहते थे. यदि कोई टोक दे कि "ऐसा कभी होता है रामदासभाई!" तो वे गुस्सा हो जाते थे. यह एककोटिकज्ञान है, द्विकोटिक ज्ञानको स्वीकारते ही नहीं. **एकस्फुरणनियामकत्वाय** संशयमें दोका स्फुरण होता है पर विपर्यास अथवा भ्रम में एककोटिकस्फुरण होता है. इसको विपर्यास क्यों कहते है? विपर्यास अर्थात् हेरा-फेरी.

आपको एक मज़ेदार बात सुनाता हुं. मेरे छोटे भाई उत्तमजीके बाजूमें एक शास्त्रीजी रहते थे. वे थे तो शास्त्री पर उन्हें फिल्मी गाना गानेकी बहुत इच्छा रहती थी. यदि दिनमें सबके सामने गायें तो उनकी खिल्ली उड़नेका डर था, इसलिए रातको फिल्मी गानोंका संस्कृत अनुवाद करके गाते थे. जैसे *"सिरपर टोपी लाल हाथमें रेशमका रूमाल हो तेरा क्या कहना"*. इस गानेका संस्कृत अनुवाद उन्होंने किया "शिरसि रक्तस्त्राणः हस्ते वस्त्रखंडः, अहो किं कथनं ते". उनके इस प्रकार गानेसे उत्तमजीकी नींद उड़ जाती थी क्योंकि दोनोंके घरके बीच केवल एक पतलीसी लकड़ेकी पार्टिशन् थी. इसलिए उनको सब सुनायी देता था. तो वे भी उसी पार्टिशन्‌पर तबला बजाने लगते, लेकिन ऐसा करनेपर भी शास्त्रीजीको यह भान नहीं हुआ कि उनके गानेसे किसीकी नींद खराब हो रही है. बेचारे करें क्या, दिनमें तो गा नहीं सकते! उसके बाद एक दिन उत्तमजीको गुस्सा आ गया और जब भी शास्त्रीजी नहाने जाते तो पार्टिशन् कूद कर उनका सारा घर अस्त-व्यस्त कर आते. एक दिन शास्त्रीजीने मुझसे कहा कि "श्यामबाबा, यहाँ कुछ भूतबाधा हुयी है." मैंने उनसे पूछा "यहाँ किस प्रकारकी भूतबाधा हो सकती है?" तो बोले "यदा अहं बहिः गच्छामि तदा कश्चन् आगत्य वस्तुविनिमयं

करोति!'' ''कोई आ कर वस्तुओंका विनिमय कर जाता है.'' मैंने उत्तमजीसे कहा कि ''आपको पता है कि शास्त्रीजीकी दीवारमें कुछ भूतबाधा है?'' तो बोले ''कोई भूतबाधा नहीं है. यह रातभर मेरा खून पीते हैं तो मैं और क्या करूं!'' इस तरह बुद्धि भी उत्तमजीकी तरह कुछ और नहीं कर सकती पर थोड़ा विपर्यास तो कर ही सकती है. बुद्धिका भी अनुभवके साथ थोड़ा वैरभाव है.

विपर्यासो भिन्नार्थप्रतिपादकः क्रियाज्ञानयोश्च भिन्नविषयत्वम्. अनेन अन्यख्यातिरेव सिद्धान्तः इति उक्तम्. अन्यथात्वे यथार्थत्वं स्यात्. विपर्यास भिन्न अर्थका प्रतिपादक है. अर्थात् क्रियाका विषय कुछ भिन्न है और ज्ञानका विषय भिन्न हो जाता है. उदाहरणके लिए आपको सीपपर चांदीका भ्रम हुआ तो हाथ आपका सीपको पकड़ रहा है और भासित आपको चांदी हो रही है. अर्थात् क्रियाका विषय सीप है और ज्ञानका विषय चांदी है. अंधेरेमें आपको रस्सीपर साँप दिखा तो आपको भागनेकी इच्छा होगी. क्रियाका विषय रस्सी है क्योंकि आप रस्सीको देख कर भाग रहे हो और ज्ञानका विषय सर्प है. इसमें क्रिया और ज्ञान का विषय भिन्न-भिन्न हो जाता है.

(अन्यख्यातिरेव सिद्धान्तः)

अनेन अन्यख्यातिरेव सिद्धान्तः. इसलिए महाप्रभुजीके मतमें क्रियाके विषयसे अन्य कोई भी विषयकी ख्यातिको 'अन्य ख्याति' कहते हैं. यहाँ ख्यातिका अर्थ 'प्रसिद्धि' नहीं है, पारिभाषिक ख्यातिका अर्थ होता है 'भ्रम'. ख्यानम् अर्थात् appearance.

वस्तुके appearance की बहुत प्रकारसे व्याख्या की गयी है. अपने भारतमें कम-से-कम पंद्रह प्रकारकी थीयरी illusion की मौजूद हैं. कोई अन्यथा-ख्यातिवादी हैं, कोई अख्यातिवादी हैं, कोई आत्मख्यातिवादी हैं, कोई अनिर्वचनीय ख्यातिवादी हैं.

(न्यायमत : अन्यथाख्याति)

'अन्यथा-ख्यातिवादी' अर्थात् जो वस्तु दीख रही है वह उस प्रकारकी नहीं दीख रही पर दूसरी प्रकारसे दिखाई दे रही है. कुछ और ही रूप हमें उसका दीख रहा है. जैसे रस्सी जो दीख रही है वह रस्सी न दिख कर साँप दीख रहा है.

(प्रभाकरमत : अख्याति)

अख्याति एक फॅन्टास्टिक् थियरी है. भारतमें प्रभाकर नामके दार्शनिक हुए थे. उन्होंने कहा था कि illusion नामका कोई अनुभव है ही नहीं. Illusion is nothing but a mismatch of experience and memory. अपने अनुभव और स्मृति का ठीक प्रकारसे तालमेल नहीं होना ही भ्रम है. जैसे दो बिजलीके तारोंको गलत जोड़ देने पर धूम-धड़ाका होता है, ठीक उसी प्रकार यदि recollection और experience को गलत जोड़ देनेपर illusion होता है. आपको अनुभव हो रहा है रस्सीका और आप स्मरण कर रहे हैं साँपका. भ्रम जैसा कोई ज्ञान है हि नहीं. स्मृति और अनुभव में फरक नहीं कर पा रहे हो करके भ्रम हो रहा है. इसको प्रभाकर 'अख्याति'/'विवेकाख्याति' कह रहे हैं.

(बौद्धमत : आत्मख्याति)

तीसरा सिद्धान्त था आत्मख्यातिका. इसके अनुसार आपकी बुद्धि ही आपको साँप दिखा रही है वास्तवमें साँप जैसा कुछ है ही नहीं. एकदम idealistic सिद्धान्त है.

(शांकरमत : अनिर्वचनीयख्याति)

श्रीशंकराचार्य कहते हैं कि Illusion अनिर्वचनीय है. उनका सिद्धान्त बहुत ही रोचक है. वे कहते हैं कि यदि सत्य ही दिखता होता तो वह कॅन्सल् नहीं होता. जो हो ही नहीं वह हमें दिखलाई नहीं देता. कॅन्सल् भी हो रहा है और दिखाई भी रहा है इसलिये

डिफाइनेबल् नहीं है. So it is indefinable experience. भ्रमको वे indefinable experience मान रहे है. और भी बहुतसी थीयरीज़् हैं जो इस समय नहीं ली जा सकतीं.

(वाल्लभमत : अन्यख्याति)

इसमेंसे महाप्रभुजीकी थीयरी है अन्यख्यातिकी अर्थात् ॲक्शन् और अन्डर्स्टॅन्डिन्ग् के आपसमें coordination न होनेके कारण आपको भ्रम होता है. आपकी देखनेकी क्रिया और आपके ज्ञानमें coordination नहीं है. इस तरह यह discoordinated experience है. क्रिया और ज्ञान की जहाँ भिन्न विषयता है वहाँ भ्रम होता है.

(रामानुजमत : सत्ख्याति = यथार्थख्याति)

श्रीरामानुजाचार्यका भी इस बारेमें एक मत है, जिसे वे यथार्थ/सत् ख्याति कहते हैं. वे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तुमें प्रत्येक वस्तुके सर्टन् ॲलिमॅन्ट्स् होते ही हैं पर जिस वस्तुमें जिस वस्तुके तत्त्व अधिक हैं, वही वस्तु हमें दिखलायी देगी, जिसके तत्त्व कम होंगे वह कम दिखलायी देगा. उदाहरणके लिए लोहेके बर्तनमें लोहतत्त्व अधिक होनेके कारण हमें वह लोहेका ही दिखलायी देता है. कई सब्जियोंमें भी लोहा है पर कम होनेके कारण हमें दिखलायी नहीं देता. उनके मतके हिसाबसे दुनियामें ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिसमें दूसरी वस्तु उपस्थित न हो, सभीमें सब हैं. इसलिए भ्रमके द्वारा आपको उस समय जो भी ज्ञान हो रहा है वह ‘यथार्थ’ ही है. वे कहते हैं कि रस्सीमें साँप यदि आपको दीख रहा है तो वह जीवित नहीं है पर उसकी आकृति तो है. यदि रस्सी भी जीवित सर्पके जैसे चलने लगे तो वह सर्प बन जायेगी. इसलिए उनका मत ‘यथार्थख्याति’ कहलाता है. महाप्रभुजी कहते हैं कि “मैं सत्ख्यातिके यथार्थ नहीं मानता”.

(नैयायिकोकी अन्यथाख्यातिमें दूषण)

नैयायिकोंकी अन्यथाख्यातिके सिद्धान्तके बारेमें महाप्रभु कहते हैं. 'अन्यथाख्याति' अर्थात् जिस वस्तुका जैसा ज्ञान होना चाहिये वैसा न हो कर कोई दूसरे प्रकारका ही ज्ञान हो रहा है तो वह 'अन्यथाख्याति' कहलाता है. कहनेमें तो यह एकदम ठीक बात लगती है. रस्सीका ज्ञान आपको रस्सीकी तरह न हो कर सर्पकी तरह हो रहा है, इसलिए अन्यथाज्ञान. उसकी प्रक्रिया जो बताते हैं वह अद्भुत है. अब प्रश्न उठता है कि जो वस्तु जैसी है उसका ज्ञान उसी प्रकार होना चाहिये. अन्यथाज्ञान किस प्रकार होता है? इसपर नैयायिक कहते हैं कि आपकी आंख सबसे पहले रस्सीके ऊपर गई. आपकी बुद्धिमें तब भय आदिके कई तत्त्व होनेके कारण आँख रस्सीको पकड़के नहीं रख सकी और दौड़के सर्प तक गई. इसीलिए आपको सर्प दिखायी देता है. सीपमें आपको चांदीका दिखाई क्यों देती है? क्योंकि आंख सीपके साथ टकराई पर बुद्धिमें चांदीका लोभ होनेके कारण आँख सीपको चिपकके नहीं रही.

ऐसे आँख रस्सीके ऊपर जाके साँपपर जा रही है. इसपर महाप्रभुजी कहते हैं कि यदि साँपपर जा रही है तो यह यथार्थज्ञान ही हुआ क्योंकि आंख रस्सीको देख कर साँप तक दौड़ रही है तो तो यथार्थज्ञान होना चाहिये. इसीलिए महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **अन्यथात्वे यथार्थत्वं स्यात्. ''रजतम् अहं जानामि'' इत्येव अनुभवः नतु ''रजतत्वेन जानामि'' इति.** जब सीपपर चांदी दीख रही है वह यही कहते है कि ''मुझे यहाँ चांदी दिखायी दे रही है.'' कोई ऐसा नहीं कहता कि ''यह चांदी जैसी दिखायी दे रही है.'' यदि यह अन्यथाज्ञान है तो उन्हें यह कहना चाहिये कि ''यह चांदी जैसी दिखायी दे रही है.'' यदि वह ऐसा कहें तो फिर यह भ्रम है ही नहीं. भ्रम तो यह तभी कहलायेगा जब यह कहेंगे कि ''यह चांदी ही है.'' जैसे मैंने तुम्हें अपने बारेमें बताया था कि

काई मुझे भालू लगी पर यदि मुझे यह लगता कि यह भालू जैसा दिख रहा है, फिर तो मैंने पानी पी ही लिया होता. भालू जैसा नहीं भालू ही दिखायी दे रहा था, इसीलिए डर लग रहा था.

(महाप्रभुजीकी आत्मख्यातिमतसे असहमति)

बुद्धेः तत्त्वरूपत्वाद् न आत्मख्यातिः. बुद्ध भगवान् कहते हैं कि रस्सीको देख कर आपकी आत्मामें साँप पैदा हो रहा है. यदि ऐसा हो और वह डस ले तो मर ही जायेंगे. अरे! वह तत्त्वरूपमें है ज्ञानरूपमें नहीं है ऐसा महाप्रभुजी कह रहे हैं. **संस्कारशब्दयोः पदार्थमात्रापेक्षितत्वाद् न देशकालादिवैशिष्ट्यं नियामकम्.** संस्कार और शब्द का सौंदर्य महाप्रभुजी कह रहे हैं कि कोई भी इम्प्रेशन् अथवा शब्द यदि आपके दिमागमें आये तो वह देशकालके साथ नहीं आता है, केवल object के लिए ही आता है. उदाहरणके लिए आप चिड़ियाघरमें जाते हैं और वहाँ आपको कोई चिंपाज़ी देखनेको मिलता है. अब उसकी इम्प्रेशन् तो आपके दिमागमें रह गयी. फिर जब भी आपको कोई उसी प्रकारका प्राणी दिखायी देगा तो वहाँ चिड़ियाघर है नहीं और न ही वह समय है पर आपके दिमागमें पड़ा हुआ इम्प्रेशन् आपको बता रहा है कि यह चिम्पांज़ी है. इसी प्रकार जो शब्दमें बन्दरके इस प्रकारको हम 'चिम्पांज़ी' कहते हैं, तो उस समय जो बंदर था उस शब्दका देश-कालमें ग्रहण कर रहे हो? इसीलिए कोईका चहेरा चिम्पांज़ीसे मिलता दीखता है. यह रिज़ेम्ब्लेन्स्में संस्कार और शब्द देश-कालको रिफर् नहीं करते हैं ऑब्जॅक्ट्को रिफर् करते हैं. इसीलिए महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **पदार्थमात्रापेक्षितत्वाद् न देशकालादिवैशिष्ट्यं नियामकम्.**

(महाप्रभुजीकी अख्यातिसे असहमति)

"रजतम् अनुभवामि" इति अनुव्यवसायाद् न प्रमुष्टतत्तारूपा स्मृतिः.

जैसा प्रभाकरने अख्यातिके बारेमें कहा था कि आप रॅकलॅक्शन् और ऑक्पेरियन्स् में भेद नहीं कर सकते. इसपर महाप्रभुजी कहते हैं कि आप यदि किसी वस्तुका रॅकलेक्शन् कर रहे हैं तो 'वह'का ज्ञान तो पहलेसे है ही. और 'यह रजत'को तुम रिकॉल् नहीं कर रहे हो. 'वह रजत' यहाँ नहीं दीख रहा है. तो 'यह रजत'को स्मृति कैसे कह सकते है? **एकज्ञानतुल्यत्वात् च न ज्ञानद्वयम्.** और यहाँ दो ज्ञान कहाँ हो रहे हैं. एक ऑक्सपेरियन्स् और एक मॅमरी, ऐसे दो ज्ञान तो नहीं हो रहे हैं.

(महाप्रभुजीकी अनिर्वचनीयख्यातिसे असहमति)

संस्कारप्राबल्याद् न अनिर्वचनीयरजतापेक्षा. अतएव न असत्ख्यातिः. महाप्रभुजी कह रहे हैं कि अपने चांदीके संस्कार प्रबल हो गये इसलिए हमें चांदी दिखायी दे रही है. इससे यह मानना कि यहाँ सचमें चांदी उत्पन्न हुयी है, Which cannot be defined in terms of being (सत्) or non-being (असत्). यह तो बहोत far-fetching बात है श्रीशंकराचार्यजीकी. इसलिए यह कहना भी ठीक नहीं है कि जो नहीं है वह दिखायी दे रहा है. इस तरह बहुत सारी ख्यातियोंकी जो थियरी हैं उनसे महाप्रभुजी अपनी असहमति प्रकट करते हैं.

(महाप्रभुजीका मत अन्यख्याति)

तस्माद् अन्यख्यातिरेव सर्वजनीना. और अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि जब भी भ्रम होता है वह समझ और क्रिया के बीच discoordination के कारण होता है. यह अन्यख्याति है.

(भ्रमका स्वरूप वास्तविक या विषयानुभाविक?)

पिछली बार तक हम illusion (भ्रम)के विषयमें बात कर रहे थे. यहां एक विरोधाभास है. पाश्चात्य दर्शनमें इसका इतना

महत्त्व नहीं दिया गया है. हाँ, मनोविज्ञानमें इस बारेमें बहुत सोचा गया है. पर भारतीय दर्शनमें भ्रमका विचार नींव तक जा कर किया गया है. एक बार यदि आप किसी भी दर्शनका illusionका सिद्धान्त समझ जाओ तो उस दर्शनकी समझ आपको बहुत सीमा तक साफ हो जायेगी. आपकी पकड़ उस दर्शनपर बहुत अच्छी हो पायेगी. उस दिन हमने विपर्यासके बारेमें कुछ हद तक देख लिया था. उसमें महाप्रभुजीने बहुत सारे दर्शनोंकी आलोचना की है. मैंने आपको इस बारेमें पिछली बार एक हिन्ट् दिया था. पर मैं समझता हुं कि यह विषय थोड़े और विस्तारकी अपेक्षा रखता है.

भारतीय दर्शनमें भ्रमके बारेमें प्रमुख दो वैचारिक मतभेद हैं. एक विचार अपना सारा दारोमदार इस बात पर रखता है कि

१. वस्तुके दृष्टिकोणसे भ्रमको किस प्रकार समझना चाहिये. (From the objective point of view how to understand illusion.)

2. और दूसरा विचार यह है कि वस्तुके दृष्टिकोण नहीं पर सॅब्जेक्टिव् दृष्टिकोणसे भ्रमको किस प्रकार समझना चाहिये? (From subjective point of view, how to understand illusion)

और subjective के अन्तर्गत दो भेद और हुए. पहला यह कि क्या इल्युज़न्, कम्पाउन्ड् नॉलेज् (द्विराशि ज्ञान) है कि सिम्पल् नॉलेज् (एकराशि ज्ञान) ज्ञान है, यह विचारणीय है.

(विषयानुभाविक भ्रमके प्रकार: एकराशि, द्विराशि और बहुराशि)

जैसे वाक्य तीन प्रकार होते हैं. सिम्पल् कम्पाउन्ड् और कॉम्प्लेक्स्. इसी प्रकार ज्ञानके भी यही तीन प्रकार हो सकते हैं; सिम्पल् कम्पाउन्ड् और कॉम्पेक्स्. सिम्पल् नॉलेज्का अर्थ है प्यॉर् ॲक्सपिरियन्स्. उसे हम 'सिम्पल् नॉलेज्' या '**एकराशि ज्ञान**' कहते हैं. पर ॲक्सपिरियन्स् (अनुभव) और डाउट्(संशय) अथवा अनुभव और स्मृति अथवा अनुभव और अज्ञान, जब साथमें होते हैं तो यह 'कम्पाउन्ड् नॉलेज्'

या **‘द्विराशि ज्ञान’** कहलाता है. अर्थात् जब ज्ञान दो चीजोंपर आधारित होता है तो कम्पाउन्ड् होता है, पर जब तीन अथवा उससे अधिकपर आधारित रहता है तो ‘कॉम्प्लेक्स् नॉलेज्’ या **‘बहुराशि ज्ञान’** हो जाता है.

इस बारेमें भी भारतीय दर्शनमें अत्यधिक विचार किया गया है कि भ्रम (illusion) एकराशि ज्ञान है या राशिद्वयात्मक ज्ञान है या बहुराशि ज्ञान है? ‘राशि’ अर्थात् समूह. यह वह राशि नहीं है जैसे मकर सिंह आदि. वैसे देखा जाये तो वह भी राशि इसीलिए कहलाती हैं क्योंकि कुछ तारोंका एक प्रकारका समूह वहां बनता है.

आपको एक उदाहरण दूं तो आपको ठीकसे समझ आ जायेगा. जिसको हम रॅकग्निशन् कहते हैं, क्या हम यह कह सकते हैं कि रॅकग्निशन् हमारा प्योर् ॲक्सपिरियन्स् है? ‘recognition’ means something you are understanding on basis of your memory. आप अपनी स्मृतिके आधारपर किसी वस्तुका ज्ञान प्राप्त कर रहे हो तो वह द्विराशि ज्ञान है. क्योंकि उसमें हमारा ॲक्सपिरियन्स् और हमारी स्मृति दोनों काम कर रहे हैं. इसी प्रकार त्रिराशि ज्ञान भी हो सकता है. उदाहरणके लिए मैं आपको कहूं कि ‘‘इगुआना एक प्राणी होता है. साउथ् अमेरिकाका है. एक प्रकारकी बहुत बड़ी दो या तीन फुट्की छिपकली है.’’ यह मैं आपको बता रहा हुं, तब आपको यह मौखिक इन्फॉर्मेशन् मिली है, आपने देखी नहीं है. पर यदि आप साउथ् अमेरिका जा कर उसे स्वयं देखें तो उस समय आपको एक ही समयमें तीन प्रकारका ज्ञान हो रहा है. पहली ‘वर्बल् इन्फॉर्मेशन्’ कि इस प्रकारका प्राणी; जो कि छिपकलीका एक प्रकार है, उसे ‘इगुआना’ कहा जाता है. आप उसको पर्सीव् भी कर रहे हैं और उसके साथ-साथ आप उसे रॅकग्नाइज़् भी

कर रहे हो कि ये इगुआना है. इस प्रकार तीन प्रकारका ज्ञान मिल कर एक ज्ञान बनता है. यह **राशित्रयात्मक ज्ञान** हो गया. इसलिए ऑपिस्टमोलॉजीके (ज्ञान-मीमांसाके) अनुसार; Epistemology is a branch of knowledge which analyzes the nature and function of our understanding.

ज्ञान-मीमांसामें (ऑपिस्टमोलॉजी) यह एक बहुत विचारणीय विषय रहा है कि क्या Iillusion(भ्रम) एकराशि ज्ञान है, द्विराशि ज्ञान है कि बहुराशि ज्ञान है? इसमें केवल एक बातकी सावधानी रखनी है कि किसी भी ज्ञानको पैदा होनेके यदि दो तीन स्रोत हैं, तो केवल इतने भरसे वह एकराशि अथवा द्विराशि ज्ञान नहीं हो जाता. पर जिस समय हमको कॉग्निशन् (ज्ञान) होता है, उस समय ज्ञानका स्वभाव एकराशि है, द्विराशि है कि बहुराशि है, यह विचारणीय विषय है. हमें कई प्रकारकी सूचनाएं कई जगहसे मिलती हैं और उनसे यदि कोई ज्ञान हमें होता है तो उसे एक द्वि अथवा बहु राशि ज्ञान नहीं कहा जाता. उदाहरणके लिए आपको कोई सूचना टी.वी.से मिली हो, वही सूचना आपने अखबारमें भी पढ़ी हो और आपको उसका ॲन्टिसिपेशन् (पूर्वानुमान) भी हो. इस प्रकार तीनों स्थानसे एक ही ज्ञान मिला. जैसे आज मुम्बईमें बहुत तेज तूफान और बरसात आयी. यह ज्ञान आपको कई जगहसे मिल रहा है. टी.वी.से, अपने किसी जाननेवालेसे और शामके पेपर्में आया हो. पर तीनों स्रोतोंसे ज्ञान तो एक ही हो रहा है! इसको त्रिराशि ज्ञान नहीं कहा जा सकता है. जब ज्ञान ही तीन प्रकारका हो और वह मिल कर एक बन रहा है तो उसे 'राशित्रयात्मक ज्ञान' कहा जाता है. यह भेद हमें अच्छी तरह समझना होगा. यह भी संभव है कि हमें एक ही स्रोतसे दो प्रकारका ज्ञान हो रहा हो. जैसे हमें आंखसे कोई जानवर दिखायी दे रहा है और वह हमको घोड़ा भी लग रहा है और गधा भी लग रहा है. इस प्रकारका

ज्ञान 'राशिद्वयात्मक ज्ञान' कहलाता है. क्योंकि आपकी बुद्धि निश्चित नहीं कर पा रही है कि वह गधा है कि घोड़ा.

इल्युज़न्के (भ्रमके) बारेमें इस प्रकारके विचार रहे हुए हैं. यह बात ध्यानमें लेने लायक है कि पाश्चात्य दर्शनमें इस विषयकी इतनी चर्चा नहीं की गयी है. पर भारतीय दर्शनमें बहुत गहरायी तक इस बातका विचार किया गया है. कुछ नहीं तो इन पिछले पच्चीस-सौ वर्षोंमें लगभग पंद्रह मत इस बारेमें देखनेमें आये हैं. इस हिसाबसे लगभग हर डेढ़-सौ सालोंमें एक मत इस बारेमें प्रस्तुत किया गया है और इन सबके बीच महाप्रभुजीका भी एक मत है, अन्यख्यातिका, जो मैंने आपको पहले बताया.

(भ्रमका वास्तविक दृष्टिसे विभिन्न स्वरूप)

इन सारे मतोंका वर्गीकरण हमें यदि करना हो तो वह इस प्रकार कर सकते हैं कि एक मत ऐसा है जो इस बातका निश्चय ऑब्जेक्टिव्की ओरसे (वस्तुपरक हो कर) करता है और दूसरा सब्जॅक्टिव्की (विषयानुभव) ओरसे करता है. ऑब्जेक्टिव्के ओरसे चार प्रभेद हैं. एक मत कहता है कि [१] **इल्युज़न्का ऑब्जेक्ट् रियल् होता है.** दूसरा मत कहता है कि [२] **इल्युज़न्का ऑब्जेक्ट् रियल् नहीं, अन्रियल् होता है.** तीसरे मतके हिसाबसे [३] **इल्युज़न्का ऑब्जेक्ट् रियल् भी होता है और अन्रियल् भी,** अर्थात् दोहरे स्वभावका होता है. चौथे सिद्धान्तके हिसाबसे यह पारिभाषित ही नहीं किया जा सकता कि [४] **इल्युज़न्का ऑब्जेक्ट् रियल् है कि अन्रियल्,** It is undefinable from the point of view of reality and unreality. यह ऑब्जेक्टिव्की ओरसे भ्रमके प्रचलित सिद्धान्त हैं.

इसी प्रकार सब्जेक्टिव्की ओरसे इसके प्रभेद कुछ इस प्रकार किये गये हैं कि क्या यह एकराशि ज्ञान है कि द्विराशि ज्ञान

है? ऐसा किसीने कहा नहीं है पर इसमें भी एकराशि माननेवालोंकी संख्या अधिक है. द्विराशि माननेवालोंमें केवल एक ही दार्शनिक हुए हैं, जो प्रभाकर हैं. प्रभाकरका उद्देश्य अपने सिद्धान्तको रखनेके पीछे यह था कि यदि हम इल्युज़न्का ऑब्जेक्ट् अपरिभाषित मानेंगे तो इस प्रकारका जनरलाइज़ेशन्, जो हमारा अभ्रमात्मक ज्ञान है उनके ऊपर भी लागू होगा. और वॅलिड् नॉलेज्का (प्रामाणिक ज्ञान) ऑब्जेक्ट् भी अपरिभाषित बन जायेगा. और यदि रियल् ऑब्जेक्ट् भी अपरिभाषित हो गया तो उसका परिणाम यह आयेगा कि रियलिज़म् खंडित हो जायेगा.

(यथार्थवाद और कल्पनावाद का भेद)

'रियलिज़म्' अर्थात् Object of knowledge is real वस्तुका ज्ञान यथार्थ है. इसलिए मध्य कालीन युगमें जब विज्ञानका विकास हुआ, उस समय इंग्लेंड्के फादर् बिशप् बर्कले जो थे, उन्हें यह भय लगा कि यदि विज्ञानकी प्रगति हुयी और इससे यह सिद्ध हुआ कि यह तो गॉड्ने नहीं किया अपितु साइंसके इस सिद्धान्तके कारण हुआ है तो ईश्वरका(गॉड्) अस्तित्व डांवा-डोल होने लगेगा. उदाहरणके लिए पहले यूरोपियन लोगोंकी दृढ़ धारणा थी कि यह जगत् भगवान्ने ही बनाया है क्योंकि नहीं तो यह चल कैसे रहा है! पदार्थ दो अणुओंके संयोगसे बना है. उन दोनों अणुओंको मिलानेके लिए कोई तो होगा कि जो उनके संयोगमें सहायक होगा. वही व्यक्ति भगवान् होना चाहिये. न्यूटन्ने पहली बार यह सिद्ध किया कि अणु तो अपने आप चलता है. यह तो स्वयंचालित है, इसलिए गॉड्की तो कोई आवश्यकता है ही नहीं. उस समयके क्रिश्चन् धर्माचार्योंके लिए यह एक भयंकर चौंका देनेवाली बात थी. गतिके बारेमें न्यूटन्का यही सिद्धान्त था कि यदि कोई पदार्थ गतिशील है तो वह अपने आप चलता ही रहेगा जब-तक कि बाहरी शक्ति उसे रोके नहीं. इसके कारण ईश्वरका अस्तित्व डावां-डोल होने लगा. इसलिए बिशप्

बर्कलेने सोचा कि बाहरी जगत्को यदि हम अन्‌रियल् कह दें तो साइंस् अपने आप अन्‌रियल् हो जायेगा. इसलिए उसने एक सूत्र उस समय स्थापित किया Esse est percipi. लेटिन्‌में जो 'एस्त' (est) है, वो ही संस्कृतमें 'अस्ति' है, पर्शियन्‌में यही 'अस्त' है. यही इंग्लिश्‌में 't' silent है करके Is बना है. Esse est percipi का अर्थ है To be is to be perceived. इस दर्शनके हिसाबसे आप आंख खोलो तो जगत् पैदा हो जाता है और आंख बंद करो तो खतम हो जाता है. क्योंकि यह बाहर है ही नहीं, बिल्कुल स्वप्नकी तरह. आंख बंद होती है तो सपना दिखायी देता है और खुलती है तो गायब हो जाता है. उस समय एक जॉन्सन् नामका व्यक्ति हुआ था जिसने अंग्रेजीकी पहली डिक्शनरी बनायी थी. उस बेचारेको इतना गुस्सा आया कि बर्कलेके साथ डिबेट्‌में उसने बर्कलेसे पूछा कि "आपके कहनेका अर्थ है कि यह मेज, जिसपर हमारी चर्चा हो रही है, केवल एक आइडिया है, रियल् नहीं है?" इस पर जब बर्कलेने कहा "हाँ यह आइडिया ही है" तब गुस्सेमें जॉन्सन्‌ने मेजपर लात मार कर कहा कि "लो, मैं तुम्हारे इस आइडियाको लात मारता हूं." इसपर बर्कलेने कहा "नहीं, मेरे दिमागमें दो आइडिया आ रहे हैं. पहला यह कि मेज है और दूसरा कि तुम मेजको लात मार रहे हो. इस तरह तुम इसको लात नहीं मार रहे हो." इस बात पर जॉन्सन् बेचारा नर्वस् हो गया क्योंकि वह दार्शनिक तो था नहीं, केवल एक भाषाका जानकार था.

इसी तरहका प्रसंग हमारे यहां भी आता है. श्रीशंकराचार्यके मतके हिसाबसे जगत् मिथ्या है, यह आपके दिमागकी उपज है और उसके बाहर नहीं है. जब एक संन्यासीने किसी राजाको यह बात कही तो राजाको क्रोध आ गया कि जिस जगत्का वह राजा है, उसे संन्यासी मिथ्या कैसे कह रहा है! इस बात पर राजाने संन्यासीके ऊपर पागल हाथी छोड़ दिया. इसपर संन्यासी भागने लगा.

राजाने कहा “आपको डर किस बातका? हाथी तो मिथ्या है.” वह बोला “सही है, हाथी मिथ्या है पर मेरा भागना भी तो मिथ्या है!” इस तरह आइडियलिज़म् दर्शन बहुत विचित्र है. है यह बहुत लॉजिकल् है पर कॉमन्-सॅन्स्की दृष्टिसे इसको स्वीकार नहीं किया जा सकता. फेस्-वॅल्युपर बहुत मूर्खतापूर्ण भी लगती है. पर यदि गहरायीमें जायें और इसके बारेमें सोचें तो वह कैसे सही है और कैसे गलत है, यह भान हमको होगा.

उदाहरणके लिए रेलकी पटरीको आप देखोगे तो दूर जा कर मिलती हुयी दिखायी देती हैं. अब यह बात रियल् है कि अन्‌रियल्? (काल्पनिक) जिस आंखसे आपको पटरी दिखायी दे रही है, उसीसे यह भी दिखायी दे रहा है कि दूर जा कर वह मिल रही है. अब आंखकी कौनसी बातपर विश्वास किया जाये? इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि “नहीं, जो दीख रही है वह रियल् है पर जो मिलती हुयी दीख रही है वह अन्‌रियल् है.” पर आंख तो एक ही है. यदि आंखपर आपको विश्वास है तो मिलती हुयी पटरीको भी सत्य मानो. और नहीं तो दोनों बातोंको मिथ्या मानो. इस तरह उनके तर्कमें भी दम तो है. क्षितिजपर हमें आकाश और पृथ्वी जुड़ते हुए दीखते हैं. जिस स्थानपर हमें मिलते हुए दीखते हैं, वहां हम पहुंचें तो वह क्षितिज आगे सरक जाता है. जो आंख हमें पृथ्वीकी सूचना दे रही है, जो आकाशकी सूचना दे रही है, वही तो क्षितिजकी भी सूचना दे रही है. इस तरह इस आंखसे मिलती इन्फॉर्मेशन्‌पर कैसे भरोसा किया जा सकता है? यह बात ही आइडियलिस्ट् फिलॉसॉफर् कहना चाह रहे हैं. यूरोप और भारत दोनोंमें इस मतके दार्शनिक हुए हैं जो कहते हैं कि सब कुछ आइडियल् है, रियल् नहीं है. ‘आइडियल्’ शब्दके दो अर्थ होते हैं. एक तो आदर्श और दूसरा काल्पनिक ‘Ideal’ means that which belongs to idea is ideal and that which does not belong idea is real. जो काल्पनिक नहीं है वह रियल् है. जो दिमागके भीतर है वह आइडियल् है और जो बाहर है वह रियल् है. इस अर्थमें आइडियलिज़म् और रियलिज़म् का भेद पैदा हुआ.

इस भेदके आधारपर यूरोपमें गल्फ् देशोंमें और अपने भारतमें इन दोनों ही मतोंके दार्शनिक बहुत हुए हैं. इसका प्रभाव इल्युज़न्के सिद्धान्तपर भी पड़ता है. पर यूरोपके दर्शनमें इस बारेमें इतना विस्तारसे विचार नहीं करनेमें आया, जब-तक साइकोलॉजीका विकास नहीं हुआ. पता नहीं भारतमें क्यों भगवान् बुद्धके समयसे ही इस भ्रमके सिद्धान्तके ऊपर इतना अधिक भार दिया गया. क्योंकि जगत् किस प्रकारका दिखायी दे रहा है, यह इस बातपर ही निर्भर करता है. आप जब इस भ्रमका/इल्युज़न्का स्वभाव समझ जायेंगे, तो आप जगत्के स्वरूपको भी समझ जायेंगे. इसमें मूल मुद्दा समझनेका यह माना गया कि यह जगत् हमको जैसा दिखायी दे रहा है वह भ्रम है कि रियल्? वह 'इल्युज़न्' है कि 'वॅलिड् नॉलेज्' है? इसी कारण अपने यहां इस भ्रमको इतना महत्त्व दिया गया है. मुझे आज भी याद है कि जब मैंने विधिपूर्वक वेदान्त सीखनेका आरंभ किया तो सबसे पहले मेरे पिताने मुझे 'थियरी ऑफ् इल्युज़न्' ही सिखायी थी. श्रीशंकराचार्यने भी अपने भाष्यका आरंभ इसीसे किया है. उनका तो सारा दारोमदार इसी सिद्धान्तपर आधारित है. क्योंकि वे मानते हैं कि जगत् मिथ्या है क्योंकि दीख रहा है, जैसे सपना दिखलायी देता है. सपना दिखता है पर सच्चा नहीं होता. इसी प्रकार जगत् भी दिख रहा है और वह सच्चा नहीं है. बुद्ध भगवान्का भी यही सिद्धान्त था कि जगत् मिथ्या है. उनका तर्क भी यही है.

महाप्रभुजी अपने वेदांतका आरंभ 'थियरी ऑफ् इल्युज़न्'से तो नहीं करते पर इस सिद्धान्तका महाप्रभुजीके मतमें भी बहुत महत्त्वपूर्ण रोल् है, इस बातसे तो इन्कार नहीं किया जा सकता. वे यह

तो नहीं मानते कि हमें जो वस्तु (ऑब्जेक्ट्) भ्रमसे दिखायी दे रही है, वह रियल् है. वे यह भी नहीं मानते हैं कि वह वस्तु अन्‌रियल् है. और जो श्रीशंकराचार्य और बुद्ध भगवान्‌का सिद्धान्त है कि इल्युज़न् अपरिभाषित है. अर्थात् उसकी परिभाषा दी ही नहीं जा सकती, महाप्रभुजी ऐसा भी नहीं मानते हैं. इन चार सिद्धान्तोंको तो महाप्रभुजी इन्कार करते हैं और इसको अन्यख्यातिके सिद्धान्तसे समझाते हैं. अन्यख्यातिका सिद्धान्त उन चारों सिद्धान्तोंसे भिन्न है.

(महाप्रभुजीका मत : भ्रम = अन्यख्याति = एकराशिज्ञान)

अब अपने पुराने विषयपर आयें कि यह इल्युज़न् एकराशि ज्ञान है, द्विराशि ज्ञान है कि बहुराशि ज्ञान है? महाप्रभुजीकी इस सिद्धान्तके बारेमें दृढ़ धारणा हैं कि इल्युज़न् एकराशि ज्ञान है. प्रभाकरका मत है कि इल्युज़न् एकराशि ज्ञान न हो कर स्मृति और पर्सेप्शन् का मिला-जुला रूप (द्विराशिज्ञान) है. वे अपने मतके समर्थनमें कहते हैं कि “आप यदि भ्रमके ऑब्जेक्ट्‌को एक स्वतंत्र मानोगे और उसे एकराशि ज्ञान मानोगे तो उससे एक समस्या खड़ी हो जायेगी कि ऑब्जेकट्‌ रियल् है या अन्‌रियल्, रियल् और अन्‌रियल् अथवा न तो रियल् और न अन्‌रियल्, इतनी सारी संभावनाएं खड़ी हो जायेगी और आप किसी निश्चयपर नहीं पहुंच पाओगे और इसकी मार पड़ेगी जागतिक ज्ञानके ऊपर, अपने दैनिक व्यवहारपर. क्योंकि जो दीख रहा है वह भी अन्‌रियल् है. अब एक बात समझो कि हम रेगिस्तानमें जायें तो हमें मरीचिका दिखायी देती है, हम इससे इन्कार नहीं कर सकते. काँचमें देखें तो अपना प्रतिबिम्ब हमें दिखायी देता है, इससे भी हम इन्कार नहीं कर सकते. इस तरह हमारे दैनिक अनुभवमें कई प्रकारके इल्युज़न् होते हैं. इसको गिनने लगें तो उसका पार नहीं आयेगा.

मैं पंडित जसराजजीके प्रोग्राम्‌में गया. वहां इतनी भीड़ थी

कि मुझे आगे आनेका चान्स् ही नहीं मिला. मैं बहुत पीछे बैठा था. मेरे आगे एक लंबे बालोंवाली लड़की बैठी है ऐसा मुझे लग रहा था. पीछे बैठे व्यक्तिने कहा ‘‘आप आगे सरकिये.’’ मैंने कहा ‘‘अरे भाई, आगे लड़की बैठी है, आगे सरकूंगा तो उससे टकरा जाऊंगा.’’ इंटरवल् तक यही झगड़ा चलता रहा. इंटरवल्के समय जब लाइट् जुड़ी तब उसने पीछे देखा. उसको तो दाढ़ी-मूंछ थी. मैं इतनी देर भ्रममें ही पड़ा हुआ था. पीछेसे तो वह एकदम लड़की लग रहा था. इस तरह इल्युज़न् तो अपने दैनिक जीवनमें होते ही रहते हैं. यह हमें ही होते हैं, ऐसा नहीं है. मनोविज्ञानमें पशु-पक्षिओंके ऊपर कई प्रयोग हुए हैं जिससे यह सिद्ध हुआ है कि उन्हें भी भ्रम होता है. साइंसमें एक प्रयोग किया गया कि एक स्थानपर आधी जमीन और आधा काँच साथ-साथ एक ही धरातलपर रखा गया. बिल्ली वहां जानेमें डरती थी. उसे लगता था कि वो गिर जायेगी. देखो, इल्युज़न् हो रहा है ना! कोई चिड़िया काँचके सामने आ जाती है तो चौंच मार-मार कर अपने आपको घायल कर लेती है. यह भी इल्युज़न् ही तो है. अभी भी कई लोग शेर और हाथी के सामने काँच रखते हैं और उनके व्यवहारकी जानकारी लेते हैं. इस तरह हम देख सकते हैं कि मनुष्यमें ही नहीं पर मनुष्येतर प्राणियोंमें भी इल्युज़न्का एक बहुत बड़ा रोल् है.

आपने खेतोंमें भी देखा होगा कि वहाँ किसान अपने अनाजको बचानेके लिए एक बांसका क्रॉस् बना देते हैं और उसे कोट पहना देते हैं. वह हवासे हिलता है तो चिड़िया वहांसे डर कर भाग जाती हैं. यह भी इल्युज़न् ही है. इस प्रकार चिड़ियोंको भी भ्रम होता ही है. अन्य प्राणी इससे कोई दर्शनशास्त्र नहीं गढ़ते हैं कि यदि एक स्थानपर भ्रम हो रहा है तो सारे जगत्को मिथ्या मानना. वह इसको कैसे मॅनेज् करते हैं, इस बातका अध्ययन आज-तक

किसीने किया नहीं है. पर मनुष्यने इसे कैसे मॅनेज् किया है, यह 'थियरी ऑफ् इल्युज़न्' इसी बातका इतिहास है. किसीने इसको ऐसे मॅनेज् किया कि यदि एक स्थानपर भ्रम हो रहा है तो सारा जगत् ही भ्रमरूप है, बिल्कुल उसी तरह कि यदि किसी व्यक्तिको हम एक बार झूठ बोलते पकड़ लें तो उसे सदाके लिए झूठा ही मान लेते हैं. जिसे अंग्रेजीमें 'जनरलाइज़ेशन्' कहा जाता है. हम किसी गाँवमें जायें और कोई टॅक्सीवाला हमें ठग ले तो हमें लगता है कि सारा गाँव ही ठग है. इस जनरलाइज़ेशन्के कारण इस थियरी-ऑफ्-इल्युज़न्में बहुतसे प्रभेद आते हैं. जैसे स्वप्नावस्थामें हमें जो विषय दीख रहा है, वह वहां होता नहीं है. इस कारण जाग्रत अवस्थामें भी जो दीख रहा है उसे मिथ्या मान लेते हैं. ज़ेन् दर्शनके एक दार्शनिक हुए हैं, उन्होंने एक गजबकी बात कही हैं कि "मुझे रातको सपना आया कि मैं तितली बन गया हुं." वहां-तक तो बात ठीक थी. पर जाग्रत अवस्थामें उन्होंने सोचा कि "क्या मैंने रातको तितलीका सपना देखा था कि तितलीने मेरे मनुष्य होनेका सपना देख रही है?" इस बातसे उसका अपने ऊपर आत्मविश्वास डगमगा गया. इसी प्रकार हमारा भी आत्मविश्वास छोटी-छोटी बातोंसे हिल जाता है. इसका एक ही कारण है कि हम आवश्यकतासे अधिक तार्किक हैं और अपने इस दोषके कारण अपनी commonsense अर्थात् व्यावहारिक समझ खो देते हैं. एक स्थानपर हमें भ्रम हो तो सभी वस्तुएं हमें मिथ्या लगती हैं.

इसका एक साधारण उदाहरण आपको देता हुं. दूरबीनसे आपको दूरकी वस्तु पास दिखलायी देती है. आप उस वस्तुको रियल् समझेंगे कि इल्युजन्? जो भी तुम्हें दूरबीनसे दिखलायी पड़ रहा है वह केवल प्रतिबिंब ही तो है. उसके लॅन्स्को इस प्रकारसे सजाया गया है कि हमें दूरकी वस्तु पास दिखलायी देने लग जाती है. इसी कारण दूरकी वस्तुको पास दीखे उसे हम रियल् समझते हैं. सारे

युद्धकी तैयारी दूरबीनपर ही निर्भर होती है. सारे अंतरिक्षका ज्ञान हमें दूरबीनके कारण ही होता है. पर पारिभाषिक दृष्टिसे देखें तो यह प्रतिबिंब होनेके कारण इल्युज़न् ही तो है. इस तरह कई बार हम इल्युज़न्पर विश्वास करते हैं और कई बार रियल् ज्ञानपर भी विश्वास नहीं करते. कई बार रियल् नॉलेज् भी विश्वसनीय नहीं होता, उदाहरणके लिए क्षितिजका भ्रम. ऐसे कई सारे ज्ञान हैं कि जिसका हमें भान हो रहा है पर वह विश्वसनीय नहीं है. पर हम अपना जागतिक पर्सेप्शन्का विश्वास इस कारणोंसे खोते नहीं हैं.

इस प्रकार मनुष्यकी बुद्धि बहुत ही अन्प्रेडिक्टेबली(अप्रत्याशित) व्यवहार करती है और उससे ही कई दर्शनशास्त्र विकसित हो जाते हैं. मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि पशु-पक्षिओंमें ऐसा प्रभेद नहीं होता होगा कि यह रियल् है या आइडियल्. वे सारे जगत्को भ्रम मानते होंगे कि रियल्! यदि यह वरदान है तो यह मनुष्य प्रजातिके लिए है और यदि यह शाप है तो भी मनुष्य जातिके लिए है. हम किसी भी वस्तुको देख कर उसका सिद्धान्त गढ़नेका प्रयास करते हैं, पशु-पक्षी ऐसा नहीं करते. ऐसा भी हो सकता है कि वे सिद्धान्त गढ़ते हों, पर उसका पता हमें नहीं चलता क्योंकि इस बारेमें हमने अभी-तक कोई प्रयोग नहीं किये हैं. पर हमने कई बातोंको देख कर उनके सिद्धान्त गढ़ लिए हैं.

इस बारेमें महाप्रभुजीका कहना है कि भ्रम राशिद्वयात्मक ज्ञान न हो कर एकराश्यात्मक ज्ञान है. जब प्रभाकर ऐसा कहता है कि यदि आप भ्रमको एकराशि ज्ञान मानोगे तो सभीको भ्रम ही मानना होगा. तो इस बारेमें महाप्रभुजीका कहना है कि यदि अनुभव और स्मृति, ज्ञानमें साथ जुड जाते हो (राशिद्वयात्मक) तो भ्रममें हमें ऐसा नहीं लगता कि “मैं इसे याद करनेका प्रयास कर रहा

हुं.'' इसके स्थानपर हमें ऐसा अवश्य लगता है कि ''मुझे यह दिखायी दे रहा है अथवा मैं पर्सीव् कर रहा हुं'' स्मृतिमें ऐसा लगता है कि ''मुझे याद आया'' इसके आधारपर महाप्रभुजी इसे द्विराशि ज्ञान नहीं मानते हैं, एकराशि ज्ञान मानते हैं. यह महत्त्वपूर्ण बात अन्यख्यातिके सिद्धान्तमें समझनी जरूरी है.

(मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भ्रमका स्वरूप)

और दूसरी यह, जो भारतीय दर्शनमें नहीं बतायी गयी है और शायद पाश्चात्यदर्शनमें भी नहीं है. फिर भी आधुनिक मनोविज्ञानने इस बारेमें बहुत सारे प्रयोग किये हैं और उन प्रयोगोंके आधारपर आधुनिक मनोविज्ञान हमें दो-तीन प्रकारकी इन्फॉर्मेशन् देता है. और वह इस प्रकार हैं कि 1.conditions of perception 2.illusion 3.halluciation 4.real knowledge.

1. conditions of perception (प्रत्यक्षानुभूतिकी पूर्वनियति) : जब भी हम किसी वस्तुको पर्सीव् करते हैं तो हमारी आंख अथवा कान की कुछ प्रिवेलिन्ग् कन्डिशन् होती हैं कि आंख देखेगी तो इसी प्रकार देखेगी, अन्य प्रकारसे नहीं देखेगी. जैसे अपनी आंख ब्लॅक् और व्हाइट् रंग देखती है और उसके बीचके सात रंग देख सकती है. इन्फ्रारेड् और अल्ट्रा-वॉयलेट् रंग हमें नहीं दिखायी देते, जो मधुमख्खीको दिखायी देता हैं. इससे हम समझ सकते हैं कि यहां हमारे ज्ञानकी सीमा आ जाती है. वस्तुके ऊपरसे यदि इन्फ्रारेड् लाइट् रिफ्लॅक्ट् होती हो, तो हम पर्सीव् नहीं कर सकते और यदि हमें पर्सीव् नहीं होती हो तो वह वस्तु हमें दिखलायी ही नहीं देगी और हमें वस्तुका अभाव लगेगा और अन्धकार दीखेगा. यदि आपको इन्फ्रारेड् लाइट् दिखलायी देती हो तो आप उसको पर्सीव् कर सकते हो. जैसे एक्स्-रेकी प्लेट्, उस एक्स्-रेको रजिस्टर् कर सकती है. इसी कारण शरीरके अंदर क्या है वह देख सकती है. अपनी आंखका रेटीना एक्स्-रेको रजिस्टर् नहीं कर सकता, इसलिए

हमें वहां अंधकार ही नज़र आता है. अपनी आंखको रंग कैसे दीखते हैं? अपने रेटीनामें लाइट्की अलग-अलग तरंगोंको देखनेके लिए रॉड् (वर्णानुभाविका शलाका) और कॉन् (वर्णानुभावक शंकु) होते हैं. इन्हींके कारण हमें सारे रंग दिखायी देते हैं. इस स्थितिमें जो मधुमख्खीको दिखायी देता है, वह हमें नहीं दिखायी देता. सेनाके अफसरों, जिनके पास इन्फ्रारेड् चश्मा होता है, उन्हें रातमें दिखायी देता है. वह किसी भी साधारण व्यक्तिको दिखायी नहीं देता. तो क्या हम इससे यह सिद्धान्त बना सकते हैं कि उन्हें इल्यूज़न्/भ्रम हो रहा है? अब प्रश्न उठता है कि इनमें सही कौन है और गलत कौन?

कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्के कारण हमें रेल्की दो पटरियाँ एक होती दिखायी देती हैं, जिसके कारण दूरकी वस्तु हमें छोटी दिखायी देती है और पासकी वस्तु बड़ी दिखायी देती है, दरअसल छोटी अथवा बड़ी नहीं होती पर पर्सेप्शन्की कन्डिशन्के कारण ऐसा दीखलायी देता है. एक उदाहरण आपको देता हुं, आपको पता ही होगा कि पृथ्वीकी छाया चंद्रपर पड़नेके कारण चन्द्रग्रहण होता है. पर सूर्यग्रहणमें, पृथ्वी और सूर्य के बीचमें चंद्र आ जानेके कारण होता है. चंद्र तो पृथ्वीसे एक तिहायी अनुपातमें छोटा है. फिरभी चंद्रग्रहणमें सूर्य ढक जाता है. शुक्रग्रह तकरीबन पृथ्वीके ही आकारका होनेके बावजूद शुक्रग्रहणके समय केवल वहां एक काला बिंदु ही दिखायी देता है. कुछ समय पूर्व शुक्रग्रहणके समय ऐसा हुआ कि एक हवाई-जहाज भी सूर्यके आगेसे गुजरा. हमारे देखनेमें वह जहाज सूर्यसे बड़ा दिखायी दे रहा था जबकि शुक्रग्रह केवल एक बिंदु जितना. सूर्य अधिकसे अधिक एक फुटबॉल्के आकारका दिखायी दे रहा था. अब इस प्रकारके पर्सेप्शन्को कैसे वर्गीकृत करना? साधारणतया जिसने साइकोलॉजी नहीं पढ़ी है, उस व्यक्तिकी धारणा ऐसी होगी कि यह तो भ्रम ही है. पर आधुनिक मनोविज्ञान इस घटनाको

भ्रम नहीं मानता. क्योंकि भ्रममें और कन्डिशन्-ऑफ्-पर्सेप्शन्में प्रभेद करता है. “Any conditon of perception may produce illusion, if you are not aware that this is merely a condition of perception. If we are aware then this will not produce illusion. The two circles of conditions of perception and illusion some time get overlapped” वह किस प्रकार? क्योंकि अपनी अनुभूतिमें आती वस्तु कभी केवल कन्डिशन्-ऑफ्-पर्सेप्शन्के कारण अनुभूत होती है और कभी केवल भ्रम अनुभूत होता है कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्के बिना. कुछ कॉमन् ऐरिया ऐसा भी है जहां दोनों(कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् और इल्युज़न्) मिल जाते हैं. मॉर्डन् साइकोलॉजी इसके बाद एक और विभाग इसमें करती है जिसे हम ‘हॅल्युसिनेशन्’ कहते हैं. हॅल्युसिनेशन् और इल्युज़न् के भेदको भी हम समझें.

सबसे पहले तो हमें यह समझना होगा कि वॅलिड् पर्सेप्शन् और कन्डिशन्-ऑफ्-पर्सेप्शन्, यह दोनों ही अलग नहीं किये जा सकते. ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि पर्सेप्शन् होगा तो वह अपनी कन्डिशन्के साथ ही होगा, उनके बिना वह संभव नहीं है. और यदि आपको यह सिद्धान्त पता है कि यह पर्सेप्शन्की कन्डिशन् है तो You can differentiat between real content of knowldge and the condition. इस प्रक्रियासे आपको वास्तविक वस्तुका ज्ञान होना संभव है. इस तरह पर्सेप्शन्का जहां-तक सवाल है, वहां इतना यह कार्य कठिन नहीं है. पर जहां भ्रम ही हो रहा है, उदाहरणके लिए यहां देखो!

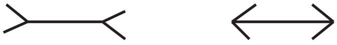

मैने दोनों लाइन् एक बराबर बनायी हैं. पर यदि मैं इनको बंद कर देता हुं तो लाइन् छोटी लगेगी और यदि खुला छोड़

देता हुं तो दोनों बड़ी लगेगी. बस यही 'कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्' कहलाता है. जिन्होंने साइकोलॉजी नहीं पढ़ी है, वह इसे भ्रम समझेंगे और जिन्होंने पढ़ी है वह इसको भ्रम न कह कर 'कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्' कहेंगे. जैसे रेल्की दो पटरियाँ मिलती दिखायी देती हैं वह कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् है.

अब इन दोनोंमें प्रभेद कैसे समझना? तो 'कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्' हमेशा एक ही प्रकारसे व्यवहार करता है. अत: उनमें एक प्रकारकी नॉर्मल्सि होती है. इनके दो विभाग किये जा सकते हैं. पहला नॉर्मल् और दूसरा एब्नॉर्मल् पर्सेप्शन्. नॉर्मल् पर्सेप्शन् हमेशा अपने साथ कोई न कोई कन्डिशन् लिए होगा. जब कि एब्नॉर्मल् पर्सेप्शन्में कुछ अनियमितताएं होती हैं. इसी कारण उसको कन्डिशन् ऑफ पर्सेप्शन् नहीं कहा जा सकता, अपितु 'भ्रम' ही कहा जाता है. बस यही भेद इनमें है. यह दर्शनके हिसाबसे मान्य नहीं है पर मनोविज्ञान इसकी सहमति देता है.

2. Illusion and 3. halluciation अब प्रश्न आता है हॅल्युसिनेशन् और इल्युज़न् के भेदका. इसमें एक बात समझनेकी है कि इल्युज़न् तभी होता है जब कोई बाह्य विषय हमारे दिमागको उत्तेजित करता है (When external objective stimulation is there) और हॅल्युसिनेशन्के लिए बाह्य विषयका होना आवश्यक नहीं है. (Hallucination can ocuur without external stimuli) उदाहरणके लिए मुझे भूत दिखायी दे रहे हैं, मरे हुए माता-पिता दिखायी दे रहे हैं. इसमें कोई बाहरी विषय अपनेको उत्तेजित करनेवाला तो है नहीं, इस कारण इसको 'हॅल्युसिनेशन्' कहा जायेगा.

मेरे एक परिचित व्यक्ति थे. उनके कंधेपर हमेशा भूत आ कर बैठ जाता था. रहते वह बोरीवलीमें थे और उनकी फॅक्टरी साउथ् मुम्बईमें थी. वह जब भी वहां जाते थे तो बीचमें पार्लामें

रुक जाते थे और मुझे दंडवत् करके ही आगे जाते थे. यही काम वह वापस आतेमें भी करते थे. मुझसे रहा नहीं गया और मैंने उनसे एक दिन पूछ ही लिया कि “आप इतना सब क्यों करते हो?” वह बोले “मेरे कंधेपर भूत आ कर बैठ जाता है, इसलिए आपको दंडवत् करके जाता हुं तो वह कम-से-कम मुझे बाधा तो नहीं कर पाता.” मैंने कहा “आपके ऊपर भूत कितने समयसे बैठ रहा है?” वह बोले “करीब छह महीनेसे” मैंने कहा “यदि छह महीने बैठनेके बाद भी आपको भूत हानि नहीं पहुंचा रहा है तो आने वाले छह सालमें भी आपको वह हानि नहीं पहुंचायेगा. आप बेकार ही यहां आ कर अपना समय बर्बाद न करें.” वह बोले “नहीं, मुझे तो बहुत डर लगता है. आप कोई पाठ बताओ कि जिससे यह बाधा दूर हो.” मैंने कहा “इसका कोई पाठ है ही नहीं. यह तो एक प्रकारका हॅल्युसिनेशन् है” उसे मेरी बात गले नहीं उतरी. उसके बाद उसने किसी औरसे बात की. दूसरे व्यक्तिने उसे बता दिया कि जो भूत तुम्हारे कंधेपर बैठता है, उसका नाम नारियलपर लिख कर समुद्रमें डाल दो तो भूत भाग जायेगा. उसने दो तीन बार ऐसा किया. फिर कुछ दिन बाद मेरे पास आया और बोला कि “वह भूत तो कंधेसे उतर कर अब मेरे गलेमें आ गया है.” मैंने कहा “गलेमें आ गया है तो कोई जुलाबकी दवाई खा लो. दस्तके साथ निकल जायेगा.”

इस तरह हॅल्युसिनेशन् किसी बाहरी स्टिम्युलेशन्के कारण न हो कर अपने आंतरिक स्टिम्युलेशन् के कारण होता है. इल्युज़न् किसी बाहरी विषयकी उत्तेजनाके कारण होता है. बादमें मुझे पता चला कि उस व्यक्तिके परिवारमें किसीकी शरीरमें आग लगा कर आत्महत्यासे मृत्यु हुयी थी और वह उसको बचा नहीं पाया था. इसी बातकी आत्मग्लानिके कारण उसे ऐसे हॅल्युसिनेशन् होते थे. वह आत्मग्लानि ही उसे भूत बन कर आती थी. इसके लिए कोई बाहरी विषय

जिम्मेदार नहीं था. उसके अंदरकी ही परिस्थिति उसे ऐसा भ्रम पैदा कर रही थी. इस प्रकार १.कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् २.इल्युज़न् ३.हॅल्युसिनेशन्, यह तीन अवस्थाएं मॉर्डन् साइकोलॉजीने सोची हैं.

इसे अपने यहाँ महाप्रभुजीने भी कन्डिशन् ऑफ पर्सेप्शन्के बारेमें आजसे पांचसौ साल पहले अपने विचार रखे हैं, मॉर्डन् साइकोलॉजीके जन्मसे बहुत पहले. ऐसा नहीं है कि केवल महाप्रभुजीने ही इस बारेमें अपने विचार रखे हों, और भी बहुतसे भारतीय दार्शनिकोंने अपने-अपने विचार इस बारेमें रखे हैं कि हमें पर्सेप्शन् किस प्रकार होता है. और पर्सेप्शन् होता है तो उसके होनेकी कन्डिशन् तो होगी ही. एकदम प्रसवपीड़ाकी तरह है. प्रसव होना है तो पीड़ा तो होगी ही. अर्थात् पर्सेप्शन् होगा तो उसकी कोई न कोई कन्डिशन् तो होगी ही. वह हमारे यहां किस प्रकार पारिभाषित की गयी है, वह मैं आपको बतानेका प्रयास करूंगा जब पर्सेप्शन्का विषय आयेगा तब. इन कन्डिशन्का रोल् इल्युज़न्में भी होता है. जब भी वह कन्डिशन् नहीं होती, तब किसी न किसी प्रकारका इल्युज़न् हमें हो जाता है. यह भी समझ लेना यहां आवश्यक है कि हमारे यहां इसके बारेमें कोई अलग विचार नहीं रखे गये हैं. इसका कोई विशेष सिद्धान्त नहीं बनाया गया है. मॉर्डन् साइकोलॉजीमें यह विचार बहुत ही व्यवस्थित ढंगसे किया गया है. पूरा एक अध्याय इस विषयपर ही है. वे इससे इल्युज़न्को पृथक् करते हैं. क्योंकि इल्युज़न्को ये लोग 'एरर्'(error) कहते हैं. एरर् एक अलग ही वस्तु है. वे इसका प्रभेद इस प्रकार करते हैं कि एरर् नॉर्मल् कन्डिशन्के कारण न हो कर, एब्नॉर्मल् कन्डिशन्के कारण होता है. उसके बाद आता है हॅल्युसिनेशन्, जो मैंने आपको बताया कि where external stimuli does not exist yet you have perception.

(स्वप्नका स्वरूप)

अब प्रश्न यह उठता है कि स्वप्न क्या है? क्या स्वप्न

कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् है कि इल्युज़न् है कि हॅल्युसिनेशन् है? इस बारेमें मॉर्डन् साइकोलॉजी और अपने यहां भी पुष्कल विचार हुआ है. दोनों जगह यह बात कही गयी है कि कुछ स्वप्न कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्से आते हैं, कुछ स्वप्न इल्युज़नेरी होते हैं और कुछ स्वप्न हॅल्युसिनेटरी होते हैं. कुछ स्वप्न इन्ट्रयुशन्के कारण भी आते हैं. ऐसा केवल अपने यहां कहा है और कहीं नहीं कहा गया. इन्ट्र्युटिव् स्वप्नका विचार मॉर्डन् साइकोलॉजीमें नहीं किया गया है और किया गया हो तो मेरे ध्यानमें नहीं आया है. यूरोपमें ऐसा मत है कि अधिकतर वैज्ञानिकको अपनी इन्ट्र्युटिव् स्वप्नके कारण ही आविष्कार कर पाये. दिन भर काम करते रहनेसे यह किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाते थे और रातको इन्हें समस्याका हल स्वप्नमें मिल जाता था. सिलाई मशीन्के आविष्कारकके बारेमें भी ऐसा कहा जाता है कि दिनमें उसे समझ नहीं आ रहा था और रातको स्वप्नमें उसका हल मिला. यह इल्युज़न् पर्सेप्शन् अथवा हॅल्युसिनेशन् नहीं था अपितु इन्ट्र्युटिव् स्वप्न था.

इस सभीका कारण यह है कि बाहरी दुनियाके बारेमें जो सूचनाएं हमें मिलती हैं, वह अपनी अवेयरनेस्के कारण हमें मिलती हैं. वैज्ञानिक, दर्शनशास्त्रियोंको बदनाम करते कि "दार्शनिक लोग आराम कुर्सीपर बैठ कर कुछ भी विचार लेते हैं और उस हिसाबसे कोई भी सिद्धान्त गढ़ लेते हैं" पर एक बात समझो कि जब कोई भी दार्शनिक कोई विचार करता है, हो सकता है कि वह ईज़ी चेयर् मॅथड् हो, हो सकता है कि वह वैज्ञानिकोंकी तरह लॅब्में किये गये प्रयोगोंके आधारपर न हो. पर जो भी वैज्ञानिक लॅब्में एक्सपेरिमॅन्ट् करते हैं; वह अपने ऍक्सपीरियन्स्को भी तो ऑब्जर्व कर रहे है. इसका अर्थ यह हुआ कि अंततः तो आप अपने ऑब्ज़र्वेशन्का ही अर्थघटन कर रहे हो! क्योंकि एक्सपीरियन्स्(अनुभव)से एक्सपेरिमेंट् (परीक्षण) शब्द बना है और ऑब्ज़र्वेशन् (निरीक्षण)

भी ऑब्जर्वसे ही बना है. अंतर तो केवल इतना ही हुआ कि आप लॅब्में जा कर, कर रहे हो और दार्शनिक उसे कुर्सीपर बैठ कर, कर रहा है. दोनों एक-दूसरेको गालियाँ दें यह मुझे कुछ उचित नहीं लगता. दोनोंको एक-दूसरेकी बात सुननी चाहिये. और दोनोंकी सारी बातें सच्ची हैं, ऐसा नहीं है और दोनोंकी सारी बातें झूठी हैं, ऐसा भी नहीं है. मेरा ऐसा मानना है कि हमें तटस्थ रूपसे इनका विचार करना चाहिये.

(मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे अन्यख्यातिका विचार)

इसी कारण हम देख सकते हैं कि अपने यहांकी अन्यख्यातिके मुद्देपर भी; उदाहरणके लिए जैसे मैंने आपको टॅलिस्कोप् दूरबीन अथवा माइक्रोस्कोप् की जो बात समझायी, उनको अब हम 'इल्युज़न्' कहेंगे, 'हॅल्युसिनेशन्' कहेंगे कि 'कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्' कहेंगे? अर्थात् आपको यदि किसी उपकरणके द्वारा कोई सूचना मिल रही हो तो वह कन्डिशन् ऑफ पर्सेप्शन् नहीं हो सकती क्योंकि वह तो उपकरण है. माइक्रोस्कोप् हो, टॅलिस्कोप् हो, सोनोग्राफी हो अथवा एक्स-रे हो, वह कन्डिशन् ऑफ पर्सेप्शन् नहीं हो सकती और न ही ॲक्सीडेन्टल् हो सकती है. क्यों ॲक्सीडेन्टल् नहीं है? क्योंकि वह तो हमारे अपने हाथमें है. हम उसका प्रयोग करें अथवा न करें. कुछ निमित्तके कारण इल्युज़न् हो सकता है. एक प्रसिद्ध चुटकुला है. एक बार कोई हॅन्गिन्ग्-गार्डन्में खड़ा था. उसे वहांसे जानेके लिए टॅक्सी नहीं मिल रही थी. उसने दूरबीनसे नीचे देखा तो चौपाटीमें उसे टॅक्सी बिल्कुल पास दिखलायी दी. उसने टॅक्सीवालेको एकदम धीरे आवाज़ दे कर अपने पास बुलाया. अब बताओ कि वहां इतनी दूरसे कोई व्यक्ति उसकी आवाजको सुन सकता है? यह इल्युज़न् है. माने वह व्यक्ति दूरबीनके द्वारा दिये जाते अपने अनुभवको इल्युज़न्की तरह उपयोगमें ला रहा है. पर जो लोग दूरबीनका नियमसे प्रयोग करते हैं, वे समझ सकते हैं कि यह कोई ॲक्सीडेन्टल् कन्डिशन्

नहीं है. इस कारण इसको इल्युज़न् माननेका कोई कारण नहीं है. आपके हाथमें होनेसे, जब भी हम चाहें उसका उपयोग कर सकते हैं और जब नहीं चाहें तो उसका उपयोग नहीं करते. क्योंकि हम टॅलिस्कोप् माइक्रोस्कोप् आदिके द्वारा दी गयी सूचनाएं और ॲक्सीडेन्टल् कन्डिशन्स्में प्रभेद कर सकते हैं.

आपने शायद यह प्रयोग नहीं किया होगा! समय मिले तो कभी रातके समय यह प्रयोग करके देखना. घरकी सारी लाइट्र् बंद करके केवल एक किसी खिड़कीका पर्दा खुला छोड़ देना कि जिससे बाहरकी लाइट्रका प्रकाश आपके सोनेके कमरेके भीतर आ सके. आप उस आती हुयी लाइट्रके स्पॉट्रको देखते रहो. थोड़ी देर बाद आपको लगेगा कि वह आपके पास आ रहा है. अब आप बताएं कि यह पास आती हुयी लाइट्र, कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् है, इल्युज़न् है कि हॅल्युसिनेशन् है? जब हम इस बातको पूरी तरह समझ नहीं पाते हैं तो ऐसा होता है. एक बार मेरे साथ ऐसा ही हुआ. एक लाइट्रका स्पॉट्र मेरी खिड़कीसे आ रहा था और मैं लगातार उसकी ओर टकटकी लगा कर देख रहा था. धीरे-धीरे मुझे लगा कि वह मेरे पास आ रहा है. मैं घबरा गया कि यह हो क्या रहा है? इस तरहके अनुभवको हम 'इल्युज़न्' कह सकते हैं. पर यदि इसी बातकी आप कई बार पुनरावृत्ति करें और हमें इसी प्रकारका अनुभव हो रहा है तो यह 'कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्' कहलायेगा, इल्युज़न् नहीं. इल्युज़न् और कन्डिशन् ऑफ पर्सेप्शन् में इतना ही भेद है कि कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् हमेशा रहता है और इल्युज़न्में ऐसा अनुभव ॲक्सिडॅन्टली होता है जिसमें आपकी इच्छाके अनुसार आपका अनुभव रिपीट्र नहीं होता. हॅल्युसिनेशन् तो आंतरिक अनुभव है, बाह्य नहीं.

(भारतीय दर्शनमें भ्रमका विचार)

हमारे यहां भी तीन सिद्धान्त हैं. एक निरधिष्ठानक भ्रम, जिसको

वॅस्टर्न् साइकोलॉजी 'हॅल्युसिनेशन्' कह रही है अर्थात् अधिष्ठान नहीं है. आपका ज्ञान जब कोई अधिष्ठान न हो तो उसे 'निरधिष्ठानक भ्रम' कहा जाता है. पर आपका ज्ञान यदि कोई सच्चा अथवा जूठा सहारा लेता है तब वह 'साधिष्ठानक भ्रम' होता है. जैसे हम साइकल् चलाना सीखते हैं तो जो व्यक्ति सिखा रहा है वह पीछेसे पकड़ कर सहारा देता है. फिर सीखनेवालेको बिना बताये धीरे-धीरे वह अपना हाथ हटा लेता है. उसे यह लगता है कि अभी भी पीछेसे वह व्यक्ति उसे सहारा दे रहा है. यदि उसे पता चल जाये कि पीछेसे उसने साइकल् नहीं पकड़ी है तो गिर जायेगी. जब-तक उसे इस भ्रमका विश्वास होता है कि पीछेसे किसीने पकड़ रखा है, तब-तक उसका आत्मविश्वास बना रहता है. यह साइकल् सीखनेकी एक प्रक्रिया है. किसीने पीछेसे पकड़ रखा है, यह इल्युज़न् (साधिष्ठानक भ्रम) है. इस प्रकार कभी यह भ्रम भी तो हमें सहायता करता ही है. ठीक उसी प्रकार कि जिस प्रकार काँचमें अपना प्रतिबिंब हमें अपनी शेविंग करनेमें, शृंगार करनेमें सहायता करता है. अब यह प्रत्यक्षानुभूतिकी पूर्वनियति हो या इल्युज़न् हो पर क्योंकि अधिष्ठान है और हमें अधिष्ठानका भान भी है. इस प्रकार इल्युज़न्का भी लाभ मिल सकता है. यह आवश्यक नहीं है कि रियल् ज्ञानका ही हमें लाभ मिले.

(महाप्रभुजीकी दृष्टिसे अहंता-ममता = सोपाधिक भ्रम = नेसेसरी कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्)

और एक बात समझो कि थियोलॉजिकली और रिलीजियसली जिसको हम 'अहंता-ममता' कहते हैं, वह हमारा भ्रम ही तो है. देखो, अपनी अहंता अपने 'मैं'का प्रतिनिधित्व करती है और अपनी ममता अपने 'मेरे'का. अब यह 'मैं' क्या अपनी देह है? यदि यह 'मैं' अपनी देहका प्रतिनिधित्व करती है तो मुर्देका भी मैं होना चाहिये. यदि यह अपनी कॉन्शियसनेस्का प्रतिनिधित्व करती

हो तो हमें अपनी देहको ‘मैं’ नहीं कहना चाहिये. यह तो एक अर्थमें कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् है, महाप्रभुजीके मतानुसार. इसका कोई ऑब्जेक्ट् तो है नहीं. इतना होनेपर भी आप इसको हॅल्युसिनेशन् नहीं कहते हो. क्योंकि यह कोई एब्नॉर्मल् नहीं, नॉर्मल् क्रिया है, जब कि हॅल्युसिनेशन् अपनी अवेयरनेस्‌की एक एब्नॉर्मल् क्रिया है. इसी कारण ‘मैं/अहंता’को हॅल्युसिनेशन् न कह कर ‘कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन्’ कहा है. हम जन्मसे मृत्यु तक इसी भ्रममें जीते हैं कि ‘मैं’ क्या है? यदि हम कहें कि हमारी आत्मा ‘मैं’ है, तो देह नहीं हे. पर हमें अपने ‘मैं’का भान तो हो रहा है. यह तो एक अपनी नेसेसरी कन्डिशन् ऑफ् अवेयरनेस् है. यदि आपको अपने होनेका अर्थात् ‘मैं’का भान नहीं है तो आपको किसी दूसरे विषयका भी भान नहीं होगा. इस तरह हम कह सकते हैं कि ‘मैं’ एक भ्रम ही है.

इसी प्रकार ‘मेरा’भी एक भ्रम ही है. क्योंकि आप ‘मेरा’ किसे कह रहे हो? आपका है क्या? मुम्बईका एक प्रसिद्ध शायर है, उसने एक बहुत ही अच्छा शेर लिखा है. “तारुं कशुं न होय तो छोडीने आव तुं, तारुं ज बधुं होय तो लईने जा तुं” अगर जिसको तु अपना कह रहा है, वह तेरा है तो उसे दुनिया छोड़ते समय अपने साथ ले कर जा. पर कोई साथ ले कर तो नहीं जाता. और तेरा कुछ यदि है नहीं तो उसे आज ही छोड़ दे. पर कोई छोड़ता भी नहीं है. तो हो गया न भ्रम! इसीलिए अहंता-ममताको अपने यहां ‘भ्रम’ कहा गया है. यह भ्रम तो है पर नेसेसरी भ्रम है अर्थात् कन्डिशन् है.

इस प्रकार अहंता और ममता हमारे होनेकी अनुभूतिकी नेसेसरी कन्डिशन् हैं, जैसे क्षितिज है. अब क्योंकि यह नेसेसरी कन्डिशन् हैं, इसलिए हम इसको इल्युज़न् न कह कर इसको जीवनकी आवश्यकताओंमें

मान कर इसका सदुपयोग करते हैं. जैसे ब्रह्मसम्बन्धके समय हम कहते हैं कि "हे प्रभु, मैं स्वयंको और अपनी प्रत्येक वस्तुको आपको समर्पित करता हुं." अरे भाई, जब मैं जैसा कोई विषय है ही नहीं तो किस वस्तुका समर्पण कर रहे हो? और जब तेरा कुछ है ही नहीं तो किसका समर्पण कर रहे हो? पर यह अपनी नेसेसरी कन्डिशन् है. उनका समर्पण करनेसे भक्ति उत्पन्न होती है, यही इस बातमें छुपा हुआ सौंदर्य है. जैसे शीशेमें अपना प्रतिबिंब देख कर हम अपना शृंगार कर पाते हैं, क्योंकि यह नेसेसरी कन्डिशन् है पर्सेप्शन्की, तो हम इसका सदुपयोग कर सकते हैं.

जहां अधिष्ठान न हो अर्थात् किसी भी ऍक्स्टर्नल् स्टिम्युली (बाहरी उत्तेजक पदार्थ)के बिना, अपनी कॉग्नेटिव् फॅकल्टीमें (ज्ञानके विभागमें) इन्टर्नल् स्टिम्युलेशन् हो रहा है कि जिसके कारण हमें कोई भ्रम हो रहा है तो वह [१]हॅल्युसिनेशन् या निरधिष्ठानक भ्रम है. वह भ्रम किसपर हो रहा है, यह कहना कठिन है क्योंकि यह अपने भीतरसे हो रहा है. इसे सरल भाषामें समझना हो तो ऐसा कह सकते हैं कि खुली आंखसे सपने दीखने लगें तो हॅल्युसिनेशन् है.

और जिस भ्रमका अधिष्ठान हो उसे हम [२]'इल्युज़न्' या 'साधिष्ठानक भ्रम' कहते हैं. इसमें किसी वस्तुका अनुभव करनेमें बाहर अथवा भीतर की कोई कन्डिशन् कुछ मिस्चिफ् कर रही हो, तो उसके कारण हमें इल्युज़न् होता है. जैसे कोई रस्सी लटकी है और प्रकाश कम होनेके कारण साँप होनेका अनुभव होता है. रस्सी तो हमें दीख रही है पर साफ नहीं दीखनेके कारण हमें उसपर साँप होनेका भ्रम हो जाता है. यह साधिष्ठानक भ्रांति है.

साधिष्ठानक भ्रमकी भी अपने यहां दो वॅरायटी की गयी हैं,

[२/क] निरुपाधिक(अन्‌कन्डिशन्स्‌) और [२/ख] सोपाधिक(कन्डिशन्स्‌). ‘उपाधि’ अर्थात्‌ कन्डिशन्‌. गुजराती भाषामें उपाधिके दो अर्थ होते हैं. एक तो आधि-व्याधि और उपाधि. किसी प्रकारकी तकलीफको ‘उपाधि’ कहा जाता है और दूसरा जैसे कि बी.ए., एम.ए. इत्यादिको भी ‘उपाधि’ कहा जाता है. यहां जिस अर्थके संदर्भमें उपाधि कहा जा रहा है, वह ये दोनों नहीं हैं. यहां उपाधिका कोई तीसरा ही अर्थ है. विषयका जो आपको ज्ञान हो रहा है वह शुद्ध विषयके ज्ञानके कारण न हो कर, विषयके आस-पास कोई उपाधि है, जिस उपाधिके कारण आपको विषयका सही ज्ञान नहीं हो पा रहा है.

निरुपाधिक और सोपाधिक भ्रमका प्रभेद किस प्रकार जाना जाय. यदि अधिष्ठानका आपको ज्ञान हो रहा है तो निरुपाधिक भ्रम नहीं होगा. जैसे यदि आपको पहचान हो रही है कि यह रस्सी है तो आपको उसके साँप होनेका भ्रम नहीं होगा. जब-तक आपको रस्सीका ज्ञान नहीं है, तब-तक आपको उसपर साँप दीखेगा. अर्थात्‌ किसी अधिष्ठानपर कोई वस्तु आपको किसी और रूपमें अनुभवमें आ रही है, अर्थात्‌ रस्सी साँपकी तरह अनुभवमें आ रही है. इस तरह यह बिना उपाधिका साधिष्ठानक निरुपाधिक भ्रम है.

और यदि अधिष्ठानका तत्त्वज्ञान हो रहा है तो भी भ्रम निवृत्त नहीं हो पा रहा है तो उसे ‘सोपाधिक भ्रम’ कहा जाता है. जैसे यदि हमें पीलिया हुआ है तो हमें सब कुछ पीला ही दिखायी देगा. हम अच्छी तरह जानते हैं कि यह पीला नहीं है, पर आंखमें पीलापन हो जानेसे सारा जगत्‌ हमें पीला दिखायी देता है. यह उपाधि है, कन्डिशन्‌ है. इसका प्रसिद्ध उदाहरण अपने प्राचीन शास्त्रोंमें जपा-कुसुम और स्फटिक के रूपमें दिया गया है. स्फटिकका जो पत्थर होता है उसके पास यदि लाल रंगका फूल रख दें तो वह स्फटिक भी लाल रंगका दिखलायी देता है. उसे रंगना नहीं

पड़ता है. इस तरह यह उपाधि हो गयी. यह जो हमें पत्थरके रंगीन होनेका भ्रम हो रहा है उसे 'सोपाधिक भ्रम' कहा जाता है.

इसलिए जो लोग जगत्को भ्रमरूप मानते हैं, उनके तीन उदाहरण ले लें.

बौद्धमत : निरधिष्ठानक भ्रम : बुद्ध भगवान् ऐसा नहीं मानते कि जगत्का भ्रम हमें कहीं हो रहा है. अर्थात् कि किसी अधिष्ठानपर नहीं हो रहा है क्योंकि कोई अधिष्ठान है ही नहीं पर भ्रम हो रहा है. जैसे सपना हमें दीख रहा है वह कहीं दिखायी नहीं दे रहा है, बस वह दीख रहा है.

शांकरमत : साधिष्ठानक भ्रम : सोपाधिक एवं निरुपाधिक. श्रीशंकराचार्य भी जगत्को भ्रम मानते हैं पर वे भ्रांतिरूप जगत्को मानते हैं "ब्रह्मके ऊपर हमें जगत्की भ्रांति हो रही है" ऐसा वे कहते हैं. यह साधिष्ठानक भ्रम हो गया.

श्रीशंकराचार्यके मतके हिसाबसे इस जगत्का हमें जो भ्रम हो रहा है, ब्रह्मके अधिष्ठानपर, वह सोपाधिक है कि निरुपाधिक है? इस बारेमें शांकरमतमें एकमति नहीं है. कभी वे उसको सोपाधिक कहते हैं तो कभी निरुपाधिक. निरुपाधिककी बात तो हम सरलतासे समझ सकते हैं और सोपाधिकका उदाहरण मैंने आपको स्फटिक और जपा-कुसुम (जासवंती) से दिया. यदि उस कुसुमको वहांसे हटा लिया जाये तो उस स्फटिकका तत्त्वज्ञान हमको होता है कि स्फटिक लाल नहीं है. इस तरह जब-तक उपाधि नहीं हटती है तब-तक उस उपाधिके कारण प्रत्यक्ष हमें होगा कि स्फटिक लाल रंगका होता है. इस तरह मायाकी उपाधिके कारण हमें जगत्की भ्रांति हो रही है. ब्रह्म स्वयं जगत्के रूपमें परिणत नहीं होता है. इस प्रकार शंकरमतके अनुसार सोपाधिक ब्रह्म माना जा सकता है.

इस तरह शंकरमतमें इस बारेमें एक मत नहीं है, सोपाधिक मत है और निरुपाधिक भी है.

अपने यहां अहंता-ममतात्मक संसारको मिथ्या माना गया है, उसमें सोपाधिक भ्रमका जो उपरोक्त मॉडल् है, वह एकदम फिट् बैठता है. क्योंकि अपने कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि अहंकार चित्त प्राण अंत:करण इत्यादि जो हैं उन्हें चेतन नहीं माना गया है. और जो चेतना है, उसके यह फन्क्शन् नहीं हैं. पर दोनोंके आजू-बाजू होनेके कारण हमें यह भ्रम होता है कि मेरी आंख हैं, मेरे कान हैं वगैरह. इसलिए सोपाधिक भ्रमका यह परफॅक्ट् उदाहरण है. बरसातके दिनोंमें हमें इन्द्रधनुष दिखायी देता है,(वह निरुपाधिक होते हुए कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् है. भ्रम नहीं है.) दूरबीनसे जो दूरकी वस्तु है वह पास दिखायी देती है, (वह सोपाधिक होते हुए कन्डिशन् ऑफ् पर्सेप्शन् है. भ्रम नहीं है, यदि सचमुचमें पास न माने तो!).

प्रश्न : क्या दूरबीनका उदाहरण सोपाधिकका है?

उत्तर : दूरबीनसे देखनेपर आपको भ्रम हो रहा है कि नहीं, वह इसपर निर्भर करेगा. जो दीख रहा है, उसे हम भ्रम मान रहे हैं कि नहीं? यदि हमें पता है कि दूरकी वस्तु ही हमें पास दीख रही है तो वह भ्रम नहीं, कन्डीशन्-ऑफ्-पर्सेप्शन् है. सोपाधिक भ्रम नहीं है. किसी कन्डीशन्के कारण ऐसा पर्सेप्शन् हमें हो रहा है. उसमें भ्रमकी संभावना तो है. पर यदि हमें ज्ञान है कि यह दूरबीनके कारण हमें दूरकी वस्तु पास दिखायी दे रही है तो वह भ्रम नहीं है. जैसे त्रिचूरमें एक कृष्णका मंदिर है. वहां एक दंपति दर्शन करने गया. पति बाहर स्कूटर्पर कानटोपा पहन कर बैठा था. कुछ देर बाद पत्नी दर्शन करके आयी और स्कूटर्पर बैठ गयी. पतिने स्कूटर् चालू किया और चल दिया. आधे रास्ते जानेके बाद बोल-चाल चालू हुयी तो पीछे बैठी औरतने कहा कि "आप कौन?"

पतिने भी पूछा ‘‘आप कौन?’’ जब पत्नी बाहर छोड़ कर गयी थी तो अपना पति था पर थोड़ी देर बाद कोई और वहां आ कर खड़ा हो गया और पत्नी उसीके स्कूटरपर अपना पति समझ कर बैठ गयी. यह भ्रम है. यदि दोनों साथ होते तो सादृशज्ञान होता पर भ्रमज्ञान नहीं होता, कहनेका मुद्दा यह है.

(अन्यख्याति)

यह सारी बात समझानेमें मेरा मुद्दा यह है कि महाप्रभुजीके हिसाबसे अन्यख्यातिको (थियरी ऑफ् ॲरर्) हमें इन सभी ऊपरोक्त बातोंपर लागू करनी पड़ेगी.

महाप्रभुजीने अन्यख्यातिकी व्याख्या इस प्रकार की है कि **विपर्यासो भिन्नार्थप्रतिपादकः क्रियाज्ञानयोः च भिन्नविषयत्वम्**. क्रिया और ज्ञान; क्रिया अपनी समझका आउटपुट् है और ज्ञान अपनी एक्सटर्नल् कन्डिशन्का अपने भीतर इनपुट् है. अपनी कॉन्शियसनेस्को जो बाहरसे इनपुट् मिल रहा है, उसे हम ‘ज्ञान’ कहते हैं और अपनी कॉन्शियसनेस् जो आउटपुट् दे रही है, वह क्रिया है. महाप्रभुजीने कितनी खूबसूरतीसे इसको पारिभाषित किया है; ‘अन्यख्याति’का अर्थ है कि क्रिया और ज्ञान का विषय एक नहीं है, एक-दूसरेसे भिन्न है. इसलिए इस बातके विस्तारमें जानेकी कि जरुरत नहीं कि वस्तु रियल् है कि अन्‌रियल् है, रियल् और साथ ही साथ अन्‌रियल् है अथवा न तो रियल् है और न ही अन्‌रियल् है. क्रियाका अधिष्ठान कोई और है और ज्ञानका अधिष्ठान कुछ और है. अपना नॉर्मल् फन्क्शन् ऐसा होना चाहिये कि क्रिया और ज्ञान का अधिष्ठान एक होना चाहिये. इस प्रकारकी अपनी समझ ही वॅलिड् समझ है. यदि ज्ञानका अधिष्ठान कुछ और है और क्रिया कुछ और ही हो रही है, तो यह विपर्यास हो गया. ‘विपर्यास’ अर्थात् अपनी समझमें कुछ हेर-फेर हो गया है. जैसे उत्तमजीके उदाहरणसे मैंने आपको समझाया

था. वह शास्त्रीजीके घरमें चोरी नहीं करते थे, पर इधरकी वस्तु उधर रख देते थे. इससे शास्त्रीजीको लगता था कि भूत आ गया है. विपर्यास होने पर लोगोंको लगता है कि कोई भूत आ गया है. क्योंकि अपनी क्रिया और ज्ञान में जो कोर्डिनेशन् होना चाहिये वह हो नहीं पा रहा है, जब डिस्‌कोर्डिनेटेड् होता है, तब हमें विपर्यास हो जाता है.

यह डिस्कोर्डिनेशन् किस प्रकार होता है, यह समझानेके लिए मैं आपको अपने जीवनकी एक घटनाका उदाहरण देता हुं. जब मेरी बड़ी लड़कीने जन्म लिया तो मैं बोरीवली रहने गया. जिस बंगलेमें रहने गया था, वहां कुआ नहीं था. उस समय बोरीवलीमें भी हमारा एक बंगला था जहां कुआ था. जब-तक अन्डर्-ग्राउन्ड् ड्रेनेज् नहीं थी, तब-तक उसका पानी पीने लायक था. मैंने जिम्मेदारी ली कि एक व्यक्ति मेरे साथ कारमें आयेगा और कुएसे पानी भर कर लायेगा. जब पानी भरके हम आ रहे थे उस समय मैंने बंगलेमें जानेके लिए गाडीको मोडा. उस बंगलेके बाहर एक खंबा था. उसे देख कर मुझे गुस्सा आया और गाड़ीको मोड़नेके बजाय मैंने उस खंबेको अंदरसे बैठे-बैठे धक्का मारा, रास्तेसे हटानेके लिए. खंबा तो हटा नहीं पर मेरा हाथ उस गाड़ी और खंबे के बीच आ कर छिल और गया. इससे समझो कि दोनोंमें कॉर्डिनेशन् नहीं हुआ. एक ज्ञानविषय और एक क्रियाविषय. ज्ञानविषयसे मैं उस खंबेको एक मनुष्यकी तरह धक्का दे कर हटाना चाह रहा था और क्रिया-विषय तो वह था ही नहीं. क्योंकि वह कोई मनुष्य तो था ही नहीं. इस तरह ज्ञानविषय कुछ और था और क्रियाविषय कुछ और. इसी कारण मेरा हाथ छिल गया. इस तरह क्रियाविषय और ज्ञानविषय में आपसमें कोर्डिनेशन् हो तो फिर गड़बड़ नहीं होती. जहां भी डिस्कोर्डिनेशन् हुआ तो विपर्यास होगा ही. जैसे हाइवेपर लिखा होता है कि “सावधानी हटी और दुर्घटना घटी”. इस तरह थोड़ी भी

असावधानीसे विपर्यासकी घटना घट ही जाती है. सावधानी यही है कि अपनी समझ और अपनी क्रिया में एक कोर्डिनेशन् होना चाहिये.

अब आप देखो कि पाश्चात्य साइकोलॉजीके हिसाबसे कन्डिशन्-ऑफ्-पर्सेप्शन्का उदाहरण है रेलकी दो पटरियोंका जुड़ना अथवा जैसे मैंने आपको दो बराबर लाइन् चित्रित करके दिखलायी थीं, इनमें एक बड़ी और एक छोटी दिखलायी देती थी. इन दोनों ही उदाहरणोंमें हमारे ज्ञान और क्रिया में डिस्कोर्डिनेशन् होता है तो इल्युज़न् है और नहीं होता है तो नहीं है. चिड़िया जब शीशेके सामने बैठ कर चोंच मारती है तो डिस्कोर्डिनेशन् होता है क्योंकि ज्ञानका विषय शीशा है, चिड़िया नहीं है और क्रियाका विषय शीशा नहीं है क्योंकि वह शीशेको चोंच नहीं मार रही, दूसरी चिड़ियाको मार रही है. इस तरह डिस्कोर्डिनेशन्के कारण यह इल्युज़न् है. हम जब भी शीशेमें देख कर अपना मेक्-अप् करते हैं, तो अपना कोर्डिनेशन् बराबर होता है, इस कारण वह इल्युज़न् नहीं है. अभी तक तो हमने उपरोक्त उदाहरणोंसे नेसेसरी कन्डिशन्के बारेमें ही देखा.

पर जहां ऍक्सिडॅन्टल् कन्डिशन् है, वहां क्रिया और ज्ञान के विषयोंमें डिस्कोर्डिनेशन् हो जाता है और हमें इल्युज़न् हो जाता है. वहां क्रियाका विषय कुछ और और ज्ञानका विषय कुछ और हो जाता है. इस प्रकार यह अन्यख्याति हो गयी. हॅल्युसिनेशन्में हमें भूत-प्रेत दिखायी देते हैं और हम डर जाते हैं. जैसे मैंने एक व्यक्तिकी बात आपको बतायी थी कि उसके कंधेपर आ कर भूत बैठ जाता था. उसकी समस्या यह थी कि कन्डिशन् उसके हाथमें नहीं थी. उसको उस हॅल्युसिनेशन्के कारण नींद आ जाती थी. इससे एक बात समझो कि जब भी कन्डिशन् अपने हाथमें होती है तो कितना भी खतरनाक काम हो, हम उसे ठीकसे कर

पाते हैं. पर वह हाथमें न हो तो कोई आसान काममें भी डिस्कोर्डिनेशन्‌की संभावना रहती ही है.

आपको पता ही होगा कि आगके अंगारोंपर लोग चलते हैं. ऐसा वह इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उनको पता होता है कि कितनी देर पैर उन्हें उस आगपर रखना है. अधिक देर रखें तो जल जायेगा. आप भी जलती हुयी मोमबत्तीकी लौके बीचसे अपनी अंगुली निकाल सकते हो. वह जलती नहीं है. उसके ऊपर रखोगे तो जल जायेगी. इस प्रकार आपको कोर्डिनेट्‌ करते आना चाहिये. यदि आपके पास यह सिफत है तो फिर आपको कोई समस्या नहीं होगी. अपने रोजमर्राके जीवनमें यह इल्युज़न्‌ अथवा हॅल्युसिनेशन्‌ किस प्रकार सहयोगी होता है, ऊपरकी बात समझानेका सारा मुद्दा यही था. इस तरह अन्यख्याति होती है तो कोर्डिनेशन्‌ टूट जाता है. और अन्यख्याति नहीं है तो कोर्डिनेशन्‌ है. कोर्डिनेशन्‌ होगा तो समाधान आ सकता है. जैसे सर्कस्‌में रिंग्‌-मास्टर्‌ शेर और बाघ को हँडल्‌ कर ही सकता है. क्योंकि उसका कोर्डिनेशन्‌ होता है अपने ज्ञान और क्रिया में. हम ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि डर कर भागने लगते हैं. भागनेसे बाघ समझ जाता है कि कुछ गड़बड़ है और काटने आ जाता है. कुत्तेके साथ भी यही स्थिति है. वह जब भौंके और आपने भागना शुरू किया तो वह आपको काट लेगा. यदि आप सामने खड़े रहे तो वह थोड़ी देर भौंक कर चुप हो जायेगा.

मेरे कहनेका मुद्दा यह है कि यदि निरुपाधिक भ्रम है और आपको सीपके ऊपर चांदीका भ्रम हो रहा है और आप उसे लेनेके लिए कूदे तो दिखायी तो आपको दे रही है चांदी और आप कूद रहे हो सीपपर, तो हो गया न ज्ञान और क्रिया में डिस्कोर्डिनेशन्‌. इसीलिए यह ‘अन्यख्याति’ कहलायेगी.

और सोपाधिक भ्रम है कि आप सचमें ही यह मान लो कि शंख पीले रंगका है क्योंकि आपको पीलिया हुआ है, तो यह भ्रम है. इसीलिए यह अन्यख्याति है. मुझे लगता है आपको अब समझ आ गया होगा. अन्यख्याति इन सभी प्रकारके भ्रमों पर लागू होती है. इन सब प्रकारोंसे जगत्में हमको अनेक प्रकारकी अवेयरनेस् होती हैं जैसे संशय रूपी अवेयरनेस्, स्मृति रूपी अवेयरनेस्, निश्चय रूपी अवेयरनेस्, इन सारी बातोंका यदि हमें ख्याल हो तो ही इसका ॲसेसमॅन्ट् सही प्रकारसे होगा.

प्रश्न : आपने जो मॉर्डन् साइकोलॉजीकी बात कही, उसमें आपने तीन आयाम बताये, कन्डिशन्-ऑफ्-पर्सेप्शन् इल्युज़न् और हॅल्युसिनेशन्. इसमें मुझे जो समझ आया वह इस प्रकार है कि इल्युज़न् अर्थात् किसी भी एब्नॉर्मल् अथवा ॲक्सिडॅन्टल् कन्डिशन्में पर्सेप्शन् हो जाये, जो कि पॉज़िटिव् भी हो सकता है और नेगेटिव भी, तो जब हम शीशेमें देख कर ब्रश कर रहे हैं तो वह पॉज़िटिव् इल्युज़न् है?

उत्तर : नहीं, ऐसा नहीं है. अपने हाथमें होनेके कारण वह इल्युज़न् होते हुए भी इल्युज़न् नहीं है. हम उसे नॉर्मलाइज़् कर देते हैं.

प्रश्न : पर वह इल्युज़न् है कि नहीं?

उत्तर : क्या आपको लगता है कि आप अपना प्रतिबिंब देख कर चिड़ियाँकी तरह मूर्ख बन जा रहे हो? यदि आप बन रहे हो तो इल्युज़न् है और नहीं तो नहीं है.

प्रश्न : इसका अर्थ यह हुआ कि यदि ॲक्सिडॅन्टल् कन्डिशन् ऑफ-पर्सेप्शन् होगी तभी वह इल्युज़न् होगा.

उत्तर : बिल्कुल सही. क्योंकि ॲक्सिडॅन्टल् कन्डिशन्-ऑफ् पर्सेप्शन्में बाजी अपने हाथमें तो होती नहीं है, इसलिए हम मूर्ख बन जाते हैं. जैसे मैं अक्सर एक उदाहरण देता हुं कि गांवसे एक व्यक्ति मुम्बई आया. उसे एक इमारतमें दसवें मालेपर जाना था. उससे पहले एक हरी साड़ी पहन कर लिफ्ट्से एक बुढ़िया ऊपर गयी. और थोड़ी देर बाद हरी साड़ी पहन कर एक जवान लड़की नीचे उतरी. वह तुरंत गांव जानेके लिए तैयार हो गया अपनी पत्नीको लानेके लिए. उसे लगा कि वह उसको भी जवान बना देगा. देखो! यह इल्युज़न् है. क्या ऐसा इल्युज़न् हमें, जो कि रोजाना लिफ्ट्का उपयोग करते हैं, होगा? नहीं होगा. क्योंकि कन्डिशन् अपने हाथमें है. इसी तरह दूरबीन्का प्रयोग भी जब आप हॅन्गिन्ग्-गार्डन्में ऊपरसे नीचेकी टॅक्सी बुलानेके लिए कर रहे हो तो वह इल्युज़न् है. क्योंकि आपके ॲक्शन् और अन्डर्स्टॅन्डिग् का कोर्डिनेशन् नहीं हो रहा है. महाप्रभुजी इस प्रकारसे इल्युज़न्की परिभाषा दे रहे हैं. उन (ऑब्जेक्टिव् दृष्टिकोणसे) टर्मिनोलॉजीमें पारिभाषित नहीं कर रहे हैं कि वह रियल् है अन्रियल् है अथवा रियल् और अन्रियल् दोनों अथवा दोनोंमेंसे कोई नहीं. (सब्जेक्टिव् दृष्टिकोणसे) महाप्रभुजी कहना चाह रहे हैं कि Illusion is a variety of knowledge which has one body and not two bodies like prabhakar. इस तरह विपर्यासका वर्णन मैंने आपको समझानेका प्रयास किया है. शायद अब आपको समझ आ जाना चाहिये.

* * *

(निश्चय)

भ्रमका विषय पूरा हुआ अब निश्चयका विषय शुरू करते हैं. **निश्चयो यथार्थानुभवः** महाप्रभुजी निश्चयकी परिभाषा दे रहे हैं कि जैसा अर्थ है, वैसा हमें अनुभव हो तो वह 'निश्चय' कहलाता है. जो अपने सामने है उसे भली प्रकारसे सिलेक्ट् करना मिले वह 'निश्चय' कहलाता है. निश्चय कई प्रकारके हो सकते हैं. प्रत्यक्षात्मक इन्फरॅन्शियल् (अनुमित्यात्मक) और वर्बल् (शब्दात्मक) निश्चय भी हो सकता है. यह मिन्स् ऑफ् नॉलेज् कितने प्रकारके है इस बातपर निर्भर करेगा. जितने मिन्स् ऑफ् नॉलेज् उतने ही प्रकारके निश्चय हो सकते हैं.

और सरल शब्दोंमें समझनेका प्रयास करें. संस्कृतमें 'चय'का अर्थ होता है 'चुनना'. 'निश्चय' = विशेष रूपसे चुनना. बुद्धिके पास सूचना बाढ़की तरह आती है क्योंकि सारी इन्द्रियोंके दरवाज़े खुले हैं. उन सभीका एक ही बारमें यदि बुद्धि निश्चय करने बैठ जाये तो पागल ही हो जायेगी. उनमेंसे एक सूचनाका निर्णय यदि लेना हो तो उसे हम कहेंगे 'निश्चय'. जैसे शेअर्-बाज़ारमें सभी एक साथ बोलते हैं. हमें पता ही नहीं चलता कि कौनसा व्यक्ति क्या बोल रहा है! पर आपसमें जो दो व्यक्ति बात कर रहे होते हैं उन्हें निश्चय होता है, उसीका नाम बुद्धिका 'निश्चय' है. जैसे हम किसी डालीसे एक फूल विशेषको चुन लेते हैं, उसका नाम है 'निश्चय'. इस तरह इन्द्रियोंसे अनेक सूचना बुद्धिको प्राप्त होती है उसमेंसे एक सूचनाका चयन करना, उसका नाम है 'निश्चय'.

(जगद्रूप 'अर्थ'की उत्पत्ति क्रोनोलोजिकल् एवं ज्योमॅट्रिकल् ऑर्डर्में)

हकीकतमें इसमें एक रोचक पहेलु समझने योग्य है कि जैसे जगत्के लिए अपने यहां एक ऐसा सिद्धान्त है कि आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी, इन पंच-महाभूतोंसे जगत् गढ़ा हुआ है.

जब हम पंच-महाभूत कहते हैं तो इससे गढ़े हुए जगत्का एक क्रोनोलॉजिकल् ऑर्डर् है और दूसरा ज्योमॅट्रिकल् ऑर्डर् भी है.

(क्रोनोलॉजिकल् ऑर्डर्)

क्रोनोलॉजिकल् ऑर्डर् इस प्रकार कि सबसे पहले आकाश, उससे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी. इस तरह एकमेंसे दूसरा तत्त्व क्रोनोलॉजिकल् आर्डर्में उत्पन्न हुआ है. 'क्रोनोलॉजिकल् ऑर्डर्' अर्थात् टाइम्में ऑर्डर्. (कालिकक्रम/आनुपूर्वी)

(ज्योमॅट्रिकल् ऑर्डर्/पंचीकरण)

इसका एक ज्योमॅट्रिकल् आर्डर भी है. ज्योमॅट्रिकल् ऑर्डर् अर्थात् आप एक सर्कल् लें, उसके बीचमें एक सीधी रेखा खीचें. अब उस आधे सर्कल्में तीन समानान्तर रेखा खीचें जिससे कि उस आधे भागके चार हिस्से हो जायें.

अब आप पंचीकरण चार्टसे समझ सकते हैं कि यह ज्योमॅट्रिकल् ऑर्डर् है. जो भी तत्त्व आप उठाओ, उसमें आधा वह स्वयं है और एक चौथाई हिस्सा बाकी चार तत्त्वोंका है. वह इस प्रकार ऑर्गेनाइज़् हुआ है. यह नियम आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी, सभीके लिए लागू होता है. जैसे हम पृथ्वीकी बात करें तो इसमें पचास प्रतिशत पृथ्वी तत्त्व है और शेष पचास प्रतिशतमें बाकी चारों तत्त्व आ जाते हैं. पृथ्वीमें भी किसी-न-किसी प्रकारसे जल अग्नि वायु और आकाश तत्त्व स्थित ही हैं. इस तरह पाचों तत्त्वोंमें पाचों तत्त्व मौजूद ही हैं. यह ज्योमॅट्रिकल् व्यवस्था है. इसका नाम 'पंचीकरणप्रक्रिया' है. अर्थात् प्रत्येक तत्त्व पांच है, एक नहीं है. इस तरह जगत् पंचीकरण है.

पंचीकरण चार्ट

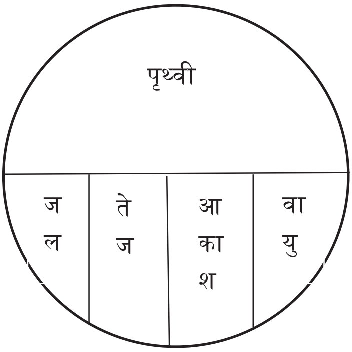
पृथ्वी
जल
तेज
आकाश
वायु

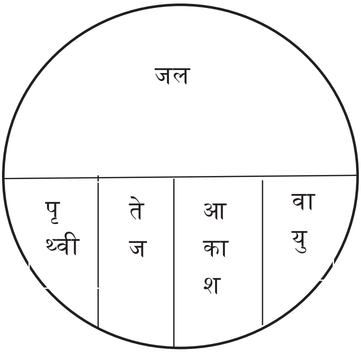
जल
पृथ्वी
तेज
आकाश
वायु

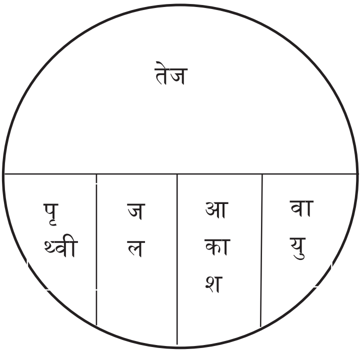
तेज
पृथ्वी
जल
आकाश
वायु

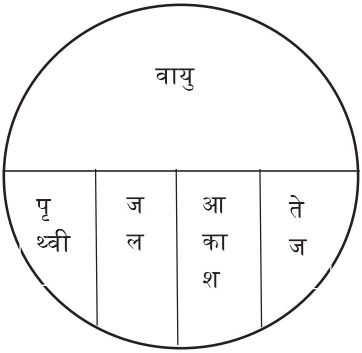
वायु
पृथ्वी
जल
आकाश
तेज

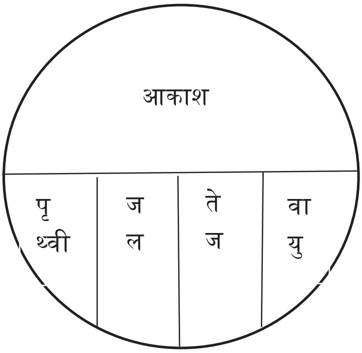
आकाश
पृथ्वी
जल
तेज
वायु

(ज्ञानव्यवस्था भी क्रोनोलॉजिकल् एवं ज्योमॅट्रिकल् प्रक्रियासे)

उसी तरहसे अपना ज्ञान भी क्रोनोलॉजिकली और ज्योमॅट्रिकली, ऐसे दो प्रकारसे ऑर्गेनाइज़् होता है. जो लोग ज्ञानको ऑर्गेनाइज़्ड् नहीं मानते हैं, वे यह मानते हैं कि ज्ञान रिलायेबल् नहीं है. क्योंकि जगत्की सच्ची इन्फॉर्मेशन् नहीं दे रहा है पर ज्ञान जिस प्रकारसे ऑर्गेनाइज़् हुआ है, उसी तरहकी इन्फॉर्मेशन् हमें दे रहा है. पर यदि ‘‘ज्ञान रिलायेबल् नहीं है’’ यह बात सत्य है तो हमें किसी भी प्रकार यथार्थका अनुभव हो ही नहीं सकता. क्योंकि निश्चयका अर्थ ही यह है कि जैसी वस्तु बाहर दिखायी दे रही है वैसा ही हमें भीतर अनुभव होना चाहिये. जैसे हम पानीका ही उदाहरण देखें. तो पानीको आर.ओ. मशीनके द्वारा शुद्ध किया जा सकता है, अर्थात् उसमेंसे मिट्टीके सूक्ष्मकण निकाले जा सकते हैं. पर शुद्ध करनेसे पहले उसमें पृथ्वीतत्त्व तो था ही. हम पृथ्वीके पत्थरका उदाहरण लें तो हमें तो केवल पत्थर ही दिखलायी देता है. वहां जल तो दिखायी नहीं देता. तो अनुभवके आधारपर देखेंगे तो अर्थ ऐसा नहीं होता है.

(अर्थ/द्रव्यमें पंचीकरणकी सिद्धि)

पर साइंस्में भी मॅटर्की चार अवस्था मानी गयी हैं. सॉलिड् लिक्विड् गॅसियस् और प्लाज़्मिक्. अपनी परिभाषामें देखें तो सॉलिड् =पृथ्वी, लिक्विड् = पानी, गॅसियस् = वायु और प्लाज़्मिक् = अग्नि और पांचवे तत्त्वको हम ‘आकाश’ कह रहे हैं, पर वैज्ञानिकोकों यह बात अभी भी माननेमें नहीं आ रही. हां, आइन्स्टीन् और अपने यहांके बोस ने मिल कर इस विषयपर विचार करके पदार्थकी पांचवी अवस्था ब्लॅक् मॅटर् है ऐसे कहा. हम इस ब्लॅक् मॅटर्को मॅटर्की पांचवी अवस्था नहीं कहते हैं. हम यह मानते हैं कि पृथ्वी आदि तत्त्वोंकी तरह आकाश भी एक पैदा हुआ तत्त्व ही है. साइंस् पदार्थकी परिभाषा करते हुए कहता है कि जो स्पेस्में (आकाश) एग़्जिस्ट् करता हो

वह मॅटर् (द्रव्य) है. पर साइंस्के अनुसार ही यह परिभाषा गलत सिद्ध हो जाती है. क्योंकि जिस प्रकार स्पेस्में मॅटर् होती है उसी प्रकार मॅटर्में स्पेस् होता है कि नहीं? यदि ऐसा न हो तो इलेक्ट्रोन् न्यूट्रोन्-प्रोटोन्के चक्कर कैसे लगा रहे हैं. उनमें आपसी दूरी है, इसी कारण तो वे चक्कर लगा रहे हैं. इन तीनोंको मिला कर एक एटम् बनता है. बहुत सारे एटम् मिल कर एक मॉलेक्युल् बनता है. इन अणुओंके बीचमें भी तो स्पेस् होता ही है. आप किस प्रकार मॅटर्को स्पेस्से पृथक् कर सकते हो? इस तरह स्पेस् भी एक प्रकारसे पदार्थका दूसरा रूप ही है. अपना यह सिद्धान्त है. पर साइंस्को यह बात अभी ख्यालमें नहीं आयी है. इस सिद्धान्तकी सुंदरता आप देखो कि जिन पदार्थकी चार अवस्थाओंको विज्ञान मान रहा है, उसमें देखें तो पृथ्वीतत्त्वका भी एक तरल (लिक्विड्) रूप लावाके रूपमें है. इसका एक गॅसियस् फॉर्म् भी है. जितनी भी पार्थिव वस्तुएं हैं वे कार्बन् एमिट् करती हैं, इस प्रकार वह गॅसियस् भी हैं. उस पदार्थमें हीट् भी होती है, वह चाहे जितने भी प्रमाणमें हो. वह उसका प्लाज़्मिक् रूप है. और उसमें आकाश (स्पेस्) तो है ही. आप पानीको भी देखें तो जमा हुआ पानीका रूप सॉलिड् होता है. पानी स्वयं तरल होता है, इवोपरेट् हुआ पानी गॅसियस् रूपमें है और गर्म किया हुआ पानी उसका प्लाज़्मिक् रूप है. हम इस प्रकार इसके विभाग करें कि पृथ्वी जल तेज वायु आकाश = सॉलिड् लिक्विड् गॅसियस् प्लाज़्मिक् और स्पेस्, तो इस तरह वही पंचीकरणकी ही बात सिद्ध हो रही है. आप कैसे कह सकते हो कि पंचीकरण नहीं है.

(इन्द्रियानुभवकी स्थिति द्रव्यानुरूप)

इसीलिए अपने वेदमें इस पंचीकरणका बहुत महत्त्व है. और इस कारण ही मॅटर् एक क्रोनोलॉजिकल् आर्डर्में पैदा होते हुए भी किसी न किसी रूपमें एक ज्योमॅट्रिकल् पॅटर्न्में भी ऑर्गेनाइज़्ड् है.

इस ज्योमॅट्रिकल् पॅटर्न्को रिस्पोन्स् देनेके लिए हमारे भीतर इन्द्रिय हैं. उदाहरणके लिए सॉलिड् लिक्विड् और गॅसियस् अवस्थाओंका अनुभव हम अपनी इन्द्रियोंके द्वारा करते हैं. कुछ लोग ऐसा मानते थे कि आकाशका अनुभव करनेके लिए हमारे पास कोई इन्द्रिय नहीं है. पर हमारे यहां कहा है कि आकाशको हम कर्णेन्द्रियद्वारा अनुभव कर सकते हैं. क्योंकि आकाशकी तन्मात्रा ध्वनि है. और साइंस् भी कहता है कि ध्वनिको चलनेके लिए एक मीडिया चाहिये. आकाश वह मीडिया है जिसमें ध्वनि चलती है. हम ऐसा सोचते हैं कि हम मुंहसे बोलते हैं और कानसे सुनते हैं, तो इन दोनोंके बीचमें जो आकाश है, केवल उसमें ही साउन्ड्वेव् ट्रावेल् करता है पर यह बात गलत है. हम यह देख सकते हैं कि पानीमें भी ध्वनि चल सकती है. बिजलीके तारमें भी तो साउंड्-वेव् ट्रावेल् करता ही है. नहीं तो हमें सुनायी किस प्रकार दे रहा है ?

जब मैं छोटा था तो मेरा एक शौक था. ग्रामोफोन्में एक डट्टा आता था जिसमें सुई लगायी जाती थी. जब भी मेरी माँ सेवामें जाती थी तो उस सुईको वहांसे निकाल कर, ग्रामोफोन्को चला कर, सुई हाथसे पकड़के रखता था तो आवाज़ हाथसे हो कर कन्धोंपर मुझे कानसे सुनाई देती थी. बाहर सुनाई नहीं देती थी. आप भी यह प्रयोग करके देख सकते हैं. इस तरह ध्वनि चल सकती है, बस उसे मीडिया चाहिये. और यदि ध्वनि चल नहीं पाती तो हमारे कान खुले तो हैं नहीं. वह तो केवल कानके पर्दे तक ही खुले हैं. उसके बाद तो पर्देसे जुड़ी हुयी नर्व्ज़् हैं. उन नर्व्ज़्में इलॅक्ट्रोकॅमिकल् रिएक्शन् होता है और इस तरह ध्वनि हमारे दिमाग तक पहुँचती है. इस तरह हम देख सकते हैं कि साउन्ट्की वेव् (ध्वनिकी तरंग) कन्वर्ट भी होती हैं. आज-कल यू-ट्यूब्पर हम देख सकते हैं कि लोहेकी प्लेट्पर मिट्टीके कण डालो और कुछ ध्वनि पैदा करो तो एक डिज़ाइन् बन जाती है. इस तरह

आप देख सकते हैं कि ध्वनिमें सभी पदार्थोंमेंसे चलनेकी सामर्थ्य है. अब यदि लोहेकी प्लेट्में आकाश न हो तो ध्वनि किस प्रकार चल सकेगी? इसी तरह इस प्लेट्मेंसे हीट्वेव्, एक्सरेवेव् आदि भी पास हो सकते हैं.

इससे हम समझ सकते हैं कि पाँचों इन्द्रियोंसे जो पांच प्रकारकी वेव् ग्रहण हो रही है, वे पांचों स्थानोंपर हमें उपलब्ध है. वह भी ऑर्गेनाइज़्ड् है. मेरे कहनेका मुद्दा यह है कि जैसे मॅटर् ऑर्गेनाइज़्ड् है क्रोनोलॉजिकली और ज्योमॅट्रिकली, उसी प्रकार ग्रहण करनेके मीडिया भी ऑर्गेनाइज़्ड् है. वह किस प्रकार व्यवस्थित है, यह आप समझ सकते हैं कि आप यदि हीट्-वेव् पास करो तो ऐसा नहीं है कि केवल गर्मी ही पैदा होगी, अधिक मात्रामें हो तो प्रकाशकी वेव् भी पैदा हो जायेगी.

(विज्ञानके अनुसार द्रव्यकी अवस्थाभेदका सिद्धान्त)

साइंस्का सिद्धान्त इस प्रकारका है कि जब एटम् अथवा मॉलेक्युल् बहुत पास आ जाते हैं तो मॅटर् सॉलिड् हो जाती है. थोड़े दूर् होते हैं तो वह लिक्विड् रूपमें आ जाता है. ज्यादा दूर् हो तो गॅसियस् रूपमें, इससे ज्यादा दूर् हो तो प्लाज़्मिक् रूपमें आ जाता है. अधिकतम दूरी होनेपर बीचमें आकाश प्रकट हो जाता है. अपने यहां इसीको पृथ्वी जल वायु तेज आकाश कहा गया है. आकाश हमारे यहां अतिरिक्त है.

(आकाश और द्रव्य अन्योन्याश्रित)

और जब साइन्स् कहता है कि दूरी बढ़नेसे पदार्थकी अवस्था बदलती है तो वही बात तो हम कह रहे हैं कि आकाश, मॅटर्का ही दूसरा रूप है. आकाश और द्रव्य दो अलग वस्तुएं नहीं हैं. बस यही साइंसका और हमारे दर्शनका झगड़ा है. साइंस् स्पेस् और

मॅटर् को दो अलग वस्तु मानता है जबकि भारतीय दर्शन दोनोंको एक ही सिक्केके दो पहलु मानता हैं. ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं और ऑर्गेनाइज़्ड् भी इसी प्रकार हुए हैं. इनके इन्टरॅक्ट् करनेके वेव्स् हैं जैसे हीट्-वेव्, साउंड्-वेव् जो इनको कन्डेंस् या डिस्पर्स करता है, वे भी इसी प्रकार ऑर्गेनाइज़्ड् हैं. जैसे लाइट्-वेव् हीट् भी पैदा कर सकती है. साउंड्-वेव् हीट् अथवा लाइट् पैदा कर सकती है. इस प्रकार सभी एक-दूसरेमें किसी न किसी प्रमाणमें मौजूद हैं. इसके भी बहुतसे प्रयोग हुए हैं. जैसे जब तेज धमाका होता है तो काँचकी खिड़की टूट जाती है. यह इसलिए कि जिन अणुओंने उन्हें जोड़ कर रखा है वह बन्धन टूट जाता है.

(तन्मात्रा और ज्ञानेन्द्रिय भी ऑर्गेनाइज़्ड् हैं)

इस तरह जब ऑब्जेक्ट्, क्रोनोलॉजिकली और ज्योमॅट्रिकली ऑर्गेनाइज़्ड् हो, उसका मीडिया भी ऑर्गेनाइज़्ड् हो तो हमारे सॅन्स् ऑर्गन् भी ऑर्गेनाइज़्ड् हो सकते हैं ऐसा कहनेमें आपको गुस्सा क्यों आता है? बहुतसे दार्शनिकोंको तो यहां-तक हो गया कि यदि हमारी इन्द्रिय ऑर्गेनाइज़्ड् हैं तो रिलायेबल् नहीं हो सकती. जब भी मेरे सामने कोई ऐसा तर्क करता है तो मेरा एक ही उत्तर होता है कि ‘‘आप कह रहे हो कि ऑर्गेनाइज़्ड् है तो रिलायबल् नहीं है. तो आपको यह विचार आ रहा है कि वह ऑर्गेनाइज़्ड् है या नहीं, पहले यह खुलासा करो. यदि आपका यह विचार ऑर्गेनाइज़्ड् है तो यह भी रिलायबल् नहीं है. यदि यह रिलायबल् है तो ऑर्गेनाइज़्ड् तो है ही न! यही तो हम कह रहे हैं. और आप तो अपने ही तर्कका खंडन स्वयं कर रहे हो. अर्थात् जो भी आपको दिखायी दे रहा है उसके बारेमें अपने विचारोंको आप ऑर्गेनाइज़्ड् रूपमें पेश कर रहे हो’’

इस कारण अपने यहां इस बारेमें दो मत हो गये. बुद्ध

भगवान् ऐसा कहते थे कि जितना भी सविकल्पक ज्ञान है वह ऑर्गेनाइज़्ड् थोट् होनेके कारण अन्‌रिलायबल् है. और जितना भी निर्विकल्पक ज्ञान है वह नोन्-ऑर्गेनाइज़्ड् होनेके कारण रिलायबल् है. क्योंकि ऑर्गेनाइजेशन् करनेमें आप उसमें अपनी तरफसे नमक-मिर्च लगा देते हो. इस कारण उसकी विश्वसनीयता कम हो जाती है. अरे! यदि हम नमक-मिर्च लगा रहे हैं तो बाहरी दुनिया भी तो ऐसी ही है. जब दोनोंका जोड़ा मिल रहा है तो आपको क्या आपत्ति है! वर-वधूका जोड़ा न मिलता हो तो हमें विचार करना चाहिये. जब सब ऑर्गेनाइज़्ड् है, अपनी इन्द्रिय भी ऑर्गेनाइज़्ड् हैं और तन्मात्रा भी ऑर्गेनाइज़्ड् हैं तो जोड़ा मिल रहा है, इसमें आपके पेटमें क्यों दर्द हो रहा है?

(बौद्धमतसे असहमति)

इसके बाद प्रश्न यह उठा कि ऑर्गेनाइज़्ड् सॅन्स्-ऑर्गन्‌से ऑर्गेनाइज़्ड् मॅटर्‌का ज्ञान होगा और अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् सॅन्स्-ऑर्गन्‌से अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् मॅटर्‌का ज्ञान होगा. इसीलिए बुद्ध भगवान्‌ने कह दिया कि ऑर्गेनाइज़्ड् मॅटर् और ऑर्गेनाइज़्ड् नॉलेज् भी मिथ्या हैं. अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् मॅटर् ही सत्य है. पर बात तो वहीं-की वहीं रही. यदि अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् मॅटर् सत्य है तो यह आपका विचार ऑर्गेनाइज़्ड् है कि अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् है? यदि यह विचार आपका ऑर्गेनाइज़्ड् है और आपको सेंसेशन् तो हैं नहीं, जैसा कि आपको एक इसका स्थूल उदाहरण दूं तो आपको समझ आ जायेगी. जब हम दाल अथवा चावल की ढेरी करते हैं तो वह एक निश्चित रूपमें ऑर्गेनाइज़्ड् हो कर एक पिरामिडके जैसे आकारमें आ जाती है. वे कहते हैं कि क्योंकि यह ऑर्गेनाइज़्ड् है इसलिए यह मिथ्या है. दाने सच्चे हैं पर इसकी ढेरी मिथ्या है. चलो मान लिया कि ढेरी मिथ्या है, पर दाना भी तो किसी पदार्थकी ढेरी है कि नहीं? दानेका भी जब आप विश्लेषण करेंगे तो वह भी किसी प्रकारकी ढेरी ही निकलेगी. कहेंगे कि वह भी

मिथ्या है, तो आप इस मिथ्यापनेको कहां तक देखोगे!! इस तरह हम समझ सकते हैं कि बुद्ध भगवान्‌की फिलॉसोफी मॅथेमॅटिकली रॅशन्‌ल् है पर रियल् नहीं है क्योंकि जिन विचारोंको हमने ऑर्गेनाइज़्ड् किया है उनपर हम विश्वास नहीं करते. इस निश्चयके बारेमें खूबसूरती यह है कि जानवरोंसे हम अपने ज्ञानको क्यों श्रेष्ठ मानते हैं? क्योंकि जानवर रॅशनल् नहीं हैं. उसका ज्ञान अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् ज्ञान है. अरे! जिस ज्ञानके कारण आप अपने आपको जानवरोंसे अधिक मान रहे हो, उसीपर तो आप विश्वास कर नहीं रहे हो. जानवरमें एक बात तो है कि उसे जो अन्-ऑर्गेनाइज़्ड् सॅन्सेशन् हो रहा है, पर्सेप्शन् हो रहा है, उसपर जानवर तो भरोसा करता ही है और उसका फल उसे मिलता है कि नहीं?

यदि उसे फल मिल रहा है तो भगवान् बुद्धने उसके लिए दूसरा सिद्धान्त समझाया. वे कहते हैं कि यह युटिलिटेरियन् ट्रुथ है पर ॲब्सोल्यूट् ट्रुथ नहीं है. फिर प्रश्न खड़ा होता है कि ॲब्सोल्यूट् ट्रुथ अर्थात् क्या? अब यह थोट् युटिलिटेरियन् थोट् है कि ॲब्सोल्यूट् थोट् है? यदि युटिलिटेरियन् है तो वह गलत हो गया और यदि ॲब्सोल्यूट् है तो आपको इसका पता कैसे चला?

(संशयादि बुद्धिका कार्य)

महाप्रभुजी कह रहे हैं कि बुद्धि ही सॅन्सेशन् या पर्सेप्शन् द्वारा मिलती सूचनाओंको ऑर्गेनाइज़्ड् करके निश्चयाकार ग्रहण कर लेती है. न होनेपर संशयादि आकार बुद्धिमें उभरने लगते हैं. इस बातको यह श्लोकसे समझ सकते हो. **“चक्षुषा आलोच्य वस्तूनि विकल्प्य मनसा तथा ‘अहं’मत्यापि अहंकाराद् बुद्ध्चैव हि अध्यवस्यति”** (लक्ष्मीतन्त्र १३।३४) सबसे पहले ॲक्स्टर्नल् स्टिम्युलीके साथ अपनी ज्ञानेन्द्रिय इन्टरॅक्टिव् मोड्में आती हैं. क्योंकि उनके बीचमें किसी वेव् नामका कोई मीडिया है. यह साउंड्वेव् लाइटवेव् हीट्वेव् आदि

मीडिया ये दोनोंके (इन्द्रिय और ऑक्स्टर्नल् स्टिम्युली) बिचमें इन्टरॅक्शन्का काम करती हैं, टॅलीफोन्के वायरकी तरह. फिर मनमें इसके विकल्प पैदा होते हैं. जिस समय विषयके साथ अपनी इन्द्रिय इन्टरॅक्शन्में आ रही हैं, उस समय कोई एक अनिश्चित कल्प आपको भासित हो रहा है कि नहीं? 'कल्प'का अर्थ समझो. सबसे पहले 'यह कुछ है' ऐसा भास होता है. उसके बाद यह भास होता है कि यह जड़ है कि चेतन है. उसके बाद भास होता है कि स्त्री है कि पुरुष है. उसके बाद भास होता है कि युवा है कि वृद्ध है. उसके बाद भास होता है कि वह किस जातिका है, एशियन् है आफ्रिकन् है कि यूरोपियन् है. उसके बाद गरीब है कि अमीर है. ऐसे बहुत सारे कल्प भासित होते हैं. यह सब एक साथ हमें दीखते हैं कि क्रोनोलॉजिकली एकके बाद एक अथवा किसी ज्योमॅट्रिकल् पॅटर्नमें पंचीकरणकी प्रक्रियासे At a time सब ग्रहित होते हैं, मुद्दा यह है. यदि किसी ऑर्गेनाइज़्ड् रूपमें सारे विकल्प ग्रहित होता है, What it is and How it is. (वस्तु क्या है और कौनसे प्रकारकी है.) ''How it is' यह उसका 'कल्प' कहलाता है और उसके जितने विविध कल्प, वे उसके 'विकल्प' कहलाते हैं. What it is = This and How it is = Thus. Thus में सब विकल्प आ जाते हैं. मन यह सारे विकल्प करता है. पर वह करता किस प्रकार है? पिछले अपने सारे अनुभवोंके आधारपर सारे विकल्पोंको सामने रखता है कि जो कुछ भी दिखायी दे रहा है वह जड़ है, चेतन है, स्त्री है, पुरुष है इत्यादि.

अब एक सिद्धान्त ऐसा है कि मन विविध कल्पोंके बाद निश्चय कर रहा है, इसलिए आंखसे उस वस्तुका दीखना आवश्यक नहीं है. दूसरा सिद्धान्त यह है कि आंख निश्चय करके सारे विकल्प मनको बताती है और मन उनमेंसे सिलेक्ट् करता है. जैसे हम थियेटर्में जाते हैं तो अपनी टिकिट् गेट्-कीपर्को दिखाते हैं. वह

हमारे टिकिट् और सीट् दोनोंको को-रिलेट् करके हमें हमारी सीट् बता देता है. उसे सीट्का ज्ञान पहले है पर हमारे टिकिट्के नम्बरका ज्ञान पहले नहीं है. वह उन दोनोंको मॅच् करके आपको आपकी सीट् बता देता है.

मनका काम विकल्प देखनेका है कि जो व्यक्ति घुस रहा है उसकी सीट कौनसी जगह है. उसके बाद वह अहंकारको सूचना देता है. अहंकार उस सूचनाको बुद्धिके साथ विचार-विमर्श करता है. यदि बुद्धि सात्त्विक अवस्थामें है तो वह उस सूचनाको सही परिप्रेक्ष्यमें लेगी और राजस अवस्थामें है तो उसे संशय होगा और तामस अवस्थामें है तो वह भ्रम पैदा करेगी. यह अपना सिद्धान्त है. यह सब बुद्धिकी अवस्थापर है.

(अनुभवकी आन्तरिक व्यवस्था भी क्रोनोलॉजिकल् एवं ज्योमॅट्रिकल्)

यह अपने अंदर क्रोनोलॉजिकली और ज्योमॅट्रिकली, दोनों तरहसे ऑर्गेनाइज़्ड् हो रही है. जैसे आकाशमें कोई सॉलिड् फॉर्म नहीं है. उसमेंसे कोई गॅशियस् अथवा प्लाज़्मिक् फॉर्म होगा तो कुछ मूवमॅन्ट् आयेगी. आकाशमें हमें मूवमॅन्ट् नहीं दीखती. पर गॅशियस् फॉर्म आते ही मॅटर्में मूवमॅन्ट् आ जाती है. प्लाज़्मिक्में उससे भी अधिक तेज मूवमॅन्ट् है. जब मॅटर्में तेज मूवमॅन्ट् हो तो मॅटर् सॉलिड् रूपमें नहीं नज़र आती. वही मूवमॅन्ट् यदि शिथिल न हो तो मॅटर् तरल हो जाती है. यदि कन्डेंस् हो जाय तो सॉलिड् हो जाती है. ठीक उसी प्रकार अपना मन भी काम करता है. जब-तक सूचना बुद्धि तक पहुंचती है तब-तक मन भी कन्डेन्स् हो जाता है, जब आँखसे डेटा सप्लाय् हुआ तब उसका कोई फॉर्म नहीं होता, आकाशके जैसा सब होता है. बादमें मनके पास जाते ही गॅशियस् फॉर्मकी तरह उसमें कोई-न-कोई एक्टिविटी चालू हो जाती है. जब अहंकारसे जुड़ती है तो वह फॉर्म प्लाज़्मिक् हो जाता है. जब बुद्धि तक पहुंचती है तो वह तेज आ रही है कि शिथिल आ रही है,

कन्डेन्स् हो रही है कि डिस्पर्स हो रही है? कन्डेन्स् हो जाय तो निश्चय हो जाता है, स्लोली डिस्पर्स हो जाय तो संशय होता है, फास्ट्ली डिस्पर्स हो जाय तो धूम-धडाका करके छूटी हो जाती है. फिर हमको भ्रम हो जाता है. ऐसे सिस्टम् विसा-विस् ऑर्गेनाइज़ेशन् काम कर रहा है. ऐसे निश्चयके लिये महाप्रभुजी कह रहे है, 'यथार्थानुभव'. बुद्धिकी अवस्था उस गतिके आधारपर सात्त्विक राजस तामस होगी. जैसी अवस्था बुद्धिकी होगी उसी प्रकारका ज्ञान हमें होगा. वह सत्य हो सकता है, संशयात्मक हो सकता है और भ्रमात्मक भी हो सकता है. इस तरह यह सिस्टम् ऑर्गेनाइज़्ड् तरीकेसे काम कर रही है.

(केवल प्रत्यक्ष या अनुमान या शब्द से निश्चय नहीं होता)

मैंने आपको आकाश बताया. क्योंकि हमको मॅटल्में आकाश कहाँ दिखता है? दिखता नहीं है पर उसे समझ तो सकते हैं. इसलिए निश्चय केवल दिखनेसे ही नहीं होता है, लॉजिकली भी होता है और वर्बली भी होता है. इसका उदाहरण कुछ इस तरह दिया जाता है. "क्रेटेके सारे लोग झूठ बोलते हैं" यह कहनेवाला यदि स्वयं क्रेटेका हो तो फिर क्या करें! वर्बल् मिनिंग् कन्वे होता है पर निश्चय नहीं कर पाते हैं. इस तरह वचनसे भी निश्चय नहीं हो पाता. अर्थ समझमें आता है पर निश्चय नहीं हो पाता. ऐसे ही आंखसे दिखता है पर निश्चय नहीं होता. इसी तरह तर्कसे हमें लगता है कि धुँआ दीख रहा है तो पहाड़पर आग होनी चाहिये. पर वहां भी अनुभव तो होता है पर निश्चय नहीं हो पाता.

(अनुभव और निश्चय का भेद)

इसलिए प्रश्न इस बातसे हैं कि अनुभव एक अलग वस्तु है और निश्चय दूसरी. यदि निश्चयका अर्थ हम डिटर्मिनेशन् करें. क्योंकि

डिसीज़न् कहें तो वह लॉजिकल् हो जायेगा. इसलिए हम यहां डिटर्मिनेशन् ही कहेंगे. इस तरह पर्सेप्चुअल् डिटर्मिनेशन्, लॉजिकल् डिटर्मिनेशन् और वर्बल् डिटर्मिनेशन्, ऐसा नहीं समझ लेना कि ये तीन ही हैं, और भी बहुत सारे हो सकते हैं. साइकोलॉजीमें इसके बहुत प्रयोग किये गये हैं. जैसे आपकी आँखके एक्सप्रेशन्से आप प्रसन्न अथवा दु:खी अथवा क्रोधित दीख रहे हो, यह आपको बोलनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल आपकी आंखको देख कर ही व्यक्तिको यह निश्चय हो जाता है. साउन्ड्में भी साइकोलॉजिस्टोंने यह प्रयोग किये हैं. आपकी आवाज़में जो टोनल् वेरियेशन्स् आते हैं, वे आपके मनमें आते भावोंके अनुरूप होते हैं. जब आप गुस्सा होते हो तो आपका टोन् अलग होता है, जब आप स्नेहकी बात करते हो तो अलग होता है, जब किसीकी निंदा करते हो तो अलग और स्तुतिमें अलग. इस टोनल् वेरियेशन्से भी हमें दूसरेकी बातका डिटर्मिनेशन् होता है. इसी प्रकार गंधसे भी हमें डिटर्मिनेशन् होता है. उदाहरणके लिए कोई गंध मीठी हो पर बहुत तेज हो, तो वह भी हमें अच्छी नहीं लगती. मीठी न हो कर खट्टी हो पर हल्की हो तो वह हमें अच्छी लगने लगती है. बहुत अधिक खट्टी हो तो भी हमें अच्छी नहीं लगती. इस तरह ये सारे डिटर्मिनेश्न्स्को हमारी इन्द्रिय ऑर्गेनाइज़् करती हैं. इसमें उनका बहुत पॉज़िटिव् रोल् होता है.

(पर्सेप्शन्में बाहरी ऑर्गेनाइज़ेशन्का सिद्धान्त)

इन्द्रियाँ ऑर्गेनाइज़् किस प्रकार करती हैं, इसके कई सारे सिद्धान्त साइंस्ने भी खोजे हैं और अपने यहां भी खोजे गये हैं. हां, दोनोंकी टर्मिनोलॉजी अलग है. इसके दो-तीन उदाहरण आपको देता हुं. सबसे पहला विभाग ऑर्गेनाइज़ेशन्का किया गया है आंतरिक (Internal) और बाहरी (external) रूपमें. External organisation के कई सिद्धान्त हैं पर मैं आपको तीन ही बता रहा हुं.

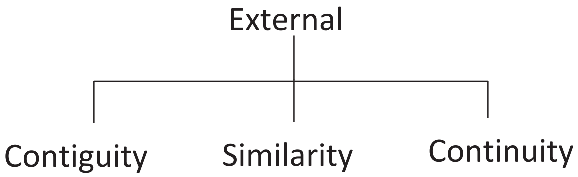
External
Contiguity
Similarity
Continuity

पहला सिद्धान्त है contiguity (समीपता)का. दूसरा है similarity (समानता)का और तीसरा है Continuity (निरंतरता)का.

(ऑब्जेक्टिव् कन्डिशन्[क])

(क-१. समीपता)

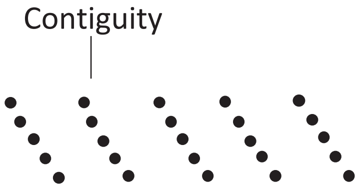
Contiguity

इसमें आप देखेंगे कि आपकी आंख vertical लाइन् देख रही है, सीधी नहीं देख रही. क्योंकि इस चित्रमें सारे डॉट् एक-दूसरेके बहुत पास हैं. इस तरह आंख जो पास है उसे ऑर्गेनाइज़् कर रही है और जो दूर है उसे नहीं. जो वस्तु पास दिखती हो उसे आंख नाक कान ऑर्गेनाइज़् करते हैं, जो दूर दिखती हो, दूरसे ध्वनि आती हो, उन्हें ऑर्गेनाइज़् नहीं करती. अर्थात् उसे एक ऑब्जेक्ट्के रूपमें नहीं लेती. देखो, तिरछी लाइनें जो आपको पांच दिखायी दे रही हैं वे horizontal भी तो हो सकती हैं. हम क्यों उन्हें horizontal न देख कर vertical देख पा रहे हैं? क्योंकि Contiguity नहीं है.

(क-२. समानता)

अब आप नीचेके चित्रकी ओर देखें.

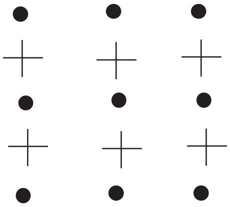

इसमें एक बिन्दु और एक प्लस् का साइन् बना देता हुं. अब यह आपको कैसा दीख रहा है! आपको इसे vertical देखना है तो वैसे देख सकते हो और horizontal देखना है तो वैसे देख सकते हो. क्योंकि अब Contiguity के साथ इसमें एक दूसरा सिद्धान्त भी काम कर रहा है Similarity का. अब आप इसे similarity के अॅन्गल्से देखेंगे तो आपको यह horizontal दिखायी देगा और Contiguityके अॅन्गल्से देखेंगे तो यह आपको vertical दिखायी देगा. यहां ऑर्गेनाइज़ेशन्का सिम्पल् प्रिन्सिपल् काम नहीं करके कम्पाउन्डेड् प्रिन्सिपल् काम कर रहा है.

(क-३. निरंतरता)

अब Continuity के बारेमें बताता हुं. साइंस्ने सचमुच इस ऑर्गेनाइज़ेशन्के बारेमें अद्भुत प्रयोग किये हैं.

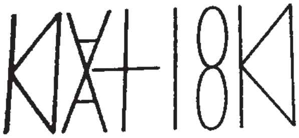

देखो यह है Continuity का सिद्धान्त. देखो, मैंने NATION लिखा है. एक 'N' के ऊपर दूसरा उल्टा 'N'. एक 'A' के

ऊपर दूसरा उल्टा 'A'. Continuityके आधारपर पहली दृष्टिमें आपको यह समझ नहीं आयेगा, पर थोड़ा ध्यान दोगे कि Continuity किसकी हो रही है, तो आपको nation दिखायी देने लग जायेगा. यह एक सिद्धान्त है external organisationका. इससे हम समझ सकते हैं कि दो वस्तु जब साथ दिखायी दे रही हैं, उदाहरणके लिए जहां बर्फ जमती है वहां गढ्ढोंमें कहीं-कहीं पानी भी होता है. वहां गढ्ढोंमें कहीं धूल भी पड़ी होती है. तो इन सबको हम एक वस्तुके रूपमें किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं? यह हमारी external Conditioning है.

Continuityके बारेमें आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि

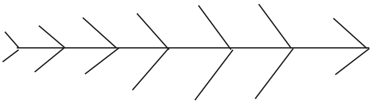

आप इसे भी continuityके प्रिन्सिपल्की तरह देख सकते हो. अब आप मुझे बताएं कि यह एक ॲरो है कि अधिक हैं? बहुत सारे हैं पर Continuity के सिद्धान्तसे हमें केवल एक ही ॲरो दिखायी दे रहा है. external environment हमें कैसे प्रभावित करता है यह देखने जैसा है. पुस्तकमें कितने अक्षर होते हैं पर continuityके कारण वे सब मिल कर शब्द बन जाते हैं. यदि continuity न हो तो आपको अक्षर ही पढ़नेमें आयेंगे. जैसे यदि कोई भाषा आपको न आती हो और केवल उसका अक्षरज्ञान ही हो तो आप Apple को 'A-P-P-L-E' ही पढेंगे. क्योंकि आपको उसकी Continuity ही पता नहीं चल रही है. यह organisation का बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है. मैं समझता हुं आपको अब यह विषय समझ आ गया होगा.

(सब्जॅक्टिव् कन्डिशन्^{ख})

इसके बाद आते है Internal organisation के सिद्धान्तपर.

(ख-१ फॅमिलियारिटी)

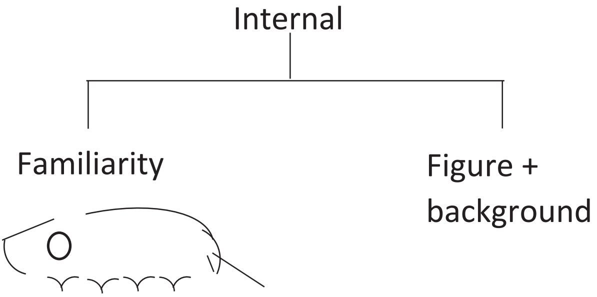
Internal
Familiarity
Figure + background

पहला है familiarity, इस organisation के सिद्धान्तके बारेमें समझते हैं. चित्रमें देखें. आपको यह क्या दिखायी दे रहा है? ८०-४४४४-२ दीख रहा है या कुछ और. यदि आपको यह चूहा ही दीख रहा है तो वह familiarityके कारण है. ये सारे नम्बर्स् कुछ इस तरहसे continuity में इकठ्ठे हुए हैं कि आपको यह नम्बर्के स्थानपर चूहा दिखायी दे रहा है. देखो, आंख किस प्रकार ये सब organise करती है! यह बहुत ही रोचक विषय है.

उसके बाद आता है फिगर् और बॅक्ग्राउंड्.

(ख-२.फिगर् और बॅक्ग्राउन्ड्)

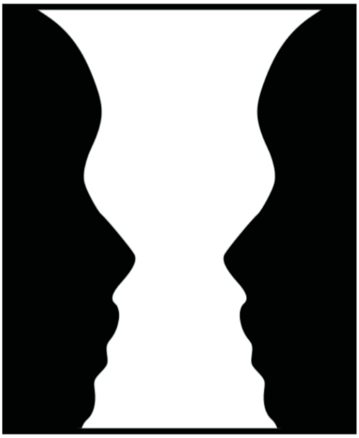

देखो, यह मनुष्यका चेहरा है. आंख है ठुड्डी है माथा है. देखनेमें लगता है कि प्याला है क्योंकि फिगर् होनेके कारण वह ही पहले हमें दिखायी देती है. सचमें यह प्याला न हो कर दो मनुष्योंके चेहरे हैं. पर वे बॅक्ग्राउंड्में चले गये हैं. यह internal organisation है कि हमें फिगर् पहले दीखती है और बॅक्ग्राउंड् बादमें. जैसे कॅमरेसे खींचा हुआ फोटो जब आप देखते हैं तो उसमें आपका कोई सगा-सम्बन्धी खड़ा है और पीछे चाहे काश्मीर जैसी सुंदर जगह क्यों न हो, पर पहले हमारी दृष्टि अपने सगेपर ही जायेगी, बादमें काश्मीरपर. यह इसलिए है क्योंकि हमारी आंखमें देखनेका इन्टेन्शन् है. किसीको पहले फिगर् दीखता है और किसीको बॅक्ग्राउंड्. किसीको फिगर् और बॅक्ग्राउंड् साथ दिखायी दे जाते हैं. जब द्रोणाचार्यने परीक्षा ली और सबको इकठ्ठे किये. उसके बाद भीमको बुलाया और पूछा "कुछ दीख रहा है पेड़पर?" भीमने कहा कि "महाराज! आज्ञा हो तो पेड़ तोड़ कर ले आता हुं. जो होगा वह सब दीख जायेगा." इसपर द्रोणाचार्यने कहा "मैंने तुम्हें पेड़पर क्या है, यह देखनेको बुलाया था, पेड़ तोड़नेके लिए नहीं." भीमको द्रोणाचार्यजीने बैठा दिया. उसके बाद एक-एक करके सबको बुलाये. पर सबने अलग-अलग उत्तर दिये. जब अर्जुनकी बारी आयी, तो उन्होंने कहा "तोतेकी आंख दीख रही है" तोता हरा है, पेड़ भी हरा है पर आंख दूसरे रंगकी होनेके कारण उन्हें वही दिखायी दी. अर्थात् उसे फिगर् इतना विशेष रूपमें दिखायी दिया कि सारी बॅक्ग्राउंड् दिखलायी देनी बंद हो गयी. उसकी आंख केवल टारगेट्को ढूंढ रही है. पर किसीकी आंख टारगेट् नहीं, फिगर् अथवा बॅक्ग्राउन्ड् को ढूंढती है. यह सब इन्द्रियोंका Internal organisation है. यह external नहीं है. आप अपने दृश्यको कैसे organise कर रहे हो, इसपर यह निर्भर है कि आपका निश्चय कैसा होगा.

(इन्टर्नल् ऑर्गेनाइज़ेशन्में रुचि और संस्कार की महत्ता)

एक बात इसमें और समझ लो कि जैसे मैंने आपको external conditionमें Contiguity similarity and continuity और internal condition में familiarity figure and ground बताये. इसमें फिगर् और बॅकग्राउंड् में आपको क्या नजर आ रहा है वह आपकी रुचिपर निर्भर करेगा. कोई फिगर्में रुचि रखता है तो कोई बॅकग्राउंड्में. एक बात मैं मजाकके तौरपर कहता हुं कि हवेलीमें दर्शन करनेके शौकीन ठाकुरजीमें रुचि नहीं रखते, हवेलीकी सजावटमें रुचि रखते हैं. ‘‘ओहो! क्या केसरका हिंडोला था, कैसे बड़े लड्डू थे!’’ महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि ठाकुरजी अपने वक्षपर कौस्तुभमणि धारण करते हैं जैसे श्रीनाथजी चिबुक धारण करते हैं, उसका एक ही कारण है कि जिसे वह दर्शन नहीं देना चाहते उनकी द्रष्टि चिबुकमें ही अटक जाती है. बस उनके लिए वह चिबुक ही फिगर् है और श्रीनाथजी बॅक्ग्राउंड्. यह सब अपनी रुचिपर निर्भर करता है. और रुचि विकसित होती है अपने संस्कारोंसे. संगीतमें भी ऐसा ही है. किसीको गानेके शब्द ही याद रहते हैं तो किसीको गानेकी धुन. और किसीको तो केवल बॅक्ग्राउंड्में बजनेवाला संगीत ही याद रहता है. यह सब अपनी रुचि और संस्कारों पर निर्भर है.

(ज्ञानका आधा अंग अर्थ है)

अब इसमें यथार्थ क्या है और अयथार्थ क्या है? तो इस organise करनेके कारण दूसरे लोग कहते हैं कि जो नहीं दीख रहा वह अर्थ है कि नहीं? यदि है फिर भी तुम्हे नहीं दीख रहा है तो वह मिथ्या है. महाप्रभुजी ऐसा नहीं कहते. वे कहते हैं कि जो दीख रहा है वह मिथ्या नहीं है और जो नहीं दीख रहा है वह आधा-अधूरा है. इस कारण प्रत्येक सत्यको हम पूर्णरूपसे जान ही नहीं सकते. पर अर्धसत्य जाना वह जूठ नहीं हो सकता. यह महाप्रभुजीका सिद्धान्त होनेके कारण वे कहते हैं कि **‘‘अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्.’’** ज्ञानका आधा अंग अर्थ है. साथ ही साथ यह भी कहा जा सकता है ‘‘ज्ञानमपि ज्ञेयार्थस्य अर्धम् अङ्गम्’’

अब देखो कि ज्ञानका आधा अंग अर्थ है तो अर्थका आधा अंग ज्ञान हुआ कि नहीं!

अभी परसों ही किसी बहनका जन्मदिन था. उसने मुझे फोन किया कि आज उसका जन्मदिन है. मैंने उसे बधाई दी और पूछा कि उसका पति कहां है? फिर मैंने उसके पतिको भी बधाई दी. उसने ऐतराज़ किया, बोला ''मेरा जन्मदिन थोड़े ही है!'' मैंने कहा ''अरे! जब आपके जन्मदिनकी बधाई आपकी पत्नीको दी जा सकती हो तो आपकी पत्नीके जन्मदिनकी बधाई आपको क्यों नहीं दी जा सकती? आखिर तो वह आपकी अर्धांगिनी है.'' पत्नीको 'अर्धांगिनी' कहा जाता है. यदि वह अर्धांगिनी है तो पति भी तो अर्धांग होगा. इस तरह व्यक्तिकी मानसिक स्थिति क्या है, यह internal conditions पर निर्भर करता है. इस तरह जो भी अंदर अथवा बाहर ऑर्गेनाइज़् हो रहा है, वह कन्डिशन्सके कारण ही हो रहा है. ऑर्गेनाइज़् तो हो रहा है पर वह पूरे तौरपर ऑर्गेनाइज़् नहीं हो पा रहा है क्योंकि उसे कन्डिशन् वैसी नहीं मिल रही है. इस ऑर्गेनाइज़ेशन्के मैंने तो आपको केवल तीन ही प्रकार दिखाये हैं पर यह अनेक हो सकते हैं. किसी भी वस्तुको देखनेकी अपनी मानसिक स्थितिपर निर्भर करता है. किसीको पेड़ दीखता है, किसीको पत्ते दीखते हैं, किसीको तोता दीखता है, किसीको तोतेकी आंख ही दीखती है और किसी को कुछ नहीं दीखता तो वह कहता है ''सभी उखाड़ कर ले आता हुं, आपको जो देखना हो देख लेना.'' इन सब दृष्टियोंमें जिसको जो दीख रहा है वह असत्य नहीं है पर जो दीखाई दे रहा है वह आधा-अधूरा होनेके कारण. वह अपने चारों ओरके वातावरण और उस समयकी अपनी मानसिक स्थितिपर आधारित रहता है कि हमें क्या दीख रहा है.

(स्मृति अर्थ बिनाका ज्ञान है)

इसीलिए महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम्**

अङ्गम्. अतएव स्मृतिः न निश्चयात्मिका, अर्थाभावात्. इसलिए स्मृतिको हम निश्चयात्मक नहीं मान सकते क्योंकि जिस समय आपको स्मृति हो रही है उस समय अर्थ वहां मौजूद नहीं है. ज्ञान और अर्थ दोनों दंपति हैं. निश्चयके लिए दोनोंका होना आवश्यक है. स्मृतिमें ऑब्जेक्ट् तो है नहीं केवल ज्ञान है पर उसका अर्थ नहीं है इसलिये कह सकते हैं कि स्मृति विधवा है.

(अनुमिति यथार्थ है)

अनुमितिरपि सम्बन्धिव्यवधानेन अर्थजनितैव. इसपर शंका करते हैं कि यह बात तो फिर अनुमितिपर भी लागू होगी क्योंकि धुँएको देख कर आप आगके बारेमें कह रहे हो. क्योंकि महाप्रभुजीके अनुसार वहां अर्थ तो है नहीं. अरे! पर अर्थ नहीं मौजूद है तो कभी अर्थ स्वयं मौजूद न हो कर अपने प्रतिनिधिको भेज देता है. इसलिए यहां वह धुँएके रूपमें अपने प्रतिनिधिको भेज रहा है. जैसे जिन लोगोंको स्मार्ट फोन्की आदत हो जाती है, उन्हें आपसमें बात करनेका मजा नहीं आता, फोनपर ही बात करनेमें मजा आता है. अनुमिति ऐसी ही है कि सीधे बात करनेमें नहीं, मोबाइलपर ही बात करनेमें मजा आता है.

बचपनमें मैंने एक कहानी पढ़ी थी. एक छोटे बच्चेको उसकी माँने बाजारसे सामान लाने भेजा तो उसने अपना काम करनेका बिल अपनी माँको दिया. दूध लानेका इतना पैसा, सब्जी लानेका इतना पैसा, ये किया उसका इतना पैसा इत्यादि. माँने उसको डांटा नहीं, बस एक कागजपर उस बच्चेको लिख कर दिया कि तुझे नौ-महीने पेटमें रखा उसका कुछ पैसा नहीं, तुझे पालपोस कर बड़ा किया उसका पैसा नहीं इत्यादि. तब बेटेको एहसास हुआ कि माँसे कामके पैसे नहीं मांगे जाते. इस तरह बहुत बार ऐसा होता है कि हम सीधे बात नहीं कर पाते हैं, किसी माध्यमके द्वारा करते हैं.

प्रत्यक्षके उदाहरणमें ऑब्जेट् और अन्डर्स्टेन्डिन्ग् सीधे तौरपर संवादमें सम्मलित हैं, पर इन्फरॅन्स्में (अनुमानमें) डिरेक्ट् नहीं पर इन्डिरेक्ट् तो इन्वोल्व् है. एक-दूसरेके साथ कम्यूनिकेट् तो कर रहा है. आग धुँआ छोड़ रही है और व्यक्ति धुँआ देख रहा है. इसलिए धुंएको देख कर आगका अनुमान लगाना ठीक ही है क्योंकि धुँआ एक माध्यम है आगकी मौजूदगीको बतानेका. बहुतसे लोग कहते हैं कि इस कारण अनुमिति विश्वसनीय नहीं है. यह बात ध्यानसे समझो कि यदि हम ऐसी जिद्द पकड़ेंगे तो प्रत्यक्ष भी फिर विश्वसनीय नहीं रह जायेगा. क्योंकि प्रत्यक्ष भी किसी-न-किसी माध्यमके द्वारा ही हमसे बात कर रहा है. हर ऑब्जेक्ट् हमसे किसी साउंड् लाइट् अथवा हीट-वेव् के माध्यमसे ही तो संवाद कर रहा है.

प्राचीनकालमें चार्वाक नामके ऋषि हुए हैं. उनका दर्शन-शास्त्र भी कुछ ऐसा ही है. वे कहते थे कि प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, अनुमान प्रमाण नहीं है क्योंकि अनुमान आप स्मृतिके आधारपर कर रहे हो तो वह झूठ हो सकता है. दूसरे दर्शनशास्त्रियोंने इसके बारेमें जो अपना पक्ष रखा, वह इस प्रकार है. वे कहते हैं कि ‘‘यदि आपका पक्ष सच मान लिया जाये तो आप आपनी बात बोले बिना सीधी बताओ. क्योंकि आप सीधे तो शब्दोंके द्वारा ही अपनी बात बता पा रहे हो. आप जो बता रहे हो वह अपने ज्ञानके आधारपर बता रहे हो. क्या आप बिना शब्दोंके अपने ज्ञानके द्वारा हमारे ज्ञानसे संवाद कर पायेंगे? नहीं. आप अपनी समझको शब्दोंद्वारा हमें समझानेका प्रयास कर रहे हैं. क्योंकि श्रोता, वक्ताकी समझको सीधे तो जान नहीं पा रहे हैं. जान पा रहे हैं तो शब्दोंके द्वारा ही. इस तरह प्रत्यक्षमें भी तो डायरॅक्ट् कम्यूनिकेशन् (सीधा संवाद) नहीं है. प्रत्यक्षका भी तो आप किसी वेव्के द्वारा प्राप्त सूचनाके आधारपर निश्चय कर रहे हो, डायरॅक्ट् कम्यूनिकेशन् नहीं है. इसके कारण अप्रमाण मानते हो तो जो बोल रहे हो वह भी अप्रमाण

हो जायेगा. सचमें बहुत ही रोचक संवाद है चार्वाक और दूसरे दर्शनशास्त्रियों का. इस कारण कह रहे हैं **अनुमितिरपि सम्बन्धिव्यवधानेन अर्थजनितैव.** अर्थात् इन्डायरॅक्ट् कम्यूनिकेशन्से अयथार्थ नहीं हो जाता, यथार्थ है. उदा. टॅलिफोन्के स्पीकिन्ग् और रिसीविन्ग् एन्ड्पर बात करनेवाले टॅलिफोन्के माध्यमसे परस्पर ही बात कर रहे होते है.

(सिंहावलोकन)

निश्चयमें प्रत्यक्ष (सविकल्पक प्रत्यक्ष) किस प्रकार होता है. प्रत्यक्षको पैदा करनेवाली जो ऑब्जेक्टिव् कन्डिशन् है, जिसमें contiguity, similarity और continuity ऐसे तीन फॅक्टर्का अवलोकन हमने किया. contiguity अर्थात् जो पास है उसका अनुभव होना और जो दूर है उसका नहीं होना. उसका उदाहरण हम समझ सकते हैं कि मोबाइल्में कोई पिक्चर् आया हो, उसे यदि ज़ूम्-इन् करें तो सारे पिक्सेल् पास आ जाते हैं. पर ज़ूम्-इन् करते ही गये तो पिक्सेल् दूर हो जाते हैं और उसकी contiguity समाप्त हो जानेके कारण पिक्चर् जनरेट् नहीं होता है. उसके कारण हमें कोई भी फिगर् दिखाई नहीं देती है. यह contiguityका परफेक्ट् उदाहरण है. similarityको मैंने आपको डॉट् और क्रॉस् के उदाहरणसे समझाया था. इसी तरह Continuityका भी Nationके उदाहरणसे आपको समझाया था. तदुपरांत internal condition में familiarity, figure and background और camouflage उनके बारेमें बताया था. Familiarity के बारेमें बताया था कि यदि किसीसे familiar हैं तो उसे हम तुरंत पहचान लेते हैं और बाकी वस्तुएं हमारे लिए गौण हो जाती हैं. जो मैंने आपको ८०-४४४-२ के उदाहरणसे समझाया था, उसमें हमें इस संख्याके स्थानपर पहले चूहा दिखायी देता है.

(पर्सेप्शन्में फिगर्-बॅक्ग्राउन्ड् और कॅमफ्लेज् का प्रभाव)

फिगर् और बॅकग्राउंड् की बात भी समझने जैसी है. इसके

साथ एक और चीज जो समझने जैसी है वह है कॅमफ्लेज्की. (camouflage) कॅमफ्लेज्का उदाहरण है कि बाघ जिस भी बनमें रहता है, उसकी त्वचाका रंग वैसा ही हो जाता है. जो जानवर बर्फीले प्रदेशमें रहते हैं उनका रंग बर्फकी तरह सफेद हो जाता है. अर्थात् वो स्वयंको उस वातावरणके अनुरूप ढाल लेते हैं. इस प्रकार जब-तक हमारा विशेष ध्यान उनपर न हो, वह हमें दिखलायी नहीं देते. फिगर् और बॅकग्राउंड् का जहां-तक प्रश्न है, वहां एक समस्या थी कि हमारे अंदर समझकी एक सहज वृत्ति होती है कि फिगर् हमारे ध्यानमें एकदम आ जाती है और बॅकग्राउंड्की ओर हम खास ध्यान नहीं देते. देखनेकी सुननेकी सूंघनेकी सभी प्रक्रियाओंमें यह बात देखी जा सकती है. उदाहरणके लिए किसी भी फिल्म्का गाना आप सुनो तो फिगर्में उसके शब्द और उसकी धुन होती है, जो हमें तुरंत याद रह जाते हैं. पर बॅकग्राउंड्में उसका संगीत क्या बज रहा था, वह जल्दीसे हमें याद नहीं रहता क्योंकि आप उसे बॅकग्राउंड्में ही सुन रहे हो, फिगर्में नहीं. गंधमें भी कुछ ऐसा ही है. जो गंध बॅकग्राउंड्में आ रही है, उसकी ओर हमारा ध्यान जल्दीसे नहीं जाता. जैसे मच्छीमारोंकी बस्तीवालेंको मछलीकी बासपर ध्यान नहीं जाता. हमें वह गंध तुरंत महसूस होने लगती है फिगर्की तरह. स्पर्शके अनुभवमें भी ऐसा ही है. जो हवा हमें स्पर्श कर रही है, उसका बॅकग्राउंड्में होनेके कारण हमें ख्याल नहीं रहता. पर यही हवा यदि अचानक ठंडी अथवा गर्म हो जाये तो आपको वह फिगर्की तरह एकदम ध्यानमें आ जायेगी. यह सब internal conditons के कारण हमारा मन इस प्रकार गढ़ा हुआ है कि हमारा ध्यान पहले फिगर्की तरफ जाता है. बॉलीवुड्का एक गाना भी तो है कि *“दिलको देखो चेहरा न देखो चेहरेने लाखोंको लूटा”*

इसमें हमेशा एक बात समझनी चाहिये कि पुराने जमानेमें जितनी

भी पेंटिंग् बनती थी, उनमें यह पर्सेप्शन्की कन्डिशन्पर पुराने कलाकार उतना ध्यान नहीं देते थे. इसीलिए हमारे यहां रियालिस्टिक् पेंटिंग् नहीं बनती थी, कन्वेन्शनल् पेइन्टिंग् ही बनती थी. रियालिस्टिक् पेंटिंग्में रियलिज़म् क्या है, यह आपको यदि जानना हो तो आगे मोनालीसाका चित्र देखिये.

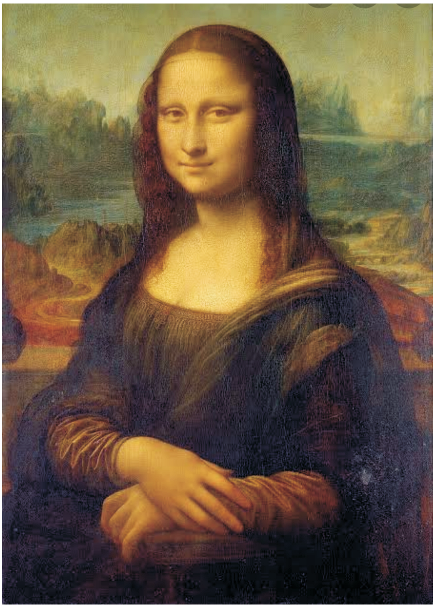

इसमें आप देखेंगे तो फिगर् एकदम फोकस्में है और बॅकग्राउंड् एकदम आउट् ऑफ् फोकस् दिया गया है. बॅकग्राउंड्को आउट्-ऑफ् फोकस् रखनेसे ही यह पेंटिंग् रियालिस्टिक् हो गयी है. ऐसी ही हमारे मनकी कन्डिशनिंग् भी है कि जब भी हम देखते हैं तो फिगर् फोकस्में रहती है और बॅकग्राउंड् आउट्-ऑफ्-फोकस् रहती है. यह रियलिज़म् यूरोपमें बहुत प्रचलित हो गया था. उसके बादके कालमें ॲकेडेमिक् रियलिज़म् आया. वह फोटोग्राफ़से भी अधिक रियल् पेंटिंग् थी. उसके बाद कलाकार उस तरहकी कलासे बोर् हो गये.

उसके बाद एक रिवोल्ट् हुआ और कलाके अन्य प्रकार जैसे एब्सट्रेक्टिज़म्, एक्सप्रेशनिज़म्, इम्प्रेशनिज़म् क्यूबिज़म् इत्यादि विकसित हुए.

इनमें अपने भारतकी पेंटिंग् कैसी थी वह आपको दिखाउं तो ख्याल आयेगा.

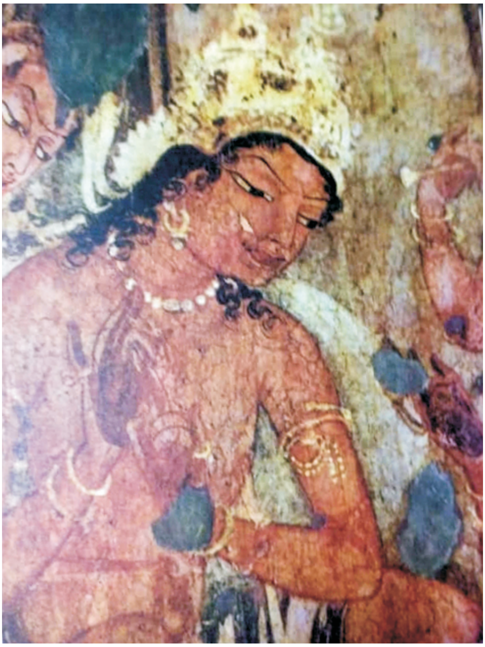

इसमें देखें तो आपको पता चलेगा कि छोटी-से-छोटी डीटेल् भी उन्होंने फोकस्में रखी है. कुछ भी आउट्-ऑफ्-फोकस् नहीं है. यह रियालिस्टिक् नहीं है, कन्वेन्शन्ल है. कभी भी बॅकग्राउंड् इतने फोकस्में नहीं दिखता. यदि दीखे तो वह बॅकग्राउंड् नहीं है. यह अपना कन्वेन्शन् था. जब यूरोपियनोंने ऐसी पेंटिंग् देखी तो उन्हें लगा कि हम क्या कर रहे हैं और फिर उन्होंने रियालिस्टिक् पेंटिंग्को थोड़ा कम बनाना शुरू किया और उसके बाद कलाके और प्रकारोंका जन्म हुआ. यह सिद्धान्त है पर्सेप्शन्का.

इससे एक बात समझमें आयी कि जैसे शिकार करनेवाला जानवर शिकार होनेवाले जानवरके फोकस्‌में न आ जाये इसलिए वह अपने आपको कॅमफ्लेज्‌ कर लेते हैं. आपने देखा होगा कि गिरगिट भी अपने चारों ओरके बॅकग्राउंड्‌के अनुसार अपने रंग बदल लेता है. इस तरह जब कोई चीज कॅमफ्लेज्‌ होती है तो हम देखनेमें सक्षम रह नहीं जाते, यह आंतरिक ऑर्गेनाइज़ेशन्‌ है. इसमें यही देखनेवाली बात है कि जब भी देखने सुनने स्पर्श करने अथवा सूंघने की स्टिम्यूली इन्टर्नली और ॲक्स्टर्नली कैसे ऑर्गेनाइज़्‌ होती है और उसके कारण हमारे देखने सुनने सूंघने के पर्सेप्शन्‌ होता है. यहां तककी बात हमने अपने पिछले प्रवचनमें देखी थी.

(उत्पन्न ज्ञानकी प्रामाणिकता क्या ?)

अब यदि पर्सेप्शन्‌का यह सिद्धान्त है तो दूसरी एक समस्या यह खड़ी होती है कि क्या हमारा सब ज्ञान सविकल्पक प्रत्यक्षसे (पर्सेप्शन्‌) ही होता है या ॲक्स्ट्रा सॅन्सरी पर्सेप्शन्‌ भी कुछ होता है, कोई चमत्कारके अर्थमें नहीं पर जो सॅन्सरी पर्सेप्शन्‌में नहीं दीखता हो, ऐसी भी हमारी अन्डर्स्टॅन्डिन्ग्‌ होती है कि नहीं? और यदि है तो कितनी रिलायबल्‌ या कितनी अन्‌-रिलायबल्‌? यह एक समस्या है.

साधारणतया हम कहते हैं कि "देखें तो ही हम मानेंगे. नहीं देख पा रहे हैं तो कैसे मानें?" इसपर फिर एक प्रश्न खड़ा होता है कि 'देखें तो मानें'में जो देखा है वह सभी सच है? यदि सच मान रहे हैं तो कितने पर्सन्टेज्‌ वह सच है? यह बात ऑर्गेनाइज़ेशन्‌ ऑफ्‌-स्टिम्युलीसे ही हमें कल्पना हो सकती है. क्योंकि जिसको हम ट्रुथ्‌ या फॅक्ट्‌ कह रहे हैं, उसके बारेमें निश्चित कैसे हो सकते हैं? truth = कोई भी वस्तु जानते हो कि न जानते हो, वह वैसी ही है तो वह ट्रुथ्‌ है. यदि जाननेकी पूरी प्रक्रिया organisation of external and internal stimuli पर आधारित होती हो तो इस organisation of stimuli के अलावा ट्रुथ् क्या है? क्योंकि जो organised नहीं है वह तो हमें दिखता ही नहीं है. तो इस स्थितिमें ज्ञानमें जो निश्चितताका रोल् कहांसे आता है? आप ट्रुथ् और फॅक्ट् के बारेमें निश्चित कैसे हो सकते हैं? यह एक समस्या है.

उदाहरणके तौरपर आपको एक बात बताता हुं कि दूरबीनसे आपको दूरकी वस्तु पास दिखायी देती है. पर हम जानते हैं कि वह इतनी पास नहीं है तो अब उसे पास मानना कि दूर? माइक्रोस्कोपसे कोई माइक्रोस्ट्रक्चर् दिखायी दे रहा है जो कि साधारण रूपमें हमें दिखायी नहीं देता, तो उसे सच मानना कि गलत? टॅलिस्कोपसे यदि कोई तारा हमें दिखायी दे, जो हमें अपनी आंखसे दिखायी नहीं देता है, तो उसमें कौनसे आस्पॅक्ट्को सच मानना और कौनसे आस्पॅक्ट्को गलत मानना? इसी तरह कार्तिक मासका नाम जिस तारामंडलके समूहके कारण पड़ा है, उसे 'कृतिका' कहा जाता है, वह आंखसे देखनेपर केवल एक तारा ही दिखायी देता है. पर साधारण दूरबीनसे देखें तो वह एक तारा नहीं, तारोंका एक अंगूरकी तरहका गुच्छा है. और टॅलिस्कोपसे देखें तो वह पूरी एक गॅलेक्सी है. अब बताओ सच क्या है? आंखसे जो दिखायी देता है वह सच है तो क्या वह एक तारा है कि एक गुच्छा है कि होल् गॅलेक्सी है? इस तरह सच क्या है, यह प्रश्न तो उठता ही है. अपने ज्ञानकी ऐसी खतरनाक व्यवस्थामें रिलायबिलिटी कहाँसे आ रही है.

(ज्ञानकी प्रामाणिकताके दो ध्रुव)

जैसे राजनीतिमें अलग-अलग पार्टी विचारधाराओंकी बन जाती हैं, उसी प्रकार यहां भी बन गयी.

और इसमें कुछ दार्शनिक इस मतके हुए कि **''सब ज्ञान अन्-रिलायेबल् है''**. (स्वत: अप्रामाण्य, परत: प्रामाण्य वाद = बौद्धमत)

इसके विरोधमें कुछने कहा कि "यदि आप सारे ज्ञानको अन्-रिलायेबल् मान लेंगे तो 'यह ज्ञान अन्-रिलायेबल् है इस बातका भी आपको जो ज्ञान हो रहा है उस ज्ञानको रिलायेबल् कैसे मानेंगे?'" इसलिए दूसरोंने अपोज़िट् स्टॅन्ड् लिया कि "**सारा ज्ञान रिलायेबल् है**". (स्वतः प्रामाण्य, स्वतः अप्रामाण्य वाद = सांख्यमत)

ऐसे ये दो ध्रुव हुए. एक पोल् = सब ज्ञान अन्-रिलायेबल् और दूसरा पोल् = सब ज्ञान रिलायेबल्. कपिल मुनि कहते हैं कि सब ज्ञान रिलायेबल् है और बुद्ध इसका उल्टा कहते हैं कि सब ज्ञान अन्-रिलायेबल् है. अब इन दोनों बातोंके बीच अपने व्यवहारको किस प्रकार मॅनेज् करना, यह तो बताना होगा.

(दोनों मतके दूषण)

It is eassy to say that all the understandings are reliable and all the understandings are unreliable, but difficulty to stick to it all the time. जो क्योंकि ऐसे कह रहे हैं वे इस प्रकारसे व्यवहार करते तो दिखायी नहीं देतें. जो यह कहते हैं कि सारा ज्ञान रिलायेबल् है तो वे मरीचिकाके पीछे दौड़ते क्यों नहीं हैं? रेल्की दो पटरी मिलती हुयी दिखायी देती हैं, तो ट्रेन्में बैठनेसे वह इन्कार क्यों नहीं कर देते! रातमें आते स्वप्नको भी रिलायेबल् क्यों नहीं मानते?

जो टोटली अन्-रिलायेबल् मानते हैं, वे भोजन करने तो आते ही हैं. भोजनकी थालीमें पक्वान्नको देख कर यह ज्ञान उन्हें क्यों नहीं होता कि यह सब अन्-रिलायेबल् है तो भोजन नहीं करना चाहिये. जैसे रेगिस्तानमें मरीचिका अन्-रिलायेबल् है. अरे! भोजन देखनेके बाद कोई छोड़ता है? कोई नहीं छोड़ता.

इस तरह अतिवादके जो दो ध्रुव बने, उनके बीचमें दो तीन

और कॅम्प् विकसित हुए. एकने कहा कि जो अन्डर्स्टॅन्डिन्ग्को सॅल्फ्-रिलायबल् मानो. और जो मिस्-अन्टर्स्टेन्डिन्ग् है, उसे कोई कारण मिल जाये तब उन्हें अन्-रिलायेबल् मानो. दूसरा स्टेन्ड्, बाय् डि-फॉल्ट् सब ज्ञान अन्-रिलायबल् है. फिर भी किसी ज्ञानके माननेमें हमको पोज़िटिव् रिज़ल्ट् मिलता हो तो उसे अपने बिहेवियर्के लिए तो ॲड्होक् रिलायबिलिटी मान लेनी चाहिये. उदाहरणके लिए शीशेमें देख कर हम दाढ़ी बनाते हैं इत्यादि. तो ऐसी स्थितिमें वह प्रतिबिम्ब रिलायबल् है Otherwise it is unreliable. ऐसे दो बीचके पक्ष हुए. इन पक्षोंको अपने शास्त्रके अनुसार ऐसा कहा गया है—१.स्वत: प्रामाण्य, स्वत: अप्रामाण्य (कपिलजीका पक्ष). २.परत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य (गौतम ऋषिका न्यायका पक्ष). ३.स्वत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य (मीमांसकमत). ४.स्वत: अप्रामाण्य, परत: प्रामाण्य (बौद्धमत).

(नैयायिकका परत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य)

रिलायबिलिटी भी सॅल्फ्-ॲविडेन्ट् नहीं है और अन्-रिलायबिलिटी भी सॅल्फ्-ॲविडेन्ट् नहीं है. आपको हमेशा सतर्क रहना होगा और निरंतर अपने पक्षको चॅक् करते रहना होगा. मतलब कोई कुछ भी कहे, उसकी बात तुंरत माननी नहीं. अन्डर्स्टॅन्डिन्ग् और मिस्अन्डर्स्टॅन्डिन्ग् को चॅक् और काउन्टर्-चॅक् करो. यह गौतम ऋषिका पक्ष था.

(बौद्धका स्वत: अप्रामाण्य, परत: प्रामाण्य)

बुद्धका पक्ष तो मैं आपको बता ही चुका, सब कुछ अन्-रिलायबल् है. पर अन्-रिलायबल् होनेके बावजूद भी यदि कुछ रिज़ल्ट् आपको मिलता हो, व्यवहारके लिए, तो उतने हिस्सेमें उसे प्रमाणित मान लो. जैसे प्रतिबिम्ब देख कर हम अपना मेकअप् करते हैं.

(मीमांसकका स्वत: प्रामाण्य, परत: अप्रामाण्य)

यह जैमिनी ऋषिका (मीमांसाका) पक्ष है. वह ऐसे कि Understanding by itself is reliable पर मिस्-अन्डर्स्टेन्डिन्ग्में कोई रीज़न् मिले तो

unreliable है. ऐसे यह चार पक्ष मोटे तौरपर हमें मिलते हैं.

इन मापदंडोंपर विपर्यास और निश्चय का निर्धारण करना है. विपर्यासके प्रकार मैंने आपको बताये, एरर् मिस्अन्डर्स्टॅन्डिन्ग् हॅल्युसिनेशन् इल्युज़न् इत्यादि. 'निश्चय' अर्थात् डिटर्मिनेशन्. अब कैसे निश्चय करें? यह चार मेजर् पॅरामिटर्स हैं.

(महाप्रभुजीका मत 'अर्धजरतीय'न्याय)

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यका पक्ष किसी एक कॅम्पको फोलो करनेमें नहीं मानता, अपितु हम इसमें 'अर्धजरतीय'न्याय मानते हैं. अर्थात् जिस समय जो केम्प् ठीक लगता हो उस समय उसी केम्प्को माननेका सिद्धान्त अपना है. आपका दिमाग थोड़ा हल्का हो जाये इसलिए एक बात बताता हुं. पिछली बार जब इलेक्शन्के रिजल्ट् आये तब संसदमें रामदास आठवलेने बहुत सुंदर भाषण दिया था. उन्होंने कहा "चुनावके पहले ये सारे कॉंग्रेसी मुझे कहते थे कि ये भाजपवाले पक्के हिन्दुवादी हैं. इसलिए तुम हमारे साथ आ जाओ क्योंकि हम सॅक्युलरिस्ट्र हैं. मैंने उनके आमंत्रण भी नहीं देखे क्योंकि यह तो डेमोक्रेसी है और डेमोक्रेसीमें अधिक लोग क्या चाहते हैं, यह देखना चाहिये. मुझे पता चल गया कि लोगोंका रुख राहुलके पक्षमें नहीं है और नरेन्द्र मोदीके पक्षमें है, इसलिए मैं इसमें आ गया हुं. कल आपकी तरफ लोगोंका झुकाव होगा तो हम भी आपकी तरफ आ जायेंगे. हमारा क्या है?" जो सर्कम्टॅन्सिस् है, उस पर हम इस बातका निर्णय लेनेको कह रहे हैं. किन परिस्थितिमें कौनसा सिद्धान्त ॲप्लिकेबल् है और कौनसा नहीं, इस बातको समझनेकी आवश्यकता है. जिस कन्डिशन्में जो भी सिद्धान्त ॲप्लिकेबल् हो, उसके अनुसार ही हम फोलो कर रहे हैं. इस तरह हम किसी एक कॅम्प्को कमिटेड् नहीं हैं. चारों पक्ष हमारे अनुसार सच्चे हैं. पर इसमें ॲडहोक् डिसिजन् ले नहीं सकतें. हर बखत ये देखना

पड़ेगा कि ऑब्जेक्ट्का स्वभाव कैसा है, सब्जेक्ट्का स्वभाव कैसा है, इन दोनोंके अनुसार ही कौनसे पक्षका अनुसरण किया जाये. इस पक्षको ही महाप्रभुजी 'अर्धजरतीय न्याय' कह रहे हैं कि कोई भी एक कॅम्प्के पक्षमें हम नहीं हैं.

इसके कॉरस्पॉन्डिन्ग् यूरोपमें ट्रुथ्की तीन थियरी हुयी. १. Theory of correspondence (यथार्थानुभवः प्रमा) 2. Theory of coherence (अनधिगताबाधितार्थ-विषयकज्ञानं प्रमा) 3. Pragmatic theory (फलाविसंवादिप्रवृत्तिजनकं ज्ञानं प्रमा)

१. थियरी ऑफ कॉरस्पॉन्डेंस् : ज्ञान वस्तुके साथ कॉरस्पॉन्डेंस् कर रहा है कि नहीं. कर रहा है तो रिलायबल् है और नहीं कर रहा है तो रिलायबल् नहीं है. जैसे रेगिस्तानमें हमें मरीचिका दीख रही है. दीख तो रही है पर है नहीं तो ज्ञान और वस्तु का कॉरस्पॉन्डन्स् नहीं हो रहा है. इसलिए मरीचिकाके ऍक्सपिरियन्स्को हम रिलायबल् नहीं कहते.

२. थियरी ऑफ् कोहियरेंस् : इसके अनुसार 'ए' कन्डिशन्की अन्डर्स्टेन्डिन्ग्, 'ए'के साथ कॉरस्पॉन्ड् हो रही है तो वह 'ए' कन्डिशन्में आपको पता ही नहीं चलेगा. उसे चॅक् करनेके लिए दूसरी कन्डिशन्में जाना पड़ेगा. उसके बाद उसकी कॉरस्पॉन्डेंस् चॅक् करनेके लिए तीसरीमें जाना पड़ेगा. इस तरह तो अंत ही नहीं आयेगा और निश्चय हो ही नहीं पायेगा. कुमारिल भट्ट, जो मीमांसक थे, उन्होंने कहा कि **"कस्यचित्तु यदीष्येत स्वतएव प्रमाणतां प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः किं निबन्धनः"** (श्लोकवार्तिक.७६) "दो चार कॉरस्पॉन्डेंस् चॅक् करनेके बाद आप कहो कि छोड़ो अब थक गये. इससे अच्छा तो यह होता कि थके बिना आपने पहले ही स्वीकार कर लिया होता कि जो दीख रहा है वह सत्य है. कहीं गड़बड़ दिखे तो आप

कहो कि यह गलत है.'' इस आर्ग्युमॅन्ट्के आधारपर थियरी ऑफ् कोहियेरेंस् आयी. what we can check is not correspondence but coherenc. If one knowledge cohere with another knowledge, then it is said to be truth. मानों मुझे किसी बातका ज्ञान अथवा समझ है, उदाहरणके लिए मुझे रेगिस्तानमें मरीचिकामें जल दिखायी दे रहा है और जब मैं उस स्थलपर जाऊं तो मुझे वहां जल नज़र नहीं आता. तो मेरी दो अन्डर्स्टेन्डिन्ग् आपसमें कोहियर् (सुसंगत/समन्वय) नहीं हो रही हैं, इसलिए वह अन्-रिलायबल् है. आपसमें कोहियर् होता हो तो समझ रिलायबल् होगी. एक यह सिद्धान्त आया.

इसमें भी एक समस्या खड़ी हुयी कि शॉर्ट टर्ममें कोहियरन्स् होती है, ऐसे लोन्ग् टर्ममें भी कोहियरन्स् होती है. उदाहरणके लिए इम्युनल् कान्ट् एक बहुत अच्छी बात कहते हैं. वे कहते हैं कि ''आप कोई व्यवस्थित रूपमें एक उपन्यास लिखो तो उसकी सारी घटनाएं आपसमें कोहियेरेंट् होगी. इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि आपने जो कहानी लिखी है, वह सत्य घटना है.''

३.प्रॅग्मॅटिक्/युटिलिटेरियन् थियरी : इस बातपर अमेरिकाके एक दार्शनिक वॉट्सन्ने युटिलिटेरियन् थियरी प्रपोज़् की थी, उन्होंने कहा कि ''जिस वस्तुकी उपयोगिता है वह रिलायबल् है और जिसकी उपयोगिता नहीं है वह अन्रिलायबल् है.'' कोई भी प्रत्यय हो, उसकी उपयोगिता है तो ही वह रिलायबल् है, नहीं तो नहीं. यह बुद्धके मतसे बहुत मिलती है. वे कहते हैं कि ''बाय् डिफॉल्ट् सब ज्ञान अन्रिलायबल् है. पर कहीं उसकी उपयोगिता आपको दीख रही है तो फोर् सेक् ऑफ् युटिलिटी, प्रमाण रिलायबल् मान लेना चाहिये.'' लिमिटेड् कॉन्टेक्स्में उसको प्रमाण माना जा सकता है. वॉट्सन्ने ऐसा नहीं कहा है कि सारा ज्ञान अप्रमाण है, जो बुद्धका मत है. उन्होंने केवल थियरी-ऑफ् युटिलिटी कही.

हम समझ सकते हैं कि जितने भी नोट्स् हैं, जितनी भी टिकिट्स् हैं, उनकी वॅलिडिटी क्या है? क्या दो हजारके नोटकी दो हजार कीमत है? उससे बड़ा तो अखबारका कागज होता है, जिसकी दो रुपये ही कीमत होती है. पर उससे छोटे टुकड़ेकी दो हजार वॅल्यु होती है. यह कीमत उस कागज की नहीं, उस नोटकी युटिलिटी है. इसी तरह टिकटकी भी कीमत उसकी युटिलिटीके ऊपर है. एक निश्चित तारीखके बाद उसकी कोई कीमत नहीं है.

एक भाई ट्रेन्में सफर कर रहा था. टिकिट्-चॅकर्ने आ कर पूछा "टिकट है." उसने कहा "है". टिकिट्-चॅकर्ने दिखानेके लिए बोला. उसने पांच रुपयेकी पोस्टेज् स्टँप् निकाल कर दिखा दी. टिकिट्-चॅकर्ने कहा "यह इसमें काम नहीं करेगी." इसपर वह व्यक्ति बोला "अरे! इससे मेरा पत्र अमेरिका तक पहुंच जाता है तो मुझे तो सिर्फ बोरीवलीसे चर्चगेट ही जाना है." अरे भाई! उस टिकटकी उपयोगिता पत्र पहुचानेकी है, आपको पहुंचानेकी नहीं है. इससे यह बात समझ लेनी चाहिये कि युटिलिटीका सिद्धान्त एकदम अलग है.

(भारतीयदर्शन और पाश्चात्यदर्शन के संवादकी आवश्यकता)

अपने यहां इस बारेमें क्या कहा गया है, इसे भी देख लें, क्योंकि आज-तक इस विषयपर कभी भारतीय दर्शन और यूरोपियन दार्शनिकों की चर्चा नहीं हुयी है. क्योंकि जब महाप्रभुजी हुए तब वे लोग यहां नहीं थे. और जब यूरोपियन् यहां आये तो उन्हें म्लेच्छ मान कर उनसे बात ही कोई नहीं करता था. इस तरह वैचारिक आदान-प्रदान हुआ ही नहीं. मेरा एक मत है कि चाहे सीधे तौरपर उनसे हम डिबेट् न करें पर उनके और अपने दर्शनको आपसमें तुलना करके तो देखना ही चाहिये. इसी तरह तो चर्चाकी नींवको तैयार किया जा सकेगा. वह प्रारंभ न करे तो हमें आपसमें

ही करनी चाहिये. देखें तो सही कि उनका पक्ष क्या है और अपना क्या है? अपना दुर्भाग्य यह है कि जो पाश्चात्य दर्शन पढ़ता है वह भारतीय दर्शन नहीं पढ़ता और जो भारतीय दर्शन पढ़ता है, वह पाश्चात्य दर्शन नहीं पढ़ता. इसलिए संवाद हो ही नहीं पाता.

एक अमेरिकन् स्कोलर् है जो अपने यहांके सारे दर्शनोंका अंग्रेजीमें अनुवाद करके वहां छपवाते हैं. उनके प्रोजेक्ट्में श्रीवल्लभाचार्यका मत भी है. एक बार वे मेरे पास आये तो मैंने उनसे पूछा कि “हमारे यहाँ पाश्चात्य दर्शन बहुत पढ़ते हैं पर ऐसा क्यों है कि आपके यहां हमारा दर्शन नहीं पढ़ा जाता?” उन्होंने बहुत अच्छा उत्तर दिया. बोले “हमारी दृष्टिमें आपका चिंतन दार्शनिक है ही नहीं.” उसके बाद मैं समझ गया कि हम लोग उनकी फिलॉसॉफी केवल इसीलिए पढ़ते हैं क्योंकि हमारी शिक्षाकी व्यवस्था उन लोगोंके द्वारा प्रचलित की गयी है. इसीलिए भारतीय दर्शन भी हम अंग्रेजीमें ही पढ़ते हैं, संस्कृतमें नहीं पढ़ते. इस तरह उन्होंने अपने उद्देश्यको अच्छी तरह निभाया है और यही अपनी लाचारी है. मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने पढ़ानेके प्रोग्राम्में अथवा जहां भी फिलॉसॉफीकी चर्चा होती है उसमें या अपने प्रवचनमें एक बातका आग्रह रखता हूं कि मैं पाश्चात्य दर्शनको अपने दर्शनके साथ समझानेका प्रयास करता हुं.

इस संदर्भमें ही यदि उपरोक्त तीनों सिद्धान्तोंके बारेमें यदि कोई श्रीवल्लभाचार्यजीको पूछने आये कि आपका इस बारेमें क्या मत है, तो श्रीवल्लभाचार्यकी ओरसे मैं यह कहना चाहूंगा कि यहां भी हम ‘अर्धजरतीय’न्यायको ही स्वीकारेंगे. कोई भी एक कॅम्प्के हम मॅम्बर् नहीं हैं. तीनों मतोंमें परिस्थितिके अनुसार जो-जब हमें योग्य लगेगा, वह हम स्वीकार करेंगे. किसी भी एक बाड़ेके हम

नहीं हैं. क्योंकि महाप्रभुजीने स्वतःप्रमाण और स्वतःअप्रमाण के संदर्भमें यह बात स्वीकारी है, इसलिए इसी मापदंडको ले कर मैं यहां भी यह कहना चाह रहा हुं. मुझे लगता है कि यहां तकका विषय आपको समझ आ ही गया होगा.

(लक्षण और प्रमाण से वस्तुकी सिद्धि)

इस स्टॅन्ड्में एक बात और कहना चाहूंगा कि भारतके दर्शनमें यह बात, जो कि पाश्चात्य दर्शन-शास्त्रमें नहीं थी, वह यह है कि **"लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः"** कोई वस्तु हकीकतमें है कि नहीं, वह लक्षण और प्रमाण से ही वस्तु सिद्ध होती है. That means if you can define a thing and also make us experience it, not only empirically, logically nor even verbally but in some otherway make us experience it, then we will believe that what ever you are talking is true. कुछ देख पा रहे हो कि कुछ इन्फरन्स् दे रहे हो कि वर्बल् इन्फॉर्मेशन् आप दो, उससे वस्तु सिद्ध नहीं होती. आप देख रहे हो पर उसे पारिभाषित नहीं कर सकते तो देखने भरसे वह रिलायबल् नहीं है. आपको अनुमान हो रहा है कि यह वस्तु ऐसी होगी, वैसी होगी पर यदि आप उसको डिफाइन् नहीं कर सकते तो वह सिद्ध नहीं हो जाती. बर्ट्रेंड् रसेल् कहते थे कि "मैं सोनेके पहाड़को डिफाइन् कर सकता हुं कि ऐसा पहाड़ जो कि सोनेका बना हो, तो क्या इस परिभाषा देने भरसे सोनेका पहाड़ सिद्ध हो जायेगा?" नहीं, सिर्फ डॅफिनेशन् ही काफी नहीं है. कोई सोनेका पहाड़ है तो उसके बारेमें कुछ जानकारी तो आपको देनी ही पड़ेगी कि आप जो कह रहे हो वह किसी पर्सेप्शन् इन्फरन्स् या वर्बल् इन्फॉर्मेशन् पर आधारित है. उसके बाद हम उसका परीक्षण करेंगे कि जो आप कह रहे हो, जिस आधारपर कह रहे हो, वैसा अनुभव हमें हो रहा है कि नहीं. यदि हो रहा है तो वह बात सिद्ध हो गयी. और नहीं

हो रहा तो वह सिद्ध नहीं होती है. आपको एक उदाहरण देता हुं, हालांकि इसका अपने विषयसे कोई सम्बन्ध नहीं है.

(अर्धजरतीय न्यायका उदाहरण)

अपने शास्त्रोंमें कहा है कि अपनी पृथ्वी क्षारोदसे वेष्टित है अर्थात् नमकके समुद्रसे चारों ओर घिरी हुयी है. आज पृथ्वी चारों ओरसे घिरी हुयी नजर नहीं आती. इसलिए सारे लोग मजाक बनाते थे कि शास्त्रोंमें झूठ लिखा है. पिछली शताब्दिमें एक वैज्ञानिकने गोंडवानाकी लॅन्ड्का (धरतीका) कन्सॅप्ट् रखा कि जिसमें उसने महाद्वीपोंके खिसकनेका (continental drift) विचार रखा. क्योंकि सारे महाद्वीपोंको आप इकठ्ठा करो तो वे एक-दूसरेमें फिट हो जाते हैं. इससे सिद्ध होता है कि किसी समय यह सारी पृथ्वी एक ही खंड थी, उस समय समुद्र चारों ओर था कि नहीं? अब इसका हमको इम्पिरिकल् ॲक्सपिरियन्स् नहीं हो पायेगा. यह तो इस बातसे निष्कर्ष निकाला जायेगा कि महाद्वीप खिसक रहे हैं जिनके कारण भूकम्प आ रहे हैं. तब यह बात सिद्ध होगी कि यह जो जम्बुद्वीप है वह क्षारोदसे चारों ओरसे घिरा हुआ था. अब अपने शास्त्रकारोंको यह ज्ञान कहांसे हुआ? आज भी कई लोगोंको यह समस्या हो जाती है कि जैसे शास्त्रोंमें क्षारोदका वर्णन है, उसी प्रकार शराबके समुद्रका भी वर्णन है, तो वह कैसे संभव है. अभी वैज्ञानिकोंने एक प्लॅनेट् ऐसा खोजा है कि जहां आल्कोहल्का सागर है. हमको शास्त्रकी कही हुयी बात झूठी लगती है. क्षारोदकी बात सच लगती है क्योंकि यह तो इम्पिरिकली अवेलेबल् है. पर अब तो वैज्ञानिक भी शराबके सागरकी बात कह रहे हैं, वह तो आपको केवल सुनी हुयी बात ही तो है, पर सच लगती है तो शास्त्रकी सुनी हुयी बात आपको सच क्यों नहीं लगती?

कहनेका मुद्दा यह है कि जो वर्बल् इन्फॅर्मेशन् आपको रिलायबल्

नहीं लगती थी उसका कॉरस्पाँडेंस् आपको मिला तो वह रिलायबल् लगने लगी. पहले उसका कोहियरेंस् नहीं दिखता था पर अब तो उसका कॉरस्पॉन्डेंस् मिल गया. अब मानो कि हमें ऐसा एक विमान मिल जाये कि हम उस किसी दूसरे सोलार् सिस्टम्के प्लेनेट्पर जा पायें तो यहां शराबखानोंकी क्या आवश्यकता होगी! जब भी पीनी हो वहां जा कर पी जा सकेगी. इस प्रकार उसका युटिलिटेरियन् प्रयोग हो गया कि नहीं? आजकी तारीखमें भी जब भी हमें नमक चाहिये तो हम समुद्रसे ही तो निकालते हैं. बहुतसी चिड़ियाएं पहाड़मेंसे नमक निकालती हैं. इस प्रकार उसकी युटिलिटी भी है और कॉरस्पॉन्डेंस् भी है और यह दोनों ज्ञान कोहियरेंट् भी हैं. इस तरह किसी भी एक कॅम्पको माननेवाले हम नहीं हैं. जैसी परिस्थिति है, उसके हिसाबसे माना जाना चाहिये. यह महाप्रभुजीका सिद्धान्त है.

(पाश्चात्यदर्शनकी तीनों थियरीका महाप्रभुजीके सिद्धान्तमें समावेश)

इसमें एक और खुलासा आपको कर दूं कि महाप्रभुजीके मतमें कोई भी transcendental objectका (इन्द्रियानुभवातीत वस्तु) कॉरस्पाँडेंस् हम चॅक् ही नहीं कर सकते. तो उस स्थितिमें थियरी ऑफ् कॉरस्पाँडेंस्को किस प्रकार प्रमाण माना जा सकता है. उस संदर्भमें हम थियरी ऑफ् कोहियरेंस्पर अपनी बातको निर्भर करेंगे. अर्थात् हमें दो इन्फॉर्मेशन् मिल रही हैं, तो दोनों एक-दूसरेसे टॅली हो रही है कि नहीं? टॅली हो रही है तो प्रमाण है.

अणुभाष्यमें पहला अध्याय समन्वयाध्याय है. 'समन्वय' अर्थात् कोहियरेंस्. एक वाक्य दूसरेके साथ कोहियर् हो रहा है कि नहीं? यदि वहां कोहियरेंस् है तो वह रिलायबल् है. कोर्टमें जज् घटनास्थलपर तो जाते नहीं है. वे तो केवल गवाहों और वकील की दलीलोंका कोहियरेंस् देख कर अपना जजमॅन्ट् सुनाते हैं. किसी भी वकीलकी दलील कानूनसे कोहियर् हो रही है कि नहीं, वह यही तो चॅक्

करता है. कोहियर् हो रहा है तो प्रमाण है और नहीं तो नहीं. वहां भी तो वर्बल् टेस्टिमनी हो रही है. कोई भी जज् मौकेका मुआयना करने तो जाते नहीं. बस इसी तरह हम भी यह मानते हैं कि जहां हम जा नहीं सकते वहां थियरी ऑफ् कोहियरेंस् प्रमाण है और जहां जा कर चॅक् कर सकते हैं, वहां थियरी ऑफ कॉरस्पॉन्डेंस् प्रमाण है. और जहां चॅक् करनेके बाद भी हमें लगे कि बात सच्ची तो नहीं लगती पर इसका फल सच्चा आ रहा है, तो वहां हम प्रेग्मॅटिक् थियरी मानते हैं, जो हमारे यहां बुद्ध भगवान्ने कही और यूरोप्में वॉट्सन्ने कही.

(लक्षण और प्रमाण से वस्तुका परिच्छेद)

इस तरह "**लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः**" यह जनरल् प्रिन्सिपल्को पकड़के चलें. इसका तात्पर्य आप समझो कि जो मैंने आपको organisation of stimuli की चर्चामें समझाया था कि फिगर् अपने फोकल् पोइन्ट्में होता है और बॅक्ग्राउंड् आउट्-ऑफ्-फोकस्. प्रमाणसे प्रत्येक वस्तु अपने फोकल् पॉइंट्में आती है और लक्षणसे वस्तु बॅकग्राउंड्में चली जाती है.

इसलिए संस्कृतमें एक बहुत सुंदर कहावत है, उसका ॲपिस्टोमोलॉजीके साथ संबंध तो नहीं है पर फिर भी आप लिख लो. "**परिच्छेदोहि पाण्डित्यम्**" 'पंडा' अर्थात् बुद्धि और 'पंडित' अर्थात् जिसमें बुद्धि हो वह. 'पांडित्य' अर्थात् पंडित होना. पंडित होनेका रिज़ल्ट् क्या होना चाहिये? जो वस्तु आपके सामने आये, उसे आप बॅकग्राउंड्मेंसे परिच्छेद करके फिगर्की तरह ट्रीट् कर सकते हो, उसका नाम 'पंडित'. जैसे बाघ जंगलमें घासके बीच छुप जाता है, जैसे तितली फूलमें छुप जाती है, जैसे गिरगिट पौधोंमें छुप जाता है, जैसे आर्मी हरे रंगकी ड्रेस् और टोपीमें घास लगा लेती है, जैसे नेवीवाले सफेद ड्रेस् पहनते हैं, जैसे एयरफोर्सवाले नीली ड्रेस पहनते हैं; यह सब कॅमफ्लेज्के सिद्धान्त हैं.

शेक्सपियर्ने मॅक्बॅथ्में कहा है कि मॅकबॅथ्को एक ज्योतिषीने कहा था कि सामनेका जंगल चल कर आयेगा, तो तु मरेगा, जो माँके पेटसे पैदा न हुआ होगा उसके हाथसे तू मरेगा. तो जिस राजाने उसे मारा था उसने अपने और सेनाके ऊपर झाड़ बांध कर अपने आपको कॅमफ्लेज् करके आया था और वह सिज़ेरियन् ऑपरेशन्से पैदा हुआ था. बस मॅकबॅथ् उसकी बात सुन कर ही आधा मर गया. इस तरह कॅमफ्लेज्का एक सिद्धान्त है कि प्रत्येक पशु-पक्षी मनुष्य कॅमफ्लेज् करता है. जितने भी पॉकिटमार होते हैं वे जेब काट कर भीड़में खो जाते हैं. अकेले खड़े रहें तो पकड़े जायेंगे. इसलिए वे भीड़में अपने आपको छुपा लेते हैं. चेतन ही नहीं, जड़ भी कॅमफ्लेज् करती हैं. थोड़ी देर वस्तु पड़ी रहे तो तुरंत उसपर मिट्टी जम जाती है. यह जड़ वस्तुके छिपनेका तरीका है. लोथलका माहेजोदड़ो इसी प्रकार छुप गया था. अभी काशीमें ग्यारहसौ वर्ष पुराने मंदिर मिले हैं. उनके चारों ओर लोगोंने दीवार बांध कर घर बना लिए. इसलिए वे टूटे नहीं बच गये और जो केवल चारसौ वर्ष पुराने मंदिर थे पर छुपे नहीं, वे टूट गये. इस तरह कॅमफ्लेज् एक तरहकी डिफेंस्-मॅकेनिज़म् है, जो हर वस्तुमें है. इसके कारण किसी वस्तुका छुप जाना एक तरहसे आउट् ऑफ् फोकस् चले जाना है. अपने मनकी यह internal organisation की सिस्टम् है. जब वस्तुका परिच्छेद हो नहीं सकता अर्थात् उसकी कॉन्टूर्-लाइन् नहीं बनती तो होता यह है कि वस्तु सामने दिखायी देनेके बाद भी दिखायी नहीं देती. कॅमफ्लेज्का प्रसिद्ध उदाहरण है ‘दशरामशरा’का. ‘दशरा-मशरा’. इसको ऐसे भी लिख सकते हैं ‘दश-राम-शरा’. अर्थात् रामके दश धनुष. देखो एक ‘-’ लगानेसे वाक्यका अर्थ छुप गया. इस तरह हम देख सकते हैं कि कॅमफ्लेज्का कितना सकारात्मक रोल् है. और कॅमफ्लेज् होनेके बाद वस्तु अपने फोकल्-पॉइन्ट्से बाहर चली जाती है.

(वस्तुका परिच्छेद = लक्षण + प्रमाण = ॲक्स्टर्नल् अथवा इन्टर्नल् स्टिम्युली)

पांडित्य ही कॅमफ्लेज् हुयी वस्तुको फोकल् पोइन्ट्में ला सकता है. इसीलिए यह कहावत “**परिच्छेदोहि पाण्डित्यम्**” कही गयी है. यदि आपको विषयको फोकल् पोइन्ट्में लाना आ रहा है तो आप पंडित हो. यदि आप परिच्छेद नहीं कर सकते तो विषय सुनके भी समझ नहीं पाओगे, जैसे दामोदरदासजीने कहा “महाराज! सुन्यो पर समुझ्यो नहीं.” जो विषयको सुनके परिच्छेद कर सके वो पंडित है. उस परिच्छेद करनेके प्रिन्सिपल्में तीन internal stimuli और तीन external stimuli काम कर रही है. जिसको अपने यहां कहा गया कि “**लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः**” अर्थात् बॅकग्राउंड् लक्षणका और फिगर् प्रमाणका. लक्षणके बॅकग्राउंड्से वस्तुके प्रमाणको यदि आप जानोगे तो वस्तुका परिच्छेद हो जायेगा. अर्थात् आपको परिच्छेद अनुभवमें आ जाय तभी आपमें पांडित्य झलकेगा. उसके बिना आप उस वस्तुके बारेमें बोल भी रहे हो तो उसमें आपकी बुद्धिमत्ता नहीं झलकेगी. यह ट्रुथको डिसाइड् करनेका प्रिन्सिपल् है. जो हमको पर्सेप्शन्के लॅवलूपर समझना है, उसके साथ इम्पॅरिकल् अन्डर्स्टेंडिंग् और वर्बल् टेस्टीमोनी के आधारपर भी लागू करके समझना है. साइंस्के आधारपर ॲक्सपेरिमॅन्ट् (प्रयोग) और ऑब्जर्वेशन् (पर्यवेक्षण) के आधारपर भी इसको लागू किया जा सकता है. क्योंकि प्रयोग करनेके बाद भी यदि लक्षण और प्रमाण नहीं दे सकते तो वस्तुका परिच्छेद हुआ नहीं है. यदि लक्षण और प्रमाण दे सकते हो तो वस्तुका परिच्छेद हुआ और वस्तु समझमें आयी. बुद्धिवृत्तिके विषयमें निश्चय किस प्रकार होता है उसकी यह पृष्ठभूमि है. मैं समझता हुं कि अब-तकका विषय आपको समझ आ गया होगा. उदाहरणतया खेतके प्लोट्में यदि बाढ नहीं लगाये तो किसका कौनसा हिस्सा है वह समझमें नहीं आता. बाढ लगा कर परिच्छेद करनेपर सुनिर्धारित हो जाता है.

प्रश्न : युटिलिटेरियन्के कन्सॅप्ट्को ज्ञानमीमांसाके तहत क्यों ला रहे

हैं. अर्थात् जैसे जो चल गया वह चल गया. यह तो इस तरहका विचार हो गया कि जो मिल गया उसीसे काम चला लो. अर्थात् माचिस है तो वही ठीक, नहीं तो लाइटर्से काम चलाओ. इस तरहसे इसे ज्ञानमीमांसाके अन्तर्गत तो लाना ही नहीं चाहिये.

उत्तर : इसमें मुख्य मुद्दा यह है कि क्योंकि कुछ लोग ज्ञानको टोटली अन्-रिलायबल् मानते हैं पर किसी प्रॅक्टिकल् उपयोगके लिए उसे रिलायबल् मानते हैं, इसीलिए वे युटिलिटेरियन् प्रिन्सिपल्को इन्ट्रोड्यूस् करते हैं, जैसे बुद्ध भगवान्. बुद्ध भगवान्के मतके अनुसार सब ज्ञान अन्रिलायबल् है. कोई भी ज्ञान रिलायबल् नहीं है क्योंकि ज्ञानको माननेमें फजीहत है. वे कहते हैं कि ज्ञान तो आपके मनकी उपज है, वस्तुविशेषका गुण है ही नहीं. वे यह कहना चाह रहे हैं कि वस्तुका वास्तविक ज्ञान हमें हो ही नहीं सकता. वह ज्ञान जो हमें हो रहा है वह अपनी कन्स्टिट्यूशन्के अनुसार हो रहा है. मेरे सॅन्स्ऑर्गन् और इन्टलॅक्चुअल् ऑर्गन् के अनुसार वस्तुका ज्ञान हो रहा है. वह वस्तुका प्रमाण तो हो ही नहीं सकता, वह तो आपका प्रमाण है. वह तो आप सोच रहे हो कि वस्तु ऐसी है, जबकि वस्तुका स्वरूप तो कुछ और ही है. Inspite of that for some practical purpose it will serve from the point of utility, then it is true. यही युटिलिटेरियनिज़्म्का सिद्धान्त है.

प्रश्न : पर वह तो तब पता चलेगा कि जब आपने उस वस्तुका बार-बार उपयोग किया है. नहीं तो पता कैसे चलेगा?

उत्तर : हां, एक बार तो आपको उसे उपयोगमें लाना होगा. एक बार भी उपयोगमें लानेके बाद हमें ज्ञान तो हो जाता है. बहुत पहले आर्थर् क्लार्ककी एक फिल्म् आयी थी 'Two thousand odyssey'. अब २००० तो बीत गया है पर उस समय वह फिक्शन् था. आर्थर क्लार्क साइंस् फिक्शन् लिखनेवाले वैज्ञानिक थे. उन्होंने लिखा था कि साल २०००में मनुष्य स्पेस्-क्राफ्ट् लेके ज्युपिटर् (बृहस्पति)पर जायेगा. उसमें तीन मनुष्योंको फ्रीज़् करके रखा जाता है और दो

मनुष्य उस स्पेस्क्राफ्ट्को चला रहे होते हैं. उस फिल्म्के प्रारंभमें एक बहुत सुंदर बात बतायी थी कि दो बंदरोंका समाज आपसमें लड़ रहा है. उसमें तगड़े बंदर बहुत सारे कमजोर बंदरोंको मार कर चले जाते हैं. उनके जानेके बाद कमजोर बंदर अपने साथियोंकी अस्थियोंको देख रहे होते हैं और उसी जिज्ञासामें वे एक हड्डीसे दूसरी हड्डीको मारते हैं, तो वे टूट जाती हैं. तब उन्हें यह क्लिक् होता है और उन अस्थियोंसे हथियार बना कर उन तगड़े बंदरोंपर हमला कर देते हैं और जीत जाते हैं. और इस खुशीमें वह एक हड्डीको उछालते हैं और वही हड्डी सन् २०००में स्पेस्क्राफ्ट् बन जाता है. गजबका पिक्चराइज़ेशन् था और उसमें वही बंदर मनुष्य बन जाते हैं. इस तरह एक बारके प्रयोग करनेसे ट्रुथ् समझमें आ गया कि इस हड्डीसे मारा भी जा सकता है. वह फिल्म् ज्युपीटर्की यात्रापर ही थी. समझनेवाली बात उस सीन्में यह थी कि जो अस्थि पहले बंदर उछाल रहे थे, वही उपकरण स्पेस्क्राफ्ट् बन कर मनुष्यको उछाल रहा है. कभी प्राणी इन्स्ट्रूमॅन्ट् उछाल रहे थे, आज इन्स्ट्रूमॅन्ट् मनुष्यप्राणीको उछाल रहा है. क्योंकि सारा प्रोग्राम् आज मनुष्य नियंत्रित नहीं कर पाता है, कम्प्यूटर् कर रहा है. उस स्पेसक्राफ्ट्में जो मनुष्य थे, उन सभीको कम्प्यूटर् ही नियंत्रित कर रहा था. जब वे रिवोल्ट् करते हैं तो कम्प्यूटर् उन्हें मार डालता है. जैसे बंदर बंदरोंको मार डालते हैं. इस तरह हम देख सकते हैं कि एक बारका अनुभव और उपयोग का ज्ञान भी हमारे ऊपर अद्भुत प्रभाव डालता है. एक बारकी युटिलिटीका (उपयोगिताका) ज्ञानके साथ सम्बन्ध है. एक बार मिला लाभ हमारे दिमागके ज्ञानके प्रोग्राम्को बदल देता है और हमारे वस्तुके देखनेका नज़रिया ही बदल जाता है. तो आप इस भ्रमणामें मत रहना कि उपयोगिताके सिद्धान्तका ज्ञानके साथ संबंध नहीं है.

प्रश्न : तो क्या हम इससे ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि

पूरा युटिलिटेरियन् कन्सॅप्ट् वैसे अन्रिलायबल् है पर तुम एक तुक्का चला रहे हो. चल गया तो ठीक नहीं तो दूसरा देखें.

उत्तर : इस तरह देखें तो सारा ज्ञान ही तुक्केबाजी ही तो है. Don’t rely on your knowedge is it possible ?

प्रश्न : यहां जो कहा है कि “**निश्चयो यथार्थाऽनुभवः अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्.**” इसके अनुसार तो थियरी-ऑफ्-कॉरस्पॉन्डेंस् ही ले रहे हैं ?

(यथार्थानुभव : थियरी ऑफ् कॉरस्पॉन्डन्स्)

उत्तर : महाप्रभुजी सबसे पहले निश्चयकी परिभाषामें कहते हैं कि **यथार्थानुभव.** यथार्थका मतलब क्या ? ‘यथा अर्थ’ अर्थात् “**अर्थम् अनतिक्रम्य जायमानं ज्ञानम् यथार्थम्.**” जैसा अर्थ है उस अर्थके अतिक्रमण किये बिना; अर्थात् किसी वस्तुका जो अर्थ होनेका पहलु है उसका कोई domain होता है, उससे बाहर निकले बिना जो ज्ञान होता है वह ‘यथार्थज्ञान’ होता है. उससे बाहर यदि अर्थ जाता है तो ज्ञान प्रमाण नहीं रह जाता. न्यायकी परिभाषामें इसे “तद्वति तत्प्रकारकं ज्ञानं यथार्थम्” ऐसा कहा जाता है. अर्थात् जिस वस्तुका जैसा कॅरेक्टर् होता है, वैसा कॅरेक्टर् आपको अपने ज्ञानमें भासित होता हो तो ही ज्ञान प्रमाण है. उदाहरणके लिए आपको घड़ेका ज्ञान हो रहा है. तो घड़ेका कॅरेक्टर् संस्कृतमें ऐसा माना जाता है कि “पृथुबुध्नोदराकृतिमान् घटः” अर्थात् जिसका पेट बहुत मोटा गोल दिखायी देता हो, ऐसे पात्रका नाम ‘घट’ है. अब यह घटका कॅरेक्टर् है, यह कॅरेक्टर् आपके ज्ञानमें भासित हो रहा है तो आपका ज्ञान यथार्थ है, नहीं तो अयथार्थ ज्ञान है. इसीलिए “तद्अभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानम् अयथार्थम्” इसी तरह आपको रस्सीमें सर्पका भान हो रहा है, उसमें सर्पत्वाभाववति सर्पत्वप्रकारकं ज्ञानम् अयथार्थम्. जिसमें सर्पपना नहीं है, ऐसी रस्सीमें आपको सर्पका भान हो रहा है वह अयथार्थ

है. जिसमें सर्पपना है, उसमें सर्पपनेका आपको भान हो रहा है तो ऐसा ज्ञान यथार्थ है. देखो, यहां थियरी-ऑफ्-कॉरस्पॉन्डेंस् आ रही है.

(अलौकिके वस्तूनि : थियरी ऑफ् कोहियरेन्स्)

परन्तु “**वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तत् चतुष्टयम्.**” यहां महाप्रभुजी स्पष्ट आज्ञा करते हैं कि “**अलौकिके वस्तूनि शब्दएव प्रमाणम् अनधिगतार्थकज्ञापकत्वाद्**” अलौकिक वस्तुमें शब्द ही प्रमाण है, अनधिगतार्थका ज्ञापक होनेके कारण. क्योंकि हम उसका कॉरस्पाँडेंस् चॅक् कर ही नहीं सकते. ब्रह्मने जगत् बनाया, यह उसीमें स्थित है और उसीमें लीन होनेवाला है, इस बातकी काउन्टर् चॅकिंग् हम किस प्रकार कर सकेंगे? संभव ही नहीं है, क्योंकि जब बनाया था तब हम थे ही नहीं, जब खतम होगा तब भी हम नहीं होंगे और जो स्थिति है वह ब्रह्ममें स्थित है कि आकाशमें स्थित है कि समयमें स्थित है कि स्पेस्में स्थित है कि एटम्में स्थित है कि मायामें स्थित है, यह हम कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं? यह निर्णय हो गया होता तो इतने सारे दर्शन और साइंस् के बीच मतभेद होता ही नहीं. इस प्रकारकी स्थितिमें हमें तो कोई ज्ञान है नहीं, तो ब्रह्म है कि नहीं, यह निश्चय किस प्रकार करेंगे? यहां क्योंकि कॉरस्पॉन्डेंस् मिल ही नहीं सकता है इसलिए महाप्रभुजी कहते हैं “**अलौकिके वस्तूनि शब्दएव प्रमाणम् अनधिगतार्थकज्ञापकत्वाद्**” इस तरह महाप्रभुजीने यहां यथार्थानुभवकी थियरी न अपना कर कोहियरेंस्की थियरी अपना ली है. “**वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि समाधिभाषा**” इन चारोंमें कोहियरेंस् (समन्वय) हो तो प्रमाण है, कोहियरेंस् नहीं है तो अप्रमाण है. यहाँ हम समझ सकते हैं कि थियरी ऑफ् कोहियरेन्स् स्वीकार ली है.

("**भक्तानान्तु संसारोऽपि फलप्रदः**" : **युटिलिटेरियन् थियरी**)

अब केवल मुद्दा रहा प्रेग्मॅटिक् थियरीका कि युटिलिटेरियन् ट्रुथ्को महाप्रभुजी प्रमाण मानते हैं कि नहीं? जैसे भगवान् बुद्ध कहते हैं "**फलाविसंवादिप्रवृत्तिजनकं ज्ञानं प्रमाणम्**" बाय् डिफॉल्ट् सब ज्ञान अप्रमाण हैं पर सब अप्रमाण ज्ञानमें For the sake of behaviour कौनसे ज्ञानको प्रमाण मानना? जिस ज्ञानसे तुम्हारा काम चल रहा हो, उस ज्ञानकी समझके आधारपर बिहेव् करते हो और वह बिहेवियर् फ्रुट्फुल् हो तो वह ज्ञान प्रमाण है. यह बात महाप्रभुजीने कहां स्वीकारी है, इसे ध्यानसे समझो. महाप्रभुजी कहते हैं अहंता-ममता मिथ्या है पर ब्रह्मसंबंधमें भगवान्को समर्पण करनेमें अहंता-ममता काम आ रही है. इसलिए वहां महाप्रभुजी कह रहे हैं "**भक्तानान्तु संसारोऽपि फलप्रदः**" यह युटिलिटेरियन् वॅल्यू है कि नहीं! "भगवान् मेरे आश्रय हैं" यह ममतास्पद ज्ञान सत्य है कि मिथ्या? 'दासोहम्' यह ज्ञान अहंतामूलक ज्ञान होनेके कारण मिथ्या है! इस तरह तो अपनी ब्रह्मसंबंध और अष्टाक्षर की दीक्षा, दोनों व्यर्थ हो गयी. क्या हम ऐसा मान सकते हैं? कभी नहीं. क्योंकि इन दोनोंकी युटिलिटेरियन् वॅल्यु है. इसमें फलाविसंवादिप्रवृत्तिजनन ज्ञानकी आ रही है, मिथ्या होनेपर भी. कृष्ण मेरा आश्रय है, ऐसा कह कर जब तुम कृष्णका आश्रय लेते हो तो वह तुम्हें मिलता है. "**कृष्णाश्रयम् इदं स्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसन्निधौ तस्य आश्रयो भवेत् कृष्णः इति श्रीवल्लभो अब्रवीत्.**" (कृष्णाश्रय. ११) और भागवतमें "**ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् हित्वा मां शरणं याता कथं तांस्त्यक्तुम् उत्सहे**" (भाग.पुरा.९।४।६५) भगवान् कहते हैं कि जो सर्वस्व समर्पण करके मेरी शरणमें आता है उसे मैं कभी छोड़ता नहीं हूं. इसी कारण अहंकार मिथ्याज्ञान होनेपर भी भगवान् उसे झूठा नहीं कहते हैं पर उसे मान्य करते हैं. इसीलिए प्रायः सॅमीनार्के बाद एक वॅलिडिक्टरी फन्क्शन् होता है. उसमें माना जाता है कि जो हुआ वह वॅलिड् हुआ.

(“यद् वै तत् सुकृतम्” : ब्राह्मिक युटिलिटेरियन्)

इसी तरह वेद भी वॅलिडिक्टरी फन्क्शन् करता है “**सत् च त्यत् च अभवत्. निरुक्तं च अनिरुक्तं च. विज्ञानं च अविज्ञानं च. सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवत्... यद् वै तत् सुकृतम्. रसो वै सः**” (तैत्ति.उप.२।६-७) यह है वेदकी वॅलिडिक्टरी स्पीच्. ब्रह्म सत् बना, त्यत् भी बना, निरुक्त बना, अनिरुक्त भी बना, ज्ञान बना और अज्ञान भी बना, स्थान बना, स्पेस् बना, जो कुछ भी बना “**सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवत् तदप्येष श्लोको भवति.**” (तैत्ति.उप.२।६) यह उसकी प्रशंसा है, न कि उसकी निंदा. यह सब उसके द्वारा किया जाता कार्य अद्भुत है क्योंकि “**यद् वै तत् सुकृतं रसो वै सः**” अब बताओ कि यह युटिलिटेरियन् फिनोमिना है कि नहीं. क्या आप इससे इन्कार कर सकते हैं. यह ब्रह्मके पार्टमें युटिलिटेरियन् सिद्धान्त है.

(भक्तिमें अहंता-ममताकी युटिलिटी)

और अपने पार्टमें युटिलिटेरियन् सिद्धान्त आ रहा है समर्पण और शरणागति से. अहंता-ममता और संसार मिथ्या होनेके बावजूद इसकी कुछ युटिलिटी तो है, भक्ति और शरणागति में. अहंताकी युटिलिटी समर्पणमें है और ममताकी युटिलिटी शरणागतिमें है. इस तरह ऐसी परिस्थितिमें महाप्रभुजी थियरिटिकली नहीं स्वीकरते हैं पर प्रॅक्टीकली तो “**फलाविसंवादिप्रवृत्तिजनकं ज्ञानं प्रमाणम्**” स्वीकार ही रहे हैं. यह बात हम साफ तौरपर देख सकते हैं कि यह “फलाविसंवादिप्रवृत्तिजनकं ज्ञानं” है कि नहीं!

ममताके कारण कृष्ण मेरा आश्रय है, यह ज्ञान क्या भ्रम है? यदि ममता भ्रम हो तो कृष्ण मेरा आश्रय है वह महान भ्रम हो गया. और अहंता यदि भ्रम हो तो “मैं कृष्णका दास हूं” यह भी महान भ्रम हो गया. जब मैं कुछ है ही नहीं तो मैं

दास कैसे हो सकता हुं. और फिर इसके आधारपर सेवादि सबका अधिकार फोक हो गया. क्या हम इस बातको स्वीकारनेको तैयार हैं? नहीं हैं तो हमें यह स्वीकारना होगा कि हमें थियरी-ऑफ़्-युटिलिटी स्वीकार्य है. महाप्रभुजीको भी यह स्वीकार्य है. हम इससे इन्कार नहीं कर सकते.

◆

अर्थोहि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्

आपके लिए मैं एक चार्ट दिखा देता हुं, जिसे आप अच्छेसे नोट कर लें. उसके बाद एक-एक करके मैं उसे समझानेका प्रयास करूंगा.

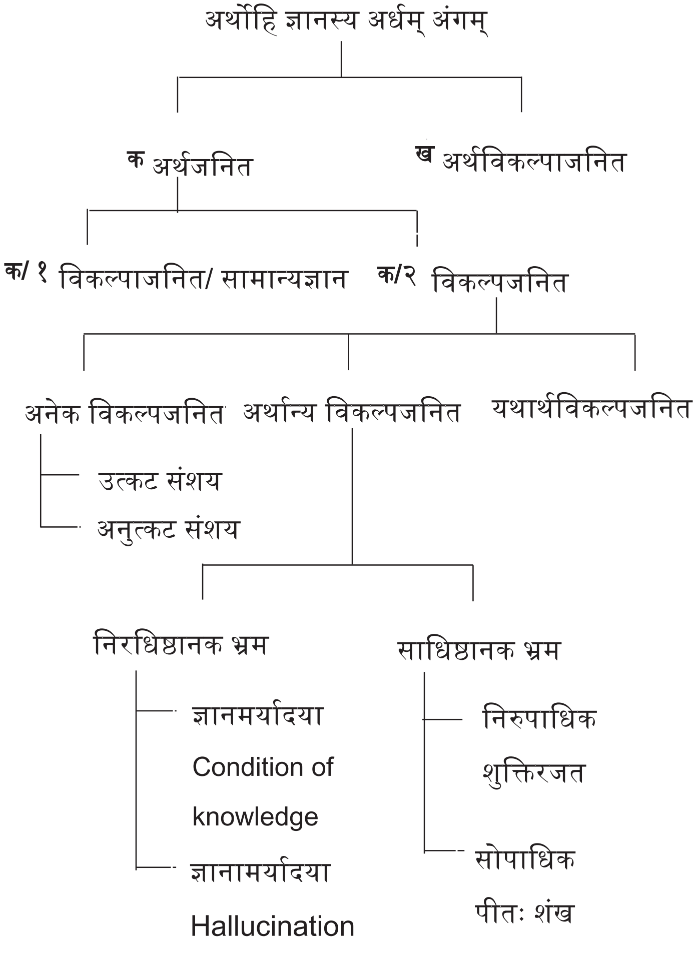

अर्थोहि ज्ञानस्य अर्धम् अंगम्
क अर्थजनित
ख अर्थविकल्पाजनित
क/ १ विकल्पाजनित/ सामान्यज्ञान
क/२ विकल्पजनित
अनेक विकल्पजनित
अर्थान्य विकल्पजनित
यथार्थविकल्पजनित
उत्कट संशय
अनुत्कट संशय
निरधिष्ठानक भ्रम
साधिष्ठानक भ्रम
ज्ञानमर्यादया
Condition of knowledge
ज्ञानामर्यादया
Hallucination
निरुपाधिक
शुक्तिरजत
सोपाधिक
पीतः शंख

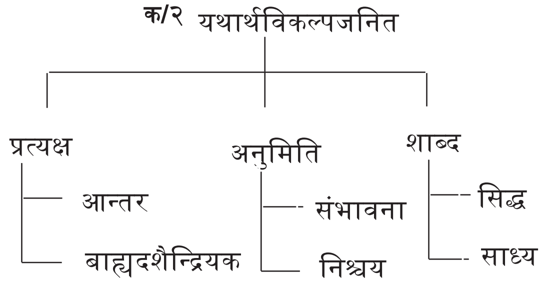
क/२ यथार्थविकल्पजनित
प्रत्यक्ष
आन्तर
बाह्यदशैन्द्रियक
अनुमिति
संभावना
निश्चय
शाब्द
सिद्ध
साध्य

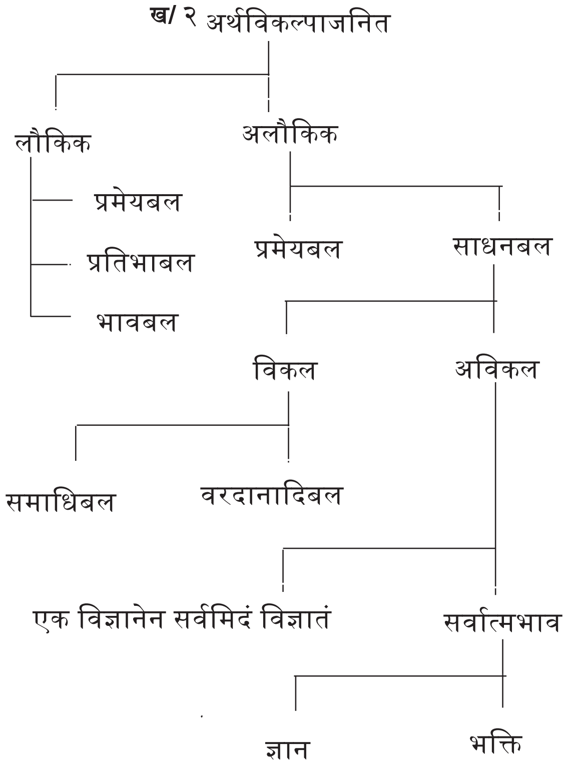
ख/ २ अर्थविकल्पाजनित
लौकिक
प्रमेयबल
प्रतिभाबल
भावबल
अलौकिक
प्रमेयबल
साधनबल
विकल
समाधिबल
वरदानादिबल
अविकल
एक विज्ञानेन सर्वमिदं विज्ञातं
सर्वात्मभाव
ज्ञान
भक्ति

महाप्रभुजीने यहां कहा है **निश्चयो यथार्थाऽनुभव: अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्**. 'निश्चय'का अर्थ महाप्रभुजी कह रहे हैं यथार्थका अनुभव. यह जो चार्ट मैंने तैयार किया है वह किसी प्राचीन टीकाकारने नहीं कहा है क्योंकि बहुतसे टीकाकार तो इस मुद्देपर कुछ बोले ही नहीं हैं, केवल पुरुषोत्तमजीकी टीका इस विषयपर है. हां, लालूभट्टजी और गट्टूलालाजी ने इसपर कुछ लिखा है. इस कारण आप इस चार्टपर कोई ग्रंथ दिखानेको कहेंगे तो वह मैं नहीं दिखा सकूंगा. फिर भी महाप्रभुजीके ग्रंथोंमेंसे जो मेरे मनमें छबि बनी है, उसके आधारपर यह चार्ट तैयार किया गया है. यह बात आपको मैं पहलेसे साफ कर दूं. यह बात किसी ग्रंथमें नहीं कही है. महाप्रभुजीने कई जगह जो बातें कही हैं, उन सबका जब मैं अर्थघटन करता हुं तो यह बात समझमें आती है कि महाप्रभुजी कोई एक सिद्धान्तको फॉलो नहीं कर रहे है As per requirement जहाँ जो सिद्धान्त जरूर है वहाँ वह सिद्धान्त फॉलो कर रहे हैं. बस यही आधार है मेरे इस चार्टका.

अब जब महाप्रभुजी कह रहे हैं कि "**अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्**" और 'यथार्थ ज्ञान' अर्थात् "**अर्थम् अनतिक्रम्य जायमानं ज्ञानम्**" महाप्रभुजीके कहनेका अर्थ है कि अर्थके डोमेन्से ज्ञान यदि बाहर जा रहा है, तो ज्ञान अधूरा और वह अर्थके डोमेन्में आ गया हो तो वह पूरा है. अब इसके आधारपर दो प्रकारके प्रभेद होते हैं. पहला **अर्थजनित ज्ञान** और दूसरा **अर्थविकल्पाजनित ज्ञान.**

(ब्राह्मिक ज्ञानसे अर्थकी उत्पत्ति)

तीसरा प्रकार 'अनर्थजनित ज्ञान' अथवा 'अर्थाजनित ज्ञान' हो सकता था पर मैं ऐसा अर्थ नहीं कर रहा हुं. इसका कारण समझो कि पूरी भागवत यह खुलासा कर रही है कि "**आसीद् ज्ञानम् अथो हि अर्थ: एकमेव अविकल्पितम्**" (भाग.पुरा.११।२४।२) आरंभमें

अर्थ और ज्ञान दो वस्तुएं नहीं थी, एक ही थी. पर ज्ञानने यह निर्णय लिया कि मुझे दूसरा चाहिये “**एकाकी न रमते**” इस कारण उसने अपनेमेंसे अर्थ बाहर प्रकट किया. भागवत कहती है कि ज्ञानने ही यह निर्णय लिया कि मुझे अपनेसे अपने अर्थको पृथक् करना है. इसलिए ज्ञानका ज्ञानपना संकुचित हुआ, अर्थात् अर्थके क्षेत्रमें ज्ञान संकुचित हुवा. अपने आपको तिरोहित कर पानेवाला ज्ञान ही अर्थके रूपमें प्रकट हुआ है. इसका मॉडल् हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि जैसे सूर्यमेंसे उसका सूर्यपना संकुचित हुआ तो सोलर् सिस्टम् बन गयी. यदि सूर्य अपनी प्लाज़्मिक् स्टेट् बरकरार रखे तो कोई प्लेनेट् सर्वाइव् ही नहीं कर सकता. सभी कुछ प्लाज़्मिक् स्टेट्में आ जायेगा. सॉलिड् लिक्विड् गॅशियस् और प्लाज़्मिक्, ऐसी चार स्टेट् होती हैं. सूर्य प्लाज़्मिक् स्टेट्में है. सूर्यने यह विचार किया कि “मुझमें ऐसी सामर्थ्य है कि मैं द्रव्यकी और तीनों फॉर्म भी ले सकू हुं.” इस तरह हम देख सकते हैं कि ज्युपीटर् (गुरु) और सॅटर्न (शनि) गॅशियस् फॉर्ममें हैं, प्लूटो आदि लिक्विड् हैं, पृथ्वी सभी (प्लाज़्मिक् गॅशियस् लिक्विड् सॉलिड्) फॉर्म्में है. यह सब इस कारण है क्योंकि सूर्यने अपने प्लाज़्मिक् फॉर्म्को थोड़ा तिरोहित किया और दूसरा स्वभाव प्रकट किया. इसी प्रकार ज्ञान जब अपना स्वभाव तिरोहित करता है तो अर्थ प्रकट होता है.

आपको एक और उदाहरण देता हुं. हमारा सारा शरीर एक लिविंग्-ऑर्गेनिक्-सिस्टम् है. ऐसा होनेके कारण इसके हर हिस्सेमें कॉन्शियसनेस् है. पर शरीर, नाखून और बालों मेंसे अपनी कॉन्शियसनेस्को संकुचित करता है. पर देखो, यही बाल और नाखून लिविंग् होते हुए भी कॉन्शियस् नहीं रह जाते हैं. Inspite of being a part of living organic system they become unconscious. As a matter of fact they were part of a consious living organic system. पर जब कॉन्शियसनेस् उनमेंसे तिरोहित हो जाती है और

लिविंग्-ऑर्गेनिक्-सिस्टम् शेष रही तो लिविंग् है, जब-तक वह शरीरसे जुड़ी हुयी है. काटनेके बाद जीवित भी नहीं रहता है और सॉलिड् हो जाती है अर्थात् जड़. Life cannot be defined as solid or liquid or gaseous or plasmic phenomena. Life is a combination of all (solid liquid gaseous plasmic and spaceious) these phenomena.

इसलिए हम कह सकते हैं कि ज्ञान ही अर्थके रूपमें परिणत हुआ है जैसे लिविंग् शरीरमेंसे नाखून और बाल प्रकट हो गये.

अब चार्टको देखो. ज्ञानके दो भेद, **१. अर्थजनित ज्ञान २. अर्थविकल्पाजनित ज्ञान.**

अब जो अर्थजनित ज्ञान है उसके दो प्रकार हो सकते हैं. **१. विकल्पअजनित ज्ञान/सामान्य ज्ञान २. विकल्पजनित ज्ञान.** विकल्पअजनित ज्ञान अर्थात् जो अर्थके विकल्पसे (मॉडिफिकेशन्) पैदा नहीं हुआ है. सिर्फ अर्थसे जनित है. You are aware of an object but not aware of the characterstics of the object. उसकी कोई वॅराइटी नहीं है क्योंकि उसकी जो stimuli है, उसमें contiguity का कोई रोल् नहीं है, उसमें Continuity का कोई रोल् नहीं है, उसमें फिगर् और बॅकग्राउंड् का कोई रोल् नहीं है, उसमें फॅमिलियरिटीका कोई रोल् नहीं है. क्योंकि सामान्य ज्ञानमें आपको यह भी पता नहीं चलता कि आप उस ऑब्जेक्ट्से परिचित भी हैं या नहीं? सामान्य ज्ञानमें हमें यह भी ज्ञान नहीं होता कि क्या ऑब्जेक्ट् कॅमफ्लेज्में है कि नहीं.

कॅमफ्लेज्के बारेमें पंचतंत्रमें एक बहुत मजेदार कहानी आती है. उसमें आता है कि एक सियार शहरमें आ जाता है, तो गांवके सारे कुत्ते उसके पीछे पड़ जाते हैं. वह बचनेके लिए एक रंगरेजके

घरमें घुस जाता है और कपड़े रंगनेकी कढ़ाईमें कूद जाता है. कुत्तोंको जब वह नहीं दिखा तो सब वहांसे चले गये. उसके बाद वह जब बाहर आया तो नीले रंगका हो गया. कुत्तोंने ऐसा सियार कभी देखा नहीं था, तो वे डर कर भाग खड़े हुए. अब सियारको उस रंगकी युटिलिटी समझ आयी कि वह डरावना भी हो सकता है. उसके बाद वह जंगलमें जाता है तो वहांके जानवर भी उससे डरने लगते हैं. और तो और, बाघ भी उससे डरने लगता है कि पता नहीं यह कौनसा नया जानवर आ गया है! इसका फायदा उठा कर वह सियार जंगलमें अपना राज घोषित कर देता है. सारे जानवर उसके गुलाम हो जाते हैं. तभी एक दूसरा सियार यह समझ जाता है और उस नीले रंगके सियारसे उस राज्यमें हिस्सेदारी माँगता है. वह उसे एकदम मना कर देता है. इस बातपर उस सियारको रोना आ जाता है. सियारोंके साथ एक समस्या होती है कि जब एक सियार रोता है तो सभी सियार रोने लगते हैं. तो उस राजा सियारको भी रोना आ जाता है. इस बातपर बाघ समझ जाता है कि यह तो साधारण सियार है और वह उसे खा जाता है.

अब ऑपिस्टमोलॉजीमें इसका क्या इम्प्लिकेशन् है वह समझो. यदि हमारे सामने अचानक कोई ऑब्जेक्ट् आ जाये और वह हमारी बुद्धिमें किसी भी प्रकारसे ऑर्गेनाइज़् नहीं हो पा रहा हो; किसी फिगर् अथवा बॅकग्राउंड् अथवा फॅमिलियरिटी में, तो हमें लगता है कि पता नहीं साक्षाद् भगवान् है कि कौन है! बहुतसे वैष्णवोंको भी यह भ्रमणा हो जाती है कि जितने भी महाराज हैं, वे पुरुषोत्तम हैं. क्या पता चलता है? पर जब आगे कोई सेवक ‘सावधान-सावधान’ करके चल रहा हो तो हमें लगता है पता नहीं कौन है! हो सकता है पुरुषोत्तम ही हो. सियारकी तरह सबको सावधान कर रहा है तो पुरुषोत्तम ही होना चाहिये.

इस तरह विकल्पाजनित ज्ञानमें हमें पता नहीं चलता कि इसकी वॅराइटी क्या है? आज भी अपने सामने कोई ऑब्जेक्ट् ऐसा आ जाये कि जिसे हम पहचान नहीं पा सके तो पहला अपना रिएक्शन् भयका ही होगा. इसलिए सामान्य ज्ञानसे सारे दार्शनिक डर गये. बुद्ध तो कहने लगे कि "सामान्य ज्ञान ही प्रमाण है बाकी सब अप्रमाण है." सियारकी तरह सामान्यज्ञानसे वह भयभीत हो गये और उसीको प्रमाण मान लिया. "**कल्पनापोढम् अभ्रान्तं प्रत्यक्षं प्रमाणम्.**" श्रीशंकराचार्य भी सामान्यज्ञानको प्रमाण मानते हैं. वे कहते हैं कि सामान्य ज्ञानको मैं अप्रमाण कहूंगा तो अद्वैत भी सिद्ध नहीं होगा क्योंकि अद्वैतका अर्थ है कि जिसमें वॅराइटी न हो और सामान्यज्ञानमें भी कोई वॅराइटी नहीं हैं. इस तरह श्रीशंकराचार्य और बुद्ध जैसे ज्ञानमार्तंड भी सामान्यज्ञानसे बहुत भयभीत रहते हैं, जैसे रंगे सियारसे बाघ डरता था!

मुझे यह फिलॉसॉफी बहुत ही रोचक लगती है क्योंकि विशेष ज्ञानसे कोई नहीं डरता पर सामान्य ज्ञानसे बड़े-बड़े ज्ञानी भी डरते हैं. इसका मूल कारण है कि सामान्य ज्ञान समझमें नहीं आता. विशेष ज्ञान तो इसके सभी कन्टेन्ट्के साथ ॲनलाइज् (समीक्षा) कर सकते हैं पर सामान्य ज्ञानका तो आप कुछ नहीं कर सकते. नैयायिक कहते हैं कि सामान्य ज्ञान अणुकी तरह होता है. उस अणुसे ही विशेष ज्ञानका भवन खड़ा होता है. और अणुको तोड़नेसे तो विस्फोट हो जाता है, इसलिए सभीको इससे भय लगता है. और इसी कारण श्रीशंकराचार्य श्रीमध्वाचार्य श्रीरामानुजाचार्य, सभीको सामान्य ज्ञानसे अत्यधिक भय लगता है. इसके विरोधमें शोर मचानेवाले कुमारिल भट्ट और प्रभाकर थे कि जिन्होंने कहा कि यह कैसी झूठी दादागिरी है, विशेष ज्ञान ही प्रमाण है. यह सारी चर्चा बहुत ही रोचक है. साधारणतया सामान्य ज्ञानको प्रमाण माने बिना छुटकारा नहीं है.

प्रश्न : कुमारिल भट्टको क्या समस्या हो सकती है जो वे कहते हैं कि हम स्वत: अप्रामाण्य नहीं मानेंगे परत: अप्रामाण्य मानेंगे? यह देखनेका दृष्टिकोण तो मुझे ठीक लगा पर इसमें दूसरे लोगोंको आपत्ति क्या है?

उत्तर : जैसे कहा है अग्निष्टोम होम करनेसे स्वर्ग मिलता है. इसका कोरस्पॉन्डन्स् देखने कौन गया है और कौन जानेवाला है? इसलिए कोहियरेंस् माननेके अलावा चारा ही नहीं है. इसमें समस्या यह है कि ज्ञानका जब हम विश्लेषण करते हैं तो ऑब्जेक्ट्की internal और external Stimuliके organisationसे जो ज्ञान पैदा होता है, इसमें ऑर्गेनाइज़ेशन् ज्ञानका कारण बन रहा है, ऑब्जेक्ट् कारण नहीं है. But if an object is not organised in a proper way, it causes ignorance. अब ऑर्गेनाइज़ेशन्को प्रमेय मानना कि ऑब्जेक्ट्को प्रमेय मानना, यदि हम ऑर्गेनाइज़ेशन्को प्रमेय मानेंगे तो ऑब्जेक्ट् प्रमेय नहीं हो पायेगा. और ऑर्गेनाइज़ेशन् तो प्रत्येक उदाहरणमें अलग तरहकी हो सकती है. जैसे मॅकेनाके पार्टस्मेंसे आपको प्लेन् बनाना है तो वह बना सकते हो, कार बनानी हो तो वह बना सकते हो, मोटर्-साइकल् बनानी हो तो वह भी बना सकते हो. इसकी तो कोई गॅरंटी नहीं है कि कोई व्यक्ति क्या बनाना चाह रहा है! आप जिस तरहसे उसे ऑर्गेनाइज़् करना चाहते हैं, वह वैसे किया जा सकता है. एक नियति तो होती नहीं है और जब नियति ही नहीं होगी तो निश्चय कहांसे होगा? Determination depends on certainity. If situation is uncertain then how will you determine what will happen? यह समस्या है.

जैसे बुद्ध भगवान् कह रहे है कि **"बुद्ध्या विवेच्यमानानां स्वभावो न अवधार्यते"** (लंकावतारसूत्र. २।१७५) बुद्धिसे यदि विवेच्यमानका स्वभाव ही निर्धारित नहीं हो पाता हो तो निर्णय कैसे होगा? आपको एक वेदके मंत्रका उदाहरण देता हुं. **"त्वं कुमार उत वा**

कुमारी, त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि.'' (श्वेता.उप.४।३) ''ओ भगवान्! तू कुमार है कि कुमारी, यह कुछ निर्णय नहीं हो पाता.'' जब पता ही नहीं चले तो निर्णय किस प्रकार होगा. इस तरह ब्रह्म क्या है वह पता कैसे चलेगा? इस तरह जब भी अनिश्चितता आ जाती है तो निर्णय लेना कठिन हो जाता है. इसीलिए भगवान् गीतामें कहते हैं कि **''संशयात्मा विनश्यति''** (भग.गीता ४।४०) भगवान् यह नहीं कहते हैं कि निश्चयात्मा विनश्यति. जब पता ही नहीं चल रहा कि क्या होने जा रहा है तो निर्णय कैसे होगा? पहले कहते थे कि कोरोनाका लक्षण है कि आपको साँस लेनेमें तकलीफ होती है. पर किसीको साँस लेनेमें तकलीफ नहीं हो रही है फिर भी कोरोना उसे हो रहा है. अब लोग कहते हैं कि ॲसिम्टमॅटिक् कोरोना है. अब इस प्रकारका कोरोना हो तो निर्णय कैसे करना कि कोरोना है कि नहीं!

इसका अर्थ यही हुआ कि यदि हम ज्ञानको स्वत: प्रमाण मान लेंगे तो ज्ञानकी रिलायबिलिटी नहीं है, यह नहीं बोल पायेंगे. इस तरह यह कन्विन्सिंग् तो है कि जब-तक आपको बाधज्ञान नहीं है तब-तक यह नहीं कह सके कि यह गलत है.

''ब्रह्म प्रमेय है कि अप्रमेय है, भ्रान्तिगोचर है कि सन्देहास्पद है?'' क्योंकि वेद स्वयं कह रहा है कि **''को अद्धा वेद क: इह प्रवोचत् कुत: आजाता कुत: इयं विसृष्टि:''** (ऋक्.संहि.१०।१२९।६) कौन जान सकता है कि यह कहांसे पैदा हुआ है और कहां जा रहा है? चलो यहां-तक तो बात माफ करने लायक है पर उसके आगे वेद कहता है **''यो अस्य अध्यक्ष: परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद.''** (ऋक्.संहि.१०।१२९।७) जो इसका प्रिसाइडिन्ग् गॉड् है वह इसको जानता है कि नहीं जानता? यदि वह भी नहीं जानता हो और जगत् बस ऐसे ही चल रहा है तो इसका निर्णय करना किस प्रकार?

तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा मत कॉन्टॅक्स्च्युअल् है. जब अग्निहोत्रके बारेमें बोल रहे हों तो दूसरा तो हमारे पास है ही नहीं. क्योंकि **“प्रत्यक्षेण अनुमित्या वा यस्तु उपायो न बुध्यते एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता.”** (कृष्ण.यजु.तैत्ति.संहि.सा.भा.उपो.) (अर्थात् प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाणसे जिस तत्त्वका ज्ञान नहीं हो रहा हो उसका ज्ञान भी वेदोंके द्वारा ही होता है. यही वेदोंका वेदत्व है.)

क्योंकि वहां हम जज्की भूमिकामें बैठ गये हैं. जज्को पता नहीं चलता कि सचमें क्या हुआ. पर वहां उपस्थित गवाहोंके बयानके आधारपर उसे जहां कोहियरेंस् दिखायी देता है तो प्रमाण मान लेता है. नहीं दिखायी देता तो वह अप्रमाण है. उसके सारे जजूमॅन्ट्र तथ्यपर आधारित नहीं होते हैं.

एक जज्की कही बात ही बता रहा हुं. उसने कहा “मैं जानता हूं कि दोषी कौन है पर उसे मैं दंड नहीं दे सकता क्योंकि जो गवाहोंके बयान मेरे सामने पेश किये गये हैं और ऍविडॅन्स् मुझे दिये गये हैं, वे कन्सिस्टन्ट् नहीं थे. यदि आप सच्चे भी हो पर कन्सिस्टन्ट् न हो तो वह झूठ ही लगेगा. और आप झूठ भी कन्सिस्टन्टली बोल रहे हो तो जज्को सच लगता है. वह स्पॉट्पर तो जाता नहीं है इसलिए कॉरस्पॉन्डेंस् तो चॅक् कर ही नहीं पाता. कॉरस्पॉन्डेंस् चॅक् हो तो यथार्थानुभव हो सकेगा.

इसलिए महाप्रभुजी कहते हैं कि जो Transcendental matter (अनुभवातीत/इन्द्रियातीत) है उसमें कोहियरेंस् प्रमाण है और जो मन्डेन् मॅटर् है उसमें कॉरस्पॉन्डेंस् प्रमाण है और जहां हमें यह निश्चय है कि यह रियालिटी नहीं है पर फिर भी उसकी कुछ उपयोगिता है तो उसपर रिलाय करना चाहिये. यह जो युनिवर्सिटी

डिग्री दे रही है; क्या कोई गारेंटी दे सकता है कि जिस विषयकी डिग्री मिली है तो उसे वह विषय पूरा समझ आ गया है! वह चोरी करके अथवा घूस दे कर भी तो पास हुआ हो सकता है. जोब् सबको मिल जाती है. अब यह प्रेग्मॅटिक् यूटिलिटी तो है ही न!

(विकल्पजनित ज्ञान)

इसके बाद अर्थजनितज्ञानकी दूसरी वॅरायटी है विकल्पजनित ज्ञान. विकल्पजनित ज्ञानके तीन प्रभेद हो सकते हैं, **१. अनेकविकल्पजनित २. अर्थान्यविकल्पजनित ३. यथार्थविकल्पजनित.**

(अनेकविकल्पजनित ज्ञान)

यह संशयात्मक होता है क्योंकि जिसको विकल्पजनितज्ञानकी एक कॅरेक्टरीस्टिक् न दिखती हो, बहोत सारी कॅरेक्टरीस्टिक् दीख रही हो; जैसे **''त्वं कुमार उत वा कुमारि त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि''** तो संशय होना स्वाभाविक है. इस संशयके भी अपने यहां दो प्रकार माने गये हैं, **उत्कट** और **अनुत्कट**. जिसमें एक विकल्प अथवा कॅरेक्टरीस्टिक् स्ट्रोंग् हो तो 'उत्कट' हो जाता है और कोई भी कॅरेक्टरीस्टिक् स्ट्रोन्ग् न दिखती हो, सब छुटी दिखती हो तो वह 'अनुत्कट' कहलाता है.

(अर्थान्यविकल्पजनित ज्ञान)

दूसरी वॅराइटी है अर्थान्यविकल्पजनित. अर्थान्यविकल्पजनित मैं क्यों कह रहा हुं इसका कारण समझो कि **''विपर्यासो भिन्नार्थप्रतिपादकः क्रियाज्ञानयोश्च भिन्नविषयत्वम्''** भ्रमकी परिभाषा महाप्रभुजी किस प्रकार कर रहे हैं? विपर्यास भिन्नार्थका प्रतिपादक है. भिन्नार्थ अर्थात् क्रियाका ऑब्जेक्ट् कुछ और है और समझका ऑब्जेक्ट् कुछ और है. इन दो ऑब्जेक्ट्में कोर्डिनेशन् होना चाहिये था, एकत्व होना चाहिये था,

वह नहीं होके ड्युआलिटी होती है तब संदिग्ध कॅरेक्टर् हो जाता है. इसलिए आपको भ्रम हो रहा है. अर्थात् ऑब्जेक्ट् तो कुछ और है और उसकी कॅरेक्टरिस्टिक् कोई दूसरी है. दोनों रियल् ही हैं, पर जिस ऑब्जेक्ट्की जो कॅरेक्टरिस्टिक् होनी चाहिये, वह न हो कर, कोई दूसरी ही है. अर्थात् कॅरेक्टरिस्टिक् और ऑब्जेक्ट्में मिस्मॅच् है.

अब इस अर्थान्यविकल्पजनित ज्ञानके भी दो प्रकार हैं. पहला **निरधिष्ठानक भ्रम** और दूसरा **साधिष्ठानक भ्रम.** 'निरधिष्ठानक' अर्थात् हॅल्युसिनेशन्. और इसके बाद इसके भी दो प्रकार. पहला **ज्ञानमर्यादाके साथ** और दूसरा **ज्ञानमर्यादाके बिना.** ज्ञानकी मर्यादा ही (कन्डिशन् ऑफ् अन्डर्स्टॅन्डिन्ग्) ऐसी हो कि जैसे रेल्की दो पटरी जुड़ती हुयी दिखें, वे जुड़ती नहीं हैं पर जुड़ती हुयी दीखती हैं. यह एक माइल्ड् हॅल्युसिनेशन् जैसा है पर इस ज्ञानकी मर्यादा ही ऐसी है तो उसे हम 'कन्डीशन्-ऑफ्-नॉलेज्' कहेंगे.

प्रश्न : अभी आप जो निरधिष्ठानककी परिभाषा दे रहे हो और पिछली बार जैसे आपने निरधिष्ठानककी परिभाषा दी थी हॅल्युसिनेशन्के रूपमें. एक और चीज आपने बतायी थी कि हॅल्युसिनेशन् होता है without an external objectiv stimulation. तो यहाँ कैसे समझना?

उत्तर : इसीलिए मैं इसको अर्थजनितज्ञान न कह कर 'विकल्पजनितज्ञान' कह रहा हुं. It is a knowledge produced(generated) by the characterstics of the object and not the object itself. यह निरधिष्ठानक है. इन दो रेल्लाइन् जुड़ती दिखायी दे रही हैं, उनका कोई अधिष्ठान नहीं है. शीशेमें जो अपना प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहा है, क्या आप उसको कह पायेंगे कि वह किसी धरातलपर है जो प्रतिबिम्बित होता है? वह तो केवल जाननेका एक प्रकार

है. क्योंकि वह अर्थजनितज्ञान नहीं हो कर ऑब्जेक्ट्की अपनी कॅरेक्टरिस्टिक् है. यह ज्ञानकी मर्यादासे आता है.

आप जब अपना प्रतिबिम्ब शीशेमें देखते हैं तो इतने दृढ़ क्यों होते हैं कि यह प्रतिबिम्ब ही है, क्योंकि वह ज्ञानकी मर्यादा है. You are one hundred percent sure that you are not in the mirror but still you know that this is how I understand the reflection or perspective. Here organisation of external stimuli is not working but internal organisation works. Because this is the way I understand. उदाहरणके लिए जब भी आप कोई विदेशी भाषाको सीखते हैं तो क्या उसे सीधे ही समझ जाते हैं? नहीं, आप उसको अपनी भाषामें अनुवाद करके सीखते हैं. यह उस ज्ञानको प्राप्त करनेकी मर्यादा है. किसी बाहरके व्यक्तिको समझाना हो कि 'तिलकायत महाराज' कौन हैं, तो उन्हें इसी तरह तो समझायेंगे कि वे पुष्टिमार्गके पोप हैं. पर क्या वह सचमें ही पुष्टिमार्गके पोप हैं? नहीं, क्योंकि पोपका तो चुनाव होता है. तिलकायत महाराजका तो चुनाव नहीं होता. पोप बननेकी तो कुछ एलिजिबिलिटी होती है पर यहां तो ऐसा कुछ नहीं है. नॉन्-एलिजिबल् व्यक्ति भी तिलकायत बन सकता है.

पुष्टिमार्गमें तिलकायत महाराजको हम अपना हॅड् मानते हैं. हम उन्हें अपना पोप जैसा तो कहते ही हैं. इस तरह ज्ञानकी मर्यादासे ज्ञान हो, यह अलग वस्तु है और ज्ञानकी मर्यादा बिना कोई ज्ञान होने लगे तो वह हॅल्युसिनेशन् हो गया, निरधिष्ठानक ज्ञान. इसका अर्थ है कि निरधिष्ठानक ज्ञानको हम हॅल्युसिनेशन् नहीं कह रहे हैं बल्कि ज्ञानमर्यादारहित जो ज्ञान हमको हो रहा है, वह हॅल्युसिनेशन् है. और जो ज्ञानमर्यादासहित ज्ञान हमें हो रहा है वह कन्डिशन्-ऑफ्-नॉलेज् है.

(साधिष्ठानक भ्रमज्ञान)

अब इसके बाद दूसरा विकल्प आता है, साधिष्ठानक. यह अर्थान्यविकल्पजनित है. साधिष्ठानक ज्ञानके दो भेद होते हैं **निरूपाधिक** और **सोपाधिक** भी हो सकता है, जिसका विस्तारसे हमने विपर्यासके सन्दर्भमें अध्ययन किया.

(यथार्थविकल्पजनित ज्ञान)

अब आते हैं यथार्थविकल्पजनित ज्ञान. इसकी अन्य मतोंके द्वारा की गयी व्याख्याकी हम चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि इस बारेमें अनेक मत हैं. हम अपनी चर्चा केवल महाप्रभुजी तक ही सीमित रखेंगे. महाप्रभुजीके हिसाबसे इसके तीन प्रमाण हैं; **प्रत्यक्ष अनुमान** और **शब्द**. प्रत्यक्ष दो प्रकारका हो सकता है. **आन्तरप्रत्यक्ष** और **बाह्य दशेन्द्रियके द्वारा होनेवाला प्रत्यक्ष**. अनुमितिके भी दो प्रभेद कहे गये हैं. एक **सम्भावनात्मक अनुमिति** और एक **निश्चयामक अनुमिति**. सम्भावनात्मक अनुमितिको अपने यहां प्रमाण नहीं माना गया है. निश्चयात्मक अनुमिति प्रमाण ही है.

शाब्दके भी अर्थजनित ज्ञानमें दो भेद हैं. **सिद्धविषयक** और **साध्यविषयक**. इसमें महाप्रभुजीके मतमें सिद्धविषयक शाब्दज्ञान प्रमाण है और साध्यविषयक शाब्दज्ञान संशयात्मक है.

(अर्थविकल्पाजनित ज्ञान)

अर्थविकल्पाजनित प्रकारमें प्रमुख दो प्रभेद हैं, **लौकिक** और **अलौकिक**. लौकिकमें एक ज्ञान **प्रमेयबलसे**, दूसरा ज्ञान **प्रतिभाबलसे** और तीसरा ज्ञान **भावबलसे**. यह अर्थके विकल्पसे जनित नहीं है.

(लौकिक प्रमेयबल)

प्रमेयबलसे ज्ञानका श्रीपुरुषोत्तमजी उदाहरण देते हैं कि भूत प्रेत पिशाच का ज्ञान. आजकी टर्मिनोलॉजीमें इसे इस तरह समझ सकते

हैं कि जैसे किसीको हिप्नोटाइज़् कर दें और उसे कुछ दिखायी दे तो वह अर्थजनित नहीं है और अर्थके विकल्पसे जनित भी नहीं है, पर प्रमेयबल्से कुछ हो रहा है. क्योंकि हिप्नोटाज़र् आपको उस सीमा तक हिप्नोटाइज़् कर सकता है कि चाहे आप देख नहीं रहे हों पर आपको लगेगा कि आप देख रहे हैं. यह प्रमेयबलसे है पर है बिल्कुल भूत प्रेत पिशाच की तरह.

(प्रतिभाबल)

एक प्रतिभाबल होता है. प्रतिभा हमारी अन्डर्स्टेन्डिन्ग्का यूनिक् फन्कशन् है. "**स्मृतिर् व्यतीतविषया, मतिर् आगामिनी मता, बुद्धिः तात्कालिकी प्रोक्ता, प्रज्ञा त्रैकालिकी मता, प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी कथिता बुधैः**" अर्थात् भूतकालके विषयका ज्ञानको 'स्मृति' कहा जाता है, वर्तमानकालके विषयको 'बुद्धि' कहा जाता है. जो होनेवाला हो वह समझमें आये तो उसे 'मति' कहते हैं. यदि आपको जो भूतकालमें हुआ है, वह याद रहता है तो आप स्मृतिमान हो. यदि आप जल्दीसे भूल जाते हो तो उसे 'स्मृतिभ्रंश' कहा जाता है. जो कुछ हो रहा है वह आपको ठीकसे समझ आ रहा है, तो आप बुद्धिमान हो. नहीं आ रहा है तो आप बुद्धिहीन हो. यदि आपको होनेसे पहले समझ आ रहा है कि ऐसा होनेवाला है तो आप मतिमान हो. यदि आपको त्रिकालकी समझ आ रही है तो आप प्रज्ञावान हो. पर "प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी." जब आपके पास रचनाशील समझ है तो आप प्रतिभावान हो. यदि आपके सामने ऑब्जेक्ट्र नहीं भी है तो आप उसकी रचना कर सकते हो. यह अर्थविकल्पाजनित है. क्योंकि कोई भी ऑब्जेक्ट्र आपको हिन्ट्र नहीं दे रहा है, फिर भी आप उस ऑब्जेक्ट्रको क्रियेट्र कर पा रहे हो. जितने भी वैज्ञानिकोंने कोई आविष्कार किये हैं, वे सब प्रतिभावान हैं. कोई भी कवि पेंटर् कलाकार ये सब प्रतिभावान हैं.

(भावबल)

इसके बाद आता है लौकिक अर्थविकल्पाजनित ज्ञानका तीसरा प्रकार, भावबल. मेरा कोई दोस्त है नहीं पर मैं किसीको अपना दोस्त मानता हुं, तो वह मेरा दोस्त हो गया कि नहीं! किसी भी लड़के या लड़की के माथेपर नहीं लिखा होता कि वे पति-पत्नी हैं. पर एक-दूसरेमें भाव स्थापित करें तो पति-पत्नी हो जाते हैं. उसके बाद उनको प्रत्यक्ष भी उसी प्रकार होता है. यह अर्थ-जनित नहीं है और अर्थ-विकल्पजनित भी नहीं है. वह तुम्हारा भाव है.

एक सामान्य बात बताता हुं, इस संदर्भकी तो नहीं है पर इससे शायद आपको समझ आ जायेगा. इधर पार्लामें ही एक लड़की रहती थी. उसके सिरसे पांव तक कोढ़ था. कोई भी लड़का उससे शादी करनेके लिए तैयार नहीं था. वह अमेरिका गयी और वहां जा कर उसे एयरपोर्टपर नौकरी मिल गयी. वहां उसके एक सीनियर् ऑफीसर्को; जो कि पारसी दस्तूरजीके लड़के थे, उन्हें वह अच्छी लगी. उन्होंने निश्चय किया कि वे उनसे शादी करेंगे. लड़कीकी माँ उस लड़केको मेरे पास ले कर आयी और बोली ‘‘इसे आप ब्रह्मसम्बन्ध दे दो.’’ उस लड़कीको तो मैं जानता था पर उस लड़केको देख कर मुझे लगा कि यह हिन्दु तो है नहीं. पर कैसे पूछुं? इसलिए इधर-उधरकी बात करके मैंने उसके मुंहसे निकलवाया कि वह दस्तूरजीका लड़का है, अर्थात् पारसीधर्मके धर्म-गुरुका लड़का. मैंने उनसे पूछा कि ‘‘तुम्हें किस लिए ब्रह्मसम्बन्ध लेना है?’’ वह बोला ‘‘मुझे ब्रह्मसम्बन्ध लेनेकी कोई जरूरत नहीं है. पर ये लोग कह रहे हैं कि इस लड़कीसे मुझे शादी तब करने देंगे, जब मैं ब्रह्मसम्बन्ध ले लूंगा.’’ मैंने सोचा कि हमारे वैष्णवोंका कोई भी लड़का इतना महान नहीं होगा जो ऐसी लड़कीके साथ विवाहके लिये तैयार होगा. वह भी इतना सुंदर लड़का, जिसकी इतनी अच्छी सॅलेरी थी. मैंने उनसे कहा ‘‘आप इतने अच्छे हैं पर आप विवाहके

लिए ब्रह्मसम्बन्ध मत लो. आपके धर्ममें तो इसे पारसी बनानेका कोई प्रोविज़न् ही नहीं है. तो आप पारसी रहो और यह वैष्णव रहेगी. इसमें हर्ज क्या है? आप इस ब्रह्मसम्बन्धके झंझटमें क्यों पड़ते हो?'' उस बेचारेने तो कुबूल किया कि उसे इससे कोई लेना-देना नहीं है. उसे तो इस लड़कीसे शादी करनी थी और लड़कीके माँ-बाप कह रहे हैं कि ''शादी करनी हो तो आपको ब्रह्मसम्बन्ध लेना पड़ेगा, इसलिए ले रहा हुं.'' ऐसे महापुरुष कहाँ मिलेंगे? मैंने उनसे कहा ''आप ब्रह्मसम्बन्ध कभी भी लेना नहीं.''

इससे एक बात समझो कि उसका भावबल था. उस भावबलसे उसने स्वीकार किया कि यह मेरी पत्नी है. उस लड़कीमें तो ऐसी कोई क्वॉलिफिकेशन् नहीं थी. ऐसे कोढ़में कोई शादी क्यों करे? यह जानते हुए भी कि लड़कीको सिरसे पैर तक कोढ़ है, फिर भी वह उससे शादीके लिये तैयार था, यह भावबल है. बादमें क्या हुआ, पता नहीं पर मैंने तो उन्हें ब्रह्मसम्बन्ध नहीं दिया क्योंकि शादी करनेके लिए तो ब्रह्मसम्बन्ध है ही नहीं, ठाकुरजीकी सेवाके लिए है. इससे समझो कि भावबल बहुत बड़ा बल है और उसके कारण एक तरहका अनुभव होता है कि यह मेरी पत्नी है. पत्नी ही नहीं सबसे अधिक प्रिय भी है. यह पर्सेप्शन् अर्थसे नहीं हो रहा है, अर्थके विकल्पसे नहीं हो रहा, भावसे हो रहा है.

कुमारसम्भवमें आता है कि जब महादेवजीसे विवाहके लिए पार्वतीजीने हठ पकड़ ली और वे किसीका कहा नहीं सुन रही थीं तो महादेवजी स्वयं उन्हें विवाह न करनेके लिए समझाने आयें. वे कहने लगे ''तुम्हें पता है कि तुम जिसके पीछे पागल हो रही हो वह शमशानमें रहता है, रुंड-मुंडकी माला पहनता है, हमेशा भूत-पिशाचोंसे घिरा रहता है.'' पार्वतीजीने केवल एक ही जवाब उन्हें दिया ''आप जैसा कहते हों वैसे महादेवजी हो सकते हैं.

पर मुझे तो महादेवजी ही वरके रूपमें स्वीकार्य हैं और कोई नहीं, फिर चाहे वह जैसे भी हों.'' इस बातपर महादेवजी भी नतमस्तक हो गये और विवाहके लिए तैयार हो गये. पार्वतीजीने कहा ''**ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिः वचनीयम् ईक्षते.**'' (कुमारसंभव ५।८२) ''मुझे पसंद है बस, क्यों है, इस बातका उत्तर मेरे पास भी नहीं है.'' भावकी शक्ति इतनी बड़ी होती है. और इसके कारण अपना पर्सेप्शन् गवर्न् होता है. एक बार मैं फिरसे यह बात दुहरा रहा हुं कि यह बात अभी तक अपने संप्रदायके किसी भी विद्वानने नहीं कही है. महाप्रभुजीके अनेक वाक्योंके आधारपर संकलन करके कह रहा हुं. पर यह केवल मेरी समझ है, जैसा वल्लभवाणीका अर्थ मैंने समझा है वह यहां कहा. यह ठीक है कि नहीं, यह निर्णय मैं महाप्रभुजीपर और आपपर छोड़ता हुं.

(अलौकिक प्रमेयबल)

इसके ठीक विपरीत अलौकिकमें भी एक अलौकिक प्रमेयबल होता है और एक साधनबल होता है.

जैसे आकाशमें बीजलीकी चमक और गर्जना हम सुनना चाहे या न चाहे, सुनाई देती है. अथवा आँखे रूप रंग आकृति का ही ग्रहण करती है. फिर भी आकाश रूपरंगआकृतिरहित होनेपर भी प्रमेयबलसे आँखसे दिखलाई देता है.

(साधनबल)

यह प्रमाणबल नहीं है क्योंकि उससे यह बात समझमें नहीं आयेगी पर साधन-बलसे बहुतसी वस्तुएं हमें समझ आ सकती हैं. आपको लगेगा कि प्रमेयको जाननेके लिए तो प्रमाणबलको जानना चाहिये. To understand something we have to use the faculty of understanding only and not the faculty of activity.

पर एक बात ठीकसे समझो कि संगीतका ‘सा रे ग म’ समझनेके लिए आपको समझ काम नहीं आयेगी. मैं बता भी दूं तो भी नहीं. केवल आप स्वयं अभ्यास करोगे तो ही समझ आयेगा. यह साधनबलसे समझ आयेगा, प्रमाणबलसे नहीं. इस तरह साधनबलसे बहुतसी वस्तु हमें अनुभव होने लगती हैं. औरतें जब साड़ी देखती हैं तो उन्हें तुरंत पता चल जाता है कि यह साड़ीका कपड़ा अच्छा है कि खराब. मैं कभी यह भेद जान नहीं पाया. यह साधनबलसे उनमें आता है. केवल हाथ फेरनेसे वे समझ जाती हैं. इस तरह साधनबलसे बहुतसी वस्तुएं समझ आ जाती हैं. जैसे कैसे गाड़ी चलानी है, केवल देखनेसे समझमें नहीं आता, चलानेसे ही समझ आता है.

इसके बाद आता है **विकल साधन** और **अविकल साधन.**

(समाधिबल)

विकल साधनमें मैं ‘समाधिबल’ कह रहा हुं. समाधिको ‘विकल’ इसलिए कह रहा हुं क्योंकि जब ऋषियोंको कोई बात समझनी होती थी तो वे समाधि लगा कर उसे समझ लेते थें. उन्हें सब समझ नहीं आता था लेकिन उस वस्तुके बारेमें तो ज्ञान हो ही जाता था. इसका एक मजाकिया उदाहरण ऐसा है कि एक बाबाको एक बहनने पूछा कि ‘‘मैं पुष्टिमार्गका कीर्तन करती हुं पर श्याम मनोहरजीको मुझसे अधिक जसराजजी क्यों अच्छे लगते हैं?’’ तो बाबाने तुरंत समाधि लगायी और नित्यलीलामें मेरी पोज़िशन् देखी कि मैं स्वामिनीजीकी सखी हुं और मैंने एक हंस पाला है और हंसको मैं मोतीके दाने चुगा रहा हुं. यह देख कर स्वामिनीजीने मुझसे कहा कि उन्हें भी हंसको मोती चुगाने हैं. उसके बाद मैंने अपना हंस और मोती स्वामिनीजीके हस्तमें दे दिये. हंसने स्वामिनीजीके हस्तमें चोंच मार दी तो हंसको और मुझे अर्थात् सखीको, दोनोंको शाप मिल गया

“कि जाओ भूमिपर गिरो” तो सखी श्यामबाबा बन गयी और हंस पंडित जसराज. इसलिए जसराजजी मुझे अच्छे लगते हैं. यह बात वह बहनको गले उतर गयी. पर मुझे अभी-तक गले नहीं उतरी. मैने भी जसराजजीको यह बात हँसते-हँसते एक दिन सुनायी. तो वे भी हँसने लगे कि “बाबा, आप भी कहांसे ऐसे मजेदार किस्से ले कर आते हो!” सचमें हँसी जैसी बात ही है. पर समझो कि समाधिबल होता है, हो सकता है कि यह झूठा हो पर बहुत कुछ ऋषियोंको और हमें भी समाधिसे समझमें आता है.

बहोत सारे पर्सेप्शन्में समाधिबल काम करता है, जैसे व्यासजीको नारदजीके कहनेपर “**समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम्**” (भाग.पुरा.१।५।१३) आप समाधि लगाके भगवद्लीलाका दर्शन करो तो आप भागवत प्रकट कर पायेंगे. और उन्होंने भागवतकी रचना की. इसीलिए भागवत ‘समाधिभाषा’ कही जाती है. महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि रामायण भी वाल्मिकीने समाधिमें ही लिखी है. रामके लीला करनेसे पहले ही रामायण लिख दी गयी थी. वह उन्हें अनुभव हुआ केवल समाधिबलसे.

(वरदानादिबल)

इसी तरह वरदान आदि भी विकल अलौकिक साधन हैं. भगवान् किसीको वरदान दे देते हैं. जैसे अपनी वार्ताओंमें आता है कि राणा व्यास शास्त्रार्थमें हार जाते थे. महाप्रभुजीने चतुश्लोकी ग्रंथ पढ़ाया और कहा कि “जाओ, अब शास्त्रार्थ जीत जाओगे.” और वे जीत गये. इस तरह वरदानसे उन्हें समझमें आया. अपने यहां सेवाफलके बारेंमें भी यही बात आती है. विष्णुदास छीपा जो गुसांईजीके द्वारपर बैठते थे, उन्होंने महाप्रभुजीको कहा कि “मुझे सिद्धान्त समझ नहीं आ रहे हैं.” तब महाप्रभुजीने ‘सेवाफलविवरण’ करके उन्हें समझा

दिया और पुष्टि-भक्तिके सारे सिद्धान्त उन्हें इस वरदानसे समझमें आ गये. यह समाधिसे नहीं वरदानसे आया. उन्हें अनुभव होने लगा और उसका फल यह मिला कि गुसांईजीके घर कोई शास्त्रार्थ करने आये तो वे उनसे बाहर दरवाज़ेपर ही शास्त्रार्थ करके भगा देते थे. इतनी अधिक समझ कहांसे आ गयी? वरदानसे. यह भी अलौकिकमें एक साधन है, पर विकल साधन है.

(अविकलसाधन : "एकविज्ञानेन...")

अविकल साधनमें अपने यहां कहा है कि "**एकविज्ञानेन सर्वम् इदं विज्ञातं भवति.**" (द्र.मुण्डकोप.१।१।३) एक ब्रह्मज्ञान आप प्राप्त करो तो आपको सारी वस्तुका ज्ञान हो जायेगा. "**यथा सोम्य! एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्.**" (छान्दो.उप.६।१।४) एक ब्रह्मज्ञानसे सारी वस्तुका ज्ञान होना अविकल साधन है.

(अविकल साधन : ज्ञान एवं भक्ति मार्गका सर्वात्मभाव)

सर्वात्मभाव भी एक ऐसा फिनोमिना है कि यदि वह ज्ञानमार्गसे हो गया तो सर्वत्र आत्मभाव हो जायेगा और भक्तिमार्गसे हुआ तो सर्व आत्मभाव एक भजनीयमें समझमें आ जाता है.

(उपसंहार)

यह पूरा चार्ट मैंने आपको यह समझानेके लिए कि "**निश्चयो यथार्थाऽनुभवः अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्.**" निश्चयका अर्थ है यथार्थका अनुभव. अर्थ यदि ज्ञानका आधा अंग हो तो ज्ञान भी तो अर्थका आधा अंग होगा ही. तो एक जगह अर्थ ज्ञानका आधा अंग है तो दूसरी जगह ज्ञान अर्थका आधा अंग बन जाता है. "**ऋषिणां पुनराद्यानां वाचम् अर्थो अनुधावति.**" (उत्तररामचरित् १।१०) ऋषियोंकी वाणीका अनुसरण अर्थ करता है. "अस्माकन्तु अर्थं वाग् अनुधावति." अपनी वाणी अर्थका अनुसरण करती है और वहां

ज्ञान अर्थका आधा अंग बन जाता था. यह यहां नहीं कहा गया है पर महाप्रभुजीने अलग-अलग जगह जो कहा है, उसे मद्दे नजर रख कर मैंने “**निश्चयो यथार्थाऽनुभवः अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम्.**”का एक चार्टके रूपमें आपको विस्तारसे समझानेका प्रयास किया है.

(सिंहावलोकन)

हमने **अर्थो हि ज्ञानस्य अर्द्धम् अङ्गम् अतएव स्मृतिः न निश्चयात्मिका अर्थाभावात्.** विस्तारसे देखा. इसमें एक पॅराडॉक्स् देखने जैसा है कि ऑब्जेक्ट् यदि अवेयरनेस्का आधा अंग हो तो अवेयरनेस् भी ऑब्जेक्ट्का आधा अंग होनी चाहिये. जैसे, पत्नी यदि अर्धांगिनी है तो पति भी तो अर्धांग होना ही चाहिये, पर उसे मान्यता नहीं मिलती. हम पॅट्रियार्कल् अथवा मॅट्रियार्कल् सोसाइटीमें यह देख सकते हैं, खास तौरपर पॅट्रियार्कल् सोसाइटीमें पत्नीका नाम, सरनेम्, घर आदि बदल जाता है, पतिका नहीं बदलता है. यह एकका दूसरेके ऊपर रहा हुआ सोशियल् फोर्स् है. हम यह देख सकते हैं कि विवाहके बाद यदि पत्नीकी जीवनशैली बदलती है तो पतिकी भी तो बदलती है. एक बात मज़ाकके तौरपर कह रहा हुं कि विवाहके बाद पतिका शरीर मोटा हो जाता है, चेहरा भरावदार हो जाता है. स्त्रियोंमें कुमारीका होनेका भाव चला जाता है और एक मॅच्योरिटीका भाव चेहरेपर झलकने लगता है. पर मॅट्रियार्कल् सोसाइटीमें, जैसे केरलके नमुदरी ब्राह्मणमें पति पत्नीके घर जाता है और विरासत भी माँकी ही बच्चेको मिलती है. आजकल प्रथा नहीं रही है पर पुराने ज़मानेमें सरनेम् भी माँकी ही लगती थी. इसी तरह हम समझ सकते हैं कि अर्थ जैसे ज्ञानका आधा अंग है उसी प्रकार ज्ञान भी अर्थका आधा अंग है ही.

अपने दैनिक व्यवहारमें हम इसे स्वीकार नहीं रहे है यह अलग बात है. यह बात हर प्रजातिमें और हर सोसाइटीमें भिन्न-भिन्न

होती है. उदाहरणतया, पॅग्विन्‌के समाजमें यदि चार पॅग्विन् इकठ्ठे हों तो मादा पॅग्विन् खड़ी रहती है और मादा जिसका चयन करती है वही उसका पति होता है. पर यदि चार मादा इकठ्ठी हों तो उनमें नरके लिए झगड़ा होता है, तो नर कुछ नहीं बोल सकता. वह तो जीतनेवाली मादाके सामने सरेंडर् हो जाता है. यही बात बाघके समाजमें विपरीत है. दो नर बाघ यदि झगड़ा कर रहे हों तो मादा बीचमें बोलती नहीं है. जो बाघ जीत जाता है वह सारी बाघिनोंको ले जाता है. इससे हम समझ सकते हैं कि अर्थ जैसे ज्ञानका आधा अंग है उसी प्रकारसे ज्ञान भी अर्थका आधा अंग है ही. पर समाजमें कहीं इसे रॅकग्निशन् मिलता है कहीं नहीं मिलता है. आफ्रिकामें भी कई ट्राइब्स् ऐसी हैं कि जहाँ स्त्रियोंका ही साम्राज्य चलता है पुरुषोंका नहीं.

ज्ञान अर्थका आधा अंग किस प्रकार होता है यह समझनेका प्रयास करते हैं. एक सामान्य बात आपको बताता हुं कि जितना भी सविकल्पक ज्ञान है, उसमें जिस-जिस प्रकारसे ऑब्जेक्ट्का हमें स्फुरण होता है, उस-उस प्रकारसे स्फुरित होता ऑब्जेक्ट्, पर्सेप्शन्‌के इम्पिरिकल् (इन्द्रियानुभव) अवेयरनेस्‌का विषय नहीं होता है, पर अपनी इन्टलॅक्चुअल् अन्डर्स्टॅडिंग्‌का (बौद्धिक समझ) विषय होता है. जैसे, कोई लड़का है पर वह टिनेज् है कि युवा है, यह विषय हमारे मनमें रहे हुये टिनेज् अथवा युवा होनेके जो कन्सॅप्ट् हैं उसपर निर्भर करता है.

मेरे साथ एक बार ऐसा हादसा हुआ. एक संगीतके कार्यक्रममें मैं मुख्य अतिथि बन कर गया. जिन कलाकारको वहाँ बुलाये गये थे उन्हें मुझे माला पहनानी थी. वे कलाकार पहली बार मुम्बई आये थे और दिखनेमें भी एकदम युवा लग रहा थे. माला पहनानेके बाद मैंने उन्हें बधाई दी और गालपर हाथ फिरा कर कहा कि

“बहुत अच्छा बजाते हो, तुम्हें मिल कर खुशी हुयी.” उन्होंने भी गालपे हाथ फिराने दिये. कुछ देर बाद उनकी लगभग ५५-६०वर्षकी पत्नी वहाँ आयी और बोली “आपको मेरे पतिका प्रोग्राम् अच्छा लगा न!” दोनोंकी आयुमें इतना अंतर दिखा तो मैंने भी सोचा कि शायद अपनेसे अधिक उम्रकी औरतसे शादी की होगी. पर एक्च्युअली उनका चेहरा ही बच्चे जैसा था पर उम्र अधिक थी. उसके बाद उनका बीस वर्षका लड़का भी वहाँ आया! इससे भी रोचक एक किस्सा और है. मेरी बड़ी बहनके पास कोई कम्पनीके परिवारका एक लड़का आया. वह लगभग ४५-५०वर्षका होगा पर दिखता था केवल १०-१५वर्षका ही. मेरी बहन उस समय लगभग तीस वर्षकी होंगी. उन्हें उसपर बहुत प्यार आ गया और उसके गालपर हाथ फिरा कर बोली कि “तू तो बहुत प्यारा लग रहा है, सुंदर है.” थोड़ी देर बाद वह बोला “मैं तो ४५वर्षका हुं!” ये सुनते ही मेरी बहन तो वहाँसे भाग खड़ी हुयी!

इसलिए कोईके कुमार या युवा होनेके कन्सॅप्ट् धारणाके अनुसार हमने बांधके रखे हैं, ऑब्जेक्ट् अपने आपमें नहीं कहता कि “मैं क्या हुं.” उदाहरणतया, टेबल्-कुर्सी भारतमें भी बनते हैं और यूरोप-अमेरिकामें भी बनते हैं, चाइना-जापानमें भी बनते हैं. यह कुर्सी-टेबल्के रूपमें तो हमें दिखायी देती हैं पर ये कहांके बने हैं, इसके बारेमें जो कन्सॅप्ट् है वह हमको इन्फॉर्मेशन् देता है. कुर्सी-टेबल् खुद हमें नहीं बताती. यदि वह कन्सॅप्ट् हमारे दिमागमें न हो तो हम उलझ ही जायेंगे. जो कन्सॅप्ट् हमने अपने दिमागमें बांध रखा है, उसके अनुसार वह ऑब्जेक्ट् व्यवहार नहीं कर रहा है तो भी हम उलझ जाते हैं.

इसीसे हम समझ सकते हैं कि ज्ञान अर्थका आधा अंग होते हुये थोड़ा शाउटिन्ग् न हो तो हम उसपर विश्वास नहीं करते

हैं. अपने व्यवहारमें ज्ञान शाउट् करता हो तो अर्थ साइलॅन्ट् हो जाता है, तब हमें निश्चय नहीं होता कि वास्तवमें ऑब्जेक्ट् इस प्रकारसे कुछ सूचना दे रहा है कि यह मेरी स्वयंकी कोई कल्पना है! इसलिए ज्ञान जब अर्थका आधा अंग बनता है तब वह अपने निश्चयकी एक तरहकी टॅक्निकालिटी है, रियलिटी नहीं. इसलिए वेदांतसम्प्रदाय, न्याय, बौद्ध आदिमें, जब ज्ञान अर्थका आधा अंग बन रहा है तब ऐसे ज्ञानमें निश्चयकी क्वालिटी नहीं मानी गई है पर ज्ञानकी तो क्वालिटी है ही! क्योंकि अर्थको पूछे बिना जब ज्ञान कोई इन्फॉर्मेशन् देता हो तो उसे व्यवहारमें रिलायबल् नहीं माना जाता. यह ज्ञानकी अन्‌रिलायबिलिटी नहीं है पर अपनी एक टॅक्निकल् रिक्वायरमॅन्ट् है. इसीलिए हम बोलचालकी भाषामें ऐसा कहते हैं कि “आप कल्पनामें जी रहे हो.”

पर एक बात ध्यानसे समझो कि कल्पनामें जीनेवाला प्रत्येक व्यक्ति ऐसा नहीं होता कि केवल कल्पना ही करता हो, अपितु कुछ ऐसे उद्यमी और समर्थ पुरुष भी होते हैं जो अपनी कल्पनाके अनुसार वस्तुको गढ़ सकते हैं. जितने भी साइन्टिफिक् इन्वेन्शन् या डिस्कवरी हैं इसमें कई बार अर्थसे कोई भी इन्फॉर्मेशन् न हो पर हाइपोथिसिस्‌के आधारपर कोई थियरी गढ़ी जाती है और वह फिर प्रमाणित हो जाती है. जैसे, न्यूटन्‌ने गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त किसी प्रयोगके आधारपर नहीं किया पर कल्पनासे विचार किया, बादमें उन्होंने प्रयोग किये और उस सिद्धान्तको पुष्ट किया. यह केवल डिस्कवरी तक ही सिमित नहीं है, इन्वेन्शन्‌के (आविष्कारके) क्षेत्रमें भी इसी प्रकार होता है. फोर्डने जब पहली मोटर् बनायी अथवा राइट् ब्रदर्स्‌ने पहला हवाई-जहाज बनाया अथवा जिन्होंने एक्सरे आदि बनाये, उन्होंने भी पहले तो अर्थकी कल्पना की होगी. उनको अर्थने कोई सिग्नल् नहीं दिया था पर ज्ञानने उनको सिग्नल् दिया कि ऐसा अर्थ होना चहिये और उसके अनुरूप अर्थ प्रकट हो गया.

(कल्पना और भावना का भेद)

अपने यहाँ कल्पना और भावना में भेद किया गया है. आप अपनी भावना किसीमें ऐसी कर रहे हो कि यह मेरा दोस्त है अथवा बहन है अथवा भाई है अथवा पत्नी है अथवा पति है अथवा मालिक है अथवा नौकर है अथवा गुरु या शिष्य है आदि, और उन भावनाओंके अनुसार सामनेवाला व्यक्ति यदि गढ़ाता नहीं है तो भावना कल्पनामें डिजनरेट्र हो जाती है. और कल्पनाके अनुसार यदि आप वस्तुको फॉर्मेट्र कर पाते हो तो वह कल्पना नहीं रह कर भावना बन जाती है, जिसके लिए महाप्रभुजी कहते हैं **"भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यद् ईष्यते"** (सं.नि.८). किसी भी वस्तुके प्रति आपका कोई भी भाव आपकी भावनासे पैदा होता है. इस तरह भावना और कल्पना में यह बारीक अंतर है कि यदि अपनी कल्पनाको आप ऑब्जेक्टिफाय् कर पा रहे हो तो वह आपकी भावना है और यदि नहीं कर पा रहे हो तो वह भावना न रह कर कल्पना बन जाती है.

(स्मृतिः न निश्चयात्मिका अर्थाभावात्)

ऐसे ही भावनाकी तरह स्मृति भी एक प्रकारकी ऐसी वॅराइटी है कि जिसमें स्मृतिका आधा अंग अर्थ नहीं होता पर स्मृति अर्थका आधा अंग बन जाती है. जैनदर्शनके सिवाय और किसीने भी स्मृतिको निश्चयात्मिका नहीं मानी है. मगर निश्चयात्मिका नहीं होते हुये भी ज्ञानात्मिका नहीं है ऐसा नहीं है. जब भी हमें कोई वस्तु याद आती है, वह वस्तु जिस रूपमें याद आ रही है उसको उसी रूपमें यदि हम पहचान पाते हैं तो वह ज्ञान अर्थका आधा अंग बन जाता है. पर जिस प्रकारसे वह याद आनेके बाद अर्थ यदि रिस्पॉन्स् नहीं दे रहा है तो ज्ञान तो अर्थका आधा अंग बन गया पर अर्थ ज्ञानका आधा अंग नहीं बन पाया. इसलिये हम इसे निश्चय नहीं मान सकते.

कल ही रातको मैंने दो व्यक्तियोंके बीचका संवाद देखा. एकने पूछा "आप कांतिभाई हो न?" तो दूसरेने कहा "नहीं भाई, मैं कांतिभाई नहीं हुं." पहला बोला "अरे, आप मनसुखभाईके लड़के नहीं हो?" वह बोला "मनसुखभाई कौन है, मैं जानता ही नहीं हुं." पहला बोला "ऐसा कैसे हो सकता है. आप मनसुखभाईके लड़के कांतिभाई ही हो." दूसरा व्यक्ति त्रस्त हो गया और बोला "हुं तो नहीं पर आप कह रहे हो तो चलो मान लेता हुं." जैसे ही वह यह बोला तो पहलेने कहा "बात तो सही कह रहे हो पर लगते तो नहीं." "अरे तो क्यों मेरा लहू पी रहे थे, पहले ही मान जाते." हमें यह मज़ाक लगता है पर ऐसे इन्सिडन्ट्र हमारे साथ भी रोज़ाना होते हैं. हमारी भी कुछ अपेक्षायें होती हैं अपनी स्मृतिके आधारपर कि यह तो वही होना चाहिये. इसलिए हम पूछ लेते हैं कि आप वही हो. वह यदि मना कर दे तब हमें अहसास होता है कि हमारी अपेक्षायें गलत थीं. इस तरह हमें समझना चाहिये कि इसके पीछेकी जो मॅकेनिज़म् है वह किस प्रकारसे काम कर रही है.

जैनोंने स्मृतिको प्रमाण माना है. पर हम यदि स्मृतिको सर्वथा अप्रमाण ही मानेंगे तो वेदान्तके अनुसार श्रुति अनुभवात्मिका है पर स्मृति तो स्मरणात्मिका ही है. और यह यदि स्मृति अप्रमाण है तो गीता मनुस्मृति भागवत अप्रमाण हो जायेंगे पर हम तो इन सभीको प्रमाण ही मानते हैं. यहाँ जिस स्मृतिकी बात हो रही है वह हम लोगोंकी स्मृतिकी नहीं है जिनकी स्मृतिपर हमें निश्चयात्मक होनेका विश्वास नहीं है पर उनकी स्मृतिकी बात है कि जिनकी स्मृतिपर निश्चयात्मक होनेका विश्वास है. इसलिए हम अपनी स्मृतिको निश्चयात्मक नहीं मानते हैं. जब भी हमें कोई स्मृति हो रही है वह स्मृति कोई-न-कोई प्रत्यक्ष या अनुमान से पैदा हो रही होती है.

इससे हम समझ सकते हैं कि पहचानना यह तो प्रत्यक्ष है. अथवा किसी वस्तुको हम अनुमानसे भी पहचान सकते हैं अर्थात् प्रत्यक्षात्मक प्रत्यभिज्ञान, अनुमित्यात्मक प्रत्यभिज्ञानसे पहले कोई-न-कोई स्मृति होनी चाहिये. स्मृति यदि न हो तो हम उसे पहचान नहीं सकते. 'प्रत्यभिज्ञान'का अपभ्रंश हुआ पिच्चभिय्यानं और पिच्चभिय्यानंसे हुआ पिच्छाणं और उसीसे हिन्दीमें 'पहचान' बना. इसमें स्मृतिका रोल् होते हुये भी वह सबोर्डिनेट् हो जाता है और प्रत्यक्ष या इम्पिरिकल् अवेयरनेस् का रोल् डॉमिनेटिंग् हो जाता है. तब इसे हम 'स्मृति' नहीं कह कर 'पहचान' कहते हैं. पर जहाँ इम्पिरिकल् अवेयरनेस्का रोल् सबड्यू हो जाए और स्मृतिका रोल् डॉमिनेटिंग् हो जाय तब हमें निश्चिय कहनेकी हिम्मत नहीं होती है क्योंकि कोई यदि प्रश्न करे अथवा हमें चॅलेन्ज् करे कि "मैं नहीं मानता हुं कि ऐसा हुआ है" तब अपने पास यदि उसका इम्पिरिकल् प्रूफ़् न हो तो जानते हुये भी कि ऐसा हुआ है, हम उसे साबित नहीं कर सकते. यह अपनी टॅक्निकल् डिफिकल्टीके कारण स्मृतिको निश्चयात्मक प्रमाण नहीं माननेमें आया है.

मेरे गुरुजी थे सुब्रमण्यम् शास्त्री, एल्फिस्टन् कॉलेज्में संस्कृतके प्रोफेसर् थे. वे जब पढ़ा रहे थे तब मेरे मनमें प्रश्न आया तो मैंने पूछा कि "गुरुजी इसका अर्थ क्या है?" उन्होंने अर्थ मुझे समझाया. उनके अर्थ मुझे समझानेपर मैंने कहा "डिक्शनरीके अनुसार तो यह अर्थ नहीं होता" तो उनको अपने ज्ञानपर आत्मविश्वास इतना दृढ़ था कि "हो सकता है डिक्शनरी गलत होगी पर मैं गलत नहीं हुं!" हमारा ज्ञान डिक्शनरीपर निर्भर होता है पर उन्हें अपने ज्ञानपर इतना विश्वास था कि वे जो कह रहे हैं वही सच्चा अर्थ है, डिक्शनरी फिर भी गलत हो सकती है. और उनका बताया हुआ अर्थ ही सच साबित हुआ! किसी-किसी व्यक्तिकी स्मृति इतनी शक्तिशाली होती है, प्रत्येककी नहीं होती. अंग्रेज़ीमें इसे 'फोटोग्राफिक्

मेमरी' कहते हैं कि एक बार दिमागमें जो बात गयी तो फिर प्रत्यक्षसे भी अधिक प्रमाण होती है.

इसलिए यहाँ जो कॉन्टेक्स्ट्में महाप्रभुजी **स्मृतिः न निश्चयात्मिका अर्थाभावात्** कह रहे हैं कि जब स्मृति हो रही है तब अर्थकी उपस्थिति नहीं होती, इसलिये केवल स्मृतिके आधारपर कोई वस्तुको साबित नहीं कर सकते. इसलिये टॅक्निकल् सॅन्स्में प्रमाण नहीं मानते क्योंकि **अर्थाभावात्**. स्मृतिमें वर्तमान-कालीन अर्थ नहीं होके भूतकालीन होता है, वर्तमान-कालीन अर्थ प्रत्यक्षमें होता है. भविष्य-कालीन अर्थ अनुमितिमें होता है और भूतकालकी वस्तुका स्मरणात्मक ज्ञान तो होता है पर अर्थ नहीं होता. अर्थ यदि उपस्थित हो तो वह फिर स्मृति नहीं कहला कर 'प्रत्यभिज्ञान' कहलाता है और तब प्रत्यक्ष डॉमिनेटिंग् होता है. इसी अर्थमें महाप्रभुजी कह रहे हैं कि **अर्थाभावात्** अर्थात् उस समय वह अर्थ नहीं है और भूतकालमें अर्थ नहीं होगा तो स्मृति भी कैसे हो सकती है! इस अर्थमें मैंने समझाया कि गीता मनुस्मृति आदि स्मृति हैं जो प्रमाण-रूपमें मान्य ही हैं. इसलिए प्रत्येक स्मृति अप्रमाण नहीं है पर अपने दैनिक व्यवहारमें जो स्मृति है उसे यहाँ अप्रमाण कहा जा रहा है.

इसे यदि बोल-चालकी भाषामें समझना हो तो अर्थके बिना पैदा होता अनुभव. अर्थको यदि पत्नी मानें और उसके बगैर होता ज्ञान या तो चिरकुमार या विधुर जैसा होगा और स्मृति विधवा जैसी होगी क्योंकि उसका अर्थ पहले था पर अब स्मृति है उस समय अर्थ नहीं है.

(अनुमानप्रमाणसे निश्चय)

तब प्रश्न यह होता है कि अनुमितिमें भी ऑब्जेक्ट् सामने नहीं दिखता है, यदि ऑब्जेक्ट् सामने दिखायी दे तो उसे अनुमिति ही

क्यों कहेंगे! जैसे धुँआं दिख रहा है पर आग नहीं दीख रही है तो अनुमितिको भी स्मृतिकी तरह मानों. अनुमितिका मॅकेनिज़म् ऐसा है कि यदि दस बार धुँआंको आगके साथ देखा हो तो निश्चय होता है कि जहाँ-जहाँ भी धुँआं है वहाँ-वहाँ आग अवश्य होती ही है. ऐसे निश्चयके बाद यदि कहीं धुँआं दिखे और आग नहीं दिखे तो भी आगकी अनुमिति होती है, जो आगसे तो पैदा नहीं हुयी है पर धुँएंसे हो रही है. यह स्थितिमें **अर्थोहि ज्ञानस्य अर्धम् अङ्गं** तो नहीं रहा यदि ऐसी आशंका हो तो इसके समाधानमें महाप्रभुजी कह रहे हैं कि स्मृतिमें जिस तरहका अर्थवैधव्य है वैसा अर्थ अनुमितिका नहीं है क्योंकि अनुभवमें आपको धुँआं आ रहा है और धुँआं बिना आगके हो नहीं सकता. इसीलिए आपको आगकी अनुमिति हो रही है.

अकबरको भारतकी बहुत सारी संस्कृतिकी समझ नहीं होनेके कारण वह कहता था कि ‘‘यह बात इस तरह कैसे हो सकती है?’’ बीरबल उसे कहता कि ‘‘यह तो पहलेसे ऐसे ही चलता आ रहा है.’’ अकबरने बहुत बार ऐसा सुननेके बाद कहा ‘‘बीरबल, तुम हर बार ऐसा ही कहके मुझे चुप करवा देते हो तो इस बातको प्रमाण कैसे मानना?’’ वह बोला ‘‘कोई दिन आपको यह बात सिद्ध करके दिखा दूंगा.’’ एक दिन अकबर बीरबल आदिके साथ जंगलमें जा रहे थे. उनमें बीरबल सबसे पीछे चल रहा था, अपने आगे चलनेवाले घुड़सवारको भाला चुभाया. आगेवालेने उसके आगेवालेको चुभाया और इस तरह हर घुड़सवारने अपनेसे आगेवालेको भाला चुभाना शुरू कर दिया और अंतमें वह अकबरको भी चुभ गया. उसने क्रोध करके पूछा ‘‘यह किसने किया?’’ तो जवाब आया कि ‘‘यह तो पीछेसे चली आ रही है.’’ उसने कहा ‘‘सबसे पीछे कौन है?’’ पता चला कि बीरबल है. उससे पूछा ‘‘यह क्या हो रहा है?’’ बीरबलने उत्तर दिया ‘‘महाराज, आपने संशय

प्रकट किया था कि जो पीछेसे चला आ रहा है उसे प्रमाण कैसे मानना, तो वह प्रमाण इस प्रकारसे होता है.'' इस तरह सम्बन्धी व्यवधानसे अर्थ जनित है. **अनुमितिरपि सम्बन्धिव्यवधानेन अर्थजनितैव.**

अब जिस प्रकारसे अनुमान प्रमाण है कि धुँआ और अग्नि का साहचर्य हमने देखा. और साहचर्यका निश्चय हुवा. इसे 'इन्फरेंस्' (अनुमान) कहा जाता है.

(उपमानप्रमाण स्वतन्त्र माननेकी आवश्यकता नहीं है, प्रत्यक्ष या शब्द में अन्तर्भाव होनेके कारण)

सादृश्यं रूपादिवत् पदार्थो धर्मरूपः निरूपकभेदसहिष्णुः तद्धर्मः, तद्धर्म-सजातीयो वा. पर एक 'एनेलॉजी' भी होती है जिसका स्वरूप अपने यहाँ 'उपमान' माननेमें आया है. जैसे हम किसीको किसीकी उपमा देते हैं कि ये व्यक्ति उसके जैसा है. उदाहरणके लिए दो व्यक्ति हैं सुरेश और दिनेश. सुरेशको हम यद्यपि जानते हैं और दिनेशको नहीं. तब किसीसे पूछें कि ''मुझे दिनेशसे मिलना है पर उसे पहचानुं कैसे?'' और वह उत्तर दे कि ''आप सुरेशको जानते हैं न! बस दिनेश भी उसी तरह दिखता है.'' आप दस व्यक्तियोंमेंसे सुरेश जैसा जो दिखे उसे पहचान लें तो उसे 'एनेलॉजी' अर्थात् 'उपमान' कहा जाता है. Analogy also plays a part to determine a thing or an object. इसमें मुख्यता सादृश्यकी है. एनेलॉजीसे हमें निश्चय होता हैकि नहीं? जितनी भी अपनी वोकेबुलरी(शब्दावली) है वह एनेलॉजीपर आधारित है. क्योंकि कौनसे शब्दका कौनसा अर्थ होता हो उसका एक ही इन्स्टेंस् दिखाया जाता है, सारे तो दिखाये नहीं जाते.

जैसे मैं आपको यदि समझाना चाहुं कि 'चीता कैसा होता है' तो इसके लिए मैं आपको एक चीता दिखा सकता हुं, सारे

नहीं. कई चीते पीले और काले होते हैं तो कुछ सफेद भी होते हैं. पर एकको देखनेके बाद सभीको जिस आधारपर पहचानते हैं, वह ॲनेलॉजी है. हर स्कूल्के विद्यार्थीकी यूनिफॉर्म् निश्चित होती है. यदि कोई बच्चा उस यूनिफॉर्म्में दिख जाए तो हमें स्कूल्की भी पहचान हो जाएगी, ठीक उसी तरहसे जैसे फायर्मॅन्, नेवी आर्मी आदिके यूनिफॉर्म्से उन्हें पहचाननेंमें आते हैं. पुराने ज़मानेमें कॉंग्रेस्की यूनिफॉर्म् होती थी खादीकी पॉइंटेड् टोपी. भवन्स् कॉलेजमें एक प्रोफेसर् थे जो हमेशा कोट्-पेंट्-टाइ पहनते थे. अचानक जब एक दिन कुर्ते और खादी टोपीमें दिखे तो लोगोंके पूछनेपर वे बोले कि "आज कहीं झूठ बोलने जाना है इसलिए खास यह ड्रेस् पहना है कि लोग मेरे झूठको सच मानें!" तो उनको यह बात ॲनेलॉजीसे समझमें आई कि झूठ बोलनेके लिए खादी टोपी और कुर्ता पहननें ज़रूरी है! इस तरह बहुत सारे शब्दोंका अर्थ हमें ॲनेलॉजीसे समझमें आते है और हमें निर्धारित हो जाता है कि यह अर्थजनित ज्ञान है कि अर्थके बिना ज्ञान हो रहा है. महाप्रभुजी इसी बातको यहाँ समझा रहे हैं कि **सादृश्यं रूपादिवत् पदार्थो धर्मरूपः** यहाँ 'उपमान' कहनेमें आया है. उपमानमें सादृश्यका बहुत बड़ा रोल् है कि 'इसके जैसा यह है.' **रूपादिवत् पदार्थो** अर्थात् यह अर्थ है, धर्मिरूप अर्थ नहीं पर धर्मरूप अर्थ है. **निरूपकभेदसहिष्णुः तद्धर्मः**. सादृश्यकी परिभाषा देते हुए कहते हैं कि जिस वस्तुसे जिसका निरूपण हो रहा है उसमें एक निरूप्य और एक निरूपक है, इतना भेद निश्चित है. यदि एक ही धर्म दोंनोंमें होगा तो सादृश्य नहीं होगा. इसलिए कह रहे हैं कि निरूपक भेद तो हम प्रिज़्यूम् करके ही चलते हैं कि निरूपक धर्म यह है और निरूप्य धर्म यह है और दोंनोंका सादृश्य है. **तद्धर्म-सजातीयो वा.** अथवा तद्धर्म नहीं ले कर केवल सजातीय धर्म लें, अर्थात् वैसे धर्मकी जातिवाला.

सः लक्षणत्वेन ज्ञातो उस वस्तुको जब हम लक्षणसे पहचान

लेंगे तब हमको **द्रव्यस्फुरणेन स्फुरितः** द्रव्यके स्फुरणसे स्फुरित होता है. जैसे, सुरेशभाई और दिनेशभाई एक जैसे यदि हों तो सुरेशभाईके दिखायी देनेपर हम केवल सुरेशभाईको नहीं देख रहे पर उसकी और दिनेशभाईकी सदृशताको भी देख रहे हैं अर्थात् किसीके न बतानेपर भी यह सुरेशभाई है ऐसा ज्ञान हो जाता है.

द्रव्यस्फुरणेन स्फुरितः संस्कारेण शब्दाभिव्यक्तौ अथवा अपने मनमें संस्कार है कि इस व्यक्तिके लिए कौनसा शब्द उपयोग करना, तब दिनेशभाई जैसा दिखता हो उसे 'सुरेशभाई' कहना यह शब्द हमको तुरंत क्लिक् होता है. **वाक्यप्रामाण्याद् अध्यवसीयते** और वाक्यके प्रामाण्यसे हमें यह निश्चय होता है. **"गवयो अयम्" इति.** गो सदृशः गवय, जिसे हम 'नीलगाय' कहते हैं उसे संस्कृतमें 'गवय' कहते हैं. वह शहरमें प्रायः नहीं होती इसलिए 'नीलगाय' अर्थात् क्या? पूछनेपर 'घोड़े जैसी गाय'को 'नीलगाय' कहते हैं. फिर जंगलमें जब भी घोड़े जैसी गाय दिखायी दे तब पूछनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती है कि यह नीलगाय है. इस तरह वाक्यके कारण यह निश्चय होता है. **'गवयो अयम्' इति चक्षुः सहकारिवाक्यम्** आंखको वाक्य सहकार देता है और **वाक्यसहकृतं सादृश्यं वा** वाक्यसे सहकृत सादृश्य जहाँ ज्ञानका कारण बनता है. **अनुग्राहकाणां न प्रमाणान्तरत्वम्** अनुग्राहक होनेके कारण, ॲनेलॉजीमें वाक्यको अथवा प्रत्यक्षको प्रमाण मानना चाहिये, ॲनेलॉजीको स्वतन्त्र प्रमाण माननेकी आवश्यकता नहीं है, यह महाप्रभुजीका मत है. न्यायमतमें ॲनेलॉजी स्वतन्त्र प्रमाण है पर वाल्लभवेदान्तमें उसे स्वतन्त्ररूपसे प्रमाण नहीं माना गया है. इसलिए महाप्रभुजी कह रहे हैं **न प्रमाणान्तरत्वम्.**

(शब्दप्रमाणसे निश्चय)

शब्दोऽपि निश्चयएव शब्द भी निश्चयजनक होता है क्योंकि **धर्मसादृश्यातिरिक्त-संस्कारजनकत्वात्** शब्दसे जब हम किसी वस्तुको पहचानते हैं तो उस शब्दमें उस वस्तुके धर्मका अथवा रिज़ेंब्लेंस्का उल्लेख

नहीं होता पर वस्तुका उल्लेख होनेके कारण **शब्देन च द्रव्यस्फुरणात्** शब्दसे द्रव्यका स्फुरण होता है. **चक्षुषो अपेक्षाभावात् प्रमाणान्तरम्.** उपमान अथवा ॲनेलॉजी में जैसे सादृश्य देखनेके लिए आंखकी अपेक्षा होती है, ऐसी अपेक्षा शब्दमें नहीं होती कि सादृश्य दिखना ही चाहिये. उदाहरणके लिए मैं आपको कहूं कि "'गॅलेक्सी' अर्थात् तारोंका मंडल". इसमें सादृश्यकी आवश्यकता नहीं है, 'गॅलेक्सी' शब्दसे ही गॅलेक्सीका स्फुरण हो जाता है. कोई भी गॅलेक्सी समान नहीं होती है, कई आकारवाली होती हैं, इसलिए यहाँ सदृशता उपयोगी नहीं होती केवल शब्दसे ही समझमें आ जाता है.

यदि अक्षरब्रह्म और पुरुषोत्तम का विचार करें तो उनका भी हमें ज्ञान होता ही है. पर क्योंकि हमें समझाया गया है कि "**यस्मात् क्षरम् अतीतोऽहम् अक्षराद् अपि चोत्तमः अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**" (भग.गीता १५।१८) हम यहाँ सदृशता देखने नहीं जाते हैं कि किसके जैसा हो तो उसे 'पुरुषोत्तम' कहा जाए, बिना देखे भी हमें उसका ज्ञान होता ही है. इसमें चक्षुके सहकारकी आवश्यकता नहीं होती. कन्सॅप्चुअली हम इसे समझ सकते हैं. जैसे, नारदजीने जब नल-कूबर और मणिग्रीव को कहा कि आपका उद्धार कृष्ण-अवतारमें भगवान् करेंगे, तो कृष्णका ब्रह्म परमात्मा भगवान् के रूपमें वर्णन तो उन्होंने सुना ही था. पर जब भगवान्ने उन पेड़ोंको तोड़ा तो न तो वे ब्रह्मकी तरह दिखलायी दे रहे थे, न परमात्माकी तरह और न ही भगवान्की तरह. एक उलूखलसे बंधे हुए साधारण बालककी तरह दिखलायी दे रहे थे. पर नारदजीके शब्दके कारण वे उस बालकके स्वरूपको जान पाये कि ये ब्रह्म परमात्मा भगवान् है. इस तरह शब्दसे भी हमें ज्ञान तो होता ही है.

बौद्ध और चार्वाक शब्दका प्रामाण्य नहीं मानते हैं, केवल प्रत्यक्ष और अनुमान को ही प्रमाण मानते हैं. और यदि उनसे

पूछें कि “आप क्यों नहीं शब्दको प्रमाण मानते हो?” तो कारण कहते हैं कि वह रिलायेबल् नहीं है. पर रिलायेबल् नहीं है यह बात उनको शब्दसे ही समझ आयी न! यदि मेरे प्रश्नका जवाब दे रहे हैं तो यह कैसे समझमें आया? I believe in the testimony और यदि बिना समझके मेरी बातका उत्तर दे रहे हैं तो इसका अर्थ यह है कि वे पागल हैं.

एक बार पूनामें एक सॅमिनार् था. वहां चार्वाक मतको माननेवाले एक प्रोफेसरको कहा गया कि “आप वल्लभसंप्रदाय और चार्वाक मतके तुलनात्मक अध्ययनके बारेमें एक पेपर् लिखो.” उन्होंने लिखा कि “इन दोनों मतोंकी तुलना करना संभव ही नहीं है. क्योंकि वल्लभसंप्रदायकी नींव वेदोंपर श्रद्धाके आधारपर है और हम तो लॉजिक् और पर्सेप्शन् में विश्वास करते हैं. इस तरह इन दोनों मतोंके बीच संवाद असंभव है.” मैंने उनसे कहा कि “आप यह वक्तव्य किसी डायलोग्के अन्तर्गत दे रहे है कि बिना डायलोग्के दे रहे हैं? यदि आप बिना संवादके दे रहे हैं तो आप पागल करार किये जाओगे और नहीं तो संवाद तो आपके कहनेके साथ ही स्थापित हो चुका है. Now you simply cannot say that you belive in perception and we belive in faith, so there cannot be dialogue between us. इस तरह प्रत्यक्षको ही आप प्रमाण मान रहे हो और शब्दको प्रमाण नहीं मान रहे हो तो आप जब कह रहे हो कि “मैं शब्दको प्रमाण नहीं मानता” तो ऐसा आप कह क्यों रहे हो. और आप कह रहे हो क्योंकि आप शब्दको प्रमाण मान रहे हो, इसीलिए तो कह रहे हो. इस तरह शब्द तो प्रमाण है है और है ही. इस बातसे आप इन्कार नहीं कर सकते.

शब्देन च द्रव्यस्फुरणात् चक्षुषो अपेक्षाभावात् प्रमाणान्तरम्. जब शब्दसे द्रव्यका स्फुरण होता है, जब शब्दके कारण आपको यह

पता चलता हो कि आपका मत यह है; यदि मैं बोलूं नहीं तो आपको कैसे पता चलेगा कि मेरा मत क्या है? ‘‘शब्द प्रमाण है’’ यही बात आपको शब्दसे तो पता चली. और यदि आप शब्दपर ही नहीं विश्वास कर रहे हैं तो आप उत्तर क्यों दे रहे हो. अब ऐसे मानके चलो कि कुछ सुनाई दे रहा है और प्रमाण नहीं है तो बिहेव् कैसे कर रहे हो? आपने कहा कि ‘‘शब्दप्रमाण है’’ इसलिये आपकी मान्यता गलत है क्योंकि शब्द प्रमाण नहीं है. ऐसे शब्द ही प्रमाण हो गया. शब्दप्रमाण ही श्रोताकी बुद्धिमें निश्चय पैदा करता है.

(महाप्रभुजीके अभिमत तीन प्रमाण – प्रत्यक्ष अनुमान शब्द)

इसीलिए महाप्रभुजी कहते हैं **त्रीण्येव प्रमाणानि** प्रमाण तीन हैं प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द. उपमान कभी शब्दमें तो कभी प्रत्यक्षमें इन्क्लुडेड् हो जाता है. उपमान कोई अलग प्रमाण नहीं है. यह बात महाप्रभुजी अपने मतके आधारपे नहीं कह रहे हैं, यह बात वेद-भागवत में कही गयी है कि ‘‘**स्मृतिः प्रत्यक्षम् ऐतिह्यम् अनुमानश्चतुष्टयम् ऐतैः आदित्यमण्डलम्**’’ (तैत्ति.आर.१।२।१) ‘‘**श्रुतिः प्रत्यक्षम् ऐतिह्यम् अनुमानं चतुष्टयं**’’ (भाग.पुरा.११।१९।१७) श्रुति प्रत्यक्ष और अनुमान यह तीन प्रमाण हैं. इसमें उपमानको प्रमाण नहीं माना गया है. ‘श्रुति’ = वर्बल् टेस्टीमनी = सुना हुआ, ‘प्रत्यक्ष’ = इम्पिरिकल् टेस्टीमनी और अनुमान = लॉजिकल् टेस्टीमनी.

त्रीण्येव प्रमाणानि इन्द्रियाणि, शब्दः, मनश्च इति; चक्षुः, श्रोत्रं, मनो वा. अर्थात् तीन प्रमाण हैं, इन्द्रिय शब्द और मन अथवा चक्षु श्रोत्र और मन. **स्पर्शादीनाम् अन्यशेषत्वम्. मनस्तु योगजधर्मसहितमेव प्रमाणम्, अन्यत्रतु अप्रमाणम्.** मन प्रमाण है. वह कब प्रमाण होता है? जब मनके ऊपर योगसाधनाद्वारा कन्ट्रोल् प्राप्त किया हो, जिससे कि वह आपको इधर-उधर भटका ना सके तब मन प्रमाण है.

नहीं तो मन अप्रमाण है. योगसामर्थ्यसे गढ़ा हुआ मन न हो तो वेगरी (vagary) होती ही रहती है. उसे प्रमाण नहीं माना जा सकता. **अतएव स्मृतिः अप्रमाणम्.** इसीलिए स्मृतिको अप्रमाण कह रहे हैं. इसलिए नहीं कि स्मृतिमें भूतकालका अनुभव नहीं है. पर स्मृतिके कारण अर्थ वहाँ मौजूद नहीं है और आपको जो अवेयर्नेस् है उसमें एक प्रकारकी वर्तमानकालिक अर्थरहितता (अर्थवैधुर्य) आ रही है, जिसका अर्थ मर गया है. इसको जस्टिफाय् कैसे कर पाओगे? कोई भी इसके अर्थके अवशेषसे जस्टिफाय् करो तो वह स्मृति न रह कर रॅकोग्निशन् हो जाती है, प्रत्यक्ष हो जाती है. जैसे मोहनजोदड़ो हड़प्पा लोथल आदिके जो अवशेष बच गये हैं, उससे हमको जो स्मृति आती है वह तो रॅकग्निशन् है, स्मृति इसको नहीं कहा जा सकता. क्योंकि उसका अर्थ तो मिल रहा है. आज जो समुद्रके नीचे जो द्वारिका मिली, उसे स्मृति कहा जायेगा कि प्रत्यक्ष कहा जायगा? द्वारका भूतकालका विषय है पर वह उस समयके सारे अवशेष समुद्रमें छोड़ गयी है और वे सारे अवशेष अब हमको प्राप्त हो रहे हैं. इससे यह तो सिद्ध हो गया कि द्वारिका थी. पहले लोग यह मानते थे कि द्वारिका कोई कल्पना है पर उन अवशेषोंसे यह निश्चय हो गया कि द्वारिका थी. द्वारिका थी यह स्मृतिरूपसे हो रहा है कि अर्थजनित है कि अर्थाजनित है? इसके उत्तरमें हमें कहना पड़ेगा कि यद्यपि द्वारिका रूपी अर्थ आज मौजूद नहीं है पर सम्बन्धी व्यवधानसे द्वारिका न सही पर उसके अवशेष तो हैं ही.

(सङ्घातात्मकज्ञान अप्रमाण)

सङ्घातात्मज्ञानञ्च अप्रमाणं. 'सङ्घातात्मकज्ञान' अर्थात् पांचभौतिक संघातको हम 'अहम्' कहते हैं. पर समस्या यह है कि जब मैं कहता हुं कि 'मैं हुं', तब 'मैं'माने कौन? क्या चेतनाको 'मैं' कह रहा हुं कि पांचभौतिक शरीरको मैं 'मैं' कह रहा हुं? यदि

चेतनाको 'मैं' कह रहा हुं तो शरीरको 'मैं' नहीं कहना चाहिये और यदि शरीरको 'मैं' कह रहा हुं तो चेतनाको 'मैं' नहीं कहना चाहिये. और यदि हम इनके (मैं, मेरा) प्रयोग देखें तो शरीरको 'अहं' कहते है और चेतनाको 'मेरी' कहते है. जब 'मेरा शरीर' कहते है तब क्या प्रोब्लेम् हो रही है? I am treatimg my body as a my body, not 'me'. There is a confusion. When i say 'me' whether i refer my body or my consiousness? यदि confusion है तो प्रमाण नहीं है. देखो, यहां कैसा सुंदर पेरेडोक्स् है! मैं ऐसा नहीं कह सकता कि 'मैं नहीं हुं'. क्योंकि ऐसा कहते ही 'कौन नहीं है?' यह प्रश्न उठेगा तो फिर कहनेवाला कौन है? कुछ तो 'मैं' जैसी अवॅयर्नेस् है, पर उसका ऑब्जेक्ट् क्या है, यह पता नहीं चलता. यह निर्णय नहीं होनेके कारण हम इसको भ्रमात्मकज्ञान मानते हैं. और भ्रमात्मकज्ञान ट्रु नहीं होता. Uncertain knowledge is not true. Certanity is true. इसके साथ ही निश्चयका विषयपूरा हुआ.

(स्मृतिः स्वतन्त्रा)

स्मृतिः स्वतन्त्रा, स्मृति स्वतन्त्र है, क्योंकि यह अर्थके कारण पैदा होती हो, यह आवश्यक नहीं है. यह कभी बिना अर्थके भी पैदा हो जाती है. ''आयी जो उनकी याद तो आती चली गयी'' क्यों आयी, यह पता नहीं. अर्थके कारण याद नहीं आ रही है, बस आ रही है. गुजरातीमें इसके लिए बहुत सुंदर शब्द है 'विचारवायु'. एक बार आप विचारवायुके चक्रवातमें चढ़ गये तो फिर एक घटनाके बाद दूसरी घटनाकी याद आती ही जाती है. इस प्रकार स्मृति स्वतंत्र है. **बुद्धिः संस्कारजनिका** बुद्धि संस्कारोंको पैदा करनेवाली होती है कि जिसके कारण स्मृति स्वतन्त्र है. बुद्धिमें ऐसे संस्कार हो जाते है. बुद्धि जब भी किसी ऑब्जेक्ट्के कोन्टेक्ट्में आती है तो उसकी इम्प्रेशन् गेधर् कर लेती होनेके कारण, स्मृति

वस्तुके बगैर भी होती रहती है.

(स्वप्नकी अप्रमाणता)

स्वापः स्वप्नरूपः, भिन्नसृष्टिविषयत्वाद् न पूर्वोक्तेषु अन्तर्भावः. स्वाप = स्वप्न. यह जो स्वप्नकी सृष्टि है, वह बाहरी नहीं है. जैसे हमें यदि इम्पिरिकल् ज्ञान होता हो तो उसमें इम्पिरिकल् अवेयरनेस्का ऑब्जेक्ट् बाहर होता है. पर स्वप्नका ऑब्जेक्ट् बाहर नहीं होता, भीतर ही होता है. इन्टर्नल् होनेके कारण कोई दूसरी ही सृष्टिके बारेमें स्वप्न होता है. इसपर कोई कहे कि ऐसा नहीं है, जो हम बाहर देखते हैं, उसीके स्वप्न हमें आते हैं. स्वप्नके लिए यह निश्चित नहीं है. एक श्लोक है "**द्रष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितः तथा भाविको दोषजश्चैव स्वप्नः सप्तविधः स्मृतः**" **द्रष्टः** कोई वस्तु देखी हो, **श्रुतः** किसी वस्तुके बारेमें सुना हो, **अनुभूतः** किसी वस्तुको देखा ना हो और ना सुना हो पर उसका अनुभव किया हो, **प्रार्थितः** हमसे किसीने कुछ मांगा हो, **कल्पितः** हमने कुछ कल्पना की हो, **भाविकः** कभी कुछ होनेवाला हो = इन्ट्य्रुटिवली भी स्वप्न आते है. **दोषजः** किसी दोषके कारण भी स्वप्न आते हैं. एक बहनने मुझे एक दिन पूछा कि "जै जै, आप आज मेरे सपनेमें आये पर आपने साड़ी पहन रखी थी. आप बताओ कि इसका अर्थ क्या है?". मैंने कहा "मैंने तो आज तक साड़ी पहनी नहीं है और इस पोशाकमें मैं आपके सपनेमें आया हुं, तो अर्थ भी आप ही बताओ."

एक दन्तवैद्य लाभशंकर भाई थे. वे दांतके पास अपनी अंगुली और अंगुठा डाल कर दांत निकाल देते थे. भाटिया महाजन वाडीमें उनका दंतयज्ञ था, जिसमें मेरे सामने उन्होंने सौ आदमीके दांत बाहर निकाल दिये. मुझे ऐसा लगा कि क्या दांत इतने कमजोर होते हैं क्योंकि वह तो उनको फूलकी तरह तोड़ देते थे. ऐसा सब

देख कर मुझे दांतपर इतना अविश्वास हो गया कि रातको मुझे सपना आया. मैं वॉशबेसिन्पर खड़ा हुं और एक-एक करके अपने दांत हाथसे निकाल दे रहा हुं. सोते-सोते मेरे पसीने छूटने लगे कि ऐसे तो मेरे सारे दांत बाहर आ जायेंगे. डरके मारे जाग कर तुरंत अपने दांत देखे ते चैनकी सांस आयी कि वह केवल एक सपना था. भयसे जो दोष पैदा हुआ था, स्वप्न उसीके कारण आया था. इस तरह सपने बहुत सारे कारणोंसे आ सकते हैं. सपना आये तो आवश्यक नहीं कि उसका अर्थ हो ही.

यद्यपि फ्रॉइड्ने सपनेके आधारपर एक थॅरेपी गढ़ी थी. होमियोपॅथीवाले भी कई बार सपनेके आधारपर आपका इलाज करते हैं. ऐसा नहीं है कि सपना आनेका कोई प्रयोजन नहीं होता ऐसा अर्थ नहीं है. उसका कोई-न-कोई प्रयोजन तो अवश्य होता है. पर जो सपना आया उसका कॉरेस्पाँडिंग् ऑब्जेक्ट् होना आवश्यक नहीं है. जब मैं यह कह रहा हुं कि सपनेका कोई अर्थ नहीं है, तो उसका अर्थ यह नहीं है कि उसका कोई पर्पज़् नहीं है. पर्पज़् तो होता है. जैसे मैं एक अपनी बात बताता हुं. मेरे एक गुरुजी थे, जिन्होंने ग्यारह वर्ष मुझे पढ़ाया था. पर गुरुजीका एक भी काम मैं नहीं कर पाया. हमेशा मेरे मनमें यह बात खटकती थी कि इतने वर्ष गुरुजीने मुझे पढ़ाया पर मैंने तो उनके लिए कुछ किया ही नहीं. पर इसके कारण हमेशा मुझे एक सपना आता था, अबतो नहीं आता कि हम एक पहाड़पर चढ़ रहे हैं और गुरुजी चढ़ नहीं पा रहे हैं, तो मैं उनसे कह रहा हुं कि ‘‘कोई बात नहीं, गुरुजी आप मेरा सहारा ले कर चढ़ो.’’ था यह कि मनमें एक कसक रह गयी थी कि मैं उनके कुछ भी काम न आ सका. वह उस स्वप्नके द्वारा दूर होती थी. यह पर्पज़् तो था उस सपनेका पर मेरे और गुरुजी के बीच कभी भी ऐसी परिस्थिति पैदा नहीं हुयी कि हम पहाड़के नीचे पहुँज गये और गुरुजी चढ़ नहीं पा रहे

हों. इस तरह पर्पज़् तो होता है सपना आनेका पर मीनिंग् नहीं होता. मीनिंग्के दोनों अर्थ होते हैं, एक पर्पज़् और दूसरा ऑब्जेक्ट्. यह सपने मुझे गुरुजीके जानेके बाद ही आते थे, उनके रहते हुए कभी नहीं आये क्योंकि मनमें यह कसक रह गयी थी कि मैं गुरुजीके लिए कुछ कर नहीं पाया! दिमाग सपनेके द्वारा कम्पेन्सेट् करता था.

(निद्रा, स्वप्नका ही भाग होनेसे अप्रमाण)

सुषुप्तिस्तु न बुद्धिः, मौढ्यत्वेन परं बुद्ध्यवस्था. सुषुप्ति अर्थात् नींद, बुद्धि नहीं है. पर बुद्धिका इन्ओपरेटिव् हो जाना ही सुषुप्तिकी अवस्था है. बुद्धिमें यदि कुछ विचार चल रहे हैं तो नींद नहीं आती है. जब सारे विचार आने बंद हो जाते हैं तो नींद आती है. तो फिर आत्माका स्फुरण किस प्रकार होता है? **आत्मनः स्फुरणन्तु स्वतः, स्वप्नभेदएव वा, निद्रानिमित्तत्वात्.** आत्माका स्फुरण बुद्धिसे होता है तब निंद नहीं आती. आत्माका स्फुरण जब चित्तसे होता है तब चित्तसे आत्माका स्फुरण होता है. 'चित्त' अर्थात् अन्-कॉन्शियस् माइंड् जिसमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् होती है. पर कॉन्शियस्-माइंड्से निंदमें सॅल्फ्-अवेयरनेस् नहीं होती. स्वप्नका एक भेद भी हो सकती है क्योंकि निद्राके कारण स्वप्न आते हैं. सायकॉलॉजीके हिसाबसे स्वप्न दो प्रकारके होते हैं. सहीमें तो सारी रात हमें स्वप्न आते रहते हैं. पूरी रात हम गाढ़ निद्रामें नहीं रहते हैं. जाग्रत तंद्रा स्वप्न और निद्रा. रिवर्समें स्वप्न तंद्रा और जागरण, इन तीनोंका साइकल् पूरी रात चलता रहता है. कोई भी स्वप्न रातमें तीन मिनिट्से लम्बा नहीं चलता. पर इससे अधिक समय तक कोई एक सपना आता ही नहीं है. इसका एक बहुत सुंदर कारण है, आप कभी एक प्रयोग करके देखेंगे तो आपको ख्याल आयेगा कि जब भी आप किसी कार ट्रेन् या बस में जा रहे होते हैं तो वह दूरी किस प्रकार कट रही है, उसका विचार आंख बंद करके आप मनमें

करें. फिर आप आंख खोल कर देखेंगे तो आपके पहुंचनेसे पहले आपका मन वहां पहुंच चुका होता है. क्योंकि मनकी गति तीव्र है. इसीलिए जो काम हम सालोंमें करते हैं वह तीन मिनिटमें हो जाता है. इस तरह जागरण और स्वप्न का टाइम् अलग है, रिलेटिव् टाइम् होनेके कारण. इस कारण ही निद्राको महाप्रभुजी स्वप्नका ही भेद कहते हैं, क्योंकि स्वप्नके इन्टरवल्से ही निद्रा आती है. कन्टिन्यूअस् निद्रा अथवा तंद्रा नहीं आती है. तंद्रामें आपको बाहरका सुनायी देता है पर आप उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं दे सकते. इस तरह जागरण तन्द्रा स्वप्न और निद्रा का साइकल् चलता ही रहता है. दो स्वप्नोंके बीच निद्रा होनेके कारण निद्रा भी स्वप्नका प्रभेद है कि जैसे दो वाक्योंके बीच हम पूर्ण-विराम लगाते हैं तो उस पूर्णता भी वाक्यका पार्ट तो है. इसी तरह निद्रा भी स्वप्नका पार्ट होनेके कारण महाप्रभुजी कह रहे है कि निद्राको भी स्वप्नमें गिनो.

प्रश्न : मेरा प्रश्न है कि अर्थ जब ज्ञानका अंग बन रहा है जैसे हम एक तो विषयता-सम्बन्ध कहते हैं और दूसरा विषयिता-सम्बन्ध कहते हैं, तो जैसे यहां ज्ञान और अर्थ एक दूसरेके अंग बन रहे हैं तो क्या उनका सम्बन्ध इसी प्रकारका पूरक सम्बन्ध समझना चाहिये अथवा कोई अन्यथा बात है?

उत्तर : बिल्कुल उसी प्रकारका सम्बन्ध समझना चाहिये. विषयता सम्बन्धसे अर्थ ज्ञानका आधा अंग है और विषयिता सम्बन्धसे ज्ञान अर्थका आधा अंग है.

यहाँ हमारा विषय सम्पन्न हुवा.

* * *

उद्धरणतालिका

अंगाद् अंगात् सम्भवसि	(कोषी.ब्रा.उप.२।११)	३
अखण्डं कृष्णवत् सर्वं यथा	(त.दी.नि.२।१८२)	२७
अजाम् एकाम् लोहितशुक्लकृष्णां	(सां.का.मं.१)	१०
अजाम् एकाम् लोहितशुक्लकृष्णां	(तुल.श्वेता.उप.४।५)	११
अन्नमयं हि सोम्य	(छान्दो.उप.६।५।४)	१५५
अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यै	(त.दी.नि.१।१०४)	१२६
अल्पं हि प्रत्यक्षम् अनल्पम्	(चरक)	३७
आसीद् ज्ञानम् अथो हि	(भाग.पुरा.११।२४।२)	३०९
ऋषिणां पुनराद्यानां वाचम्	(उत्तररामचरित् १।१०)	३२७
एकदेशविकृतम् अनन्यवद्	(पाणि.परि.पा.३७)	१६४
एकविज्ञानेन सर्वम् इदं	(द्र.मुण्डकोप.१।१।३)	३२७
कस्यचित्तु यदीष्येत स्वतएव	(श्लोकवार्तिक.७६)	२९०
कालो अस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो	(भग.गीता११।३२)	८१
कुतो वा नूतनं वस्तु वयम्	(न्या.मं.८)	१२६
कृष्णाश्रयम् इदं स्तोत्रं यः	(कृष्णाश्रय.११)	३०४
कृष्णसेवा सदा कार्या	(सि.मु.१-२)	१०६
को अद्धा वेद कः इह प्रवोचत्	(ऋग्वेद १०।१२९।६)	२१३,३१५
क्षरं प्रधानं अमृताक्षरं हरः	(श्वेता.उप.१।१०)	३६
चक्षुषा आलोच्य वस्तूनि	(लक्ष्मीतन्त्र १३।३४)	२०९,२६७
चयः त्विषाम् इति अवधारितं	(शिशु.वध १।३)	१८१
चेष्टाम् आहु चेष्टते यस्य	(भाग.पुरा.१०।३।२६)	७४
त्वं कुमार उत वा कुमारी	(श्वेता.उप.४।३)	२१२,३१४
नहि कश्चित् क्षणमपि	(भग.गीता ३।५)	४८
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी	(भग.गीता १३।१९)	११
प्रत्यक्षेण अनुमित्या वा	(कृष्ण.यजु.तैत्ति.संहि.सा.भा.उपो.)	३१६
प्रत्याहृत्य मुनि क्षणं	(विदग्धमाधवम् २।१७)	२११

बुद्ध्या विवेच्यमानानां (लंकावतारसूत्र २।१७५) ३१४
ब्राह्मणस्य हि देहो अयं (भाग.पुरा.११।१७।४२) १३७
भावो भावनया सिद्ध: (सं.नि.८) ३३२
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारञ्च (श्वेता.श्वे.१।१२) ३५,३६
मम योनि महद्-ब्रह्म (भग.गीता १४।३) ९२
ममात्र भावैकरसं मन: (कुमारसंभव ५।८२) ३२४
यथा सोम्य एकेन मृत्पिण्डेन (छान्दो.उप.६।१।४) ३२७
यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ (शि.श्लो.१-२) ९०
यस्मात् क्षरम् अतीतोऽहं (भग.गीता १५।१८) ३४०
ये दारागारपुत्राप्तान् (भाग.पुरा.९।४।६५) ३०४
यो अस्य अध्यक्ष परमे (ऋक्.संहि.१०।१२९।७) ३१५
योग: चित्तवृत्तिनिरोध (यो.सू.१।२) ११४
रतिरासो यतो भवेत् (भाग.पुरा.३।७।१९) २७
श्रुति प्रत्यक्षम् ऐतिह्यम् (भाग.पुरा.११।१९।१७) ३४२
संशयात्मा विनश्यति (भग.गीता४।४०) ३१५
सत्यं च अनृतं च सत्यम् (तैत्ति.उप.२।६) ३०५
सत् च त्यत् च अभवत् (तैत्ति.उप.२।६-७) ३०५
समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् (भाग.पुरा.१।५।१३) ३२६
सम्भवामि आत्ममायया (भग.गीता४।६) ४७
स्मृति: प्रत्यक्षम् ऐतिह्यम् (तैत्ति.आर.१।२।१) ३४२
सांङ्ख्यो बहुविध: प्रोक्त: (त.दी.नि.१।९३) ७१
हरिणा ये विनिर्मुक्ता: (नि.ल.११) १२९